हिन्दी को मराठी संतों की देन

आचार्य विनयमोहन शर्मा

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

वक्तव्य

भारतवर्ष केवल कृषि-प्रधान ही नहीं, तीर्थ-प्रधान देश भी है। यहाँ असंख्य तीर्थ-स्थान हैं। अनेक पर्वत, नदी, जलकुण्ड, तपोवन, सिद्धाश्रम, पुण्यक्षेत्र, ज्ञानपीठ, मुक्तिधाम आदि तीर्थस्थल इस महादेश के विभिन्न भागों में स्थित हैं। उन तीर्थ-स्थलों में प्रायः समय-समय पर समस्त देश के रमता योगी साधु-सन्तों का समागम और समारोह होता रहा है तथा अब भी होता रहता है। ऐसे अवसरों पर महात्माओं के सत्संग से श्रद्धालु जनसमाज का तो उपकार होता ही है, साहित्य को भी बहुत लाभ होता है। शताब्दियों से यह काम होता आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा।

आज भी यह देखने में आता है कि पुण्यकाल में सरित्-संगमों और पुण्य तीर्थों में जो धार्मिक मेले होते हैं, उनमें प्रत्येक दिशा से संत-महात्मा एकत्रित होकर ज्ञान और भक्ति की चर्चा करते हैं। इस प्रकार संतों के पारस्परिक मिलन, परिचय और विचार-विनिमय से अबतक आध्यात्मिक साहित्य की काफी श्रीवृद्धि हुई है। हमारे तीर्थों और संतों ने जैसे लोकमानस की चेतना को उद्बुद्ध करने में योग-दान किया है, वैसे ही भारतीय भाषाओं में परस्पर आदान-प्रदान का क्रम भी जारी रखने में सहयोग दिया है। हिन्दी के संत-साहित्य के कई ग्रंथों के विषय में आज भी सुना जाता है कि अमुक तीर्थ में समवेत हुए संत महात्माओं के सत्संग से उनके प्रणयन की प्रेरणा मिली। प्रस्तुत ग्रंथ के कुछ स्थलों का अवलोकन करने से इस धारणा की स्पष्ट पुष्टि होती है। साथ ही, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री भी इसमें मिलती है।

संसार को संतों की देन का लेखा-जोखा करना असम्भव है। संत शिरोमणि महाकवि तुलसीदास ने अपनी 'विनय-पत्रिका' के एक पद में लिखा है कि 'संत में और भगवान् में कभी कोई अन्तर[1] नहीं होता'। श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय[2] में भी स्वयं भगवान् ने कहा है कि 'मैं सभी प्राणियों में समान भाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय; परन्तु जो मुझे भक्ति-सहित भजते हैं, वे मुझमें बसते हैं और मैं उनमें बसता हूँ।' इस प्रकार संत साक्षात् भगवान् ही होते हैं। अतः उनकी देन अनन्त अपार है।

भगवान्-स्वरूप संत सभी देशों और सभी जातियों में पाये जाते हैं। ऐसे संतों की देन से संसार की अनेक भाषाओं के साहित्य का महान् उपकार हुआ है। संतों की

---

१. 'सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं'—(तुलसी)

२. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

अमर वाणियों से जो लोक-कल्याण हुआ है, वह वर्णनातीत है। जगत् के जीवों के मंगल के लिए सन्त सदा जंगम तीर्थ के समान धराधाम पर विचरण करते रहते हैं। संतों के जीवन-वृत्तान्त में देशाटन और सत्संग के अनेक प्रसंग मिलते हैं। गुरु नानक को हम भारत की सीमा के बाहर भी रमते हुए पाते हैं। सारी दुनिया ही संत और फकीर की जागीर है। महाराष्ट्र के संत हिन्दी-प्रधान क्षेत्रों में पर्यटन करते थे और हिन्दी-क्षेत्र के संत भी दक्षिण भारत की ओर जाते थे। हमारे 'चारो धाम' भी संतों के समागम में सहायक होते थे और आज भी होते हैं। ऐसी स्थिति में यह अनुमान असंगत न होगा कि दक्षिण के संत भी उत्तर के संतों से प्रभावित हुए होंगे। प्रकारान्तर से यह अनुमान इस ग्रंथ द्वारा सत्य प्रतीत होगा।

यहाँ एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि देश-भर की राष्ट्र-भाषा हिन्दी की व्यापकता देखकर हिन्दीतर भाषाओं के विद्वान् और महात्मा भी उसके माध्यम से अपने सिद्धान्त और सन्देश का अधिकाधिक प्रचार करना चाहते थे। आखिर उनकी रचना का उद्देश्य भी यही होता था कि वह यदि गेय पद अथवा श्रव्य-काव्य के रूप में हो तो अधिक-से-अधिक लोगों के कण्ठ में बसे—अधिक-से-अधिक लोगों के कर्ण-पुट को पवित्र करे। इसलिए भी संतों ने अपनी वाणी का अमृत हिन्दी को पिलाया कि वह उस दिव्य प्रसाद का वितरण आसेतुहिमाचल कर देगी। भारतीय भाषाओं में विशेषतः हिन्दी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके साहित्य को अन्य-भाषा-भाषियों की देन सदैव समृद्ध करती आई है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अन्य-भाषा-भाषी साहित्यकारों की सेवाएँ आज भी सादर स्मरणीय हैं। इससे उसके राष्ट्रभाषा-पद का औचित्य ही सिद्ध होता है। पाठक देखेंगे कि ये बातें बहुलांश में इस ग्रंथ से भी प्रमाणित होती हैं।

इस ग्रंथ में परिषद् के पाँचवें वर्ष की दूसरी भाषणमाला प्रकाशित है। इस भाषणमाला का आयोजन 'बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के सभा-भवन में सन् १९५५ ई० के २२-२३ मार्च को हुआ था। हमारी समझ में इस ग्रंथ से यह लाभ होने की सम्भावना है कि इसी तरह के अन्य विषयों में खोज करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी और क्रमशः यह तथ्य प्रकट होता चलेगा कि हिन्दी को कहाँ, कब, किससे, कौन-सी देन नसीब हुई। ऐसा होने से हिन्दी के साहित्य-भाण्डार का वैभव ही बढ़ेगा।

ग्रंथकार आचार्य विनयमोहन शर्मा हिन्दी-संसार के एक लब्धकीर्त्ति साहित्य-सेवी एवं समीक्षक हैं। पहले आपका असली नाम श्री शुकदेव प्रसाद तिवारी था। आप मध्यप्रदेश के निवासी हैं। आपका शुभ जन्म सन् १९०५ ई० में हुआ था। काशी के हिन्दू-विश्व-विद्यालय में आपने शिक्षा पाई थी—एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०। सन् १९२८ से १९३० ई० तक खण्डवा (मध्यप्रदेश) के प्रसिद्ध हिन्दी-साप्ताहिक 'कर्मवीर' के सहायक सम्पादक थे। उसके बाद सन् १९४० ई० तक खण्डवा में ही वकालत

करते हुए साप्ताहिक 'स्वराज्य' के साहित्य-विभाग के सम्पादक भी रहे। सन् १६४० से १६४६ ई० तक नागपुर के सिटी कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक। सन् १६४६ से १६५६ ई० तक नागपुर-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष। नये मध्यप्रदेश के निर्माण के पश्चात्, नवम्बर १६५६ से, शासकीय महाकोसल-महाविद्यालय (जबलपुर) में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ—साहित्य-कला, कवि 'प्रसाद'—'आँसू' तथा अन्य कृतियाँ, दृष्टिकोण, साहित्यावलोकन, भूले गीत, गीतगोविन्द (खड़ी बोली-गीति-शैली में रूपान्तर)।

ग्रंथकर्त्ता ने इस गवेषणापूर्ण ग्रंथ के निर्माण में अनेक वर्षों तक अनवरत परिश्रम किया है और आज भी आप इस विषय के अनुसंधान-अनुशीलन में संलग्न हैं। वास्तव में यह ग्रंथ भी हिन्दी-संसार को आपकी एक अमूल्य देन है। आशा है कि परिषद् की भाषणमालाओं के अन्य ग्रंथों की भाँति हिन्दी-संसार में यह ग्रंथ भी समादृत होगा।

चैत्र-पूर्णिमा, विक्रमाब्द २०१४
शकाब्द १८७६; सन् १६५७ ई०

शिवपूजन सहाय
(संचालक)

विषय-सूची

प्रथम खण्ड —

मुसलमान-आक्रमण क पूर्व (यादव-कालीन); मराठी संतों की हिन्दी-वाणी

द्वितीय खण्ड —

मुसलमान आक्रमण के पश्चात् (मुसलमान कालीन) मराठी संतों की हिन्दीवाणी की विवेचना—

तृतीय खण्ड —

मुसलमान-वर्चस्व के ह्रासोपरान्त (शिवाजी-कालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी

चतुर्थ खण्ड —

पेशवाकालीन और पेशवाओं के पश्चात्

भूमिका

मराठी सन्तों की हिन्दी के प्रति सहज ममता रही है। मध्य-युग से लेकर आजतक लगातार मराठी सन्त कीर्त्तन-भजन के अवसर पर मराठी अभंगों और पदों के साथ एक-दो हिन्दी-पद गाते आ रहे हैं। जो मराठी सन्त कवि-प्रतिभा-सम्पन्न रहे हैं, उन्होंने मराठी के साथ हिन्दी-पदों की स्वयं रचना की है और जो केवल कीर्त्तनकार रहे हैं, उनकी मराठी अभंगों आदि के साथ किसी प्रसिद्ध हिन्दी-सन्त के पद गाने की परिपाटी रही है। सन्तों ने प्रान्त या भाषा-भेद को कभी स्वीकार नहीं किया। महाराष्ट्र के सन्त महिपति बोआ ने ईसा की १८ वीं शताब्दी में 'भक्त-विजय' नामक सन्त-चरित्र-ग्रन्थ लिखा है जिसमें मराठी के ही नहीं, हिन्दी के सन्तों का भी उल्लास-पूर्ण गुणगान है। लोक-कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत इन सन्तों की हिन्दी-वाणी का अध्ययन करने का अवसर लेखक को नागपुर आने पर प्राप्त हुआ। सन् १९४६ ई० में, नागपुर में जब अखिल भारतीय प्राच्यविद्या-परिषद् का वार्षिक अधिवेशन हुआ, तब उसने नामदेव की हिन्दी-कविता पर एक शोध-निबन्ध पढ़ा जो 'अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या-परिषद्' के विवरण-ग्रन्थ तथा शान्ति-निकेतन की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्व-भारती' में प्रकाशित हुआ। उस समय उसके सम्पादक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे। उन्होंने तथा प्राच्य-विद्या-परिषद् के स्थानीय मंत्री डा० हीरालाल जैन ने इस दिशा में कार्य करने की प्रेरणा दी। तभी से वह मराठी सन्तों और उनकी हिन्दी-रचना पर सामग्री संचित कर उसपर मनन-चिंतन करता आया है। लेखक को अपनी सामग्री जुटाने के लिए साम्प्रदायिक क्षेत्रों, साहित्य-संस्थाओं और शोध-कार्यप्रेमियों का आश्रय लेना पड़ा। धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता-मंदिर में सबसे अधिक सन्त-वाङ्मय की निधि रक्षित है। वहाँ लगभग दो सहस्र हस्तलिखित पोथियों के विवरण तैयार हो चुके हैं और शेष के हो रहे हैं। इसी प्रकार मराठवाड़ा-क्षेत्र की सामग्री मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद् हैदराबाद के ग्रंथागार में सुरक्षित है। परन्तु वहाँ सामग्री का पूर्ण रूप से वर्गीकरण नहीं हो पाया है। अनेक प्रमुख सन्तों की वाणियाँ 'गाथाओं' के रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं। परन्तु, अनेक 'गाथाओं' में केवल मराठी के अभंग, पद आदि संकलित हैं। ऐसी दशा में लेखक को अप्रकाशित सामग्री का अधिक सहारा लेना पड़ा है। ग्वालियर में श्री भा० रा० भालेराव के निजी ग्रंथागार में भी सामग्री है, पर

मुझे वहाँ जाने का अवसर नहीं मिल पाया। भालेरावजी ने दो-तीन सन्तों पर टिप्पणियाँ भेजने की कृपा की थी, पर बिलम्ब से प्राप्त होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो पाया। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (भाग १०, सं० १९८६, पृष्ठ ८७—११०) में उन्होंने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद' शीर्षक निबन्ध में मराठी के कतिपय हिन्दी-पद-गायक सन्तों का संक्षिप्त परिचय प्रकाशित करा कर इस दिशा में शोध का मार्ग निर्दिष्ट किया है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। हिन्दी-साहित्य के कतिपय इतिहासों में मराठी-सन्तों में नामदेव का उल्लेख मिलता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी-साहित्य' में नामदेव के अतिरिक्त अन्य मराठी हिन्दी-पदकर्त्ता सन्तों का श्री भालेराव जी के उक्त लेख के आधार पर उल्लेख किया है। उनके अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे मराठी सन्त हैं, जिन्होंने हिन्दी में पद-रचना की है। परन्तु, उनका क्रमबद्ध परिचय प्राप्त नहीं था। लेखक इस कमी का अनुभव कर रहा था। गत तीन-चार वर्ष पूर्व बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) में भाषण प्रस्तुत करने के लिए श्री रामवृक्ष जी शर्मा 'बेनीपुरी' और बाबू शिवपूजन सहाय जी ने बार-बार प्रेरित कर उससे यह कार्य सम्पन्न करा लिया। लेखक इन सम्माननीय बन्धुओं का आभारी है!

परिषद् में भाषण हो जाने के पश्चात् भी लेखक का इस दिशा में अनुसंधान-कार्य जारी रहा। परिणाम-स्वरूप उसे अनेक नये संत-कवियों का पता लगा, जिनका संक्षिप्त परिचय देने का लोभ संवरण नहीं हो रहा है। अतः भूमिका में ही उनका समावेश किया जा रहा है।

जयराम स्वामी

समर्थ रामदास के संत-मण्डल में जो अनेक संत हो गये हैं, उनमें जयराम स्वामी का भी स्थान है। इनकी जन्मतिथि गोकुल अष्टमी शक-संवत् १५२१ और समाधि-तिथि भाद्रपद वदी ११, शक-संवत् १५६४ है। ये अत्यन्त गरीब होने से मधुकरी माँग कर अपना जीवन-यापन करते थे। स्वामीजी के चरित्र का एक 'वृत्त' प्राप्त हुआ है, जिसमें लिखा है कि इनके पास एक लँगोटी, शरीर पर एक 'बंडी', नीचे बैठने को एक श्वेत कम्बल और पानी पीने को एक तुम्बा था। (देखिए—भावे—तुलपुले—'महाराष्ट्र' सारस्वत पृष्ठ २७) बड़गाँव में कृष्णाप्पा स्वामी से इन्होंने दीक्षा ली और वहीं रहकर ग्रन्थ-रचना की।

इनके ग्रन्थों में 'दशम स्कंध टीका, रुक्मिणी-स्वयंवर, सीता-स्वयंवर, अपरोक्षानुभव अधिक प्रसिद्ध हैं। ये सब मराठी में हैं। हिन्दी में इनके स्फुट भजन मिलते हैं। भगवान की 'बराई' (बड़ाई) करते-करते स्वामीजी थक जाते हैं। कहते हैं—

ज्याके भेद पायबे कु वेद गुंग हो रहे
ऐसे कोई हय गुणी वाके नीव नीव है।
च्यार मुख पंचमुख, सेषमुख असेषमुख।
वाके गुणन की माला वरने सो कोन है।

नारदादि सिद्ध साध व्यास वाल्मीक शुक
च्युक च्युक के गय सो मोह के नदी बहे।
ज्याहि आदि, मध्य नहीं अंत कहत जयराम पंत
कहा लों बराई करों मोहे येक जीभ है।

जयरामस्वामी का उपर्युक्त कवित्त कवित्वमय है। उसमें 'मराठी' हिन्दी का व्रजरूप है।

शिवराम

ये भी रामदासी थे और इनका मठ तेलंगाना में था। ये मौजी साधु थे। निजामशाही की कल्याणी में इनका मठ था। इनका जन्म-शक-संवत, १६२५ कहा जाता है। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—
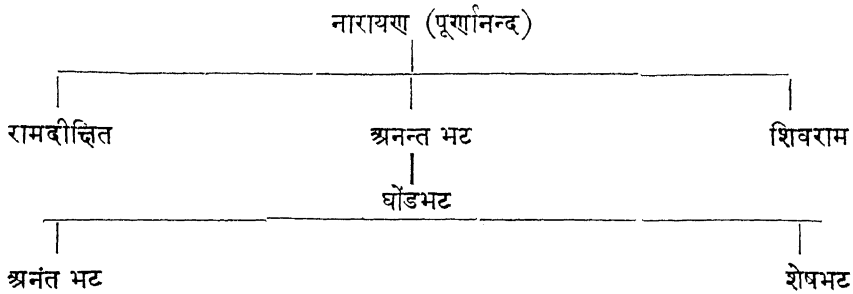
ये पूर्णानंद के शिष्य हैं। इनके हिन्दी-पद, दोहरे आदि लेखक को मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद् (हैदराबाद) के हस्तलिखित ग्रंथागार से उपलब्ध हुए हैं। निजामशाही में रहने से इनकी भाषा में प्रवाह है। भावों में मस्ती है।

इनके नाम पर प्रचलित दोहरे आदि नीचे दिये जाते हैं, जो स्थानीय लोक-प्रचलित खड़ीबोली में हैं और नीतिपरक हैं।

साधू हमारे आत्मा, हम साधू के जीव।
साधू दुनिया यों बसे कि ज्यों गोरस में घीव ॥

× ×

रामेभक्ति बड़ी कठीण हय खांडे जैसी धार।
डगमगावे तो गिर पड़े न तो उतरे पार ॥

× ×

सबमन ऐसी प्रीत कर ज्यों चुना हर्दि का हेत।
हर्दि ने जर्दी त्यजी, चूना रहे न श्वेत ॥
साह का घर उच्च्य हय, जैसी बड़ी खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेमरस, गिरे तो चकना चूर ॥
तेढ़ी पगड़ी बांद कर उपर लगावे फूल!
तलब आइ जब साईं की, गई चोकड़ी भूल ॥

× × × ×

राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट
घड़ी गई पस्तायगा प्राण ज्यायगा छूट ॥

× × × ×

लेना गुरु का ज्ञान
देना धन तन मान
करना अमिरत पान
होना अमर निदान

× ×

वेश्या सूं यारी न करणा
उस यारी सूं दोजख जाणा ।
वेश्या सालिम (जालिम) नंगावणाहारी (नंगा बनानेवाली)
वो जीन्ने मानी अपनी प्यारी ।
दुनिया दारकू करे भिकारी
सालिम बुरी वो सोबत
माल सरे[1] न बैठे सात[2]
माल सरे तो मू ना देखे
माल सरे तो यारि ना राखे
'ज्या मुये घर'—मू पर थूके ॥

शिवराम के उपर्युक्त कुछ दोहे प्राचीन हिंदी-संतों की अनुकृति प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उनका भाषा-प्रवाह उनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा अच्छा है।

देवदास

ये रामदासी शिष्य-मण्डल के अन्तर्गत हैं और अपने धर्म के प्रति अत्यधिक निष्ठावान् हैं। उसपर प्रहार करनेवालों की तीखी भर्त्सना करते हैं। ये दादेगाँव के रामदासी मठ के अधिपति थे।

इनके स्फुट मराठी पद और चौबीस श्लोकों का 'गजेन्द्र मोक्ष' कथाकाव्य प्राप्य है।

हिन्दी में भी इनकी स्फुट रचनाएँ मिली हैं। एक पद है जिसमें कृष्ण-गोपी-प्रेमभाव की व्यंजना है—

देख्यो रे भाई बहुरूपी का ख्याल ॥ धृ० ॥
नव नागर (अमीन) नवरस लीला
अजेब बने नंदलाल ।
दस अवतार राम कृष्ण बन्यो है
सब गोपी खुशाल ।

---

१. समाप्त होने पर। २. साथ।

ईत गोकुल ईत मथुरा नगरी
सबे भई नीहाल ।
दास केसव गोपी ग्वालन
तन मन धन बेहाल ।

दूसरी रचना 'गारुड़ी' (सँपेरा) शीर्षक है। मराठी संतों ने सँपेरे के रूपक का बहुत प्रयोग किया है और उसमें आध्यात्मिक भाव भरने का यत्न किया है।

देवदास की 'गारुड़ी' की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

अवल (अव्वल) याद कर वस्ताद की
पीर पैगंबर नबी की।
साधुसन्त महंतों की
जीन्ने ये मंडान पयदा कीया।
अरे मैं देवदास गारोडी
खेलने की बाजो करु खड़ी
ईस खेलमो आडी तीडी
उस लंडीका काम नहीं ॥
अरे मैं गारोडी देवदास
खेलने कु आया तुमारे पास
अवल दील ते पकडो वीसवास ॥
वज्यात पाशा देखते रहो
लाया हुं गयब (गैब) का पेटारा
कोई गाव गुंडा होगा पूरा।
भाई का नाम चारा। बोलो मेरे सो यारो।
हो यारो ममता नागीन नाचती है।
अब तुजकु बतला।
वो वस्ताद के हाथ का येक मोहरा
हमारे हात च्येढ़ा दीन रख।
नागिन का तुटे थारा
के आवने न पावे।

ईसा की सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में निजामशाही में सामान्य जनता हिन्दी को जिस रूप में बोलती थी, देवदास की 'गारुड़ी'—रचना उसका एक उदाहरण है।

मुकुन्दानन्द

मराठी संत-कवियों में मुकुन्द नामधारी छह व्यक्ति हो गये हैं। एक एकनाथ चरित्र-कार हैं। दूसरे सारिपाट-रचयिता हैं, तीसरे प्रबन्धकार हैं, चौथे देवभक्तानुवाद, रामकृष्ण-विलास आदि के कर्त्ता, पाँचवें मराठी आदिकवि विवेकसिंधु, परमामृत आदि के लेखक

और छठे वेदान्त, अंकुशपुराण, रामायण, सुन्दरकाण्ड आदि के निर्माता हैं। अतः इन्हीं छठे मुकुन्द के कृतित्व पर विचार किया जाता है। इनके सम्बन्ध में भारत-इतिहास-संशोधन-मण्डल (पूना) के शके १८३४ के वृत्त में थोड़ी चर्चा की गई है। इनका जन्मस्थान खण्डवा है। इसे इन्होंने अपने आत्मचरित में लिखा है—'नीमाड़देशांत खांडोनवाशी असे जन्म माझा तया पौरदेशी'—पिता का नाम नारायण है। सात वर्ष की आयु में ही इनका विवाह हो गया था। उसके बाद ही पिता का देहान्त हो गया। दारिद्र्य से उत्पीड़ित हो ये खानदेश में 'जैतापुर' जाकर पितामह के पास रहने लगे। इन्होंने शके १६२३ में स्वप्न में गुरुमन्त्र ग्रहण किया। कुछ समय तक इन्होंने औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र मोअज्जिम के यहाँ नौकरी की तथा देश का विस्तृत भ्रमण किया और तीर्थस्थलों की यात्राएँ कीं। इससे इन्हें ब्रज निमाड़ी, आभारी, बागलाणी, खानदेशी, गुर्जरी, धारवाड़ी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था। इनकी समाधि-तिथि अज्ञात है।

इन्होंने मराठी में रामायण सुन्दरकाण्ड, रेणुका-सत्य-दर्शन, दानलीला, गुरु-स्तुति, अंगद-शिष्टाई, सुदामा-चरित्र, छन्दोरत्नाकर आदि ग्रंथों की रचना की और हिन्दी में फुटकल कवित्त, पद आदि लिखे। लेखक को इनका एक कवित्त मिला है जिसमें काव्य-छटा है और भाषा की दृष्टि से भी अधिक स्वच्छता है। उसे पढ़ने पर ज्ञात हो जाता है कि इनका ब्रजभाषा से अवश्य परिचय रहा है। इतना ही नहीं, हिन्दी-काव्य परम्परा से भी ये अवगत रहे हैं। कवित्त इस प्रकार है—

ज्याहे जलकमल रे कोकिल बसंत हित
ज्याहे मोर मेघ रे चकोर इक चंद को।
ज्याहे चक्रवाक परकाश परभात भई
ज्याहे मेह सरवर सिंपी स्वाति बुंद को।
नादन कु स्वाद ज्याहे कुरंगी कुलह मोहे
भुजंग ज्याहे च्यंदन (औ) भृंगी मकरंद को
ज्याहत चरनारविंद विलोकि मुकुन्दानन्द
वसुदेव सुत्तानंद नंदन क नंद को॥

राम

इनका शोध स्वर्गीय राजवाड़े ने लगाया था। ये शक-संवत् १५६७ में जीवित थे। पैठण के किसी नारायणस्वामी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम नृसिंह और पितामह का गोपीनाथ था। इनका मराठी में साढ़े तीन हजार ओवियों का ग्रंथ है जो काव्य की दृष्टि से उत्तम कहा जाता है। लेखक को इनका हिन्दी में निम्नांकित पद उपलब्ध हुआ है—

ताल लिये वरुण कुबेर करताल लिये
झांज लिये पवन मृदंग अमरेस है।
बीन लिये नारद पितामह सारंगी लिये
मरुत सीतार मुहचंग लिये सेस है।

गावे गुरु सनक सनंदन ज्यम (यम) अनल
गणेश उच्चार करे चन्द्रमा दिनेस है।
राम कहे गोकुल में नंदन मुकुन्द भये
................सभा मधे नाचत महेस है।

नरहरि-रामदासी

महाराष्ट्रीय सन्तों में नरहरि, नरहरि सोनार, नरहरि माली, नरहरि मोरेश्वर, नरहरि और नरहरि-रामदासी नामक छह संत हो चुके हैं। दो नरहरि तो ऐसे हैं कि जिनके आगे जाति, ग्राम, गुरु किसी का पृथक् नाम भी जुड़ा हुआ नहीं है। ऐसी दशा में हिंदी-पदकार कौन नरहरि है, इसका निर्णय करना कठिन है। इनका अप्रकाशित हिन्दी-पद रामदासी मठ से प्राप्त हुआ है। इसलिए, इन्हें रामदासी ही मानना अधिक उचित जान पड़ता है। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

भीमस्वामी-नरहरि—समर्थ रामदास। इनका समय सन् १६५० से १७०० माना जाता है। इनके मराठी-ग्रंथ 'आर्य टीका', 'रामजन्म', 'महाभारत', 'शतमुख रावणवध', और 'अभंग' आदि हैं। इनकी जो हिन्दी-रचना लेखक को उपलब्ध हुई है, वह इस प्रकार है—

नंद के नंदन कौंस (कंस) निकंदन
त्रिभुवन वंदन आवतु है।
वेद पुराण बखानत भारत
व्यास गुणी ज्यन गावतु है।
इन्द्र फणीन्द्र दिवाकर चन्द्र
च्तुर्मुख रुद्र मनावतु है।
सूरत देखत मन को बूझत
नरहरि के मन भावतु है।

इसमें यत्र-तत्र शब्द-योजना को आनुप्रासिक बनाकर नाद-माधुर्य बढ़ाने का यत्न दिखाई देता है। पद में प्रवाह है।

मानपुरी

इनकी देवगिरि (दौलताबाद) में समाधि है। समाधि-तिथि ज्येष्ठ शुक्ल ५ रविवार, शक-संवत, १६५२ है। इनके जीवन-व्यापार के सम्बन्ध में विशेष ज्ञात नहीं है। इनके फुटकल पद उपलब्ध हैं। इनका मराठी के अतिरिक्त हिन्दी पर भी अधिकार जान पड़ता है। इनके हिन्दी में कई अप्रकाशित पद लेखक को प्राप्त हुए हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने उत्तर भारत की यात्रा ही नहीं की, वहाँ कहीं काफी समय तक ये रहे भी हैं।

'गंगा' पर इनका पद है—

तेरो हि निर्मल नीर गंगा जु तेरो हि निर्मल नीर
तेरोजु न्हाइये पाप कटतु है पावन होत सरीर।
देस देस के यात्रा आवे देखन तेरो तीर
मानपुरी प्रभु तुम गुन-सागर, जाहाँ ताहाँ देखत भीर ॥

प्रतीत होता है कि गंगा के पवित्र जल में स्नान करने से शारीरिक और आत्मिक शीतलता का अनुभव कवि को हो चुका है।

'अपने राम' के प्रति इनमें भी नामदेव के समान ही 'तालावेली' (तड़प) है—

तुम बीन और न कोई मेरो
तुम बीन जीय को दरद न ज्याने।
भर भर अखीयाँ रोई ॥

इसीलिए ये निशिदिन 'उनका' ध्यान करते हैं—

'निसिदिन लागो रे तेरो ध्यान गोपाला
सुन्दर रूप देख मन मोहे भव-भ्रम भागो रे
मुरलि की धुन सुन भई रे बावरि
सब सुख त्यागो रे।
मानपुरी हरखि छब निरखत
आनन्द ज्यागो रे।

अपने 'घट' में ही 'राम' का निवास है, परन्तु इस भेद को गुरु ही बता सकता है—

'मृगनाम सुगंध भरे भटके बनमुं (में) सुगंध चित्र उदासी
घट में नट आप विराजतु हैं सुद (सुध) न लेत मुरख बुद्ध वीनासी
देही के देव को भेद न जाणत कैसी कटेगी तेरी जमफासी
कहे मानपुरी गुरु गुमान बिना नित मीन मरे परे जल माहि पियासी ॥

अद्वैत भाव व्यक्त कर कहते हैं—

प्रभुजी तुम तरुवर हम पंछी
सहज्यामृत फल बंछी।
तुम च्यंदा हम चेकोर भयेजी
तुम सरवर हम मच्छी।

मानपुरी को किसी देवता से विरक्ति नहीं है। वे सभी में अपने निर्गुण 'राम' को देखते हैं—

भज मन शंकर भोलानाथ
येकहि लोटा भर ज्यल चाहत चावल बेल की पात
बैल बघंबर साँप फिरे घर कावडी खोपर हात।
मानपुरी प्रभु नीर्गुण गावे वासदपणे की बात ॥

घर के भीतर ही 'उसका' आवास है, इसकी अनुभूति कवि को सहसा एक दिन हो जाती है और वह अचरज में डूब जाता है—

आज अचरज देखे सखी री
सुन सखि, कानदेव रहत नगोडी।
न्हाय धोय अंग्य अंग्य सोलह सिनगार किये
ले दर्पण मुख जोये।
तिलक मीटो नैनन के पानी।
आज अचरज देखे सखी री।

उसे दर्पण में अपना नहीं, परम प्रिय परमात्मा का रूप दिखा। परिणामतः आँखें प्रेमाश्रु बहाने लगीं जिससे शृंगार-सामग्री (तिलक) मिटने लगी। बड़ी गहन अनुभूति है।

कबीर के समान ये भी अपने 'लाल' के चारों ओर 'लाली' देखते हैं—

जग गुलज्यारी रे
जीते देखो तीत लाली।
तीनो भुवण फुलवाड़ी फूली फूले तीनों अंग।
चंद सुरज नव लाख तारागण पंच फूले पचरंग।
बलिहारी उन फुलन की जे सूंगत (सूँघत) संतमहंत
मन भोवरा (भँवरा) त्रिपत भये जी चरण कमल की आस
मानपुरी सतगुरु परसादे निसिदिन लेत सुवास॥

मानपुरी संत ही नहीं, कवि भी अच्छे हैं। उनमें भावुकता है—हृदय को स्पर्श करने का गुण है। उनकी हिन्दी-रचनाएँ श्री समर्थवाग्देवता-मंदिर (धूलिया) की अनेक हस्त-लिखित मराठी-पोथियों में यत्र-तत्र लिखी मिलती हैं। लिपिकार के भाषा-ज्ञान के अभाव में उनकी भाषा की एकरूपता नहीं पाई जाती। छंद-भंग-दोष तो संतों की रचनाओं में प्रायः मिलता है।

गोस्वावी नन्दन

इनका मूल नाम वासुदेव था। ये तंजोर के गोस्वामी के पुत्र हैं। इनके गुरु का नाम निरंजन स्वामी है। इनका समय सन् १५८० से १६५० तक माना जाता है। इनके ग्रंथ 'त्रिबंक रायाची आरती' शम्भुपंचक, रेणुकाष्टक, सीतास्वयंवर, ज्ञानमोदक, गंगाष्टक, गणपति-श्लोक और सुदामाचरित्र हैं। इनके अतिरिक्त मराठी और हिन्दी में फुटकल पद भी इन्होंने लिखे हैं—

नीचे इनका एक हिन्दी-पद दिया जाता है जिसमें आडम्बरधारी ब्राह्मणों पर कशाघात है। भाषा खड़ीबोली-मिश्रित मराठी हिन्दी है। काव्य तो है ही नहीं—

बाबा भगती बामन रे
जिसका मन हे कसाब पापी पकड़े गुमान तागा
उसकी कछु नहिं अंघुल (स्नान) सन्ध्या पूजा तर्पन झूठा
वेद पुरान सबहिं पढ़ कर औरन कु सिकलावे

आप हमेशा बिखिया रस मो पैसे मुफ्त गमावै
ऐसा मन उचक्का देखा पक्का चोर खुदाई
कहते हैं गोसावीनंदन दुर कर उसकू भाई।

अन्य सन्तों की भाँति इन्होंने भी गुरु-माहात्म्य का बखान किया है—

वाह व्हा साई रे सच्चा तुही रे
गुरु साहेब ने दवलत दिया तख्त निरंजन पाया।
त्रीभुवन का सब खेल हमारा गनीम गुमान उड़ाया
बड़े-बड़े मतवाले गुंडे काम क्रोध सब छाती काटे
गुरु का नाम का बजा डंका जम की छ्याती फाटे।
जनम मरन का डर नहीं यारो क्या कहुँ अजब तमासा।

निपट निरंजन

मराठी संतों में 'निरंजन' नाम के सात संतों की सूची उपलब्ध है। उनके नाम हैं—निरंजन, निरंजन रघुनाथ, निरंजनदास, निरंजन बुआ, निरंजन माधव और निरंजन स्वामी। सातवें निरंजन अपनी हिंदी वाणियों में सदा निपट निरंजन की छाप लगाते हैं। इनके जन्म-समाधि-काल-स्थान आदि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। एक निरंजन रामदास के शिष्य भी हो गये हैं। हो सकता है, ये वही निरंजन हों; क्योंकि रामनाम के माहात्म्य का एक पद में प्रचुर गान है। यथा—

न पढ़ो ओंनामासी न पढ़ो क ख ग
पढ़ो जो वेदन को सार है।
राम नाम ज्यानो तब ही कछु पछ्यानो
भले से भलाई ना बुरे सो बीगार है।
निपट निरंजन नीके के न्याहार देख
बात परमारथ की जो बातन की सार है।
वेद पाट, पोथी पाट पै समज के—
पाट एक राम नाम अपार है।

बात की महिमा का भी इन्होंने खूब अनुभव किया है। ये कहते हैं—

बातन के कहे ते गोरख तत्त्व ज्ञान पाये
बातन के कहे ते महेसु पुजातु है।
बात्या के कहे ते भुत प्रेत मुख लेते
बात के कहे ते काला नाग उतरतु है।
बात कहे ते जीव कु संतोक होतु है
वई बात पातशाहा सो मीलातु है।
निपट निरंजन विना बात करामात कैसी
बात कह्न आवे तो बात करामात है।

प्रतीत होता है कि निपट निरंजन ने उत्तर भारत की पर्याप्त यात्रा की है। इनकी भाषा में बहुत-कुछ स्वच्छता है। मराठी हिन्दी की यत्र-तत्र मिठास तो है ही।

लीला विश्वंभर

ये राम विश्वंभर, पूर्ण विश्वंभर और विश्वंभरनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका समय ईसा की सोलहवीं शताब्दी का मध्य जान पड़ता है। महाराष्ट्र संत-कवि सूचीकार ने 'विश्वंभरनाथ' के आगे (१५३४) लिखा है। यह शक-संवत् है अथवा ईसा-सन् है, इसका कहीं निर्देश नहीं है। इनके गुरु का नाम 'निरंजन' था। इसका अनुमान इनके 'गोपीचंद-आख्यान' की प्रारम्भिक वंदना से होता है। उसमें लिखा है—

"अलख निरंजन जनम वसतु है
ज्यरण कमल मन ध्याये।"

संत-कवि सूचीकार का भी यही अनुमान है।

रचना

इनका मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी 'गोपीचंद आख्यान' प्राप्त हुआ है। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

रानी मैनावती चंद्र वदिनि बाला नहि गुरु उपदेश जु।
बेटा गोपीचंदा धीर विर नागर मदन मुरत महाराज जु।
बारा सो रानिया सोरा सो खानिया (?) सखि सब समाधान जु।
नाथ ज्यालंधरी रहत नगर मों जोग जुगुत ज्योगी जोग जु।
गरे बनी कंथा वीभुत विराजे ज्योगी अलख ज्यगावे दिनरात जु।
कुवरी, कुमंडल, गले मृगछाल, कोंगेरी बजावे नाना भात जु।
ज्यंगल में से ल्यावे लकरीया माथे कछु तहि सिरभार जु।
आपणो महल पर से देखे मैनावती माथे लकरी निराधार जु॥

महाराष्ट्र में नाथ-पंथी संतों में 'गोपीचंद-आख्यान' गाने की प्रथा है। भाषा मराठी हिन्दी है—लोक-प्रचलित है।

जमाल शा

इनके जन्म-निधन आदि के सम्बन्ध में जानकारी नहीं है। महाराष्ट्रीय संत-कवि-काव्य-सूची में इतना ही लिखा है कि "इनका मूल नाम 'विश्वनाथ' है"। कहा जाता है कि मन में समाधान न होने से गंगा में प्राण देते समय दत्त भगवान ने मलंगवेश में इन्हें दर्शन दिये। तभी से इन्होंने फकीरी वेश और नाम 'जमाल शा' धारण कर लिया। इनके फुटकल पद मिलते हैं। एक हिन्दी-पद नीचे दिया जाता है—

दो दिन की गुजरान रे
सग्गा साती कौन हमारा

टिका मकान का न विस्तारा
बस्ती के वैरान रे।
कौन किसीका कुटं कबीला
कौन किसी का गुरु व चेला
नाहक को हैरान रे।
नंगा होकर आना जाना
घडि घडि पल पल दिन को खोना
आखर कु धुलधान रे

जमाल के निवृत्तिपरक भाव हैं। भाषा अत्यन्त सरल, खड़ीबोली है। श्रीसमर्थ वाग्देवता-मंदिर के हस्त-लिखित ग्रंथागार की पोथियों में इनके पद मिलते हैं। अतएव संभव है, ये समर्थ के अनुयायी हों।

विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में निम्नांकित सन्तों की भी हिन्दी-वाणियाँ उपलब्ध हुई हैं; पर विशेष परिचय के अभाव में उनपर विस्तृत चर्चा नहीं हो सकी। उदाहरण-स्वरूप उनकी वाणी मात्र दी जा रही है। इनका प्रादुर्भाव १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के मध्य हुआ होगा।

१. अग्रदास

कब सुमिरोगे राम भुले मन!
बालक भयो त परवस होई
जोबन भयो तब काम भुले मन
कब सुमिरोगे राम भुले मन!
बिरदे भये तब कापन लागे
निकस गयो अरमान
कब सुमिरोगे राम, भुले मन!

२. अमरदास

बिलख बिलख रोवे माता कौसल्या रानी हमारे सुत दो वनकू गये हो।
ना कछु कहे कछु कहेन न पाई सो पिता के वचन सुन वनकू गये हो।
भोजपत्र तन बस्तर पहेने दंड कमंडल हात लीये हो।
राम चले छतिया भर आई सो नैनन नीर जाय बहे हो।
चित्रकोट के घाट उपर नर नारी सब रुदन करे हो।
अमरदास कहे कर जोरे था सुन दसरथ प्राण त्यजे हो॥

३. आत्मगोपाल

हम बासी उस देस के ज्याहाँ रूप ना रेख।
कोउ घड़ी काया पड़ी पंथ हमारा लेख।
हम वासी उस देस के हरि रस माटी चीवे।
आत्मगुपाल दास हरि को झूमत झूमत पीवे॥

४. उद्धव

दाता सो बंधन पड़े।
भीकारी दवलत चढ़े।
चोर की मुराद बढ़े।
शान परमार है।
मतलब के घर निधी
पापी कु मोक्ष सिद्धी
शेवक के तन चिद्धी
नंगा (कु) घरबार है।
पतिव्रता की पत पड़े।
छिनाल सो सर्गे चढ़े।
ऊधो शाम (श्याम) तेरी क्या करें बड़ाई
अंधाधुंध दरबार है।

५. गोविन्द[1]

इस संत-कवि ने 'गुरुनाथ मछीन्द्र' पर एक आख्यानक काव्य लिखा है। इसकी कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कनीपा धुंडते[2] ज्यलंधर, कहुं लगे न खबर
देखे किले अवर शहर। कहुं नजर न आये।
उसे मीला गोरखनाथ। पूछे ज्यलंधर की मात।
कहुं देखा तुम्ने नाथ। कहो बात सिद्ध की।
....

गोरखनाथ कहे सिद्ध, तुम किसके मुरीद,
कोन ग्यान कोन ध्यान, कौन बीध कौन सीध कहाते?
....

मेरा पीर ज्यलंधर। धुंडे शहर दर बदर
कहुं नजर न आये।
....

गोरखनाथ कहे बात, तेरा पीर हुआ बाज,
गया रंड्या मो माज, स्त्रीराज मो पड़ा।
....

---

१ ये नाथ-पंथी संत प्रतीत होते हैं और निजामशाही में किसी स्थान के रहनेवाले जान पड़ते हैं। भाषा में दक्खिनी हिन्दी की छटा है।

२. ढूँढते।

छोड़ा ग्यान ध्यान जोग, करे रंड्या सुं भोग,
नहीं हील मो[1] बी[2] रोग, बिखय सुख किया
....

येक येक की सुन बात, धरे चेहरे पर हात[3]
नीकले गोरखनाथ, मछींदरनाथ धुंडने
वेश्या संग चले गोरख, वो क्या जाने मुरख[4]
स्त्रीया राज तलख[5] उसी मुलक मो गये।
गोरख ज्याहां[6] बाज, हात लिया पखवाज,
तरे तरे[7] के अवाज, मंदल वाजे नीकाले।
नाथ बैठा था तख्त, नहाते होकर खुशवक्त
पात्रा लेके उसी वख्त, गोरख सक्तदील[8] गया
पात्रा बिजली का तवोर, नाचे थै थै घनघोर,
पखावज में टकोर, और और बज्यावे।
पात्रा[9] नाचे हल हल, मंदल बोले चल चल,
गोरख गावे तलमल, सकल सभा खुश हुई।

अंत की पंक्तियाँ हैं—

गोरखनाथ तुं सुज्यान, तेर उपर वारूँ ज्यान,
तेरा गावे जो ध्यान, उसे ग्यान बहुत दे।

६. गुलाबदास

बंसी कहाँ है री माई,
जदुपति कौन दिन आई।
जदुपति मीत है मेरा
निसदिन पंथ है हेरा
....
बेरण! सबद सुन तेरा
हिवड़ा फाटे मेरा।
कलीजा छेदिया फेरण!
करवते दिल में फिरण!
करवत दिल को काटे।
वचन सुन छतिया फाटे।
....

बंसीधर हिरदे राखे
दास गुलाब यूं भाखे।

---

१. में। २. भी। ३. हाथ। ४. मूर्ख। ५. तक। ६. जहाँ। ७. तरह। ८. कड़े दिल का। ९. वेश्या।

७. त्र्यम्बक

बड़े चोखे पापी और अधर्मी
जिन्ने नाम से तारे हैं अधर्मी
कहे त्र्यम्बक पाप उसका दहो रे।
कहो जानकीनाथ की जय कहो रे।
....

अजामील चांडाल गणीका बी[1] जाती
जीन्ने नाम से तारीले बुद्धघाती।
हरामो ही मारो कहे तुरक तारो
लियो तब ही बैकुंठ दियो नगारो
कहे त्र्यम्बक अजब-क्या कहुं रे।
कहे त्र्यम्बक पाप उसका दहो रे

८. मुरारनाथ

प्याला पीया जी, लाल पाया जी।
निसदिन लागी लगन हमारी,
अवर कछू नहिं ज्यानो।
रामनाम के छूयाये लीनो,
सदगुरु नाथ पछ्यानो।
देखो माया भई दिवानी पाछे पाछे आती।
मेरे गुरु ने किरपा कीनी, जाती पाती खाती।
नहिं नारी नाहिं कंचन बाबा।
नहीं मान सो अंग।
सदगुरु के वचन सुन के, तामो दियो संग ॥
गई काया गई माया विदेही मो रहते।
तीनो लोक अचंबा हुआ, मुरारनाथ कहते।

९. सैद हुसेन

कमजात बचा इल्म को सीका[2] तो क्या हुआ।
घोड़े चढ़ा हाकिम हुवा तो क्या हुवा?
नामी हुवा तो क्या हुवा?
हिकमत सीखा लुकमानीसा ज्ञाता हुवा तो क्या हुवा?
बेदां जु पढ़ता फर्द है, साहब सखी मुख जर्द है,
गलता नहीं दिलसर्द है, फाजल हुवा तो क्या हुवा?

---

१. भी। २. सीखा।

कातिब हुवा या खुश कलम
इनसान के दया न तन
रहता नहीं साबूत मन
मुंशी हुवा तो क्या हुवा ?
आखिर कुं पसतायगा[1] ।
गैवी तमाचे खायगा
रूस्तं हुवा तो क्या हुवा ?
बस कर हुसैनी बात कु
मत ले उसे भी सात तु
लानत खुदा उस जात कु
आया मिला तो क्या हुवा ?

---

१०. बालगोपाल

बड़ी खूब जागाह वा सीर[2] भाई ।
मठों की दिवालें गगन मो चढ़ाई ।
तहाँ भीसा[3] सायोज्य ठालें लगाई ।
तहाँ बाल गोपाल ने मौज पाई ।
अदब से अच्छी भात से जाय मिलना
गरूरी गुमानी कबों ही न करना ।

११. माधव दास

माई री प्रकट प्रेम के फंद फीरे है ।
दवरत दवरत दवरे देखन देव सकल पांडव के
हांकत हरि घोरे ।
ज्या भुज शंख चक्र गद शोभत
आयुध मंडित जोरे
ते कर पानिप नोथा लीनो, अर्जुन के रथ जोरे ।
ज्या मुख निगम निरंतर निकसत,
त्या मुख हो हो हो रे ।
येह विध सारथि होत जगत गुरु,
मानत नहीं हमको रे ।
मैं बलि जाउं कृष्ण कृपानिधि
भक्त बछल तहँ भोरे ।
माधवदास दासन के सुमरे संकट तहां दौरे ।
माई री प्रकट प्रेम के फंद फीरे हैं ।

---

१. पछतायगा । २. मस्तक । ३. बहिश्त ।

१२. रामराय

याके मृगछाला वाके मोतन की माला रे
याके सींगनार वाके मुरली अधर रे
याके नील कंठ, वाके पीतपट,
याके जटा जुगट, वाके माथे मुगट
याके सीस गंग वाके चरण नित्त
कहत राम राय वाके पग परिये।
याके सीवलोक वाके बैकुंठ लोक
हरीहर हरीहर दोऊ नाम ले रे।

१३. विद्यादास

जनम पदारथ बाद ज्यात रे
माता पिता सुत काम न आवे
ज्यों तरवर के झरत पात रे।
काल कराल रहे सर साधे
आय अच्यानक करत घात रे।
तब कैसे हरिनाम निकस है—
(यहाँ से पोथी का भाग खंडित हो गया है।)

१४. लतीफ

रामनाम नौवत बज्याई,
पहली नौबत नारद तुंबर
दुसरी नामा कबीर सुनाई,
तिसरी नौबत सुदामा को
पहलाद की जिन्ने राखी बड़ाई,
चौथी नौबत जन जसवंत
धना जाट औ मीराबाई
कहे लतीफ सुन औ साधु,
उनके ये कछु तनक बज्याई।

१५. हाबाजी (१)

मन मरे तो मारिये।
साधुसंगत पड़े तो पाड़िये
कामिनि कलंक टरे, तो टारिये।
माला लीनी हात करतनी कांख मो।
आग बुझी मत जान दबी है राख मो।

क्या हुवा दो बात बनी है पीह की
हावाजी उपर की बात न फलेगी जीह की ।

१६. माधव राय*

जीवन राम बसे घर मो सब जीवन के समझे जिव सोई
जीव अनेक मैं जीवन येक बिना गुरु देख सकै नहीं कोई,
साधु सु सेव न प्रेम दया मन जीवन से मति निर्मल धोई ।
श्री गुरुपद के गरजी नर जीवन राय कहीयत वोई ।

१७. लछमन गिर फकीर

देही को देहरा देख ले भाई
आत्माराम कु पूज ले ;भाई
....

प्रेम का फूल चढ़ाव प्यारे
अवघट की तालियाँ लग गई
अनुहत घंटा बजाव प्यारे
कहे लछमन गिर फकीर—
जीव जीव सु जोत मिलाव प्यारे

१८. शाहुसेन फकीर

कोई भिच्छा फकीरी लावणा ।
हाजर होकर भेजणा ।
तेरे कारण जोगण होऊँगी—
घर घर अलख जगावणा,
शाहुसेन फकीरी आल्हडा
आखर जंगल बसावणा ॥

१९. बुरहरूशा

दुनिया त्यज कर खाक लगा के ज्या बैठा वन मो ।
खेचरि मुद्रा भद्रा सुन के ध्यान धरत है मन मो ।
सोही कच्चा रे सोही कच्चा रे नहीं गुरू का बच्चा ।
कुंडलिनी कुं खूब चढ़ावे ब्रह्म रंध्र मो जावे ।
चलता है पानी के ऊपर बोले सो बी होवे ।

* इनके संबंध में यह ज्ञात हुआ है कि ये 'चंद्रिका परिणय गमक' संस्कृत नाटक के कर्त्ता और तेलंगी ब्राह्मण हैं ।

शास्त्रों मों तो कछु नहिं रहिया पूरा दगन कमाया।
मारग वेद विधी का पाया तन कु लकड़ा किया।
गुपत होके प्रकट ज्यावे गोकुल मथुरा कासी।
सिधजन होके प्राण निकाले सतलोक का वासी।

(पांडुलिपि में आगे की पंक्तियाँ खंडित हैं और अस्पष्ट हैं। इस पद की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ज्ञानेश्वर, शिवदिन केसरी आदि संतों के पदों में भी मिलती हैं। इनका वास्तविक रचयिता कौन है, यह कहना कठिन है।)

संतों की देन

मराठी संतों की हिन्दी-वाणियों का अध्ययन करने के उपरान्त उनकी देन के संबंध में निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

उत्तर भारत के ज्ञानाश्रयी हिन्दी-सन्तों ने जिस निर्गुण-धारा से देश के जन-मन को आप्लावित किया, उसका स्रोत वास्तव में मराठी संत नामदेव के हिन्दी-पदों में है। यद्यपि नामदेव के पूर्व उत्तराखण्ड और दक्षिणापथ में सिद्धों और नाथों ने निर्गुण मत का प्रचार कर दिया था तो भी उसमें हृदय को मुग्ध करनेवाला रागरस नहीं था। वह शुष्क ज्ञान मात्र था। नामदेव, जो पहले विठोवा की मूर्त्ति के उपासक (भक्त) थे, ज्ञानेश्वर और उनकी बहन मुक्ताबाई की प्रेरणा से नाथपंथी विसोवा खेवर के शिष्य हो 'निर्गुनिया' बन गये; परन्तु उनके हृदय पर अंकित विट्ठल की प्रतिमा ज्ञान से आच्छादित नहीं हो पाई। उनमें इतना ही परिवर्त्तन हुआ कि जो विट्ठल पहले केवल चंद्रभागा नदी-स्थित पंढरपुर के मंदिर में उन्हें दिखाई देता था, वह अब 'ईभै ऊभै' (यहाँ-वहाँ) सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा और उन्हें अनुभव हो गया कि 'विट्ठल बिनु संसारु नहीं'।

उनकी इस ज्ञान-समन्वित राग-भावना को निर्गुण भक्ति कह सकते हैं जिसका उन्होंने हिन्दी-पदों द्वारा उत्तर भारत में संचार कर अपने परवर्त्ती निर्गुणी सन्तों का मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में 'कबीर में जो सूफियों का भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों का साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल है', वह सब नामदेव में विद्यमान है। जिस वारकरी-सम्प्रदाय के नामदेव प्रमुख संत माने जाते हैं, उसमें ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। भक्ति और केवलाद्वैत में विरोध नहीं है। इसे मराठी सन्तों ने अपनी वाणियों से सिद्ध कर दिया है। उनके वारकरी, रामदासी, दत्त आदि मत सिद्धान्त से अद्वैतवादी होते हुए भी आचार में भक्ति को मान्यता देते हैं। मराठी सन्त निर्गुण-सगुण, अद्वैत-द्वैत से परे हैं। यही कारण है कि मराठी वाङ्मय के इतिहासों में हिन्दी-साहित्य के इतिहासों के समान निर्गुणवादी को संत और सगुणवादी को भक्त कहकर उनमें विभेदक रेखा नहीं खींची गई। उनमें ब्रह्म सत्य के सभी पंथों के साधकों को संत कहा गया है।

निर्गुण-भक्त मराठी सन्तों ने 'नंद के नंदन कंस निकंदन' कृष्ण का लीलागान भी किया है, पर उसमें 'यमुना तीरे वानीर निकुंजे' गोपीजन के साथ मधुयामिनी में उनकी

रास-क्रीड़ा का मादक कल्लोल नहीं है। राधा को परकीया मानने के कारण उन्होंने उसे महत्त्व न देकर रुक्मिणी को गौरवान्वित किया है और इस प्रकार समाज के मर्यादा-धर्म की रक्षा की है। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर में होनेवाले संत दयालनाथ और देवनाथ आदि सन्तों के पदों में राधा और कृष्ण के लीलावर्णनों में हिन्दी के कृष्णकाव्य-परम्परा की झलक आ ही गई है।

मुसलमान-कालीन कतिपय संतों ने सूफियों के समान अपने आराध्य को 'माशूक' से सम्बोधित कर प्रेमाभिलाष व्यक्त किया है। उनपर सूफियों का प्रभाव स्पष्ट है। मुसलमान शासन-काल सूफी फकीरों का दक्षिण में प्रवेश हो गया था और वे प्रतिष्ठान के क्षेत्र में अपने मत का प्रचार प्रेम-गाथा-काव्य-कृतियों के माध्यम से कर रहे थे। हैदराबाद फारसी-लिपि में उनके कई हिन्दी प्रेमाख्यान-काव्य उपलब्ध हुए हैं।

मराठी संतों की भाषा

जहाँ उत्तर-भारत में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'विक्रम संवत् १६०० (सन् १८४३ ई०) तक परम्परागत साहित्य की भाषा व्रजभाषा रही है और खड़ीबोली वैसे ही एक कोने में पड़ी रही·······साहित्य या काव्य में उसका व्यवहार नहीं हुआ,' वहाँ महाराष्ट्र में संतों ने खड़ी बोली को प्रधानता दी। ईसा की तेरहवीं शताब्दी में यादव-कालीन संतों से लेकर आलोच्यकाल तक के संतों ने खड़ी बोली को अपनाया है। इसका कारण यह है कि उनकी वृत्ति लोकाभिमुख थी और खड़ी बोली लोकसामान्य भाषा के रूप में प्रचलित हो रही थी। यह सत्य है कि उनकी खड़ी बोली विशुद्ध नहीं है, संतों की मिली-जुली बोली है, जिसमें व्रज, मराठी, गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं का पुट भी मिलता है। जब सोलहवीं शताब्दी से व्रजभाषा का काव्य व्यापक रूप में प्रचलित हुआ तब महाराष्ट्र के संतों ने खड़ी बोली के साथ व्रजभाषा में भी अपने पद रचे।

महाराष्ट्र में हिन्दी के दो रूप विकसित हुए, एक वह जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का थोड़ा-बहुत मिश्रण और स्थानीय भाषाओं की छाया दिखाई देती है। इस रूप को दक्खिनी हिन्दवी अथवा उर्दू अथवा रेखता कहा गया है और दूसरा वह जिसमें खड़ी बोली, व्रजभाषा आदि के मिश्रण के साथ मराठी का पुट परिलक्षित हुआ। इसे 'मराठी हिन्दी' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस ग्रंथ में तुकाराम की 'अस्सल गाथा' की भाषा के रूप को 'मराठी हिन्दी' का उदाहरण समझा जा सकता है। इस भाषा में वर्णों के विशिष्ट उच्चारण तथा आगम, लोप आदि पाये जाते हैं। बिगड़े रूप में ही क्यों न हो, पर खड़ी बोली को उत्तर-भारत के कवियों से पूर्व ही पद्य-भाषा में व्यवहृत करने का श्रेय मराठी-संतों को है। हिन्दी को उनकी यह एक महत्त्वपूर्ण देन है।

पद-प्रकार

हिन्दी में जब काव्य-रचना की कोई विशिष्ट परम्परा स्थापित नहीं हो पाई थी तब महानुभावीय संतों ने विशेषकर दामोदर पंडित ने और उनके पश्चात् वारकरी संत नामदेव ने

राग-रागनियों में पद-रचना कर हिन्दी में गीत-शैली को प्रारम्भ किया। मराठी संतों के पदों में छन्दों का निर्वाह भली-भाँति नहीं हो पाया। फिर भी उन्होंने अपने भजन 'ध्रुपद' में लिखे हैं।

नामदेव के पुत्र गोंदा महाराज ने खड़ी बोली में कथा-गुम्फन का प्रयास कर हिन्दी में कथा अथवा चरित्र-काव्य की दिशा निर्दिष्ट की। रामदासकालीन संतों ने भी खड़ीबोली में पौराणिक आख्यान-काव्य लिखने का प्रयत्न किया है। रुक्मिणी-स्वयंवर और गोपी-चंद आख्यान कई संतों के प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं पोथियों में गोरख-मछन्दर-आख्यान भी मिलता है।

एकनाथ, और तुकाराम ने भारुड़, गारुड़ आदि के अन्तर्गत सामाजिक तथा धार्मिक व्यंग्य-रूपकों की चुटीली रचनाएँ की हैं। इस प्रकार जब उत्तर में खड़ीबोली साहित्य में समादृत भी नहीं हो पाई थी, दक्षिण में मराठी संत उसे प्रयुक्त कर क्रमशः माँज रहे थे और उससे विविध पद्यप्रकारों और साहित्य-विधाओं को सज्जित कर रहे थे।

एकनाथ के व्यंग्य-रूपक जो 'स्वोक्ति रूपक'-से प्रतीत होते हैं, ईसा की सोलहवीं शताब्दी में खड़ी बोली गद्य का भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। एक व्यंग्य-रूपक नीचे दिया जाता है—

> "सुनो संत सज्जन भाई। हम तो निराकार के गारुड़ी आया है।
> हमारे ऊपर संत की नवाई। हम कलयुग में पैदा हुवे।
> ये देखो खेल खेलते रस्ते में। सब आलम दुनिया देखत है।
> अब चल ऊहाँ हाड़ीबाग। जरा प्रेम का ढोल बजाव।
> लग लग लग। पहले तो छे साँप निकालु मैदान में।
> बड़े बड़े अजगर, उनके नाम बताऊँ ? काम, क्रोध, मद, मत्सर दंभ अहंकार।
> अब चल चल रे साँप ने बड़े बड़े कु डंक मारा
> भस्मासुर तो भसम कर दिया। पराशर तो ढीवरन
> के पीछे लगा। इंद्र की तो भगांकित
> हो गई काया। महादेव तो भिल्लिन के पीछे लगा।
> विष्णु तो वृन्दा देख घबराया। ब्रह्मदेव तो सरस्वती पर
> ख्याल किया। ऐसे साँप कठिन है। अ ब ब ब ब।
> अज्ञान के पेटी में भरे हैं। निकालूं ? सँवाल बे, डंक मारेगा।
> ये हात डाला। डंक मारा बे मारा। हाय, हाय बड़ी वेदना होती है।
> आबी (अभी) जान जाती है। तुज कु क्या बताऊँ ?
> आबी उतारनेवाला कोण बुलाउ ? सुनो मेरे पास सद्गुरु का मोहरा है।"

नाटकीय छटा को प्रदर्शित करनेवाले खड़ीबोली के इस गद्य-रूप का भी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

मराठी संतों की हिन्दी-वाणियों के अध्ययन की ये ही मुख्य उपलब्धियाँ हैं, जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्थान पाने योग्य हैं।

अन्त में लेखक डा० तुलपुले, डा० कोलते, डा० हीरालाल जैन, डा० देशमुख, डा० वा. ना. पंडित डा० रामनिरंजन पाण्डेय, प्रा० माणिक बेतुले, प्रा० गोपाल गुप्त, प्रा० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, श्री विजयकिरण जैन, प्रा० सुदर्शन सिंह मजीठिया, श्री अय्यर, 'परिजात' श्रीसमर्थ वाग्देवता मंदिर, धूलिया तथा मराठवाड़ा साहित्य-परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथागार एवं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का आभार मानता है, जिन्होंने इस ग्रंथ को प्रस्तुत करने में विभिन्न रूपों में उसे सहायता प्रदान की है।

जबलपुर (मध्यप्रदेश)
श्रीरामनवमी ; शकाब्द १८७६　　　　—विनयमोहन शर्मा
विक्रमाब्द २०१४ ; खीष्टाब्द १९५७

हिन्दी को मराठी संतों की देन

पहला अध्याय

हिन्दी और मराठी का संबंध

समस्त भारतवर्ष में महाराष्ट्र ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनेक संतों की मराठी के साथ-साथ हिन्दी-रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। उत्तर के मुसलमानों के दक्षिणापथ-प्रवेश के पूर्व से ही, वहाँ के संत जब हाथ में करताल लेकर कीर्तन-भजन करने लगते, तब बीच-बीच में, एक-दो पद हिन्दी के गा कर श्रोताओं में अभिनव हिलोर पैदा कर देते थे। मराठी-भाषी कंठ से हिन्दी का स्वर क्यों सहज भाव से मुखरित हो उठता है, इसे समझने के लिए हमें भाषा-विज्ञान का आश्रय लेना होगा।

हिन्दी और मराठी दोनों आर्य-परिवार की भाषाएँ हैं। भारतवर्ष में इस परिवार की भाषा का प्रारम्भ ई० स० १५०० पूर्व से माना गया है और उसे प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाकाल के नाम से अभिहित किया है। यह काल ईसा सन् से लगभग ५०० वर्ष पूर्व तक चलता रहा, जहाँ से मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाकाल का उदय होता है। जो लगभग एक हजार ईसवी तक जारी रहता है। (अपभ्रंश काल लगभग ईसा सन् ५०० से १००० तक अनुमाना जाता है।) इसके पश्चात् से अर्थात् लगभग १००० ई० से हिन्दी, मराठी, बँगला, गुजराती आदि के रूप में आधुनिक आर्य-भाषाकाल के दर्शन होते हैं।

आर्यों ने उत्तर-पश्चिम से लेकर भारत के पश्चिम, पूर्व-दक्षिण-भाग तक क्रमशः अपना विस्तार किया तथा अपने राज्य स्थापित किये। इनके साथ जानेवाली आर्य-भाषा स्वभावतः स्थानिक भाषा और बोलियों से प्रभावित होती गई। इस प्रकार मध्यकाल में ही आर्य-भाषा के कई प्रादेशिक भेद हो गये। शूरसेन में बोलीजानेवाली प्राकृत शौरसेनी, शूरसेन और मगध देशों के मध्य बोली जानेवाली प्राकृत अर्ध मागधी अथवा कोसली; मगध में बोली जानेवाली प्राकृत मागधी तथा महाराष्ट्र में बोली जानेवाली प्राकृत महाराष्ट्री कहलाईं। इनके अतिरिक्त, पैशाची, आवन्त्य आदि प्राकृत भाषाएँ अपभ्रंश में रूपान्तरित हो गईं। 'प्राकृत चन्द्रिका' में अपभ्रंशों के सत्ताईस उपभेद दिये गये हैं।[1] परन्तु उनमें शौरसेनी, अर्ध मागधी, मागधी और महाराष्ट्री की ही प्रमुखता है।

---

१. (१) ब्राचड, (२) लाट, (३) वैदर्भ, (४) उपनागर, (५) नागर, (६) ?, (७) बर्बर (८) आवन्त्य, (९) पांचाल, (१०) टक्क, (११) मालव (१२) कैकय, (१३) गौड़, (१४) औड्र, (१५) पाश्चात्य, (१६) पाड्य (१७) कौंतल, (१८) सैंहल, (१९) कालिंग, (२०) प्राच्य, (२१) कार्णाट, (२२) कांच्य, (२३) द्राविड़, (२४) गौर्जर, (२५) आभीर, (२६) मध्यदेशीय, (२७) वैताल।

मराठी का जन्म

मराठी का जन्म किस प्राचीन आर्य-भाषा से हुआ है ? क्या वह आर्येतर भाषा है जो अपने ही क्षेत्र में अंकुरित होकर बाद में आर्य-भाषाओं से प्रभावित हो विकसित हुई है ? आदि प्रश्न मराठी भाषा और साहित्य के इतिहासकार उठाया करते हैं।

जैन अपभ्रंश-ग्रंथों का शोध होने के पूर्व तक मराठी का जन्म सीधे महाराष्ट्री प्राकृत से माना जाता रहा है और महाराष्ट्री को स्वतंत्र प्राकृत मानकर भी उसे शौरसेनी प्राकृत का ही उत्तर-रूप समझने की आज भी परिपाटी है[1]। ग्रियर्सन महाराष्ट्री को शौरसेनी से पृथक् मानते हैं। वे लिखते हैं कि शौरसेनी और महाराष्ट्री कतिपय, क्रियारूप, शब्दकोष तथा अन्य सामान्य बातों में परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं[2]। हरिनारायण आपटे भी ग्रियर्सन का समर्थन करते हैं। वे लिखते हैं—

"वास्तव में यह विश्वास करने के कारण हैं कि महाराष्ट्र[3] शौरसेनी मागधी, अर्ध मागधी और द्राविड़ बोलियों की सीमाओं से घिरा हुआ देश था। इन सभी भाषाओं का महाराष्ट्री के निर्माण में योगदान रहा है। महाराष्ट्री की भी अपनी विशेषताएँ रही हैं। महाराष्ट्री और शौरसेनी में बहुत महत्त्व के साम्य और वैषम्य हैं। इसी प्रकार महाराष्ट्री और मागधी तथा अर्धमागधी में भी साम्य तथा वैषम्य है। अतएव वह एक विशिष्ट स्वतंत्र भाषा है[4]।" परन्तु डा० मनमोहन घोष ने अपने एक लेख में प्रतिपादित किया है कि महाराष्ट्री शौरसेनी का ही पश्च रूप है[5]। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी डा० मनमोहन घोष के निष्कर्ष का समर्थन किया है—"डा० घोष के मतानुसार महाराष्ट्री अपनी आद्यावस्था में शौरसेनी का ही एक पश्च रूप थी, जो दक्षिण में ले जाई गई और वहाँ उसमें स्थानीय प्राकृत के शब्द तथा रूप आ जाने पर उसका वहाँ के साहित्य में उपयोग किया गया। महाराष्ट्र से इस भाषा को काव्य के एक श्रेष्ठ माध्यम के रूप में, उत्तरी भारत में, पुनः लाया गया। उत्तरदेशियों ने प्राचीन शौरसेनी का ही व्यवहार चालू रखा था जब कि उसका यह नव्य रूप दक्षिण में प्राचीन साहित्य-परम्परा के व्याघातों से बद्ध न रहने के कारण स्वभावतः विकसित होकर साहित्य के लिए व्यवहृत होने लगा। इस प्रकार इस प्रादेशिक बोली को

---

१. देखिए डा० सुनीतिकुमार चटर्जी की भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (पृष्ठ ९३।)

२. देखिए 'लिंग्विस्टिक सर्वे' भाग ७···।

३. महाराष्ट्र का कोई 'महार' जाति का राष्ट्र और कोई 'रट्ट' जाति का राष्ट्र कह कर उसकी उत्पत्ति सिद्ध करते हैं। सातवीं शताब्दी में यात्री हुएनसांग ने उसका एक हजार मील का क्षेत्र बताया था और सीमा के संबंध में कहा था कि उसके उत्तर में मालवा, पूर्व में कोसल और आंध्र, दक्षिण में कोंकण और पश्चिम में समुद्र है। महाभारत में मल्लराष्ट्र का उल्लेख है। हरिनारायण आपटे उसीको महाराष्ट्र कहते हैं।

४. विल्सन—फिलालाजिकल लेक्चर्स ऑन फिलालाजी—मराठी पृ० ४४-४६।

५. इंट्रोडक्सन टू कर्पूरमंजरी, युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १९४८ संस्करण, पृष्ठ ७६।

अपने गुणों की अभिव्यक्ति का अवसर मिला जिसको सबने स्वीकार किया और कालान्तर में वह साहित्यिक प्राकृतों के समूह में गण्यमान्य स्थान पर प्रतिष्ठित हो गई। उपर्युक्त दृष्टि से महाराष्ट्री प्राकृत एक प्रकार से शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की एक अवस्था का ही नाम है[1]।"

महाराष्ट्री अपभ्रंश अथवा जैन-अपभ्रंश में, लिखित जैन-ग्रंथों के प्रकाश में आ जाने के पश्चात्, मराठी की उत्पत्ति सीधे महाराष्ट्री प्राकृत से मानने की चर्चा समाप्तप्राय हो गई है। डा० तुलपुले 'यादवकालीन मराठी' में लिखते हैं—"उच्चारण-प्रक्रिया, प्रत्यय-प्रक्रिया और शब्द-सिद्धि भाषा के इन तीन प्राणभूत अंगों को मराठी ने साक्षात् अपभ्रंश से ग्रहण किया और उनके साथ कुछ नवीन प्रकार रूढ करके भाषा की विकास-क्रिया अग्रसर की[2]।" वे महाराष्ट्री का अन्य प्रदेशों के समान महाराष्ट्र में अपभ्रंश काल लगभग ५०० ई० सन् मानते हैं और अपभ्रंश से मराठी का उत्पत्ति-काल आठवीं शताब्दी निश्चित करते हैं। मराठी के प्रथम चिह्न मैसूर के श्रवणबेल गोला के शके २०५ के शिलालेख में मिलते हैं। वहाँ गोमटेश्वर की प्रस्तर-मूर्ति के चरणों पर उत्कीर्ण दो पंक्तियाँ हैं—

"श्री चावुण्डराजें करवियलें
श्री गंगराजे सुत्ताले करिवियले।"

तथा मराठी का आदिग्रंथ मुकुंदराज का 'विवेकसिंधु' माना जाता है, जिसकी रचना शके ११९० में हुई है। देवगिरि के यादव राजाओं के काल में बारहवीं शताब्दी में मराठी में साहित्य-स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी थी। उस समय मराठी के संबंध में महानुभावी कवि संतोषमुनि कहते हैं—

"तैशी छप्पन भाषाचिया मुकुटी
शोभे सहावी सुन्दर मराठी।"

मराठी में परुषता क्यों है ?

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि 'सुन्दर मराठी' के वर्तमान रूप में मार्दव क्यों नहीं है? क्योंकि मराठी जिस महाराष्ट्री प्राकृत-परम्परा को लेकर उत्पन्न हुई है, उसके श्रेष्ठत्व और मार्दव की भी ख्याति है। दंडी का कथन है[3] —

"महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादिमन्मयम्॥"

(महाराष्ट्र में आश्रित भाषा को प्राकृतों में श्रेष्ठ मानते हैं। उसमें सेतुबन्ध आदि काव्य हैं जो सूक्ति-रत्नों के सागर हैं।)

---

१ **भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृष्ठ ९३।**

२. **यादवकालीन मराठी भाषा (पृष्ठ १८-१९)।**

३. **काव्यादर्श (पूना-संस्करण १९२४)।**

संस्कृत नाटकों में भी गीत गाते समय उच्च और मध्यवर्गीय महिलाओं को महाराष्ट्री में गाने का निर्देश था।[1] पर आज स्थिति बदल गई है। आज महाराष्ट्र प्रान्त में भी मधुर संगीत के लिए शौरसेनी की उत्तराधिकारिणी व्रजभाषा से बोल उधार लिये जाते हैं और जब संगीत का मराठीकरण किया जाता है तब संगीतज्ञ उसका विरोध करते हैं। विष्णुनारायण भातखंडे अपनी 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमाला सहावें पुस्तक' में लिखते हैं—"हिन्दुस्तानी संगीत और मराठी भाषा, इन दोनों की भिन्न-भिन्न प्रकृति है, उस संगीत के स्वभाव में एक प्रकार का धीमापन, दरबारी ऐंठ, बेफिकरी, लचीलापन और मस्ती है। यही गुण हिन्दुस्तानी भाषा में भी है। मराठी की गंभीरता, शिस्त और आलोचक वृत्ति आदि गुण हिन्दुस्तानी संगीत के विरुद्ध पड़ते हैं। हिन्दुस्तानी में चन्द्र को चन्दा, संध्या को साँझ, निष्ठुर को निठुर आदि सहज ही बनाकर भाषा में कोमलता लाई जा सकती है; पर मराठी में संभव नहीं है।"[2]

यहाँ एक बात और विचारणीय है कि साहित्यदर्पणकार ने शौरसेनी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं और बोलियों का भी निर्देश किया है। वे हैं—महाराष्ट्री, मागधी, अर्ध मागधी, प्राच्या, अवन्तिजा, दाक्षिणात्या, शाबरी, वाह्लीक, आभीरी, चाण्डाली और पैशाची। दाक्षिणात्या को ही वैदर्भी कहा गया है। क्या यह अन्य प्राकृतों से अधिक परुष रही है जो साहित्यदर्पण में सैनिक नटों को इसमें बोलने का निर्देश है?[3]

मराठी में परुषता बढ़ने का कारण संभवतः उसका ट वर्ग प्रधान द्राविड़ भाषाओं का संसर्ग जान पड़ता है। इनके अतिरिक्त यह भी अनुमान है कि जब मराठी वैदिक धर्ममत को रूपान्तरित करने का साधन बनी, तब उसमें पंडितों के कारण संस्कृत की बहुलता

---

१. पुरुषाणामनीचानां संस्कृतं स्यात्कृतात्मनाम्
शौरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशानां च योषिताम्।
आसामेव तु गाथासु महाराष्ट्रीं प्रयोजयेत्॥

(उत्तम और मध्यम श्रेणी के पुरुषों की भाषा संस्कृत होनी चाहिए और इसी श्रेणी की स्त्रियों की भाषा शौरसेनी होनी चाहिए; किन्तु गाथा में महाराष्ट्री का प्रयोग किया जाना चाहिए।)—साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद (शालिग्राम शास्त्री-द्वितीयसंस्करण) पृष्ठ १५८-१५९।

२. हिन्दुस्थानी संगीत व मराठी भाषा हीं दोन अगदीं वेगवेगळया प्रकृतीचीं आहेत। त्या संगीताच्या स्वाभावांत एक प्रकारचा धीमेपणा, दरबारी ऐट, बेफिकरी, लवचीकपणा, षोखीनपणा आहे। हेच गुण त्या हिन्दुस्तानी भाषेतहि आहेत। मराठीच्या गांभीर्याला, सडेतोडपणाला, शिस्तीला व चिकित्सकत्वाला हे गुण अगदी विरुद्ध पडतात। (पृष्ठ १४)

३. योधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या हि दीव्यताम्। (साहित्य-दर्पण; षष्ठः परिच्छेद—१६१)

आजाने से भी उसका महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश से प्राप्त मार्दव क्षीण हो गया। हिन्दी में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग नवीं-दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो जाता है और चौदहवीं शताब्दी से तो निश्चित रूप से वे अधिक मात्रा में व्यवहृत होने लगे।[1] इसका कारण शांकरमत की दृढ़ प्रतिष्ठा कहा जाता है।

मराठी भाषा में द्राविड़ भाषाओं के प्रभाव को देखकर महाराष्ट्र में एक मत यह भी चल पड़ा था कि मराठी का बीज महाराष्ट्र में ही है। वह संस्कृतोद्भूत नहीं है। उसमें आईबाप, दोरीदोरा, फुक्का, अक्का, थेंब, गवत, बार, हाड, पोट, डोके आदि शब्द ऐसे हैं जिनका संबंध संस्कृत से जोड़ना कठिन है। परन्तु भाषा का मूल केवल उसकी शब्दनिधि से ही निर्धारित नहीं होता। ध्वनिप्रणाली, वाक्यरचना आदि पर भी अवलंबित रहता है। मराठी को आर्येतर भाषा मानने के संबंध में एक तर्क यह भी दिया गया कि उसमें दिन्डी, ओवी जैसे सर्वथा देशी (स्थानीय) छन्द पाये जाते हैं। पर यह कारण भी लचर है। क्या आज हिन्दी और मराठी में अंग्रेजी के सॉनेट, मुक्त छन्द (Blank Verse) आदि पाये जाने से हम उनका मूल आर्येतर भाषा मान सकते हैं? आज भी लोकगीतों के छन्दों में कविता लिखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। मराठी में दिन्डी तथा ओवी छन्द प्राचीन लोकगीतों की ही देन है। स्पष्टतः मराठी भाषा की प्रकृति आर्यभाषोन्मुख है और वह हिन्दी के समान ही उसी परिवार की है।

बीम्स ने मराठी की शब्द-निधि को हिन्दी से अधिक संस्कृत तत्सम-बहुल कहा है। पर स्थिति ऐसी नहीं है। वर्तमान हिन्दी (खड़ी बोली) की प्रवृत्ति तत्समता की ओर मराठी से अधिक लक्षित होती है। उसमें संस्कृत के अतिरिक्त अरबी-फारसी के विदेशी शब्दों को भी तत्सम रूप में लिखने का अधिक चलन है। एक ज़माना था जब उनको तद्भव रूप में लिखनेवाले गाँवदी (गँवार) समझे जाते थे। मराठी में स्थिति दूसरी है। उसमें संस्कृत और अन्य भाषाओं के शब्द तो हैं; पर उनके अधिकांश का मराठीकरण कर दिया गया है। मराठी की विशेषता यह है कि वह उधार लिये हुए शब्दों को तत्सम रूप में न रखकर अपने ही रंग में रँग लेती है। उदाहरणार्थ कुछ विदेशी शब्दों की मराठी-कपालक्रिया देखिए—

मजमून	(अरबी)	....	मजकूर (मराठी)
ग़ज़ब	(अरबी)	....	गजहब (,,)
मज़हब	(अरबी)	....	महजब (,,)
मशहूर	(अरबी)	....	महशूर (,,)
तैयारी	(अरबी)	....	तयारी (,,)
बराबर	(फारसी)	....	बरोबर (,,)
सिवा	(अरबी)	....	शिवाय (,,)
फ़िक्र	(अरबी)	....	फिकीर (,,)
स्टेशन	(अंग्रेजी)	....	ठेसन (,,)

---

१. देखिए **'हिन्दी साहित्य का आदिकाल'** (पृष्ठ १७-१८)।

मराठी की बोलियाँ

ग्रियर्सन ने मराठी की पन्द्रह बोलियों का उल्लेख किया है। वे हैं—

(१) पूनाई मराठी, (२) बीजापुरी मराठी, (३) धारवाड़ी, (४) कोली, (५) कुणबी (बम्बई), (६) कुणबी (थाना), (७) कुणबी (पुणे जिला), (८) परभी (थाना), (६) धनगरी (थाना जिला), (१०) सावन्तवाड़ी (कोकणी), (११) कुड़ाली (कोकणी), (१२) चितपावनी (रत्नागिरि), (१३) वरहाड़ी (वणी), (१४) नागपुरी, (१५) कारवारी। परन्तु Comparative Philology of Indo Aryan Languages में श्री जहागीरदार ने केवल चार बोलियों को प्रधानता दी है। वे हैं—

(१) कोकणी (उत्तर में मालवन से लेकर दक्षिण में कारवार तक)।

(२) कोकणी (रत्नागिरि से दमन तक)।

(३) देशी (पूना के आसपास)

(४) नागपुरी (मध्य प्रदेश—बरार और निजाम (हैदराबाद) राज्य के कुछ भाग में)

डा० स्टेन कोनो मराठी के बोली-भेदों को नगण्य मानकर उसकी एक ही बोली 'कोकणी' को महत्व देते हैं।[१]

नागपुरी मराठी की अपेक्षा वरहाड़ी (वैदर्भी) मराठी का विशेष महत्व है। इसका उल्लेख जहागीरदार ने पृथक से नहीं किया। वास्तव में विदर्भ मराठी भाषा की जन्मभूमि है।[२] इधर कुछ समय से बस्तर कांकेर के भाग में बोली जानेवाली हलवी को भी मराठी के अन्तर्गत कहा जाने लगा है। पर थोड़ी छानबीन से ऐसा प्रतीत होगा कि वह हिन्दी की भी उपबोली हो सकती है। हिन्दी क्षेत्र की निकटवर्ती मराठी में हिन्दी और हिन्दी में मराठी की छाया स्वभावतः आ जाती है और वे दोनों एक-सी जान पड़ती हैं। हिन्दी-मराठी भ्रांति के ऐसे उदाहरण हम आगे दे रहे हैं। पर हलवी इसका अच्छा उदाहरण है। अतः हम उस पर तनिक विस्तार से विचार करेंगे।

हलवी या हल्बी को हलवा जाति की बोली कहा जाता है। यह जाति[३] छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त चाँदा, विदर्भ और दक्षिण में जयपुरी जमींदारी तक फैली हुई है। यह जाति जहाँ-जहाँ गई, वहाँ-वहाँ की स्थानीय बोलियों का अपनी बोली में समावेश करती गई। इस

---

१. The dialectic differences within the Marathi area are comparatively small, and there is only one real dialect that is 'Konkani'.

—(महाराष्ट्र परिचय पृष्ठ ३२२)

२. विदर्भ संशोधनाचा इतिहास पृष्ठ ४०।

३. प्राचीन आर्य उड्र देश में आकर उड्र संज्ञा से परिचित होने लगे। ....कलिंग देशीय आदिम निवासी अनार्यों से तथा दक्षिण द्राविड़ लोगों से मिल जाने से आर्यों की दृष्टि से पतित हो गए। इसीसे मनुसंहिता में उड्र लोगों को पतित क्षत्रिय लिखा है। जब नूतन आर्य कलिंग में आकर बसने लगे तब उन्होंने उड्र जाति को वहाँ से निकाल बाहर किया। तब ये उड्र लोग विसाखापाटना की मालभूमि जयपुर, बस्तर तथा अन्यान्य पहाड़ी

तरह इसके कई रूप हो गये। परन्तु इस बोली को केवल हलवा ही नहीं, बस्तर कांकेर में अन्य व्यक्ति भी बोलते हैं। सन् १९५१ की 'सैंसस-रिपोर्ट' (जनगणना-प्रतिवेदन) के अनुसार हलवी बोलनेवालों की संख्या २६२,८६४ है। इसका आशय यह है कि मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या में इस 'बोली' को १·२४ प्रतिशत व्यक्ति बोलते हैं। गत सन् १९३१ की जनगणना के समय इसका अनुपात ०·९५ और सन् १९२१ की जनगणना के समय ०·९६ प्रतिशत था। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार केवल बस्तर में २११४ व्यक्ति चाँदा जिले में १७६० और बैतूल, दुर्ग, भंडारा, वर्धा एवं यवतमाल में ३२४ व्यक्ति इसे बोलते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार जो व्यक्ति हलवी को अपनी मातृ-भाषा के रूप में बोलते हैं, वे उसी के साथ हिन्दी, गोंडी और छत्तीसगढ़ी भी (सैंसस-रिपोर्ट-लेखक ने छत्तीसगढ़ी को हिन्दी से पृथक् बतलाने में भूल की है) बोलते हैं। हलवी बोलनेवालों में ९९·२० प्रतिशत व्यक्ति दुभाषिए (Bilingual) हैं। (देखिए सैंसस ऑफ इण्डिया रिपोर्ट जिल्द ७, पार्ट १ ए पृष्ठ २७४ से २७९) ग्रियर्सन को भारतीय भाषाओं का अध्ययन करते समय हलवी के जो नमूने प्राप्त हुए हैं, वे अधिकतर विदर्भ में बसनेवाले हलवाओं के हैं, इसलिए उनमें मराठीपन अधिक है। उन्हें छत्तीसगढ़ की कांकेर रियासत से जो उदाहरण प्राप्त हुए हैं, उनमें पूर्वी हिन्दीपन की छाप स्पष्ट है। यह देख-कर ग्रियर्सन स्वयं असमंजस में पड़ गये। वे न उसे छत्तीसगढ़ी की उपबोली मानने को तैयार हुए और न मराठी की ही। ग्रियर्सन के यह लिखने के बावजूद हिन्दी की कतिपय भाषाविज्ञान की पुस्तकों में इस बोली के संबंध में भ्रांत कथन मिलते हैं। हाल ही प्रकाशित 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में डा० उदयनारायण तिवारी लिखते हैं— 'बस्तर की भाषा वस्तुतः हलवी है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार यह ***मराठी की ही एक उपभाषा है***' (पृष्ठ १९३)। परन्तु ग्रियर्सन ने तो उल्टी ही बात कही है : वे लिखते हैं, उसे मराठी की सच्ची बोली नहीं कह सकते (It can not be considered as a true Marathi dialect—Linguistic Survey of India Part VII page 336)। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, कि वह उड़िया, छत्तीसगढ़ी मराठी आदि की एक विशिष्ट मिश्रित भाषा है। वे उसे न मराठी की उपभाषा मानते और न छत्तीसगढ़ी (हिन्दी) की ही उपबोली कहते हैं।[1] वे उसे छत्तीसगढ़ी की उपभाषा मानने को इसलिए तैयार नहीं हैं कि उसमें 'ल' प्रत्यय और संबंधवाचक 'च' पाया जाता है जो मराठी की विशेषता है। इस संबंध में निवेदन

स्थानों में निवास करने लगे। ......उड़ू लोग पतित होने पर भी क्षत्रिय थे। शुद्ध विद्या सीखना इनकी परम्परा-वृत्ति थी तथा कृषि-कार्य में ये अत्यन्त निपुण थे। ......उड़ू लोग शांतिमय समय में पार्वतीय अंचलों में निवास कर कृषि द्वारा भरण-पोषण करते थे। हल द्वारा कृषि करने से इनका परिचय कालक्रम से हलबा (हलवाहक) हुआ होगा।

हलवी भाषा बोध (पृष्ठ ४)

(ग्रियर्सन हल्वाओं को आदिवासी मानते हैं। उनका कहना है कि उन्होंने हिन्दू धर्म और आर्य भाषा को अपना लिया है (Linguistic Survey of India Part VII. page 331)

1. देखिए Linguistic Survey of India Vol. VII. page 335-336।

है कि 'ल' प्रत्यय मराठी की ही विशेषता नहीं है। पूर्वी हिन्दी और बिहारी में भूतकालीन क्रिया-रूप में ल पाया जाता है, यथा—मराठी—गेला, पूर्वी हिन्दी—गइल। अब रहा च प्रत्यय। यह मराठी में ही नहीं, पुरानी गुजराती में भी नरसी मेहता के पदों में बहुत प्रयुक्त हुआ है। इसकी उत्पत्ति के विषय में भाषाविदों में मतभेद है। एक मत है कि संस्कृत त्यत्—प्राकृत 'च' से मराठी 'च' बना है।[1] दूसरे मत के अनुसार इसकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई है, ईम—इज्ज—ज्ज—च। हलवी में च प्रत्यय ही षष्ठी का चिह्न नहीं है, उसके लिए 'के' भी लगता है। ग्रियर्सन के उदाहरण को आगे उद्धृत किया गया है। उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी। यहाँ केवल उसके दो वाक्य दिये जाते हैं। यथा—

(१) बाघ उठलो आउर हुनके (उसका) डावला (पंजा) मुसा पर एकदम पड़ला।

(२) हुनके (उनके) ढोर को कन्तु कन्तु मारते रेलो।

मराठी में संबंधवाचक में 'के' का प्रयोग नहीं होता। यह हिन्दी का प्रत्यय है।

ग्रियर्सन ने यह भी माना है कि उच्चारण-प्रक्रिया, शब्द-भांडार, वचन और सर्वनाम रूपों में हलवी पूर्वी हिन्दी—छत्तीसगढ़ी के समान है। फिर यह बात समझ में नहीं आती कि ल और च के प्रवेश से ही वे उसे हिन्दी की उपबोली मानने से क्यों झिझके और उसे 'विशिष्ट मिश्रबोली' कह कर रह गये। बस्तरी हलवी की कतिपय विशेषताएँ ये हैं—

(१) उसमें केवल दो ही लिंग—पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होते हैं। यहाँ भी यह मराठी का अनुकरण नहीं करती। मराठी में उपर्युक्त दो लिंगों के अतिरिक्त तीसरा नपुंसक लिंग भी होता है।

(२) उसमें बहुवचन का कोई चिह्न नहीं लगता। पद में 'मन' जोड़ने से बहुवचन बन जाता है। जैसे, एकवचन—बाबा—बहुवचन—बाबामन। बहुवाचक शब्द को जोड़ कर भी बहुवचन बना लिया जाता है। यथा—खुबझन मुसा (बहुत से चूहे)। मराठी में ऐसा नहीं पाया जाता। उसमें बहुवचन के चिह्न होते हैं। छत्तीसगढ़ी में 'मन' जोड़ने से बहुवचन बन जाता है।

(३) कारक चिह्न—

कर्ता—ने
सम्प्रदान—के, को
अपादान—ले, से
संबंध—चो, के
अधिकरण—में, उपरे और ने[2]

कारक-चिह्नों में 'चो' को छोड़कर शेष सब हिन्दी के हैं। 'ले' छत्तीसगढ़ी में अपादान का चिन्ह है।

---

१. देखिए यादवकालीन मराठी—पृष्ठ १८३।

२. डा० पूरनसिंह ने हलवीभाषाबोध (An Introduction to the Halbi Language) में अधिकरण की ने और ऊपरे विभक्तियाँ दी हैं। देखिए—पृष्ठ ४४।

भूतकालीन ल प्रत्यय की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अब ग्रियर्सन की 'लिंग्विस्टिक सर्वे' भाग ७, पृष्ठ ३४८ से काँकेरी हलबी का उदाहरण दिया जाता है—

"एकटुन बाघ कोनी वन में पड़े सोउ रली। एकदम खुबभन मुसा हुनके पास अपलो बिलले निकरलो। हुनके आरोसे बाघ उठलो, आउर हुनके डाबला (पंजा) एकटुन (एक) मुसा पर एकदम पड़ला। (बाघ) रीस में इलो। बाघ ने हुन मुसा को मारेबर तैयार हो रहिलो। मुसा अर्जी करलो। तुम चो आपनबाट (अपनी ओर) देखो। मोचो बोर (मेरी ओर) देख। मोचो मारले से तुचो का बड़ाई मीलेते। इतनो सुन बाघ ने मुसा को छोडेन थाती। मुसाने अर्जी करलो। वो कहलो, कोनी दिन में आपलो येचे दाया का बदला दीहो। हुनके सुन बाघ हँसलो आउर बनबाट गैलो। थोड़े दिन पाछे हुन बन के पास के रहिलो। बीतामन फांदा लगावलो। बाघ को फसावलो। क्योंकि हुन हुन के ढोर को कन्तु कन्तु मारते रेलो (रहा)। बाघ ने फांदी से निकलन रहलो। फेर निकल नहीं सकलो। आखिर हुन (वह) दुख के मारे नरिआवलो (चिल्लाया)। हुनी (उस) मुसा ने जिनके बाघ छो डाउन दिले रहलो हुन नरिआलो सुन लो। हुन आपलो उपकार करिया के बोली जानलो आउर खोजत उथा उपर तो हुता बाघ फसा पड़ला रहलो। हुन आपलो तेज चो दाँतों से फाँदा को कतरलो आउर बाघ को छुडावलो।" यह पुराना उदाहरण है।

काँकेर और बस्तर की हलबी के वर्तमान रूप का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

हिन्दी-अंशः—नागपुर में अखिल भारतीय प्रजा समाजवादी पार्टी का जो अधिवेशन हुआ, उसकी तुलना यदि समुद्रमंथन से करें तो अनुपयुक्त न होगा। पहिले विष ही ऊपर आया और उसके मथनेवाले भयग्रस्त हुए। सदस्यों के साथ दर्शकों को भी दुःख हुआ। परन्तु आचार्य कृपलानी ने हँसते, विनोद करते हुए उसका पान कर लिया। एक बार ही दोनों गुटों के वोट गिने गये। जिसके परिणामस्वरूप कृपलानीजी तथा उनकी कार्यकारिणी में बहुमत से विश्वास प्रकट हुआ। इससे कृपलानीजी ने कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाया। वे विषपान कर अध्यक्ष-पद से अलग हुए।

हलबी में रूपान्तरः—"नागपुर ठाने प्रजासमाजवादी पार्टी चो, जोन सभा होली, हुनचो बरोबरी समंदमंथनो संग करतोने, काई बले अड़बंग नी होय। बीख पहिले ऊपर इलो अउर हुनचो मंतथो बीता मन डरला। मेंबर बीता मन के संगे, दखतो बीता मन के खूबे दुःख लागलो। आचार्य कृपलानी हंसुन हंसुन, ठठोली करून, हुन गोंठ मनके पीउन दीला दूनो वाट चो वोट, गोटक दाँय गिनला। हुनचो काजे कृपलानी अउर हुनचो कमेटी ने भारी वोट पडुन, विश्वास दखा पड़ लो। मांतर कृपलानी आपलो कांई फायदानी उठालो। बीख के पीऊन सभापति पद के छाँडला।"

उपर्युक्त उदाहरण जगदलपुर के वकील श्री रविशंकर वाजपेयी ने हमें प्रेषित किया है। इसके कुछ पद आदि रूपों की विवेचना नीचे की जाती है—

ठाने—संस्कृत→स्थान; प्राकृत→ठान और थान; हिन्दी→ठान।

संयुक्त शब्द के प्रारम्भ में बोलियों में प्रायः स का लोप हो जाता है। प्राकृत में ठान और थान दोनों रूप मिलते हैं। ठान में संस्कृत की सप्तमी का 'ए' लग जाने से ठाने हो गया। सप्तमी का 'ए' रूप पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी और मागधी प्राकृतोद्भूत भाषाओं में मिलता है।

चो—यह षष्ठी-रूप है। इसकी उत्पत्ति विवादास्पद है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है....

सं०→त्यत्, प्राकृत→च्च, मराठी→च। प्राकृत में भी षष्ठी का चान्त रूप मिलता है।

संस्कृत→अस्माकम्, प्राकृत→अह्मेच्चयं[१]।

कृष्णशास्त्री चिपलूणकर संस्कृत ईय से इसकी उत्पत्ति बतलाते हैं[२]। पर डा० गुणे ईय से च की उत्पत्ति निकालने में कठिनाई अनुभव करते हैं—ईय→इज्ज→ज्ज[३] (?)

पर यह प्रत्यय मराठी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। गुजराती में नरसी मेहता के पदों में भी यह पाया जाता है। "नरसैंयाचा स्वामिणु मुखडु करि करि[४] जसोद....रे।" नरसिंह बाललीला[५]।

जोन—पूर्वी हिन्दी जवन, जौन→जोन।

होली—भूतकालिक ल प्रत्यय, मराठी के अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बँगला और असमिया में भी पाया जाता है। होली में खड़ी बोली हिन्दी धातु 'होना' से भूतकालिक रूप 'हुई' न बनाकर मराठी और पूर्वीय भाषाओं का 'ल' जोड़कर गंगाजमुनी रूप 'होली' बना लिया गया है। शुद्ध मराठी-रूप होता 'झाली'।

हलबी की इसी विभिन्नता को देखकर ही तो ग्रियर्सन इसे उड़िया, छत्तीसगढ़ी (पूर्वी हिन्दी) और मराठी की खिचड़ी (Admixture) कह कर रह गये।

अउर—(संयोजक पद) स्पष्टतः पूर्वी हिन्दी का रूप है।

(अ) हंसुन हंसुन (हँस हँसकर)
(ब) करुन (करके)
(स) पड़ुन (पड़कर)
} ये अव्ययी भूतकालिक कृदन्त मराठी के हैं।

मराठी में ऊन महाराष्ट्री प्राकृत ऊण से आया है।

इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है[६]....

---

१. **देखिए—यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ १८३।**
२. **देखिए—मराठी व्याकरणील निबंध, पृष्ट ६२।**
३. देखिए—Comparative Philology, पृष्ठ ३०।
४. **देखिए—यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ १८४।**
५. **देखिए—वही, पृष्ठ १८४।**
६. **देखिए—वही, पृष्ठ २४१।**

सं०→त्वानम्→त्वीनम्, प्रा०→त्ताणं, तूणं और ऊण, अपभ्रंश→ऊण→एविणु एप्पिणु ; मराठी→ऊनि, ऊन, ऊनिया ।

मराठी में उन का उ दीर्घ (ऊ) है ।

काँई—यह राजस्थानी, निमाड़ी, मालवी में क्या के अर्थ में व्यवहृत होता है। यहाँ कुछ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मराठी में काही का 'कुछ' अर्थ होता है। संभवतः यह काँई मराठी काही से 'ह' के लोप और 'का' पर अनुस्वार के आगम से बन गया है।

नी—यह निमाड़ी और मालवी (पश्चिमी हिन्दी) में न के अर्थ में बहुत प्रचलित है। खड़ी बोली नहीं से ह का लोप हो जाने से नी बन जाता है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार भी लगाई जा सकती है—

संस्कृत→नहि, पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी→नाहीं→नाहिं→नहीं, बुन्देली—नइँ, बस्तरी हलवी, निमाड़ी, मालवी→नीं ।

कोष्टी हलवी

छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले के अतिरिक्त नागपुर की कोष्टी जाति में भी हलवी बोली जाती है। उपर्युक्त हिन्दी-अंश का नागपुरी कोष्टी हलवी में रूपान्तर दिया जाता है जिसे हलवीभाषी श्री अनिलकुमार ने किया है—

"·····नागपुर मां प्रजा समाजवादी पार्टी को जो अधिवेशन भयो वोको बरोबरी समुद्र मंथन संग करनेमा कांही हरकत नहीं होणार। (पहले जहर बरया बरत्या) आयो अन मंथन (घुसलन) करनेवाला डरान्या। सभासद बरोबरच देखनेवाला लोकसुद्धा दुखी भया। पर आचार्य कृपलानीन हसता हसता मजाक करता करता, वो जहर पीय लेइस। आखरी दुयही पार्टी का मत मोज्या गया। परिणाम अस्यो भयो की कृपलानी अन उंकी कार्यकारिणी मां बहुमत नं विश्वास देखाइस। एकऽ पासलऽ कृपलानी जी नं आपलो काही फायदा नहीं करीस। वो जहर पीईस अन अध्यक्षपद ल अलग भयो।"

अब उपर्युक्त हलवी-अंश के कतिपय शब्दों पर टिप्पणी कर भाषा की परीक्षा करने का यत्न किया जाता है—

मां—यह अधिकरण का चिह्न खड़ी बोली के 'में' अर्थ में अवधी में प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—
संस्कृत→मध्य, प्राकृत→मज्झहि, पश्चिमी हिंदी→मांहि, अवधी→मां, हलवी→मां ।

भयो—भूतकालिक क्रियापद। पश्चिमी हिंदी ब्रजभाषा के कन्नौजी रूप में अत्यधिक प्रयुक्त है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार लगाई गई है—
संस्कृत→भवति, प्राकृत→भविओ, ब्रज→भयो, हलवी→भयो ।

नहीं—खड़ी बोली का रूप है। इसे केलॉग न+आहि का संयुक्त रूप बताते हैं।[1]

---

1. **हिन्दी भाषा का इतिहास (धीरेन्द्र वर्मा) पृष्ठ ३११ ।**

वोकी—संबंधवाचक सर्वनाम है। अवधी-रूप→वहिकर, वहिकी, बुन्देली→ओकी-बाकी, हलवी→वोकी।

होणार—यह मराठी का भविष्यकालिक क्रियारूप है।

डरान्या—पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली) डरना का भूतकालिक एक वचन डरा, व्रज-भाषा 'डरानो' का बहुवचन डराने होता है, इसीसे हलवी में *डरान्या* बन गया।

लेइस—छत्तीसगढ़ी भूतकालिक क्रियारूप है। अवधी लिहिस, छत्तीसगढ़ी लेइस।

बरोबरच—यह 'बराबर' का मराठीकृत रूप है। इसके साथ वाक्य में 'च' प्रत्यय खड़ी बोली 'ही' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो दक्खिनी और नागपुरी हिन्दी में भी प्रचलित है।

अस्यो—खड़ी बोली 'ऐसे' के अर्थ में प्रयुक्त है। इसका पश्चिमी हिन्दी में 'ऐसो' रूप होता है। यह मराठी 'असा' से अस्यो बना प्रतीत होता है।

ल—यह सम्प्रदान प्रत्यय है जो छत्तीसगढ़ी में खूब प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति प्राकृत 'लें' प्रत्यय से लगायी जा सकती है।

भाषा के व्याकरण-रूप की परीक्षा से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं—

(१) क्रियापदों के सभी भूतकालिक रूप भयो, आयो, डरान्या, लेइस आदि पूर्वी या पश्चिमी हिन्दी के हैं।

(२) क्रियापद का भविष्यकालिक रूप—होणार—मराठी का है।

(३) बल देने के लिए 'ही' के अर्थ में 'च' का प्रयोग मराठी का है जिसने नागपुरी और दक्खिनी हिंदी में प्रवेश पा लिया है।

(४) 'भी' के अर्थ में सुद्धा का प्रयोग मराठी का है।

(५) सर्वनामरूप अस्यो, उंको और 'वो' प्रयुक्त हुए हैं। अस्यो में मराठीपन है और उंकी तथा वो क्रमशः खड़ी बोली के 'उनकी' और वह के बोलचाल के उच्चरित रूप हैं।

(६) विभक्तियाँ प्रायः सभी पश्चिमी हिन्दी की हैं। अपादान की 'ल' विभक्ति छत्तीसगढ़ी की है।

(७) कोष्टी हलवी के उदाहरण के अंश में चौहत्तर शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनमें हरकत शब्द मराठी का है जो आपत्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। शेष सभी शब्द हिन्दी के हैं अर्थात् संस्कृत के तत्सम या तद्भव हैं। पार्टी जंतर और मजाक शब्द यद्यपि विदेशी हैं तो भी वे हिन्दी में इतने अधिक प्रचलित हो चुके हैं कि उसीके अंग बन गये हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों और टिप्पणियों आदि से यह निष्कर्ष निकलता है कि बस्तरी और नागपुरी कोष्टी हलवी में हिन्दी और मराठीपन दोनों हैं; परन्तु मराठीपन इतना कम है कि ग्रियर्सन स्पष्ट शब्दों में इसे मराठी की उपबोली नहीं कह सके। परन्तु बस्तर कांकेर के बाहर (नागपुर को छोड़कर) जो हलवी बोली जाती है, उसमें हिन्दीपन बहुत

कम है। सन् १९५१ की जनगणना-रिपोर्ट के अनुसार बस्तर के बाहर चाँदा जिले के हलबी बोलनेवालों की संख्या अधिक है। चाँदा में तेलुगु और मराठी भी बोली जाती है। अतएव चाँदा की हलबी पर मराठी का प्रभाव अधिक हो सकता है। बस्तर-कांकेर के क्षेत्र में उसकी संभावना नहीं दीख पड़ती। वहाँ के हलबी भाषा-भाषी तो मराठी को वैकल्पिक अथवा दूसरी भाषा के रूप में बोलते भी नहीं हैं। बस्तर-कांकेर में कभी मराठी भाषा का व्यापक प्रचलन रहा हो, ऐसा उदाहरण भी नहीं मिलता। इसके विपरीत, हिन्दी या हिन्दुस्तानी के व्यापक प्रचार के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। सन् १७६६ में बंगाल के गवर्नर के निर्देश से टी. मोट्टे (T. Motte) ने मध्यप्रदेश के बस्तर-कांकेर होते हुए यात्रा की थी। उसका वर्णन 'अर्ली यूरोपियन ट्रेवलर्स इन नागपुर' में मुद्रित हुआ है। उसमें वह लिखता है—"अप्रैल ७। आज प्रातःकाल लगभग ८ बजे मुझसे कहा गया कि कांकेर का राजा रामसिंह आ रहा है।.... अभिवादन के पश्चात् मैंने उससे उत्तरीय सरकार (Northern Sirkar) के मार्गों में पड़नेवाले भू-भाग के संबंध में प्रश्न किये। राजा ने स्वयं अनेक विविध प्रश्नों के उत्तर दिये। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि राजा हिन्दुस्तानी भाषा बड़ी धारा-प्रवाह-गति से बोल रहा था[१]।" कांकेर और बस्तर हलबी भाषाप्रधान क्षेत्र हैं। और वहाँ का राजा १८वीं शताब्दी में हिन्दुस्तानी सहज गति से बोल सकता था। हो सकता है कि वह अपनी मातृभाषा हलबी बोल रहा हो जिसे मोट्टे ने हिन्दुस्तानी समझा हो। हो सकता है, वह हलबी के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी भी जानता हो। जो हो, हिन्दुस्तानी उस समय भी अन्तरप्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। सन् १७९५ में बंगाल-सरकार ने केप्टन ब्लंट को कुछ सिपाहियों के साथ बरार, उड़ीसा और उत्तरी सरकार के बीच मार्ग खोजने के लिए रवाना किया था। वह कोरिया, कांकेर, खैरागढ़ सिरोंचा (चाँदा) होते हुए निजाम राज्य की ओर बढ़ गया था। जब वह चाँदा जिले में पहुँचा तो मालेवाड़ा के गोंड राजा से उसकी खटपट हो गई। ब्लंट के पास मराठों का परवाना था, जिसकी राजा ने ज़रा भी परवाह नहीं की। अतः ब्लंट उसे वस्तुस्थिति समझाना चाहता था। वह लिखता है—"A man called his diwan, who spoke a *little bad Hindi* was the interpreter between us"[२]

(एक आदमी जो उसका दीवान कहलाता था और जो तनिक गलत हिन्दी बोलता था, हमारे बीच दुभाषिए का काम करता था) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि छत्तीसगढ़ के बस्तर तथा चाँदा के क्षेत्र में हिन्दी दूसरी भाषा के रूप में प्रचलित रही है। ग्रियर्सन के

---

१. 'I was surprised to find him speak the Hindustany language with great fluency' (Early European travellers in Nagpur Territories—page 132).

२. देखिए, British Relation with the Nagpur State in the 18th Century—पृष्ठ १२६।

पूर्व छत्तीसगढ़ रियासतों के पोलिटिकल एजेन्ट ई. ए. ब्रेट, आई. सी. एस. ने 'छत्तीसगढ़ी फ्यूडेटरी स्टेट्स' नामक ग्रंथ में बस्तर की भाषाओं के संबंध में लिखा है—

("रियासत में जो प्रमुख भाषाएँ बोली जाती हैं, उनमें हिन्दी, हलबी, तेलुगु और गोंडी की विभिन्न बोलियाँ मुख्य हैं। हलबी छत्तीसगढ़ी हिन्दी का विकृत रूप है और उत्तर भाग के एक लाख से ऊपर व्यक्ति उसे बोलते हैं जहाँ हिन्दी बोलनेवालों की संख्या भी इक्कीस हजार है।" ब्रेट ने ग्रियर्सन के भाषा सर्वे के पूर्व बस्तर-कांकेर की हलबी पर अपने विचार प्रकट किये थे।)

सन् १७६६ में यूरोपियन यात्री मोट्टे और सन् १६०६ में प्रकाशित छत्तीसगढ़ के पोलिटिकल एजेंट ब्रेट के 'छत्तीसगढ़ी फ्यूडेटरी स्टेटस्' ग्रंथ में हलबी को हिन्दी के अन्तर्गत ही माना है। संभव है, उन्होंने लोगों की बोली सुनकर ही अपनी धारणा बनाई हो। पर ग्रियर्सन ने कांकेर की हलबी के लिखित नमूने की छानबीन की और यह निष्कर्ष निकाला कि यह मराठी की उपभाषा तो नहीं है; पर इसे हिन्दी के अन्तर्गत भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसमें संबंधकारक 'च' और भूतकालिक 'ल' प्रत्यय पाये जाते हैं, जो मराठी भाषा की विशेषता है। हम पहले बतला चुके हैं कि भूतकालिक 'ल' प्रत्यय पूर्वी हिन्दी में भी विद्यमान है। अब रह जाता है संबंधकारक 'च' प्रत्यय। हलबी में संबंधकारक चो प्रत्यय ही नहीं, 'के' प्रत्यय भी प्रचलित है, जो निश्चय हिन्दी का है। यह 'च' या 'चो' प्रत्यय बस्तर-कांकेर में कैसे और कब से प्रविष्ट हुआ, इस पर भी तनिक विचार करना उचित होगा। यदि हलबी लिखित भाषा होती तो उसके प्रवेश का समय साहित्य के अध्ययन से निश्चित हो सकता था। अतः हमें ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अनुमान लगाना होगा।

बस्तर-कांकेर में मराठी के 'च'-'चो'-प्रवेश का ऐतिहासिक कारण

बस्तर और कांकेर राज्य यों तो बहुत समय तक स्वतंत्र रहे हैं; पर जब अठारहवीं शताब्दी में मराठों का उत्कर्ष हुआ और उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया तब ये रियासतें नागपुर-शासन के अन्तर्गत आ गईं। छत्तीसगढ़ में रायपुर और रतनपुर में तो मराठों का सीधा शासन रहा था। पर बस्तर और कांकेर राजाओं से उनकी वार्षिक कर और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता की शर्त थी।

सन् १८३० में बस्तर के राजा ने वार्षिक कर के बदले में अपने राज्य का सिहावा परगना नागपुर के शासन को दे दिया था। ऐसी स्थिति में सिहावा में मराठों की सेना के रहने से मराठी भाषा का 'च' यदि हलबा भाषियों में 'चो' होकर पहुँच गया तो कौन-सा आश्चर्य है? बस्तर से अधिक संबंध मराठों का कांकेर से रहा है। ब्रेट लिखता है—

"मराठों के शासन-काल में कांकेर आवश्यकता पड़ने पर ५०० सबल सैनिक देने की शर्त में बँधा हुआ था।"[1] सेना में उत्तर और पश्चिमी भारत के सैनिक भर्ती होते थे, जो

---

१. छत्तीसगढ़ी फ्युडेटरी स्टेटस्, पृष्ठ ८।

पुरबिया और मराठे कहलाते थे। छत्तीसगढ़ में मराठों के समय में सैनिक क्या व्यवस्था करते थे, इसका वर्णन सन् १७९५ में ब्लंट नामक अंग्रेज ने किया है—

"मराठों की फौजें, जिनमें उत्तरी और पश्चिमी हिन्दुस्तान के जवान थे (जो संभवतः पूरबिया और मराठे होंगे—लेखक), किसान। के बीच रहकर उनसे लगान वसूल करतीं और कराती थीं।"[1] कृषक और सैनिकों की भाषाएँ स्वभावतः एक दूसरे से प्रभावित होती रही होंगी।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि....बस्तर और कांकेर की हलबी में 'च' अथवा 'चो' प्रत्यय मराठी के हैं। परन्तु उसमें संबंधकारक का केवल मराठी का 'च' प्रत्यय ही नहीं है, हिन्दी का के प्रत्यय भी विद्यमान है। ऐसा जान पड़ता है कि उसमें 'च' अथवा 'चो' प्रत्यय मराठों के सम्पर्क से प्रविष्ट हो गया है।

छत्तीसगढ़ी में सम्प्रदान का 'ल'[2] प्रत्यय भी मराठी भाषी संपर्क का परिणाम जान पड़ता है। छत्तीसगढ़ी का यही 'ल' प्रत्यय हलबी में प्रविष्ट हो गया है।

हलबी के संबंध में मनोरंजक बात यह है कि उच्चारण, प्रत्यय-प्रक्रिया, शब्द-निधि और वाक्य-रचना में वह भले ही मराठी से अधिक मेल न खाती हो, पर मराठी-भाषियों को वह अपनी ही बोली लगती है। हिन्दी-भाषी तो उसे अपनी मानते ही हैं। इसे भी हिन्दी और मराठी भाषाओं की परस्पर निकटता का ही प्रमाण कहा जा सकता है।

हिन्दी-मराठी की निकटता

डा० ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे, भाग १ खण्ड १ पृष्ठ १२० में वर्तमान आर्य-भाषाओं का बाहरी, मध्य और भीतरी उपशाखाओं में विभाजन किया है। बाहरी उप-शाखा में उत्तर की ओर लहदाँ, सिंधी, दक्षिण में मराठी और पूर्व में उड़िया, बिहारी, बंगाली, असमिया, मध्य उपशाखा में पूर्वी हिन्दी तथा भीतरी उपशाखा (केन्द्रीय) में पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी और राजस्थानी को रखा गया है।

उच्चारण, व्याकरण आदि की भिन्नता के कारण डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उपर्युक्त वर्गीकरण को उचित नहीं माना। उन्होंने ग्रियर्सन के अनेक निष्कर्षों का सप्रमाण खंडन कर भारतीय आर्यभाषाओं का उदीच्य (उत्तरी) प्रतीच्य (पश्चिमी) मध्यदेशीय प्राच्य (पूर्वी) और दक्षिणी के नाम से वर्गीकरण किया है। उन्होंने उदीच्य में सिन्धी, लहंदा, पूर्वी पंजाबी, प्रतीच्य में गुजराती, राजस्थानी, मध्यदेशीय में पश्चिमी हिन्दी, प्राच्य में कोशली अथवा पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बंगला, असमिया तथा दक्षिणी में मराठी का समावेश किया है।

भाषाओं को भीतरी-बाहरी समुदायों में बाँटने की अपेक्षा उनका परस्पर साम्य और विभेद दिखाना अधिक समीचीन होता है। यों भाषा में साम्य और विभेद के नियम भी शाश्वत नहीं होते। वे तो विशेष काल की स्थिति के द्योतकमात्र होते हैं। ग्रियर्सन ने

---

१. 'ब्रिटिश रिलेशन विथ नागपुर स्टेट इन एटीन्थ सेञ्चुरी', पृष्ठ १३२-१३३।

२. (बाम्हन) रोटा उलटाये पुलटाये लागिस (छत्तीसगढ़ी)।

वर्षों पहिले जो निरीक्षण के परिणाम लेखबद्ध किये थे, उनमें आज परिस्थितियों के परिवर्तन से अन्तर आ गया है। भाषा बोलनेवाले लोग जब ग्रामों से नगरों में जाते हैं, तो वहाँ अनेक भाषाओं के सम्पर्क में आकर अपनी भाषा या बोली में अनजाने अन्य भाषाओं की प्रवृत्तियों को ग्रहण करने लगते हैं। देश में राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव भाषा पर पड़ता है। तमिलनाडु में आर्यभाषाओं के विरोध की लहर चल पड़ने से उससे संस्कृत शब्द चुन-चुन कर निकाले जा रहे हैं और स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद से भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार की प्रवृत्ति के कारण हिन्दी-क्षेत्रों की साहित्यिक भाषा में आज संस्कृत शब्द तत्सम रूप में भरे जा रहे हैं। महाराष्ट्र में भी एक समय मराठी से अरबी-फारसी शब्दों को निकालने का यत्न किया गया था। उसमें कई शब्द ऐसे हैं जिन्हें सानुस्वार लिखा तो जाता है पर बोला नहीं जाता। अतः एक आन्दोलन ऐसा भी उठाया जा रहा है कि अनुच्चरित अनुस्वारों को शब्दों से निकाल कर ही छापा जाये। क्योंकि पुस्तकों से भाषा सीखनेवाले व्यक्ति अनुस्वारसहित मुद्रित शब्दों में अनुस्वार को प्रचलित ध्वनि समझकर उनका गलत उच्चारण करेंगे। इसी सिद्धान्त पर अमेरिकन अंग्रेजी भाषा के शब्दों के हिज्जे (वर्तनी) उनके वर्तमान उच्चारण-रूप पर निर्धारित कर रहे हैं। भाषा के क्षेत्र में जाने-अनजाने अनेक प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। एक परिवार की एक ही समुदाय की भाषाओं में परस्पर भेद दिखलाई पड़ता है। पूर्वी हिन्दी की अवधी में जहाँ क्रिया के स्त्रीलिंग और पुँल्लिग दोनों रूप होते हैं, वहाँ उसीकी उपभाषा छत्तीसगढ़ी में क्रिया के ऐसे कोई रूप नहीं होते।

इसी प्रकार पुणे की मराठी में जहाँ कर्ता के साथ कोई विभक्ति नहीं लगती, वहाँ वर्‌हाड़ी मराठी में खड़ी बोली के समान 'ने' विभक्ति लगती है। कुछ वर्णों के उच्चारण-भेद डा० कोलते ने मुझे बतलाये। पूनाई मराठी 'ल' का उच्चारण 'य' और कभी-कभी 'इ' का उच्चारण 'ल' के समान होता है। यथा—पूनाई मराठी—बालापुर चा बालाजी झमझम झमकतो।—वर्‌हाड़ी मराठी—बायापुर चा बायाजी झमझम झमकते। पूना म० का द्वितीय चतुर्थी का 'ला' प्रत्यय बर्‌हाड़ी में 'ले' हो जाता है। यथा पूनाई—तुला मारतो बर्‌हाड़ी तुले मारतो। वर्‌हाड़ी में क्रियापदों में स्त्री और पुँल्लिग रूप समान होते हैं। पूनाई मराठी में पुरुष कहेगा 'मी जाते' स्त्री कहेगी, 'मी जातो 'वर्‌हाड़ी' मराठी में पुरुष कहेगा 'मी जातो' और स्त्री भी कहेगी, 'मी जातो।'

वर्‌हाड़ी का शब्द-भाण्डार खड़ी बोली उर्दू, तेलुगु, आदि से प्रभावित होते हुए भी संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से काफ़ी भरा हुआ है। वह प्राचीन मराठी के अधिक निकट है और यह स्वाभाविक भी है। आर्यों का उत्तर से दक्षिण में प्रथम प्रवेश विदर्भ में हुआ जान पड़ता है। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा के रूप-भेद व्यापक और स्थायी नहीं होते और इसीलिए उनसे संबंध रखनेवाले नियम भी स्थायी नहीं होते। भाषाओं के संबंध में किसी नियम को आग्रह के साथ शाश्वत कहकर प्रतिपादित करना व्यर्थ प्रतीत होता है। वास्तविकता यह है कि परिवर्तित प्रवृत्तियों की समय-समय पर छानबीन होती रहनी चाहिए।

अब हम संक्षेप में यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि मराठी का पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी की ओर कितना झुकाव है।

मराठी और हिन्दी की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं की लिपि देवनागरी अथवा बालबोध है। वर्णमाला में समानता है। व्यंजनों में 'ल' के साथ 'ळ' व्यंजनध्वनि मराठी में अधिक कही जाती है। परन्तु यह कथन पूर्वी हिन्दी में लागू होता है, पश्चिमी हिन्दी की राजस्थानी मालवी और निमाड़ी में यह (ळ) ध्वनि है[1]।

कर्ता कारक एक वचन अकारान्त संज्ञा-शब्द प्राचीन मराठी में 'उ' और ओकारान्त होते हैं। जब 'उ' कारान्त होते हैं तब पूर्वी हिन्दी का अनुसरण करते हैं और जब 'ओ' कारान्त तब पश्चिमी हिन्दी का। पश्चिमी हिन्दी में भी कहीं-कहीं अकारान्त संज्ञा-शब्दों का कर्ता, एकवचन में उकारान्त रूप मिलता है।

मराठी और पश्चिमी भाषाओं (गुजराती, राजस्थानी आदि) के वर्ण-उच्चारणों में प्रायः समानता रहती है। 'अ' का उच्चारण ह्रस्व 'अ' ही होता है, बंगला के समान 'ओ' नहीं।

'व' और 'ब' का भेद मराठी में पश्चिमी हिन्दी विशेषकर खड़ी बोली, राजस्थानी आदि के समान स्पष्ट दिखाई देता है।

मराठी में च, ज, झ का जिस प्रकार उच्चारण होता है उस प्रकार पूर्वी भाषाओं में नहीं होता। मराठी में इनके शुद्ध तालव्य और दन्त्य तालव्य उच्चारण मिलते हैं। मराठी में दन्त्य, मूर्धन्य और तालव्य—स, ष और श वर्ण विद्यमान हैं। पश्चिमी हिन्दी में ये तीनों वर्ण हैं पर मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण 'ख' होता है। पूर्वी हिन्दी (अवधी) में तत्सम शब्द-रूपों में 'श' आता है पर तद्भव शब्दों में 'स' ही प्रयुक्त होता है। बिहारी और सुदूर पूर्व की बंगला आदि में 'स' के स्थान पर 'श' का साम्राज्य है। पूर्वी हिन्दी अवधी के ग्रंथों में 'ष' मिलता है; पर उसका उच्चारण पश्चिमी हिन्दी के समान 'ख' होता है।

'ऋ' का उच्चारण पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी में 'रि' और मराठी में 'रु' होता है।

मराठी में तीन····(पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक) लिंग होते हैं,

पश्चिमी हिन्दी की कतिपय बोलियों में भी ये तीन लिंग होते हैं।

डिंगल के प्राचीन ग्रंथों में स्त्रीलिंग और पुल्लिग के अतिरिक्त नपुंसक लिंग के उदाहरण मिलते हैं।

ऊपर कहे अनुसार आकारान्त मराठी संज्ञापद का रूप एकवचन में भोजपुरी के समान, पर बहुवचन में पश्चिमी हिन्दी के समान होता है।

यथाः एकवचन

घोड़ा (मराठी)····भोजपुरी—घोड़ा, खड़ीबोली—घोड़ा

---

१. यह ध्वनि उड़िया, पंजाबी और गुजराती में भी पाई जाती है।

बहुवचन

घोड़े (मराठी)···भोजपुरी—घोड़न, खड़ी बोली—घोड़े और पूर्वी हिन्दी—घोड़न्ह

मराठी संबंधवाचक सर्वनामों का पश्चिमी हिन्दी के समान एकवचन में ओ से अन्त होता है, पर बहुवचन में वे पूर्वी हिन्दी का भोजपुरी का अनुकरण करते हैं। यथा—

एकवचन

मराठी—**जो**···पश्चिमी हिन्दी—**जो**···पूर्वी हिन्दी—जे··· भोजपुरी—जवन

बहुवचन

मराठी—जे···पश्चिमी हिन्दी—**जो**···पूर्वी हिन्दी—जे···भोजपुरी—जवन

मराठी में मागधी से उद्धृत बिहारी, बंगला आदि भाषाओं का भूतकालीन 'ल' प्रत्यय पाया जाता है।

मराठी (भूतकाल)	भोजपुरी (भूतकाल)
गेला	गइल

मराठी में कैसा, ऐसा, जैसे, तैसे पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली) के समान ही प्रयुक्त होते हैं।

जेष्ठ कनिष्ठ दोन्ही भार्या। आणि संसार ही आवरी तुक्या
ऐसी स्थिति देखोनिया, माता पिता संतोष। (महाराष्ट्र सारस्वत पृ० ३६५)
सावकार, पिशुन आणि खल। गुहासी पातले जैसे काळ (वही, ३६५)
जैसा कां जागृतीचा पोला।
स्वप्नहि ***तैसेंच*** दिले गेला। (वही, पृष्ठ ३७०)
देखिले रूप ***जैसे*** तेचि पाविजे ***तैसे*** (वही, पृष्ठ ३८५)
आमची प्रतिज्ञा ***ऐसी***, कांहीं न मागावे शिष्यांसी (वही, पृष्ठ ४१६)

पूर्व में बोली जानेवाली आधुनिक खड़ी बोली की प्रवृत्ति के अनुसार मराठी में 'खावें जावें' का प्रयोग मिलता है।

मराठी में प्रश्नवाचक सर्वनाम काय (क्या, क्यों) पश्चिमी हिन्दी की बुन्देली बोली के समान काय ही है। यथा—

मराठी	बुन्देली
काय रे, कसा बसला आहे ?	काय रे, कैसो बैठो है।
	खड़ी बोली
	क्यों रे, कैसा बैठा है ?

इसी प्रकार मराठी ***आपण*** पश्चिमी हिन्दी बुन्देली के ***अपन*** सदृश है।

यथा—मराठी—चला आपण चलू।
बुन्देली—चलो अपन चलें।

मराठी में राजस्थानी के न के स्थान में ण की बहुलता है। राजस्थानी में मराठी की ळ ध्वनि के होने की चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

खड़ी बोली की एकवचन भूतकालिक *था* क्रिया मराठी में—होता और बुन्देली में—हतो हो जाती है। और बहुवचन में क्रमशः थे, होते और हते रूप धारण कर लेती है। यथा—

एकवचन

राम *जात होता* (मराठी) .... राम जात *हतो* (बुन्देली)

बहुवचन

मुलगे *जात होते* (मराठी) .... मोड़ा *जात हते* (बुन्देली)

इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि एक ही परिवार की भाषाएँ विस्तृत नदियों, उच्च पहाड़ों, और दुर्गम बनों को लाँघती हुई किस प्रकार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की बहनों से निकटतर संबंध स्थापित करती रहती हैं। भाषाशास्त्री जब उनका कुल, धर्म, स्थान आदि खोजने लगते हैं, तब यह कठिनता से निर्णय कर पाते हैं कि अमुक भाषा कहाँ से आई है—उत्तर से आई है, पूर्व से आई है, पश्चिम से आई है या दक्षिण से आई है? इसका एक और उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। इसमें हिन्दी और मराठी की निकटता का एक और प्रमाण मिल जाता है।

'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' में पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चौदहवीं शताब्दी में कवि नयचन्द सूरि लिखित महाराष्ट्रीय प्राकृत की नाटिका 'रम्भा मंजरी' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

जरि पेखिला मस्तकावरि केश कलायु।[1]
तरि परिख्खता मयूराचे पिच्छ प्रतापु।
जरी नयन विदायु केला वेणी दण्डु।
तरी साक्षाज्जाला भ्रमर श्रेणी दण्डु।
जरी दृग्गोचरी आला विशाल भालु।
तरी अर्द्धचन्द्र मण्डल भइल उर्णायु जालु।
भ्रूजुगलु जाणूं द्वैधीकृत कंदर्प चापु।
नयन निर्जित सुजला खंजन निःप्रतापु।
मुखमण्डलु जाणू शशांक देवताचे मण्डलु।
सर्वांग सुन्दर मूर्तिमन्त कामु।
कल्पद्रुम जैसे सुन्दर सर्वलोक आशा विश्रामु॥[2]

द्विवेदीजी लिखते हैं, 'यह पंक्ति शुद्ध मराठी नहीं है। बल्कि तत्काल प्रचलित काशी की भोजपुरी का मराठी कवि द्वारा सुना हुआ रूप है।[3]' परन्तु मेरे मत से सारी पंक्तियों में मराठी छायी हुई है। प्रत्येक पंक्ति पर विचार करने से यह सिद्ध

---

१. संभवतः यहाँ कलापु होगा।
२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ २८।
३. वही—पृष्ठ २८।

किया जा सकता है। प्रथम पंक्ति में *जरि* शब्द मराठी है जो 'भी' अर्थवाचक है। पेखिला मराठी है। मस्तकावरि शुद्ध मराठी है, जिसका अर्थ है मस्तक पर। दूसरी पंक्ति में *तरि* (शुद्ध मराठी है 'तो भी' अर्थवाचक है)। परिख्खता के स्थान पर परिख्खला होना चाहिए। यह भी शुद्ध मराठी है। मयूराचे तो मराठी है ही, तीसरी पंक्ति में जरी (यदि) और केला (किया), चौथी में तरी (तो भी) और साक्षाज्जाला (साक्षात हुआ) शुद्ध मराठी हैं। साक्षाज्जाला में *जाला* आधुनिक मराठी *झाला* शब्द का ही पुराना रूप है। यथा—

प्राणीमात्र *जाले* दुःखी
पाहतां कोन्ही नाहीं सुखी।[1]
महाराजे चक्रवर्ती। *जाले* आहेत पुढे होती।[2]

पाँचवी पंक्ति में **जरी** और आला शुद्ध मराठी हैं, इसी प्रकार छठी में **तरी**, सातवीं में *जाणू* मराठी शब्द हैं। आठवीं में सभी संस्कृतपद हैं। नवीं में **देवताचे** तथा **जाल** और ग्यारहवीं में **जैसे** शुद्ध मराठी रूप हैं। तात्पर्य यह कि सारी पंक्तियों में संस्कृत शब्दावली के साथ मराठी का व्याकरणिक ढाँचा है। जिन पदों के उकारान्त रूप हैं, वे भी प्राचीन मराठी की प्रवृत्ति के अनुरूप ही हैं। पूर्वी हिन्दी और कभी-कभी व्रजभाषा के समान ही प्राचीन मराठी में पदों को लघ्वन्त और उकारान्त करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। डा० तुलपुले लिखते हैं····"या उ चें प्राबल्य इतकें झालें कीं तो इतर लिंगाना, क्रियापदाना, कृदन्ताना व क्वचित् क्रिया विशेषणांनाहि लागूं लागला। करितु, जानु, नावेकु, आशु, फलु अशी उकारान्त रूपें विपुल आढलतात।[3]" (इस उ का प्राबल्य इतना हुआ कि वह इतर लिंग, क्रियापद, कृदन्त और क्वचित् क्रियाविशेषणों में भी लगने लगा) यादवकालीन मराठी इ० स० ११०० से १३५० के लगभग तक प्रचलित रही है। नीचे प्राचीन मराठी से उ प्रवृत्ति द्योतक कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

तुझा **स्वरूपानंदु** नाहीं ओलखिला
जाहलीं (झाली के अर्थ में) विठ्ठल हानि थोर
लोहाचा **कवलु** लागल्या परिसातें।
(नामदेव महाराजांचे अभंग सकल संत गाथा पृ० ८०)

और भी—

भूतांचा ठाई *कामु*
तो भी म्हणे *रामु* (राजवाड़े की ज्ञानेश्वरी ७, ८, ६)

मराठी में जैसा, जैसे के प्रयोग का एक उदाहरण दिया जा रहा है—

रज्जुवरी *जैसा* भासे काल
अधिजानीं *तैसे* मायाजाल। (मध्यमुनीश्वरांची कविता पृ० १०२)

---

१. **श्री समर्थ रामदास (जोगलेकर) पृष्ठ ६६।**
२. **देखिए—वही, पृष्ठ १०५।**
३. **यादवकालीन मराठी, पृष्ठ ७६।**

द्विवेदीजी को मराठी की उपर्युक्त पंक्तियों में भोजपुरी का भ्रम होगया। यहाँ मैं ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी से दो पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

बीज मोडे झाड होये, झाड मोडें बीजीं सामाये।
एसेनि कल्प कोडी जाये। परी जाती न नाशे॥

(ज्ञानेश्वरी अध्याय १७)

(बीज नष्ट होकर वृक्ष होता है और वृक्ष नष्ट होकर बीज में समा जाता है। इसी प्रकार क्रम चलता रहता है, पर जाति का नाश नहीं होता।)

उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर किसी मराठी-भाषी का खड़ीबोली में लिखने का प्रयास भी कहा जा सकता है। पर वास्तव में भोजपुरी और हिन्दी की भ्रान्ति पैदा करानेवाले उपर्युक्त दोनों पद्य मराठी के हैं। 'रम्भामंजरी' के एक पद्य को लेकर अभी दो हिन्दी भाषियों के दो मत आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। एक उसे भोजपुरी कहता है, दूसरा मराठी। अब मैं दूसरा रोचक उदाहरण दो मराठी साहित्यिकों का प्रस्तुत कर रहा हूँ। संत नामदेव ने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी पद-रचना की है। उनमें से अधिकांश सिक्खों के गुरु गोविंदसाहब के 'आदि ग्रंथ' में संकलित हैं। उनकी भाषा के संबंध में मराठी के प्रसिद्ध विद्वान श्री प्रियोलकर का कहना है कि वह पंजाबी मिश्रित हिन्दी है। उसमें मराठी का अंश नहीं है। इसी आधार पर उनका मत है कि 'आदि ग्रंथ' के नामदेव महाराष्ट्रीय नामदेव से भिन्न कोई हिन्दी भाषी पंजाबी हैं। इसके विपरीत दूसरे मराठी के विद्वान श्री म० गो० वारटक्के का कहना है कि आदिग्रंथ के नामदेव और महाराष्ट्रीय नामदेव एक ही हैं—अभिन्न हैं, क्योंकि उनके हिन्दी पदों में पर्याप्त मराठी भाषा है। अपने पक्ष-समर्थन में श्री वारटक्के ने नामदेव के हिन्दी-पदों से उन शब्दों और वाक्यों को उद्धृत किया है, जिन्हें वे मराठी के समझते हैं। परन्तु हम प्रियोलकर के समान ही उन्हें हिन्दी का भी समझते हैं। श्री वारटक्के अपने पक्ष-समर्थन में जो मुद्दे दे रहे हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) उ का बाहुल्य

इसे वे नामदेवकालीन मराठी का लक्षण समझते हैं और उदाहरणस्वरूप अजामलु, अंबरीकु, अधमु, अभयपदु, अजानु, जनु, अरजनु, अटलु, हकु, एकु, इसनानु, कवनु, कपटु कलंकु, कोटपालु, कालु, कुठारु, खलगु, खेतु, खेदु, गिआनु, चितु, जलु, जसु, पतालु, पदारथु आदि शब्द प्रस्तुत करते हैं।

(२) क्रियापदों के कालों के मराठी-रूप

इसके उदाहरण में तारीले, तारीअले, आनीले, भराइले. केला, (केला) रींधाइले, लाहिले, चेतीअले, दैला, मेटल, मेटुला, मेटिले. पूछिले, आला, होइला, लागीले, भरमीअले, रोखीअले, बेधीअले, मांडीअले, पउढ़ीअले, उधरीअले, उवारीअले, आइडैले, आइला, सेवीले, राचीले. भाखीले, बजाइला, तरसि, पूजसि, उचरसि, समाइलो, डीठला,

गावउ, राखउ, समझाउ, राखु, तजहु, चालती, हाकती, होती, होता, भजंते, लागति, चोंखता, कीजै, दीजै, पूजै, पीजै, गहि, गहु गरजित, विराजित, आदि दिये गये हैं।

(३) कुछ मराठी शब्द और उनके विभक्ति-प्रत्यय

(कोष्टक में वारटक्के जी ने मराठी-रूप दिये हैं।)

इनके उदाहरण में निम्नलिखित शब्द दिये गये हैं—

"मारवाड़ि (मारवाडीं), नादि (नादीं), घरि (घरीं), दरि (दारीं), दुआरा (द्वारां) गागरि (घागरीं), सीसू, अकासी (सीस आकाशीं) संतामधे, आकासमधे, जलभीतरि, भवरला (भ्रमरला), हंसुला (हंसाला), कोइला (कोणाला) ताची आणि (त्याची आण); ताचे अंसा (त्याचे अंश), तुमचे पारसु (परिस), हमचे लोहा, जाँचै धरि (ज्याँचे धरीं), नामचे सुआमी, सिघच भोजन, सारिखा (सारखा), सगले (सगले), तोसिउ (तुशीं), मोसिउ (मशीं), हरिसिउ (हरीशीं), दुरवासासिउ (दुर्वासाशीं), जगजीवनसिउ (जगज्जीवनाशीं), परनारीसिउ (परनारीशीं), पंचजनासिउ (पंचजनाशीं), काहुसिउ (कोणाशीं), तापहि (त्यापाशीं), कायहि (कोणापाशीं), कीमही (कुणापाशीं), नामेंपदि, मोपे, जु (जो), जगने (यागाने), सनाने स्नानें) तरवर (तरुवर) निरमल (निर्मल), निरमल (निर्मले), तापते (तापातें, तप्ततेस), अजहून (अझून), दीवडा (दीवटा), सीलि (शीलीं), सरवर (भांडण), अधिकाई (आधिक्य), कै (किंवा), बिडाणि (विंदाणि), सौहै (शोभे), बालहा (बालम, बाल्हे), बीठुलाइ (विठुराया), गोपालराइ (गोपालराया), मुखि (मुखें), बागटा (बागड़), जलमाझै (जलमाजीं), पसूआरा (पासिकर), बुधि (बुद्धी), पैसड़ (पैसूं, प्रवेश परुं) सिहजा (सेज), केतक (कित्येक), नाही, नातरु (नाहींतर), तुरे, तुरा (मंगलतुरा वाद्य), सुभाइ (स्वभाव) " इत्यादि।

मूलवाक्य जिनमें मराठी भाषा की छाया बतलाई गई है

(१) रे नाहिं समाइलो, सतिगुरु देवा भेटले।
(२) झिलिमिलि कारुदिसंता
(३) काहे रे नर गरबु करत हइ
(४) सरब लंका सोइन की होती
(५) जो जनु इतुकरि भगति करहि
(६) संतामधे गोविंद आछै
(७) कुजा, मेरबी द्वारिका नगरी रासि बुगोइ ?
(८) रे आलसीआ मन ! अपुने रामहि भजु
(९) तउ न पूँजहि हरि कीरतिनामा
(१०) मन ! सिवा सकति संवादं सगलभेदं छोडि-छोडि
(११) सिमरि सिमरि गोविंदु नामा भजुं, भवसिंधु तरसि
(१२) मोहि तालाबेली लागती

(१३) जैसे गाइका बाछा छुटला थन मा खून छुटला चोखता
(१४) जैसे द्‌यामा तापते निरमल
(१५) मीता गुरमति रामनाम गहु
(१६) रावन सेती सरबर होई
(१७) जैसे तरवर बसेरा पांख किसही कोइ न ऐसा राम केला
(१८) तउ राम नाम सरि न पूजै
(१९) मेरो बापु माधव ! के कैसी सांवलिए विठुलाइ तू घन
(२०) रे जिह्वा जा स्री गोविंद न उचरसि (तां) सत खंड करइ
(२१) असंख्या कोटी अनपूरा करी एक हरी नामै न पूजसि
(२२) बाद बिबादु काहुसिउ न कीजै
(२३) पाइ पनहिओ न पावै
(२४) नाकहि बिना बतीस लखना ना सोहै
(२५) भूमीपै आऊ न पावै
(२६) एक समै मोकउ गहिबांधै तउपुनि मो पै जवाबु न होई
(२७) जो इहु भ्रमु आलावंती मुझ ऊपर सभ कोपिला है
(२८) रामराइ ऐसो अंतरजामी
दरपन माहि बदन परवानी
(२९) नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिठाणी
(३०) बोखे बावन बीखू बासु बसु बावै ते सुख लागिला
सखे आदि कासर परमलादि चंदन भइला
(३१) तुमचे पारसु संगे हमचे लोह कंचनु भइला
(३२) भूखि चतुरवेद पडता बनारिस बसता असि
(३३) तू दइयालु रतनु लालुनामा साचि समाइला
(३४) साधिक सिध सगल मुनि चाहहि, बिरले काहु डीठला।

उपर्युक्त वाक्यों के मराठी-वाक्य

(१) अरे। नादीं समाविलों, सद्‌गुरुदेव भेटले
(२) चमचम करणारा प्रकाश दिसतो
(३) काय रे नरा। गर्व करीत आहेस ?
(४) सर्व लंका सोन्याची होती
(५) जो जन इतुकली भक्ति करील
(६) संतामध्यें गोविंद असे
(७) कोठें जातोस ? द्वारकां नगरीं राख (क्रीड़ो) बघाइ ?
(८) अरे आलशी मना। आपल्या रामाला भज

(९) तंव हरिनाम कीर्तीची सरी न पाविजे
(१०) मना ! शिवशक्ति संवाद (इत्यादि) सगले भेद सोड़-सोड़
(११) स्मरुन स्मरुन गोबिंदनाम भजु, भवसिंधु तरशील
(१२) मला तलमल लागते
(१३) जसें गाइचें वासरुं सुटलें ह्मणजे थान माखून चुटका चोखतें
(१४) जसें उन्हावें तप्ततसें निर्मिलें
(१५) मित्रा। गुरुमतानें रामनाम ये
(१६) रावणाशीं ती लडाई झाली
(१७) जसें तरुवर बसलेले पक्षी कोणहि कोणाचे नव्हेत, असें रामानें केलें
(१८) तव रामनाम सरि न पाविजे।
(१९) माझ्या वापा माधवा। रे केशवा। सांवलया बिठुराया तूं धन्य।
(२०) अगेजिव्हे। जर गोविंदनाम तुच्चरसी तर मी तुझे शत खंड करीन
(२१) असंख्या कोटि आन पूजा एका हरिनामाची पावणार नाहींत
(२२) वादविवाद कोणाशीं न कीजे
(२३) पायीं उपानह (वाहाणा) न पावें
(२४) नाकाविना बत्तीस लक्षणें न शोभती
(२५) भूमिवर अंग न पावे, ह्मणजे जमीनीवर अंग टाकतां येत नाहीं
(२६) एवे समयीं भला बांधून ये तेथून मजकडून प्रत्युत्तर न होई
(२७) जे हे आलवती ते मज वर सर्व कोपले आहेत
(२८) राम राम अंतर्यामी ऐसे (दिसतात कीं) जैसे
'दर्पणाचिया जवलिका। दुजेपण ये मुखा।' (ज्ञानेश्वरी)
(२९) नामदेव म्हणतो जगज्जीवनप्राप्त झालां म्हणजे हृदयांत
अलक्ष्याचें (विंदाणीं) लक्षण येतें
(३०) वृक्षाला बावन (चंदन) वृक्षाचें वास्तव्य बापतांच त्याला
सुख लागलें। मूलचें सर्व काष्ठ परिमलयुक्त चंदन झालें
(३१) तुमच्या परिसासंगे आमचें लोह कांचन झालें
(३२) मुखें चार वेद पडत वाराणसीं वसत असशील
(३३) तूं दयालु रतलाल आहेस, नामां साचीं (साचत्वांत) समाविला
(३४) साधक, सिद्ध सगले मुनि (ज्याची) इच्या करितात
(परंतु बिरलयाला दिसला।)

श्री वारटक्के ने नामदेव की हिन्दी-भाषा के मराठी रूप के जो उदाहरण उपस्थित किये हैं, उन्हें देखकर हिंदी-साहित्य-प्रेमियों को केवल कुतूहल ही होगा, क्योंकि उन्हें उनमें कहीं भी अहिंदीपन नहीं जान पड़ेगा। श्री वारटक्के के समान हिन्दी-भाषा की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ व्यक्तियों के लिए ही उन पर नीचे विचार किया जा रहा है—

१. उकार-बाहुल्य

यह प्राचीन मराठी की ही विशेषता नहीं है। यह पूर्वी हिन्दी (अवधी तथा पश्चिमी हिन्दी) की भी प्रवृत्ति है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में आविर्भूत होनेवाले जायसी की पूर्वी हिन्दी की कृति पद्मावत से एक दोहा उद्धृत करना पर्याप्त होगा—

अवधी :

तस रोवै जस जिउ जरै गिरै रकत और मांसु।
रोवं रोवं सब रोवहिं सूत सूत भरि आँसु ॥[१]

पश्चिमी हिन्दी से बिहारी का दोहा उद्धृत किया जाता है—

ब्रजभाषा :

मानहु मुंह दिखरावन के दुलहिहि करि अनुराग।
सासु सदनु मनलखन हुँ सौतिन दियो सुभागु ॥[२]

२. क्रियापदों के कालों का मराठी रूप

इस के अंतर्गत (अ) भूतकालिक क्रिया के 'ल' प्रत्यय को देखकर वारटक्केजी को मराठीपन का भ्रम हो गया है। इस संबंध में पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। यहाँ केवल कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियाँ दी जाती हैं, जिनमें इस प्रत्यय का प्रयोग हुआ है—

कनवा फड़ाय जोगी जटवा *बढ़ौलै*
दाढ़ी बढ़ाई जोगी *होइगैलैं* बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया *रमौलै*।
काम जराय जोगी कपड़ा *रंगौलै*
गीता बांचिकै होई *गैलै* लवरा।

(आ) क्रियापदों में 'सि' प्रत्यय को भी मराठी कहा गया है और उसके लिए 'उच्चरसि' 'तरसि' आदि उदाहरण दिये गये हैं। यद्यपि अवधी से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें यह प्रत्यय लगता है। तो भी हम केलॉग की Grammar of Hindi Languages के पृष्ठ ३१३ पर निर्दिष्ट नियम को देना पर्याप्त समझते हैं....' क्रिया के भविष्य संभावनार्थ रूप में 'ही' के लिए हम प्रायः पुराना रूप 'सि' भी पाते हैं। जैसे—

जोतै *चहसि* तेहिन *भजसि* मति मंद।

---

१. इंडियन प्रेस संस्करण, पृष्ठ ४० ।
२. इंडियन प्रेस संस्करण, पृष्ठ १०४ ।

(इ) क्रियापदों में 'उ' प्रत्यय के उदाहरणों में भी श्री वारटके ने मराठीपन देखा है और उसके लिए 'समझाउ' 'राखु' 'गहु' 'गावउ'

नामदेव के पदों के बहुत-से रूपों को जो मराठीमात्र की प्रवृत्ति कही गई है, वह ठीक नहीं है। नीचे विवादास्पद कतिपय रूपों की चर्चा की जाती है—इस संबंध में भी जायसी से दो उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) क्रिया के विधि-रूप में उदाहरण।

(अ) की तप करै न ***पारिउ***, की रे न साधेहु जोग।
जियत जिउ कस ***काढउ***, कहहु सो मोहिं वियोग॥

(ब) अब ***तजु*** जरन मरन तम लोगू।
मो सौं ***मानु***, जनमभरि भोगू॥

(२) क्रियापदों में 'ता' 'ति' प्रत्यय मराठी के बतलाये गये हैं और उदाहरण के लिए चीखता, होता, लागति आदि रूप दिये गये हैं। यहाँ भी केलॉग की उपर्युक्त व्याकरण का नियम उद्धृत किया जाता है—

The Imperfect participle is formed by adding to the root the syllable ता

(धातु में 'ता' जोड़ने से अपूर्ण कृदंत बन जाता है।)

'ति' प्रत्यय के लिए बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा—

सखि ***सोहति*** गोपाल कै उर गुंजन की माल
बाहिर ***लसति*** मनो पियौ दावानल की ज्वाल।

(३) कुछ शब्दों और प्रत्ययों को देकर उन्हें मराठी कहा गया है और कोष्ठक में मराठी अर्थ दिया गया है। जहाँतक संज्ञा-शब्दों का संबंध है, वे हिंदी के भी हैं। हिन्दी और मराठी आर्यभाषा संस्कृत की परंपरा से प्रसूत होने के कारण दोनों की शब्दनिधि में बहुत-कुछ समानता पाया जाना संभाव्य है। शब्दों में जहाँ 'सिउ' प्रत्यय खड़ी बोली 'से' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ वह हिंदी का ही रूप है। मारवाड़ी (राजस्थानी) में करणकारक में 'सू' प्रत्यय लगता है। नामदेव की मारवाड़-यात्रा प्रसिद्ध है। संभवतः यह वहीं से ग्रहण कर लिया गया हो। 'सू' का 'सिउ' हो जाना सहज ही है।

(४) नामदेव के पदों के जिन वाक्यों को उद्धृत कर उनमें मराठी छाया देखी गई, वे वास्तव में हिन्दी की प्रकृति के इतने अनुरूप हैं कि उनपर विस्तृत विवेचन अनावश्यक है।

मराठी का जन्म महाराष्ट्री प्राकृत अथवा महाराष्ट्री अपभ्रंश से बतलाया जाता है और महाराष्ट्र प्राकृत को शौरसेनी प्राकृत का ही उत्तर रूप भी कहा जाता है।[1] भाषा की प्रवृत्तियाँ सूर्य चन्द्र, और प्रकृति की गति-विधि के समान अटल न होने के कारण यह भी हो सकता है कि महाराष्ट्री, शौरसेनी से निकलकर दक्षिणप्रवास के पश्चात् स्वतंत्र हो गई हो। यही कारण है कि मराठी में शौरसेनी और मागधी दोनों भाषाओं से उत्पन्न वर्तमान भाषाओं की प्रवृत्तियों के बावजूद उसका शौरसेनी से उद्भूत हिन्दी भाषा और बोलियों की ओर कुछ अधिक झुकाव लक्षित होता है। मराठी और हिन्दी की उत्पत्ति का निम्नलिखित क्रम है—
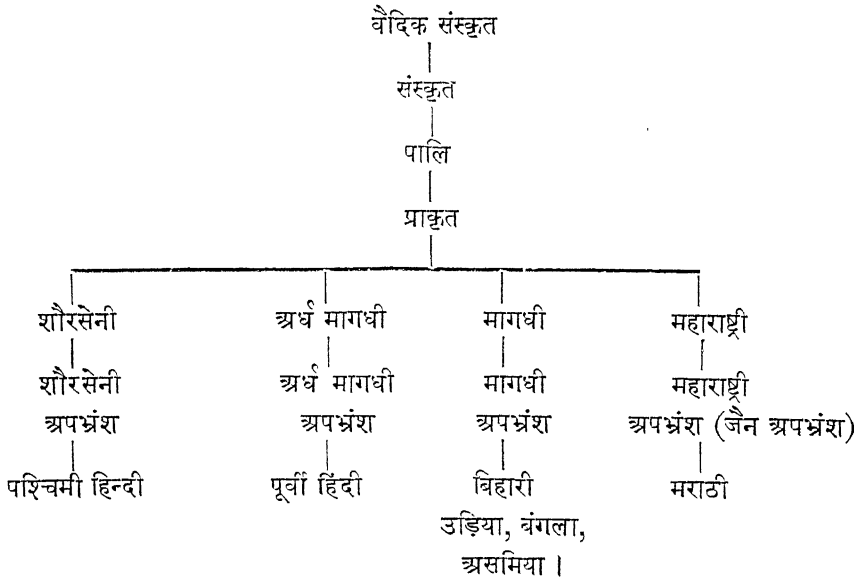
संलग्न नक्शे में मराठी का क्षेत्र दर्शाया गया है। उससे ज्ञात होगा कि वह उत्तर और पूर्व में, गुजराती और हिन्दी से घिरी हुई है और दक्षिण में तेलुगु, कन्नड़ और दक्खिनी हिन्दी से जो हैदराबाद राज्य में आज से छः-सात सौ वर्ष पूर्व बोई और सींची गई। अतः उसका अपनी पड़ोसी भाषाओं से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

हिन्दी पर मराठी का प्रभाव

परन्तु मराठी ही अन्य पड़ोसी भाषाओं से प्रभावित नहीं है, पड़ोसी भाषाओं पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। मध्यप्रदेश दो प्रधान भाषाओं—हिन्दी और मराठी—का मिलनक्षेत्र है। मराठी ने इस क्षेत्र की हिन्दी पर निश्चयरूप से प्रभाव डाला है। यह प्रभाव नागपुर और विदर्भ भाग में स्पष्ट परिलक्षित होता है। मराठीप्रभावी मध्यप्रदेशीय हिन्दी को हम 'नागपुरी हिन्दी' के नाम से अभिहित करना चाहते हैं।

---

१. देखिए, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी 'आर्यभाषा और हिन्दी'।

नागपुरी हिन्दी

क्षेत्र और बोलनेवालों की संख्या—डा० ग्रियर्सन ने अपनी लिंग्विस्टिक सर्वे जिल्द ६ में इसका उल्लेख किया है और इसका क्षेत्र नागपुर जिला बतलाया है और इसके बोलनेवालों में केवल वे ही व्यक्ति सम्मिलित किये हैं, जिनकी मातृभाषा हिन्दी का कोई-न-कोई रूप है और उन्होंने जो नागपुरी हिन्दी का उदाहरण दिया है वह ऐसे परिवार का है जिसकी मातृभाषा बुन्देली है। ग्रियर्सन ने यहीं भूल की है। नागपुरी हिन्दी का क्षेत्र नागपुर ही नहीं है, वह नागपुर के निकटवर्ती जिलों तक, जिनमें प्राचीन विदर्भ के जिले भी सम्मिलित हैं, फैला हुआ है और इसे बोलनेवाले हिन्दी-भाषाभाषी ही नहीं, अहिन्दी-भाषाभाषी भी हैं। वास्तव में यह विभिन्नभाषाभाषियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान की बोली है। ग्रियर्सन ने अपने उपर्युक्त 'सर्वे' में इसके बोलनेवालों की संख्या १०५६०० लिखी है, जो आज कईगुना बढ़ गई है। इसे नागपुर और विदर्भप्रान्तवासी दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। यह किसीकी मातृभाषा नहीं है। इसके क्षेत्र में बसा हुआ मारवाड़ी अपनी मातृभाषा मारवाड़ी के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के रूप में नागपुरी हिन्दी और मराठी भाषाएँ बोलता है। इसी प्रकार तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाभाषियों की भी दूसरी बोली नागपुरी हिन्दी है।

नागपुरी हिन्दी की विशेषताएँ

शब्दावली—चूँकि नागपुरी हिन्दी मातृभाषा के नहीं, दूसरी भाषा के रूप में बोली जाती है, इसलिए इसमें खड़ी बोली के शब्दों के साथ-साथ वक्ता की मातृभाषा के कुछ व्यावहारिक शब्द भी सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार नागपुरी हिन्दी की शब्दावली में (१) संस्कृत के कुछ तत्सम और बहुत से तद्भव शब्द जो हिन्दी में साहित्यिक भाषा तथा अन्य प्रादेशिक भाषा और बोलियों में प्रचलित हैं।

(२) फारसी—अरबी मिश्रित उर्दू के सामान्य शब्द।

(३) मराठी के कुछ व्यावहारिक शब्द।

(४) वक्ता की मातृभाषा के कुछ व्यावहारिक शब्द सम्मिलित हैं।

ध्वनियाँ

नागपुरी हिन्दी में प्रायः वे सभी ध्वनियाँ हैं जो खड़ी बोली में हैं। अतिरिक्त मराठी की च (त्स) और ळ ध्वनि भी आ गई है। फारसी-अरबी की ध्वनियाँ इसमें नहीं आ सकीं। ऋ का उच्चारण उसमें मराठी के समान रु हो गया है। खड़ी बोली की कतिपय दीर्घ ध्वनियाँ ह्रस्व और ह्रस्व ध्वनियाँ दीर्घ हो गई हैं। उदाहरणार्थ—

और···ओर

फिर···फीर

---

१. यद्यपि महाकोसल और विदर्भ शासकीय दृष्टि से एक ही मध्यप्रदेश राज्य में शामिल हो गये हैं, तो भी कांग्रेस-संस्था ने उसके पूर्व के महाकोसल प्रांत, नागपुर प्रान्त और विदर्भ प्रान्त अभी अटूट रखे हैं।

ड, ड़ में कोई भेद नहीं है। ड़ का उच्चारण ही नहीं होता।
व, ब का उच्चारण-भेद स्पष्ट है।

उच्चारण में ध्वनिपरिवर्तन, आगम, लोप आदि

पदांत न का ण में परिवर्तन—यथा—कठिन→कठीण, कठिण
पदांत ओ का व में परिवर्तन, यथा—जाओ→जाव
र वर्ण के पूर्व औ का हो में परिवर्तन, यथा—और→होर, औरत→होरत
यथा ह ध्वनि क्षीण होती जा रही है।

(अ) शब्द के बीच और अन्त में ह का लोप पाया जाता है। उदाहरणार्थ—
ख. बो. हि[1] —तुम्हें→ना. हि[2] →तुमें
ख. बो. हि—साहब→ना. हि →साब

(आ) शब्द के अन्त में ह का लोप और आ का आगम—
उदाहरणार्थ—बारह→बारा, तेरह→तेरा
शब्द के आदि के स का छ में परिवर्तन—
उदाहरणार्थ - सब→छब
कहीं-कहीं ओ का ऊ में परिवर्तन —
उदाहरणार्थ—परसों→परसू

ब और ह के पास-पास आ जाने पर 'भ' में परिवर्तन और ए का आगम, कहीं-कहीं संधि हो जाती है और तदनुरूप परिवर्तन हो जाता है। यथा—
बहन→भेन
बहुत→भोत (बह्‌उत = भोत)
पद में वर्णों के ऊपर अनुस्वार का उच्चारण लुप्त होता जा रहा है—
उदाहरणार्थ—नहीं→नही
पांच→पाच
नवां→नवा

संज्ञा-शब्दरूप का वैशिष्ट्य

कुछ अकारान्त संज्ञा-शब्दों का बहुवचन आ और कभी-कभी आं से और कभी-कभी अन्तिम ध्वनि को हलन्त करने से भी बनता है।
उदाहरणार्थ····बात—(१) बाता (२) बातां, (३) बात्यां
(बातां कर्ते कर्ते झोप लग गइ।)

---

१. खड़ी बोली हिन्दी का संक्षिप्त रूप।
२. नागपुरी हिन्दी का संक्षिप्त रूप।

आकारान्त संज्ञा-शब्द के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व (हलन्त) करके उसमें 'या' जोड़ देने से छोटेपन या तिरस्कार का भाव द्योतित होता है—

उदा०— घीसा→घीस्या

सम्बोधन में भी यही रूप रहता है।

(ओ घीस्या। कां (कहाँ) जा र्‌या (अथवा रिया) हे।)

लिंग—खड़ी बोली के समान ही दो लिंग स्त्रीलिंग और पुल्लिग होते हैं। पर खड़ी बोली में जहाँ ईकारान्त पुल्लिंग पद में 'इन' लगाने से स्त्रीलिंग होता है, वहाँ नागपुरी हिन्दी में मूल शब्द में 'अन' लगता है—

उदा०—तेली→तेलन

गौली→गोलन

वचन—प्रायः खड़ी बोली के प्रत्यय लगकर बनते हैं। परन्तु ईकारान्त संज्ञा-पदों में ई के स्थान पर 'यां' लगाने की प्रवृत्ति है ; परन्तु उसका पूर्ववर्ती वर्ण हलन्त हो जाता है।

उदा०—रोटी→रोट्यां

गाली→गाल्यां

क्रमवाचक संख्याशब्द

पहिला, दुसरा, तिसरा, चवथा, पाचवा, छटवा, सातवा, आटवा, नवा, दसवा आदि। खड़ी बोली में जहाँ सामान्य संख्या चार के बाद की शेष संख्याओं में 'वां' जुड़ता है वहाँ नागपुरी हिन्दी में 'वा' जुड़ता है।

कारकों की विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कर्ता—ने

कर्म और सम्प्रदान—कू, कूं, को, के, करने

अपादान—सू, सूं, सो, से

संबंध—का, के, की

अधिकरण—मो, मे, पे

सर्वनाम : व्यक्तिवाचक सर्वनाम के चिह्न इस प्रकार हैं—

	एकवचन	बहुवचन
	प्रथम पुरुष—मे, हम	हम, अपन
कर्ता—	द्वितीय पुरुष—तू, तुम	तुम, तूम
	तृतीय पुरुष—वो	वो
कर्म—संप्रदान	प्र० पुरुष—मुजे, मुंजे, मुजकू	हमे, हमकू, हमनेकू
	द्वितीय पुरुष—तुजे, तुजकू,	तुमकूं, तुम कू
	तृतीय पुरुष—उसकू	उनकू

अतएव (इसलिए) के निमित्त **करके** का प्रयोग मराठी में म्हणून के अर्थ में व्यवहृत होता है। यथा—

तुम बीमार थे करके मेने तुमकू फजर नी जगाया।

(तुम बीमार थे, इसलिए मैंने तुम्हें प्रातःकाल नहीं जगाया ।)

व्याकरण संबंधी अन्य विशेषताएँ—

अकर्मक क्रिया में कर्ता के साथ **ने** का प्रयोग। यथा—

हमने एक दुसरे को मदत कन्ना चाहये।

(हमें एक दूसरे की मदद करनी चाहिए ।)

सहायक क्रिया के वर्तमान काल में ह का उच्चारण प्रायः नहीं हो पाता। यथा— जाता उं, खाता उं, लाता उं, आदि।

ऐ का य में परिवर्तन हो जाता है। यथा—है→हय।

सकर्मक क्रिया के कर्ता मे **ने** चिह्न लगाकर भी क्रिया मे 'हूँ' लग जाता है। यथा—

मैंने रोई हूँ, मैंने लाया हूँ।

किसी बात पर आग्रह प्रकट करने के लिए 'च' का प्रयोग। यथा—

तुमकू चलनच पड़ेगा (तुम्हें चलना ही पड़ेगा ।)

दक्खिनी हिन्दी, उर्दू अथवा हिन्दवी का भी प्रभाव नागपुरी हिन्दी पर परिलक्षित होता है। नागपुरी हिन्दी में बुन्देली और मालवी का प्रामुख्य, जिसकी ओर ग्रियर्सन ने संकेत किया है, प्रायः नहीं के बराबर रह गया है। वह स्थानीय ध्वनि-प्रक्रिया, कतिपय नई विभक्तियों और प्रत्ययों के साथ खड़ी बोली का मूल ढाँचा सुरक्षित रखे हुए है।

नीचे ग्रियर्सन ने अपनी सर्वे में नागपुरी हिन्दी का जो उदाहरण दिया है, उसे नीचे दिया जाता है। इसे ग्रियर्सन ने बुन्देली बोली से आच्छादित कहा है, क्योंकि वह मूलतः बुन्देली बोलनेवाले परिवार से लिया गया है—

"एक आदमी खे दो पोरया हते। ओ में को नन्हों लरका बाप खे कि हे दादा मोरे हिस्सा को मोल मोखे दे दे। फेर ओने अपनी जिनगी की कमाई दोई पोरयन खे वाटनी कर दई। आगे थोड़ेच दिन में नन्हें पोरया ने अपनी सब धन साकडी। फेर ऊ दूसरे मुलक में फिरन खे गओ। वहाँ अपनो सब पैसा चहुलबाजी में उड़ा दओ।"

उपर्युक्त पंक्तियों में सम्प्रदान का ख बुन्देली का नहीं, निमाड़ी का है, जो मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले में बोली जाती है। पोरया निमाड़ी और मराठी है। ग्रियर्सन का उदाहरण बाजार में बोली जानेवाली नागपुरी हिन्दी नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में आकर बसा हुआ परिवार बहुत काल तक अपनी क्षेत्रीय बोली बोलता रहता है। अतएव नमूना सामान्य जनता की सार्वजनिक रूप से बोली जानेवाली भाषा से लेना चाहिए। अब मैं आपके सम्मुख उस नागपुरी हिन्दी का उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ, जिसे सामान्य लोग बाजारों में बोलते पहचानते हैं। (अब में आपके समोर नागपुरी हिन्दी के नमुने सादर कर्ता हु जिसको बाजार के लोक बोलते पिचानते हय।)

गोविन्दा—(किसन से) सुन, केता उं कल बड़ी फजर अपन दोनों मिलके फिरने चलेंगे। उधी से ठेसन निकल चलेंगे हौर वां बंबे मे टपाल डालके, हाटेल मे हात मु धोके, चा फराठे लेके दवाखाने कु जायगे। मे केता हु भाऊ। मुजे रात कू झोपच नी आती। वर्तमानपत्र लेके बैठता, भोत कोसीस करता फीर बि आख लगतिच नई। तबयत खूप सभालता। दुपेर कू जादा खाता बि नई। श्याम को धोड़ने मे नागा बि नई करता। कुच समझ में नई आता, क्या करु। करके तो डाक्तर से फीर से तपासनी करना हय। उसका पूराना बील की चुकती करना हय। पगार अभी हात मे आई नई। उसके बील का हपता देने कू पाकीट मे पैसे नई हय। तेरे कने हय कुच ?

किसन—हव ना, खूप हय। मेरी थट्टा करते हो क्या ? शेठ आदमी हो, छच बोलो, तुमारे खीसे मे पैसे नई हय क्या ? क्या फोक मारते हो भाऊ ?

गोविन्दा—तुमकू मेरी बाता झुट मालुम पड़ती हय तो कुछ हरकत नहीं।

खड़ी बोली में रूपान्तर

गोविन्दा (किसन से)—सुन, मैं कहता हूँ, कल बड़े सबेरे हम दोनों साथ-साथ घूमने (या टहलने) चलेंगे। उधर ही से स्टेशन निकल चलेंगे और वहाँ बंबे (लेटरबाक्स) में चिट्ठी डालकर, होटल में हाथ मुँह धोकर और चाय नास्ता लेकर अस्पताल जायेंगे। मैं कहता हूँ भाई, मुझे रात को नींद ही नहीं आती। समाचारपत्र लेकर बैठता। बहुत कोशिश करता। फिर भी आँख ही नहीं लगती। शाम को दौड़ने में नागा भी नहीं करता। कुछ समझ में नहीं आता (कि) क्या करूं ? इसीलिए डाक्टर से फिर से जाँच करवाना है। उसका पुराना बिल भी चुकाना है। वेतन अभी हाथ में आया नहीं। उसके बिल को किस्त देने को जेब में पैसे नहीं हैं। तेरे पास है कुछ ?

किसन—हाँ ना, खूब हैं। क्या मेरी मजाक उड़ाते हो ? सेठ आदमी हो। सच बोलो। क्या तुम्हारे जेब में पैसे नहीं हैं ? क्या गप मारते हो भाई ?

गोविन्दा—तुमको मेरी बातें झूठ मालूम पड़ती हैं तो कोई हर्ज नहीं।

जिस प्रकार प्रेमचन्द और प्रसाद में बनारसी और वृन्दावनलाल वर्मा में बुन्देली बहार है, उसी प्रकार नागपुरी लेखकों में भी मराठी महक आने लगी है। यथा—

"हिन्दू धर्म में वेद, स्मृति अनेक ग्रन्थ हैं। परन्तु उन सब ग्रन्थों में सनातनी और नवमतवादी, भाविक चिकित्सक[1] आदि सर्वमतों और पंथों के लोगों के लिए एक ही सर्व-मान्य ऐसा गीता को छोड़कर और कोई ग्रन्थ नहीं है।[2]

गीता ग्रन्थ पर अनेक *पंडितों ने और पंथवादियों ने चढ़ाए* हुए अपने-अपने मतों के पेहराव के कारण हरएक को अपने जीवन में साकार करने योग्य गीता का निश्चित मूलरूप पहिचानना कठिण हो गया है।"[3]

१. समीक्षक।

२. गीताप्रणीत व्यवहारशास्त्र, पृ० १।

३. वही, मुखपृष्ठ २।

उपर्युक्त उदाहरणों से विदित हो जाता है कि नागपुरी हिन्दी में मराठी शब्दों का प्रवेश हो रहा है। संस्कृत और विदेशी शब्द भी अपने मूल तत्सम रूप का अर्थ न देकर मराठी अर्थ देने लगे हैं।

उदाहरणार्थ : हफ्ता का अर्थ सप्ताह न होकर किश्त (Instalment) हो गया है। चिकित्सक वैद्य न रहकर आलोचक बन गया है। 'सादर' आदर सहित नहीं, *उपस्थित* के अर्थ में आता है। इसी प्रकार कई मराठी शब्द नागपुरी हिन्दी में ही नहीं, आदर्श हिन्दी में भी संचरित हो गये हैं। उदाहरणार्थ—

भाड़ा	शिस्त	चालू, घोटाला
जीवन्त	शिक्षण	बाजू
भागीदार	टीप	वर्चस्व (तेज)
ठेला	पगार	बंडी (गाड़ी)

मराठी का प्रभाव दक्खिनी, उर्दू अथवा जिसे आज दक्खिनी हिन्दी कहने का रिवाज़ चल पड़ा है, पर भी पड़ा है। चौदहवीं शताब्दी से मुसलमान शासकों का, जो इस भाषा को बढ़ानेवाले रहे हैं, बराबर मराठी-भाषाभाषी जनता से सम्पर्क रहा है।

मराठी में जोर देने के लिए *ही* के अर्थ में **च** का प्रयोग होता है—

उदाहरण—तुला आलेच पाहिजे (तुझे आना ही चाहिए।)

दक्खिनी हिन्दी या हिन्दवी में भी इसी प्रकार से **च** प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ—

वली अपने **च** गम में सट **नक्रौ** होश।
उनके मातम के दरियां कूं हैं वेजोश।[1]

मराठी का नहीं अर्थ-बोधक 'नको' दक्खिनी हिन्दवी में खूब प्रचलित है—

उदाहरण— ये बस्ती सो दुनिया पो होकर दिवाना,[2]
अरे मन *न को* रे **नको** हो दिवाना।

कहीं-कहीं दक्खिनी हिन्दी पर मराठी के प्रभाव से कतिपय शब्दों का '*स*', '*श*' में परिवर्तित हो गया है और मराठी का होता (था) *ता* बनकर आ गया है।

उदा०—*स का श में परिवर्तन*

खड़ी बोली—बंबई या दक्खिनी हिन्दी

„ पैसे „ पेशे
„ सिखाया „ शिकाया

मराठी *होता का दक्खिनी हिन्दी में 'ता'*

लाया ता।	गया ता।
(लाया था)।	(गया था।)

---

1. दक्खिनी का गद्य और पद्य, पृ० २३७।
2. वही, पृष्ठ २१६।

दक्षिण के विभिन्न क्षेत्रों में यद्यपि मराठी ने हिन्दी पर प्रभाव डाला है, तोभी उसके व्याकरण का ढाँचा मूलतः सुरक्षित है।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी और मराठी आर्य-परिवार की भाषाएँ हैं। यद्यपि हिन्दी शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश तथा मराठी महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी कही जाती है, तथापि हिन्दी और मराठी में उच्चारण तथा प्रत्यय, प्रक्रिया और शब्द-निधि में इतना अधिक साम्य है कि ऐसा भासने लगता है कि दोनों का उद्गम निकटतम स्रोत से है। मराठी में पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी दोनों के लक्षण पाये जाते हैं, परन्तु उसका झुकाव पश्चिमी हिन्दी की ओर अधिक लक्षित होता है। इससे ऐसा संदेह होने लगता है कि कहीं महाराष्ट्री शौरसेनी का पश्च रूप तो नहीं है।

मराठी ने नागपुरी हिन्दी, दक्खिनी हिन्दी, छत्तीसगढ़ी और हलबी भाषाओं को प्रभावित किया है। यह प्रभाव नागपुरी हिन्दी और दक्षिणी हिन्दी पर अधिक और छत्तीसगढ़ी तथा हलबी पर बहुत कम दिखलाई देता है।

भौगोलिक सीमाओं के अनुसार दोनों में कम और अधिक साम्य होने पर भी वे परस्पर थोड़ी-बहुत समझी जाती हैं। यही कारण है कि महाराष्ट्र संतों को इसे अपनाने में सुविधा हुई और उन्होंने राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता तक अपने हृदय की मंगल अनुभूति का रस उसमें प्रवाहित कर, उसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया।

दूसरा अध्याय

दक्षिणापथ में हिन्दी-संचार

दक्षिणापथ 'रेवा' के दक्षिण में विदर्भ, मूलक (जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान (पैठण) रही है) और अरभक (वर्तमान हैदराबाद-राज्यांश) के भूभाग को कहा जाता रहा है। अनेक पुराणों में इसी भाग को 'महाराष्ट्र'[1] नाम से भी अभिहित किया गया है। महाराष्ट्र में हिन्दी-प्रवेश का इतिहास आर्यों के दक्षिण-सम्पर्क से संबंध रखता है, क्योंकि हिन्दी आर्य-भाषा-परिवार की मध्य-शाखा की उत्तराधिकारिणी है। वह अपने साथ प्राचीन आर्य-भाषा-परम्परा को लिये हुए है। आर्य केवल महाराष्ट्र तक ही नहीं, सुदूर केरल और सिंहल द्वीप तक फैल गये थे। वे जब दक्षिण में गये, तब उन्होंने महाराष्ट्र में प्रचलित स्थानीय द्रविड़-बोलियों को आत्मसात् कर लिया और आर्य-भाषा को प्रतिष्ठित किया। पर तेलुगु, कन्नड़, तमिळ, और मलयालम भाषी क्षेत्रों में उन्होंने इन भाषाओं को प्रभावित तो किया, पर वे इन्हें अपनी भाषा में पचा नहीं पाये। प्रत्युत् उन्होंने इन भाषा-भाषी जनता के साथ घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किये और उनकी भाषाओं का अध्ययन किया। अनेक बौद्ध और जैन मतावलम्बियों ने तमिळ और कन्नड़ साहित्य की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। तमिळ के प्रथम वैयाकरण अगस्त ऋषि और तेलुगु के प्रथम वैयाकरण कण्व ऋषि कहे जाते हैं। इन ऋषियों का समय निश्चित करना कठिन है। यह माना जाता है कि ईसा की चौथी शताब्दी के पूर्व (कात्यायन के काल तक) आर्य सुदूर दक्षिण भारत में भलीभाँति बस गये थे। तेलुगुभाषी जनपद पर आर्यों का ईसा की दूसरी शताब्दी में इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आज तेलुगु भाषा के कुछ पंडित यहाँ तक कहने लगे हैं कि तेलुगु तो आर्य-भाषा-परिवार का ही एक अंश है।[2] तात्पर्य यह कि आर्यों का बहुत प्राचीन काल से दक्षिणा-पथ के साथ राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक संपर्क रहा है। मध्यदेश की भाषा, जिसकी सीमा कुरुक्षेत्र से प्रयाग अथवा राजमहल तक और हिमालय से विंध्याचल तक फैली हुई थी, प्राचीन काल से ही अंतर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा रही है। मध्य देश में प्रचलित संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का बराबर दक्षिण

---

१. महाराष्ट्र की सीमा में समय-समय पर थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन होता रहा है, पर मुख्य भाग यही माना जाता है।

२. देखिए, 'History of Telugu Literature' डा० नारायणराव, पृष्ठ १६।

में संचार रहा है। प्राचीन तमिळ वाङ्मय से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा के २५० वर्ष पूर्व से ईसा सन् के प्रथम शती पश्चात् तक पुलिकत के पूर्व और पटकल के पश्चिम तक का प्रदेश आर्य-सत्ता के अन्तर्गत था और वहाँ आर्यभाषा प्रचलित थी।[१] इस प्रदेश में प्राप्त प्राचीन 'लेखों' से ज्ञात होता है कि ई० स० की प्रथम शती से पाँचवी शती तक यहाँ के 'लेखों' की भाषा प्राकृत थी। प्रथम 'लेख' जगय्यापेठ (कृष्णा जिला) के स्तूप पर अंकित है। इसमें इक्ष्वाकु कुल के माठरीपुत्र श्री वीर पुरुषदत्त नामक राजा का उल्लेख है। यह लेख प्राकृत में है। (इंडियन एंटीक्यूरी, पृष्ठ २५६) और इसके अक्षर ईसा सन् की तीसरी शती के दिखलाई देते हैं। यदि जनता प्राकृत बोलती और पढ़ती न होती, तो यह लेख प्राकृत में न लिखा गया होता। कांची में जब पल्लवों का राज्य स्थापित हुआ, तब वहाँ भी पाँचवी शताब्दी में, ह्यूनसांग के लेखानुसार, मध्य हिन्दुस्थान की भाषा बोली जाती थी।[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यों की बस्ती ज्यों-ज्यों दक्षिण की ओर बढ़ती गई, उनकी भाषा का भी वहाँ संचार होता गया। पर जहाँ सुदूर दक्षिण की स्थानीय भाषाएँ आर्य-भाषाओं से केवल प्रभावित ही हुईं, वहाँ महाराष्ट्र में उन्होंने वहाँ भी मूल बोलियों को आत्मसात् कर लिया। इसका कारण यह है कि वहाँ आर्यों की बस्ती अधिक शक्तिशाली रही है और उनका सम्पर्क अपने उत्तरवासी आर्य-बन्धुओं से होता रहा है। अतः परस्पर व्यवहार में वे महाराष्ट्री, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, प्राकृतों और अपभ्रंशों का प्रयोग करते रहे हैं। इसके प्रमाण हमें संस्कृत नाटकों और शास्त्र-ग्रंथों में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य अपना सांस्कृतिक ऐक्य बनाये रखने के लिए बहुत सतर्क रहे हैं। अतएव वे एक से अधिक भाषाओं को समझते-सीखते रहे हैं। किसी प्राचीन कवि ने कहा भी है ...'यो मध्ये मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः।' संस्कृत ने बहुत काल तक सांस्कृतिक एकता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अन्तरप्रान्तीय भाषा का कार्य किया है। उसके पश्चात् उसका स्थान मागधी प्राकृत ने ले लिया[३] और फिर मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व एक विशिष्ट शौरसेनी अपभ्रंश ने अन्तरप्रान्तीय भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी 'भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी' में इस तथ्य को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—'पश्चिमी अपभ्रंश का व्यवहार उत्तरी राजपूत नृपतियों की राजसभाओं में तुर्कों की उत्तरी भारत-विजय के कुछ शताब्दियों पूर्व होता था। यह एक महान् साहित्यिक भाषा के रूप में ठेठ महाराष्ट्र से बंगाल तक प्रचलित थी और कवि उसमें काव्य-रचना भी करते थे।' (पृष्ठ १७७)

---

१. **भारतीय इतिहास शोधन मंडल (पुणें) जिल्द १ संख्या २. ३, पृष्ठ ३।**

२. **भारतीय इतिहास शोधन मंडल (पुणें) जिल्द १ संख्या २. ३, पृष्ठ ३४।**

३. About A. D. 500 when the Magadha Empire declined, its language too was slowly breaking up. Sanskrit had been superseded by Magadhi as the national speech of India and Magadhi in its turn was displaced by other Prakrats and dialects.

— Short History of Indian Literature

(Ernst Horrwitz) **पृष्ठ ११४।**

इतिहास से ज्ञात होता है कि अरबों ने खलीफा उमर के शासन में, ईसा की सातवीं शताब्दी में भारत के पश्चिमी समुद्री किनारे पर कई आक्रमण किये। कोंकण के टाना जिले पर भी छापे मारे, पर वे सफल नहीं हो सके। यों अरबों का भारतीय पश्चिमी प्रान्तों के साथ व्यावसायिक संबंध बहुत पुराना रहा है।

आठवीं शताब्दी में अरबों ने सिन्ध पर चढ़ाई की और उस पर आधिपत्य जमा लिया। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में मुसलमानों ने उत्तर भारत के हिस्सों पर छापे मारकर ही संतोष नहीं किया, राज्य स्थापित किये और धर्म-प्रचार भी किया। अतः भारत के आर्यों को आत्मरक्षा की स्वभावतः चिन्ता हुई होगी और उन्होंने भाषा-संबंधी अपनी नीति दृढ़ की होगी। संस्कृत यद्यपि सामान्य बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी, तोभी उसमें आर्य-संस्कृति की अक्षय निधि रक्षित होने से वह धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समादृत होती रही। अन्य कार्यों के लिए प्राकृतों का उपयोग होता रहा। प्राकृतों में एक तो स्थानीय होती थी और दूसरी 'देशभाषा', जो अन्तरप्रान्तीय व्यवहार के काम में आती थी। इसका संकेत हमें 'नारदस्मृति' से मिल जाता है। उसमें एक जगह लिखा है, 'संस्कृतैः प्राकृतैः वाक्यैः शिष्यमनुरूपतः। देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः।' 'नारदस्मृति' का समय ईसा की पाँचवी शताब्दी कहा जाता है। उसमें इसको तीन भाषाओं का ज्ञान सम्पादन करने को कहा गया है। इन तीन में एक संस्कृत, जो धर्म और संस्कृति की पवित्र भाषा रही है। दूसरी प्राकृत, जो स्थानीय भाषा रही है और तीसरी 'देशभाषा', जो सर्व-देशीय व्यवहार की भाषा रही है। इन्हें सीखे विना कोई 'गुरु' नहीं कहला सकता था। 'नारदस्मृति'-काल की 'देशभाषा' क्या थी, इस संबंध में बाबू श्यामसुन्दर दास का अनुमान है कि वह हिन्दी होगी।[1] पर उन्होंने प्रमाण और उदाहरण नहीं दिये।

उत्तर भारत में विक्रम की आठवीं शताब्दी में रचित सिद्धों की 'प्राकृताभास हिन्दी' में रचनाएँ मिल जाती हैं[2]। 'नारदस्मृति'-काल की रचनाओं के उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं। पर भाषा का विकास क्रमशः होता है। अतएव संभव है, हिन्दी की प्रवृत्ति उस समय भी किंचित् अंकुरित हो उठी हो। डा० हीरालाल जैन ने पउमचरिउ, पासणाह-चरिउ, णेमिणाहचरिउ, तरङ्गवतीकथा आदि के आधार पर अपभ्रंश को देशीभाषा माना है। कवियों ने इसी शब्द का प्रयोग किया है। (देखिए, पाहुड़, दोहा पृष्ठ ४३-४५)।

दक्षिण में भी अपभ्रंश से क्रमशः हिन्दी का विकास हो रहा था। राष्ट्रकूट-शासकों के काल में मान्यखेट (मलखेड़) साहित्य का केन्द्र बना हुआ था। राष्ट्रकूटवंशज अमोघवर्ष ने ईसा सन् ८१५ में इसको राजधानी के रूप में बसाया था। सन् ९७३ तक इसकी समृद्धि होती रही। इस अवधि में यहाँ जैन धर्म और प्राकृत तथा अपभ्रंश-साहित्य

---

१. नागरी प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ११, पृष्ठ ४४३।

२. अक्खर बराण परमगुण रहिजे। भणइण जाणइ एमइ कहिजे॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ। सुरअ कुमारीजीभ पड़िज्जई।
—सरहपा (हिन्दी-काव्यधारा, पृ० १०)

का विकास होता रहा। राजा कृष्ण तृतीय के काल में पुष्पदन्त (पुप्फयंत) की प्रसिद्ध कृति 'णायकुमार-चरिउ' का (सन् ६६५ से ६७१ के मध्य) निर्माण हुआ। यह अपभ्रंश में है, पर इसमें हिंदी के उदय के लक्षण मिलते हैं। हम डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित प्रति से उसकी भाषा का एक उदाहरण देते हैं—

'सोहइ जलहरु सुरधणु छायए।'
'सोहइ माणुसु गुणसंपत्तिए।'[1]

विक्रम संवत् ११८४ में रचित दक्षिण (महाराष्ट्र) के चालुक्य राजा सोमेश्वर का एक ज्ञान-कोष अभिलषितार्थ-चिन्तामणि प्रकाश में आया है, जिसमें राग-रागिनियों के देश-भाषाओं से उदाहरण दिये गये हैं। उन उदाहरणों में हिन्दी का भी उदाहरण है। एक पंक्ति है—

'नंद गोकुल जायो कान्ह जो गोवी जणे पडिहेली रे।'
(ना० प्र० पत्रिका, भाग १०, पृ० ६१)

दक्षिण में ही नहीं, अन्य प्रान्तों में भी अपभ्रंश से हिन्दी का विकास हो रहा था। बंगाल में भुसुक कवि ने दसवीं शताब्दी में लिखा था

'आज भुसुक बंगाली भैली।
निज गिहिनी चंडाली लैली।'[2]

गुजरात के हेमचन्द्र ने अपने अपभ्रंश-व्याकरण में खड़ीबोली का आभास देनेवाली पंक्तियाँ दी हैं, जो हिन्दी के इतिहास-ग्रंथों में वे प्रायः उद्धृत होती रहती हैं। यथा—

'भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि म्हारा कन्तु।'

कुछ उर्दू के पक्षपाती खड़ीबोली को उर्दू से उत्पन्न बतलाकर तथ्य को उलटने का प्रयत्न करते हैं और कोई उसे ब्रजभाषा से उत्पन्न कहकर भ्रान्ति पैदा करते हैं। परंतु प्राचीन काव्यकृतियों के प्रकाश में आ जाने से यह सिद्ध हो गया है कि खड़ी बोली न तो उर्दू से उत्पन्न हुई है और न ब्रजभाषा से। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। विक्रम की नवीं शताब्दी में रचित 'कुवलयमाला' नामक प्राकृतभाषा की पुस्तक में मध्यदेश की भाषा के नमूने में 'मेरे', 'तेरे', 'जाओ' जैसे शब्दों का उल्लेख है।[3] सैयद एहतिशाम हुसेन का तो कहना है कि 'शौरसेनी अपभ्रंश से विकास पानेवाली अन्य भाषाओं में एक उर्दू भी है।' 'देखिए—उर्दू साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३।

जब भिन्न-भिन्न अपभ्रंशों से भिन्न-भिन्न आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं का विकास होने लगा, तब कवियों ने संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंशों में ही रचना न कर लोकभाषा में भी लिखना प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा' (विद्यापति) की भावना प्रबल होती गई। प्रादेशिक भाषाओं में जब उत्कृष्ट साहित्य-रचना होने लगती है,

---

१. णायकुमारचरिउ, पृष्ठ १४
२. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ८, पृष्ठ २१८।
३. हिन्दोस्तानी, अक्टूबर, १९४३, पृष्ठ २४१।

तब उसके प्रति जनता की भक्ति और उत्कट प्रेम का जागरण सहज स्वाभाविक हो जाता है। ज्ञानेश्वर की सालंकृत रसाल मराठी भाषा का पान करने पर किसका मन विभोर न होगा? महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे ने इसी भावातिरेक में लिखा है—'जिस महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर-जैसे अवतार ने जन्म लिया, उसी महाराष्ट्र में मेरा भी जन्म हुआ। जिस भाषा में ज्ञानेश्वर बोले, वही मेरी भाषा है और उसे ही मैं बोलता हूँ। ऐसे अभिमान से भरकर कौन महाराष्ट्र-देह रोमांचित न होगी?'[1] मातृभाषा के प्रति स्वाभाविक प्रेम रखकर भी जनता अनेक कारणों से उसके अतिरिक्त अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करती रहती है। महाराष्ट्र में मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दीभाषा का जिन कारणों से संचार हुआ, उनपर यहाँ तनिक विचार किया जाता है। वे हैं, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक।

राजनीतिक

यह कहा जा चुका है कि ईसा शताब्दी के पूर्व से ही आर्यों का दक्षिणापथ से सम्पर्क रहा है। अतएव मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व वहाँ जनता समय-समय पर आर्यभाषा के संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश-रूपों से परिचित होती रही है। अब हम मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् की स्थिति का सिंहावकोलन करना चाहते हैं।

उत्तर-पश्चिम से जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया, तब उन्हें पंजाब और दिल्ली की अपभ्रंश से उत्पन्न प्रचलित हिन्दी के खड़ी बोली-रूप को अपनाना पड़ा। उसीमें उन्होंने अपनी भाषा के अरबी-फारसी शब्दों को मिलाकर जनता से संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। मुसलमान-सेनाओं के साथ दक्षिण में जाकर वह बोली भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाने लगी। शेख अशरफ (सन् १५०३) और वजही (सन् १६३६) उसे हिन्दवी, शाह बुरहानुद्दीन बीजापुरी हिन्दी तथा निशाती (१६१०-१६६०) दक्खिनी कहते हैं। कहीं-कहीं 'भाखा' भी कहा गया है। शाह मीराजी (सन् १४५७) लिखते हैं—

"हमीं बोल अरबी करे। और फारसी बहुतेरे।
यों हिन्दवी बोली तब। इस अर्थ भावे सब।
यह भाखा भले सो बोले। पुन इसका भाव खोले।
वे अरबी बोल न जाने। न फारसी पछाने।
ये देखत हिन्दी बोल। पुन माइने में...... ...(?)"

खड़ीबोली में व्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, अरबी, फारसी, शब्दों के मिल जाने से उसे रेखता अर्थात् मिश्रित बोली भी कहा जाने लगा। शिवाजी महाराज के पिता शाहजी की सभा में जयराम कवि ने अपनी एक हिन्दी-रचना को 'रेखता' शीर्षक देकर. उसका यह रूप प्रस्तुत किया है—

"अकल चुराई मेरी कलमल पिठारे ने,
महाबलि राजा दिलगीर करे है

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ १४१।

जिल्हे सब दुनीए के गनीम सब काटि काढ़े
जाके सात सत्तर हजार स्वार खरे हैं।
दौड़ ज्या शाम किभा शाम लेगे पुहच वहा।
साफ दिल कहता हूँ मुसाफ सिर धरे है
....बाजि साहिजि के जोर मुझे साहिजहा डरे है।"[1]

इसी मराठी भाषी कवि ने 'भाखा' शब्द का भी प्रयोग किया है। यथा—

'भाखा कानन केहरि, तव कवि के हरि नाम।
एक ठोर गुन साहे को, वरनो गुन जस धाम।[2]

यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है कि सन् १२९४ ईसवी में अलाउद्दीन खिलजी ने प्रथम बार महाराष्ट्र की राजधानी देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) पर आक्रमण कर वहाँ के राजा रामदेव को पराजित कर दिया। उस समय राजा ने संधि कर एलिचपुर का इलाका उसे दे दिया। परंतु जब उसने एलिचपुर का वार्षिक कर देना बंद कर दिया, तब अलाउद्दीन ने अपने सरदार मलिक काफ़ुर को दक्षिण भेजा, जिसने एलिचपुर प्रान्त को अपने अधिकार में ले लिया। दूसरे ही वर्ष वह वारंगल के काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव द्वितीय पर टूट पड़ा और उसे पराजित कर उससे बहुत-सा धन लेकर उत्तर भारत लौट गया। सन् १३१० में उसने पुनः दक्षिण पर चढ़ाई की और मदुरा तक पहुँच गया। तीन वर्ष पश्चात् उसने चौथी बार दक्षिण पर चढ़ाई की और देवगिरि के यादवराजा को परास्त कर सारे महाराष्ट्र को लूटा। इस प्रकार अलाउद्दीन की सेनाएँ बराबर दक्षिण के संपर्क में बनी रहीं। अतएव हिन्दी का जो रूप वे अपने साथ लाईं, वह मिश्रित खड़ी बोली (रेखता) का होना चाहिए। अलाउद्दीन के शासन-काल में खड़ीबोली काफी परिष्कृत हो चुकी थी। उसका दरबारी कवि अमीर खुसरो बड़ा प्रतिभाशाली कलासंपन्न चतुर व्यक्ति था। फारसी के अतिरिक्त उसकी जो हिन्दी-रचनाएँ मिलती हैं, उनमें तत्कालीन हिन्दी-रूप के दर्शन होते हैं।[3]

उसने फारसी और हिन्दी-मिश्रित भाषा में भी रचना की है। ऐसी रचनाएँ कन्नड़ और मलयालम में 'मणिप्रवाल-शैली' कहलाती हैं।[4] ब्रजभाषा में भी उसकी रचनाएँ

---

१. राधामाधवविलास-चम्पू, पृष्ठ २५८।
२. राधामाधवविलास-चम्पू, पृष्ठ २४८।
३. पहेली—बीसों का सिर काट लिया,
　　ना मारा ना खून किया। (नाखून)
　दो सुखना—बम्हन प्यासा क्यों ?
　　गधा उदासा क्यों ? (लोटा न था)
४. ज़िहाले मिस्की मकुन तग़ाफ़ुल, दुराय नैना बनाय बतियाँ।
　किताबे हिजरां न दारम ऐजां, न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
　शबाने हिजरां चूं जुल्फो, रोजे बस्लत चूं उम्र कोताह।
　सखी पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

मिलती हैं।[1] खुसरो की माता हिन्दुवानी थी और पिता तुर्क थे। अतएव उसमें देशी-विदेशी सभी संस्कार थे। वह उत्तर भारत की व्रज और खड़ी बोली के अतिरिक्त फारसी में भी अच्छी गति रखता था। "इतिहासकारों ने ख्वाजा मसऊद साद सलमान को हिन्दी का पहला कवि माना है, जिसने अपनी हिन्दी कविताओं का पूरा संग्रह तैयार कर लिया था और १०६६ ई० के लगभग वह फारसी-अरबी में कविताएँ लिखता था। लाहौर का रहने वाला था। उसके हिन्दी-संग्रह की चर्चा अमीर खुसरो और मुहम्मद औफी ने की है।"[2] तात्पर्य यह कि जो हिन्दी-मुस्लिम-संसर्ग से दक्षिण में गई वह मसऊद साद सलमान अथवा खुसरो के ढंग की खड़ी बोली होगी। सेना में यही मिश्रित जबान बोली जाती रही होगी। क्योंकि उसमें तुर्कों के अतिरिक्त हिन्दू और धर्मान्तरित मुसलमानों की पर्याप्त संख्या रहती थी।

अलाउद्दीन खिलजी के समय की एक घटना का भी उल्लेख आवश्यक है कि किस प्रकार महाराष्ट्र के दो बड़े शासक-परिवार राजस्थान से दक्षिण में गये और अपने साथ उत्तर भारतीय भाषा (हिन्दी) का संस्कार लेते गये। सन् १३०३ में अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर आक्रमण कर चित्तौड़ को जीत लिया था। उस युद्ध में वहाँ के राजा रत्नसिंह और उनके सहायक सिसोदिया के राजा लक्ष्मणसिंह मारे गये। लक्ष्मणसिंह के सात पुत्र भी हताहत हुए। उनके एक पुत्र अजयसिंह के दो पुत्र सज्जनसिंह और क्षेत्रसिंह हुए। अजय सिंह ने अपने भतीजे हमीर को गद्दी पर बैठाया, जिससे सज्जनसिंह और क्षेत्रसिंह दोनों क्षुब्ध हो गये। मुसलमानों के आक्रमण से सारा प्रदेश उजड़ चुका था। ऐसी स्थिति में दोनों भाई भाग्य की परीक्षा लेने सन् १३३४ में राजपुताने से दक्षिण की ओर गये। इन्हींसे घोरपड़े और भोंसले घरानों की उत्पत्ति हुई।

इस समय दिल्ली में मुहम्मद तुगलक राज्य कर रहा था। उसने दक्षिण पर दृढ़ अधिकार रखने की दृष्टि से अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि (दौलताबाद) स्थानान्तरित करने का प्रयत्न किया। उसने सारी दिल्ली की प्रजा को वहाँ ले जाने का उपक्रम किया। बूढ़े, बीमार सभी घसीट कर ले जाये गये। उसके इस पागलपन का यह परिणाम हुआ कि बहुत से परिवारों को उत्तर से दक्षिण आना पड़ा। वह वहाँ ज्यादा ठहर नहीं पाया। उसे दौलताबाद से पुनः दिल्ली लौटना पड़ा। उसके लौटते ही दक्षिण में विद्रोह खड़ा हो गया। उसे दबाने के लिए उसने दिल्ली से हुसैन जाफरखाँ नामक सरदार को सन् १३४५ में दक्खिन की ओर भेजा, जिसने सज्जनसिंह और उसके पुत्र दिलीपसिंह को अपना विश्वासपात्र बनाया। सन् १३४७ में जाफरखाँ ने अलाउद्दीन

---

१. **श्याम बरन पीताम्बर कांधे,**
मुरली धरे न होय
बिन मुरली वह नाद करत है,
बिरला बूझे कोय। (भौंरा)

२. **देखिए—उर्दू साहित्य का इतिहास (सैयद एहतिशाम हुसेन) पृष्ठ २०।**

नाम धारण कर बहमनी राज्य की स्थापना की। सहयोग देने के कारण सज्जनसिंह को दौलताबाद के निकटवर्ती दस गांवों की जागीर भेंट में दी गई, जिससे वे भी एक सरदार कहलाने लगे। जाफरखाँ को एक गंगो नामक ब्राह्मण ने पाला था। गंगो ने फारसी को राज्यभाषा बनाकर स्थानीय बोलियों के आधार पर विकसित नई भाषा को प्रचलित किया जो हिन्दवी, हिन्दी और दक्खिनी कहलाई और यही बाद में उर्दू की भी एक शैली बन गई। बहमनी राज्य की राजधानी पहले गुलबर्गा और बाद में बिदर में रही।

चौदहवीं शताब्दी में बहमनी राज्य के शासक मुहम्मद प्रथम ने अपनी रियासत में सोने का सिक्का चलाना चाहा, पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते और विजयनगर तथा वारंगल के सिक्कों को चला देते। मुहम्मद ने राज्य-भर के सुनारों को मरवा डाला और उत्तर भारत के खत्रियों को उनकी जगह पर स्थापित किया।[1] इससे सिद्ध होता है कि उत्तर भारत से मुसलमानी सम्पर्क के कारण केवल सैनिकों की टुकड़ियाँ ही, जिनमें तुर्क, इस्लाम धर्मान्तरित हिन्दू आदि थे, दक्षिण में नहीं गईं, अपितु अन्य नागरिक व्यवसायी भी स्वयं गये या ले जाये गये। उनके साथ हिन्दी का—खड़ीबोली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी आदि का—कोई-न-कोई रूप स्वभावतः संचरित हुआ।

हम अभी कह आये हैं कि बहमनी राज्य में मेवाड़ के सज्जनसिंह ने सरदारी स्वीकार कर ली थी। उनके वंशज उग्रसेन के दो पुत्र—करणसिंह और शुभकृष्ण हुए। करणसिंह के पुत्र भीमसेन बड़े शूरवीर थे। उनके पिता करणसिंह ने सन् १४६२ में खेलता का किला घोरपड़ लगाकर हस्तगत किया था। अतः मुहम्मदशाह बहमनी ने करणसिंह की मृत्यु के पश्चात् भीमसेन को 'राजा घोरपड़े बहादुर' की उपाधि और मुधोल के पास ८४ गाँव की जागीर प्रदान की। करणसिंह के भाई शुभकृष्ण दौलताबाद की ओर वेरल के स्वामी बने और उनके वंशज भोंसले कहलाये। मुधोलकर घोरपड़े और सातारकर भोंसले ये दोनों घराने मेवाड़ के सिसोदिया-राज्यवंश की दो शाखाएँ कही जाती हैं। भोंसले-वंश में शिवाजी महाराज का जन्म हुआ। घोरपड़ों ने मुसलमानों की अधीनता स्वीकारी और भोंसलों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किये। भोंसलों के वतनी गाँव औरंगाबाद, पैठण अहमदनगर और पूना थे।

बहमनी राज्य के टुकड़े हो जाने पर भोंसले निजामशाही में रहने लगे। बहमनी राज्य महमूदशाह बहमनी के शासनकाल में बँट गया। उसके प्रान्तीय गवर्नर स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने पाँच पृथक् राज्य स्थापित किये जो बरार या विदर्भ में इमादशाही, अहमदनगर में निजामशाही, बीजापुर में आदिलशाही, बिदर में बरीदशाही और गोलकुण्डा में कुतुबशाही कहलाये। अलाउद्दीन खिलजी ने जब से यादवों का राज्य समाप्त किया, तब से तीन सौ वर्षों तक महाराष्ट्र की भूमि पर मुसलमानों की सत्ता छाई रही। खण्डित बहमनी राज्य के सुलतान मराठा स्त्रियों से विवाह भी करने लगे थे। महाराष्ट्र में कई स्थानों पर मुसलमान शासकों ने स्थानीय भाषा को राजभाषा बनाया; पर दूसरी भाषा के रूप में

---

१. इतिहास-प्रवेश (जयचन्द), राजस्थान-संस्करण, पृष्ठ ३२६।

उन्होंने स्वभावतः उत्तर की भाषा 'हिन्दी' को अपनाया, क्योंकि वही उन्हें नजदीक पड़ती थी, पर बहमनी राज्य में जैसा कि डा० बाबूराम सक्सेना ने 'दक्खिनी हिन्दी' में फरिश्ता का हवाला देते हुए कहा है कि 'राज्य के दफ्तरों में हिन्दी-जबान प्रचलित थी।' सैयद एहितिशाम हुसेन भी अपने उर्दू साहित्य के इतिहास में कहते हैं कि अगर प्रसिद्ध इतिहास 'तारीख फरिश्ता' की बात ठीक मानी जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि बहमनी बादशाहों के राज-कार्यालयों में हिसाब-किताब हिन्दी-भाषा में रखा जाता था (पृष्ठ ३५)। एच० रालेन्सन अपनी India—A Short Cultural History (इण्डिया—शार्ट कल्चरल हिष्टरी) में ग्रेहमबेली के 'उर्दू लिटरेचर' के आधार पर लिखता है—'उर्दू साहित्य दक्खिन के सुल्तानों द्वारा प्रोत्साहित किया गया। हिन्दू से मुसलमान-धर्मान्तरित व्यक्तियों के लिए वह भाषा फारसी से आसान थी। अन्त में उर्दू ही राजभाषा बन गई।' (पृष्ठ २५६)। फरिश्ता के समय 'उर्दू' शब्द का जन्म ही नहीं हुआ था। इसलिए उसने 'हिन्दी' का प्रयोग किया है। मुस्लिम शासकों के अधीन या स्वतन्त्र हिन्दू राजाओं ने भी स्थानीय भाषा के साथ-साथ हिन्दी को दो कारणों से प्रोत्साहित किया। एक तो वह उनके मूल स्थान की भाषा थी। दूसरे वह मुसलमान-शासकों के व्यवहार की भाषा बन गई थी। मुसलमान-शासक हिन्दी, हिन्दवी या रेखता का प्रयोग करते थे, वह अरबी-फारसी प्रभाव से बिलकुल बोझिल नहीं थी। "उत्तरी भारत ईरानी और अरबी संस्कृति से प्रभावित था, पर दक्षिण इससे मुक्त था। इसलिए यहाँ एक आर्य भाषा (हिन्दी) के विकास का अच्छा अवसर मिला।" (उर्दू साहित्य का इतिहास—सै० ए० हुसेन पृष्ठ ३६)।

हिन्दू-शासकों में शहाजी तथा शिवाजी महाराज के समय में हिन्दी को बहुत प्रोत्साहन मिला। शिवाजी महाराज की राजसभा में हिन्दी के प्रसिद्ध कविभूषण की प्रतिष्ठा तो सर्व-विश्रुत है ही। कहा जाता है, गणेश और गौतम कवि भी उनके यहाँ थे। स्वयं शिवाजी का भी एक हिंदी पद प्राप्त है। वह इस प्रकार है—

"जय हो महाराज गरीब निवाज।
बंदा कमीना कहलाता हूँ साहिब तेरी लाज।
मैं सेवक बहु सेवा माँगूँ इतना है सब काज
छत्रपति तुम सेकदार शिव इतना हमारा फर्ज।"

रामदासी सम्प्रदाय में प्रत्येक शिष्य को प्रतिदिन पाँच पदों से ईश्वर-गुणगान करना पड़ता है। इसे पंचपदी कहते हैं। शिवाजी महाराज ने स्वरचित पंचपदी बनाई थी, जिसमें उपर्युक्त एक हिन्दी पद भी है।[1]

शिवाजी के पिता शहाजी बड़े कलाप्रिय और साहित्यानुरागी थे। संस्कृतज्ञ और

---

१. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (भालेराव) भाग १०, पृष्ठ १०१।

शास्त्रज्ञों के अतिरिक्त उनकी राजसभा में ग्यारह प्राकृत (देशभाषा) कवि भी थे।[१] प्राकृत भाषाओं में मराठी, ब्रज, गुजराती, बख्तर, ठंढार, पंजाबी, हिन्दुस्थानी, बागलाणी, फारसी, उर्दू और कानड़ी के कवि थे।[२] शहाजी महाराज का राजकवि जयराम मराठी-भाषाभाषी था। वह अपने ग्रंथ में दो-तीन स्थलों पर अपने संबंध में उल्लेख करता है—'महाराष्ट्र देशादागत्य प्राह।' 'महाराष्ट्र देशादागतो जयरामो नाम कवीश्वरः।'[३] महाराज की राजसभा में जो कवि बाहर से आते, वे जयराम को समस्या देते और स्वयं महाराज का यशोगान करते थे। महाराज उन्हें सुनते और प्रसन्न होते थे। एक बार रघुनाथ व्यास ने निम्नलिखित रचना सुनाकर उनका मनोरंजन किया—

'बैरन की बधू फिरै बैरन के वन में'

इसकी पूर्ति निम्नलिखित रूप में की गई है—

'माला मकरंद सुव साहेब बलिबंड तुव
दापहि सों कांपे तँहा कोन रहे रन में।
राजन के राजा तुव बाजा उन सह्यो जात
धाकतु है साहिजहां तहां मन में।
बाजत कर्णाटक भाजन कर्टाटुक,
बाटन में कांगडे हाटक से तन में।
बालम की बाट लखें बार-बार बावरि सी
बैरन की बधू फिरे बैरन के बन में।'[४]

जयराम ने शहाजी की प्रशंसा में कहा है—

'तेरे गुन गनिबे के बिधिना बिधु ये मेरु करि,
तारा मुकुताहल माल मानो गही है।
साहे गुन जस धाम गम थक्यो अष्टे ज्याम
याते कहे जयराम तेरे संम तू ही है।'[५]

---

१. राधामाधवविलास-चम्पू (जयराम) पृष्ठ २०। इस ग्रंथ के भूमिका-लेखक ने बख्तर, ठंढार और बागलाणी भाषाओं का प्रयोग किया है। वह यह भी लिखता है कि इन भाषाओं को बोलनेवाले सैनिक शहाजी की सेना में भर्ती थे और वे इन्हें बोलते थे (पृष्ठ १४)। ये उत्तर भारत की किस स्थान की बोलियाँ हैं, ठीक नहीं कहा जा सकता।

२. राधामाधवविलास चम्पू-(जयराम कविकृत) पृष्ठ १४।

३. वही पृष्ठ २४।

४. राधामाधवविलास-चम्पू (शके १८४४ संस्करण) पृष्ठ २४६।

५. वही (शके १८४४ संस्करण) पृष्ठ २४१।

शहाजी की गुणीजनों के प्रति प्रीति देखकर उनके निकट उत्तर भारत से लोग आते रहते थे। जयराम ने अपने उपर्युक्त 'चम्पू' में एक जगह उल्लेख किया है—

'आयो उत्तर देश तें घाटमपुर को भाट
उन्ह गजमद सों देश लो कीनी चह पह बाट।'[1]

~~महाराष्ट्र के हिन्दू~~ शासकों ने सदा से हिन्दी को सम्मानित किया है। शहाजी तथा शिवाजी महाराज के बाद पेशवाओं के समय में भी 'भाखा कवि' सभा में पहुँचते थे और समादृत होते थे। सवाई माधवराव (पेशवा) को चिंतामणि मिसर (मिश्र) ने स्वरचित ध्रुपद गाकर आशीर्वाद दिया था—

'अचल राज रहो सवाई माधव महाराज राजन के राज
तेरी सरोबार को करिये, जग में तेरो हरत दुःख दरबार।
अष्टदिसा सप्तदीप नवखंड को मुलुख तुमपर अति ही साऽऽऽऽऽजे
देव गजानन की कृपा तुम पर मंगल अपनी मन की काऽऽऽऽऽज।'[2]

महाराष्ट्र में मराठी नाटकों का एक प्रारम्भिक स्रोत 'ललित' नामक स्वाँग भी है। बहुत से ललितों की भाषा हिन्दी हुआ करती थी। यह सत्रहवीं शताब्दी की बात है। मुसलमान शासन ऐसे स्वाँग देखते होंगे, उनमें से कुछ हिन्दी में रचना भी करते थे।[3] उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्वाँगकारों ने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ कर दिया होगा। पर आम जनता भी उसका अभिनय देखती और अपना मनोरंजन करती थी। 'ललित' की भाषा का एक उदाहरण हम बालकृष्ण लक्ष्मण पाठक के 'ललित-संग्रह' से दे रहे हैं—

'छड़ीदार— निर्गुण निराकार सृष्टि कूं आधार
जिनकी नीति से वेद बने चार, उस साहब कूं मुजरा करुं,
नजर रखो मेहेरबान, साधु संत सुजान मेरे जुबान पर रखो ध्यान
कहे बंदा रामजी अज्ञान, सब साधु सज्जन कूं मूजरा करुं,
ऐसे महाराज निर्गुण निराकार, उन्ने लिए दश अवतार
किया दुष्टन का संहार, वो दीनोद्धार महाराज हैं, मेहेरबान सलाम।

पाटील—आप कौन हो?

---

१. राधा-माधव-विलास-चम्पू (शके १८४४ संस्करण) पृष्ठ २६८।

२. भारत इतिहास संशोधन मंडल (पुणे) अहवाल शके १८३५।

३. गोलकुण्डा के शासक मुहम्मद कुल्ली कुतुब (संवत् १५२३-५५) हिन्दी में कविता करते थे—

'रुत आया कलियों का हुआ राज,
हरि डाल के सिर फूलों का ताज।'
(राष्ट्रभाषा प्रचार सर्व-संग्रह, पृष्ठ ४)।

छड़ीदार—हम छड़ीदार, पोशाक पेना जड़ी जरदार····गले में डाला भाव मोतन का हार। ज्ञान ध्यान की बांधी तलवार····भगवान के नाम को पुकारूं ललकार, ये ही हम छड़ीदार कहलाते हैं।

पाटील—तुमने कहाँ नौकरी बनाई ?

छड़ीदार—दश अवतार में।

पाटील—कौन से दश अवतार में ?

छड़ीदार—मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम श्रीकृष्ण, बौद्ध, कलंकी ऐसे महाराज के दश अवतार में नौकरी बनाई।

इसके बाद छड़ीदार दशों अवतारों के गुण-वर्णन करता है। छड़ीदार के बाद भालदार का प्रवेश होता है। वह इस प्रकार बोलता है—

भालदार, 'अर्ज सुनिये महाराज, आप गरीब निवाज, मालक सबके सिरताज, लाज रक्खो दास को, नजर रक्खो मेहर की। खाया चौरासी का फेर, देख आया दाम से मेर····आदि।'

इस प्रकार के दार्शनिक स्वाँगों से सभी प्रेक्षकों का मनोरंजन नहीं होता था। इसलिए सामाजिक व्यक्तियों की नकल करनेवाले स्वाँग भी लाये जाते थे। जब पंडितजी (कथाकार) का स्वाँग आता तब वे संस्कृत, मराठी, हिन्दी आदि मिश्रित भाषा बोल उठते थे जिससे श्रोता हँस कर लोट-पोट हो जाया करते थे।[1]

इस तरह ज्यों-ज्यों उत्तर भारत का दक्षिण से राजनीतिक संबंध बढ़ता गया, हिन्दी-भाषा जनता में संचरित होती गई।

अन्तिम पेशवा के काल में अनंतफंदी (शके १६६६-१७८३) नामक स्वाँगधारी हो गए हैं। ये महाराष्ट्र के प्रसिद्ध लावनीबाज माने जाते हैं। मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी लोक-रंजनार्थ लावनियाँ गाते थे। इनकी एक हिन्दी लावनी का अंश नीचे दिया जाता है—

"बारा बरस का पठा (पट्ठा) देखो अंगी नयन पर झुरमुर डारी।
नयनों में कजरा डार दिया पठा घर पर था सिर पर घगरी।
....

गलमोतने (गलमोतिन) क हार छोमाछिम बिचवन के झनकार।
रुमझुम पाउल बजावत नयनो की लग रही मार।
करंजफूल कानों में चमकत माथा उपर शाल जरी।
बारा बरस का पाठा (पट्ठा) देखो अंगिनयन (अंगियन) पर झुरमुर डारी।
नयनो पर कजरा डार दिया पणघट पर था सिर पर घगरी।"[2]

---

१. साहित्यावलोकन (साहित्य-भवन, प्रयाग, प्रथम संस्करण) पृष्ठ १६३-१६४।
२. लावण्या भाग पहिला (चित्रशाला प्रेस, पुणे, आवृत्ति चवथी) पृष्ठ ७२।

आर्थिक

राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त आर्थिक कारणों से भी उत्तर और दक्षिण की जनता का परस्पर सम्पर्क होता रहता था। व्यापार-व्यवसाय के लिए वणिक वर्ग का आवागमन होता ही रहता था। सन् १३४१—४२ में मालवा में अनावृष्टि के कारण भयंकर अकाल पड़ा। तब अधिकांश लोग अपना घरबार छोड़कर यहाँ-वहाँ भागे। पड़ोसी प्रदेश महाराष्ट्र में भी उनका संचार हुआ। बहमनी मुसलमान शासक फीरोज के शासन-काल (स० १३९६) में महाराष्ट्र में इतना भीषण अकाल पड़ा कि तीस वर्ष तक वह पूर्व स्थिति में नहीं आ सका। सन् १६३० में पुनः महाराष्ट्र अकाल से काल-कवलित हुआ। जब-जब ऐसी परिस्थिति आई है, जनता पड़ोसी प्रान्तों में जाकर आश्रय लेती रही है। सूरत के एक डच व्यापारी ने सूरत से बटेविया स्थित डच-कौंसिल को एक अकाल के बारे में लिखा था कि 'इस प्रकार की भयंकर मँहगाई कहीं किसी के अनुभव में नहीं आई। कितना भी पैसा देने पर मनुष्य को खाने के लिए अन्न नहीं मिलता। कोष्टी, रंगरेज, धोबी, सुनार आदि व्यवसायी लोग घरबार छोड़कर बाहर प्रान्तों में चले गए। इस मँहगाई में यह (बादशाह शाहजहाँ) बुरहानपुर में सन् १६३० से १६३२ तक सेना सहित रहा। *अकाल में लोग महाराष्ट्र से बाहर प्रान्तों में भागे*।[१]

संत तुकाराम ने भी एक अकाल का उल्लेख अपने एक अभंग में किया है—'बरे झाले देवा। निघाले दिवाले। बरीया दुष्कालें। पीड़ा केली। अनुतापमें तुझे। राहिले चिंतन। झाला हा वमन। संवसार।'

(हे भगवान! भला हुआ जो मेरा दिवाला निकल गया, भला हुआ जो इस अकाल में पीड़ा पहुँची। दुःख में तेरा चिंतन तो रहा।)

दुर्भिक्ष (अकाल) से पीड़ित हो जनता का आत्मरक्षा के लिए अपने निकटवर्ती प्रान्तों में आना-जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त व्यापार-व्यवसाय के कारण भी उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत का संबंध रहा है। अवध, मगध और उज्जैन (अवन्तिका) व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे, साथ ही पालि भाषा के अध्ययन के भी। पूर्व में बंग (टिन) का व्यापार बहुत होता था, इसलिए 'बंग' (टिन) से 'बंगाल' का नाम पड़ा है। साहसी 'सिंहों' (संभवतः उत्तर भारत की क्षत्रिय जाति) ने मराठा-राष्ट्र में सैनिक छावनियाँ और व्यापारिक गोदाम स्थापित कर रखे थे। ये 'सिंह' ही 'सिंहलद्वीप' तथा सिंगापुर के जन्मदाता भी कहे जाते हैं। बड़ी दूर-दूर तक इनका गमन होता था।[२]

शिलप्पदिकारम से पता चलता है कि उत्तर भारत से माल से लदी हुई गाड़ियाँ दक्षिण भारत में आती थीं तथा उस आनेवाले माल पर मुहर होती थी। इस प्रकार उज्जैन

---

१. **मराठी रियासत (शहाजी) सरदेसाई पृष्ठ ४३**

२. A Short History of Indian Literature By Ernest Horritz पृष्ठ १९२-१९३

होकर तमिलनाड के व्यापारी और यात्री काशी पहुँचते थे।[१] बैलगाड़ियों की यात्रा धीरे-धीरे होती थी। अतएव यात्री भी धीरे-धीरे भाषाएँ सीख लेते होंगे। अशोक के शिलालेखों में 'पत्तनिक' (पैठणवासियों) का उल्लेख मिलता है। ईसा शती के पूर्व से व्यापार-धंधे के लिए पैठण (महाराष्ट्र का प्राचीनकालीन प्रमुख नगर) के श्रेष्ठी और महाजन देश-भर में संचार करते थे। ईसा की पहली शताब्दी में मेरिप्लस नामक एक मिस्री लेखक ने भारत के व्यापार के संबंध में लिखते समय पैठण के नाना प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है।

पैठण (प्रतिष्ठान) में ईसा शती के पूर्व और पश्चात् भी चार सौ वर्ष तक शालीवाहन राज्य करते थे। इनके समय में पैशाची, महाराष्ट्री आदि प्राकृतों को राज्याश्रय प्राप्त था। अतः उत्तर की भाषाओं से यहाँ की प्रजा परम्परा में परिचित रही है।

धार्मिक

उत्तर और दक्षिण की जनता को परस्पर निकट लाने का श्रेय धर्म और धर्माचार्यों को है। अशोककाल में बौद्ध प्रचारकों ने दक्षिणापथ ही में संचार नहीं किया, सिंघल तथा अन्य देशों में भी प्रवेश किया। बुद्ध भगवान ने लोकभाषा पालि में उपदेश दिये। अतः जहाँ-जहाँ बौद्धमत गया, पालिभाषा और उसकी उत्तराधिकारिणी प्राकृत भाषाएँ भी गईं। इसी प्रकार जैन-मत के साथ उत्तर की आर्यभाषाओं की परम्परा भी दक्षिण में पल्लवित हुई। दक्षिण के धर्माचार्यों ने भी (शंकराचार्य से लेकर बल्लभाचार्य तक) उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार कर जनता में नूतन धर्म-विश्वासों को अंकुरित और पल्लवित किया। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य सुदूर दक्षिण के ग्राम में उत्पन्न हुए और नर्मदा के किनारे उन्होंने गोविन्द संन्यासी से दीक्षा ली। बनारस जाकर जिज्ञासुओं को अपने अद्वैत-मत की शिक्षा दी तथा सारे उत्तराखण्ड में धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी। रामानुज के समकालीन आन्ध्रवासी निम्बार्क कृष्णभक्ति के प्रवर्तक थे। उन्होंने भी अपने मत के प्रचार के लिए उत्तर भारत की यात्राएँ कीं। लगभग सन् ११६३ में उनका देहान्त हुआ। दक्षिण कर्नाटक के प्रसिद्ध द्वैतवादी मध्वाचार्य ने भी उत्तर भारत में हरि-भक्ति का संदेश पहुँचाया और हिमालय प्रदेश में वर्षों वास किया। पुष्टिमार्ग-प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य भी दाक्षिणात्य थे। उनका उत्तर भारत में भ्रमण और भगवान श्रीकृष्ण के लीलाक्षेत्रों में निवास तथा संकीर्तन सर्वविश्रुत है। हिन्दी का मधुर कृष्ण-काव्य उनकी प्रेरणा का फल है। क्या ये आचार्य केवल संस्कृत के सहारे ही समस्त उत्तर भारत की जनता तक पहुँच सकते थे? क्या ये तत्कालीन लोकभाषा-ज्ञान से सर्वदा अछूते रह सकते थे?

उत्तर भारत का नाथ-पंथ जब महाराष्ट्र में प्रविष्ट हुआ, तब उसने भी लोकभाषा मराठी का आश्रय लिया। गोरखनाथ का समय क्या है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता; पर यह

---

१. सार्थवाह (डा० मोतीचंद्र) पृष्ठ १२६-१२७।

मान्यता है कि नाथों ने बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में धार्मिक जागृति का भारी कार्य किया। नाथों के संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में भी ग्रंथ उपलब्ध हैं। मराठी में भी उनके नाम पर प्रचलित कृतियाँ पाई जाती हैं। महाराष्ट्र के नाथ-पंथियों को अपने गुरुओं के हिन्दी भाषा में रचित ग्रंथ पढ़ने की सहज उत्कंठा रही होगी। इस बहाने उन्होंने हिन्दी से परिचय प्राप्त किया होगा। महाराष्ट्र में नाथों के हिन्दी-रचित मंत्र-तंत्र भी प्रचलित रहे हैं। श्री राजवाड़े को पुणे में एक हस्तलिखित पोथी मिली थी, जिसके संबंध में उनका विचार है कि भाषा के रूप से प्रतीत होता है कि उनकी रचना चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व हुई होगी। उसमें मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी टोटके-मंत्र आदि दिये गये हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) मार्ग-रक्षक मंत्र

श्री गोपाल, पंच भैरव रक्षेन
दार चोर न ढुंके।
बाघ न खायं।
काल न बरमे।
डरके न खाय।
रक्षा करे श्री गोरखनाथ।

(२) घर-रक्षक मंत्र

अरड़ बाँधो, थड बाँधो तंबा ताई
चौरासी लख जिवजंत बांधों, जाति गोरख की दाही

(३) मूठ मारने का मंत्र

उन्मो आदेश गुरु कु
नागबेल कु मेरी पान
जीमे देऊ सो तजे प्रान
छाड-छाह भाये और बाप छाह
अन ब्याहा भाई भाई छयाड
तिनकु छयाड
म्हारे पाछे लाग
म्हारे हात का काल खाये के लेये
मुजे छाड अवर मन कर
तुरत छाती काट कर मरे
गुरु की शकुक्त
मेरी भक्त
फुरो मंत्र
ईश्वरी वाच्या।

(४) सर्व रक्षाकरण मंत्र

नमो आदेश गुरु को
पग राखे पताल
जिव राखे काल
मस्तक राखे निरंकार
अकासीं मृत्तिका
पातालि मृत्तिका
तिंहि तालि मृत्तिका
ऐसा कौन बलि है
म्हैंसासुर मारे तो कलेजा कोड़
चूके तो मतभंग
सुर की सह
फुरो मंत्र
फट स्वाहा
ईश्वरी वाचा।[1]

नाथ-मत के प्रचलन के पश्चात् महाराष्ट्र में महानुभाव-पंथ का उदय हुआ। इसके संस्थापक चक्रधर स्वामी गुजराती ब्राह्मण थे जो गुजरात से महाराष्ट्र में आये। उन्होंने अपने मत का प्रचार महाराष्ट्र तक ही सीमित नहीं रखा, वह उत्तर भारत की सीमा लाँघकर अफगानिस्तान की राजधानी काबुल तक पहुँच गया। महानुभावों में मराठी-भाषियों के अतिरिक्त हिन्दी-भाषियों की भी पर्याप्त संख्या है। अतएव महानुभावी धर्माचार्यों की मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी वाणी मिलती है। स्वयं चक्रधर की हिन्दी-चौपदी प्राप्त हैं।

महानुभावों के बाद महाराष्ट्र में चन्द्रभागा के तीरवर्ती पंढरपुर के क्षेत्र से 'विठ्ठल भक्ति' का स्रोत प्रवाहित हुआ, जिसने समस्त महाराष्ट्र को आप्लावित कर दिया। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम इस मत के प्रबल प्रचारक हैं। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ आदि संतों की उत्तर भारत-यात्रा प्रसिद्ध है। वारकरी-मत के राजस्थान और पंजाब में आजतक अनुयायी पाये जाते हैं। अतएव वारकरी संतों में बहुतों ने हिन्दी-पद रचे हैं।

संत राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए अनेक विधान रचते आये हैं। बारह ज्योतिर्लिंग भारत के सभी स्थानों में बिखरे हुए हैं। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका, पुरी, द्वारावती—इन सात स्थानों को मोक्षदायक की संज्ञा प्रदान की गई है। इसी प्रकार निम्नलिखित सात सरिताओं को पुण्य सलिला माना गया है—

'गंगेच यमुनेचैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा, सिंधु, कावेरी जलेस्मिन सन्निधं कुरु।'

---

१. भारत इतिहास संशोधन मंडल, अहवाल शके १८३२, पृष्ठ ४८—५१।

शंखस्मृति में निम्नोक्त सरिताएँ और क्षेत्र पवित्र माने गये हैं—

गंगायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यामरकण्टके ।
नर्मदाबाह्नदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये ॥
गङ्गाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा ।
सन्निहित्यां गयायाश्च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥

शंख ने गंगा, यमुना, पयोष्णी (विदर्भ की पूर्णा नदी), कोसल और मालव का नर्मदातट, हरिद्वार, प्रयाग, गया को मान्यता दी है। यह स्पष्ट है कि राम और कृष्ण की लीलाभूमि होने से बहुत से तीर्थक्षेत्र उत्तर भारत में हैं । अतएव धर्म-पिपासु भारतीय जनता विशेष पर्वों पर वहाँ पहुँचती रहती है। उत्तर तथा दक्षिण में प्राप्त वाकटक और गुप्तकालीन पुरालेखों में वर्तमान काल को कलियुग कहा गया है, जहाँ अधर्म की बाढ़ बताई गई है। प्रयाग की त्रिवेणी में मरण मुक्तिदाता माना गया है। अतः दक्षिण के राजा प्रायः तीर्थराज में जाते तथा दान आदि दिया करते थे। संत किसी मत के क्यों न हों, अपने विश्वासों को जनता तक पहुँचाने की आतुरता रखते हैं। अतएव वे पुण्य अवसरों पर अपने अनुभवों का लाभ जनता को प्रदान करते रहे हैं।[1] महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतों में लोक-मंगल की भावना सदा से तीव्र रही है। यही कारण है कि उनकी मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी वाणियाँ उपलब्ध हैं। हम यह कह सकते हैं कि महाराष्ट्र के संतों का पवित्र स्पर्श पाकर हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में द्रुतगति से अग्रसर हुई है।

दक्षिणापथ में हिन्दी-प्रचार के राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक कारणों पर सिंहावलोकन करते समय निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये हैं—

(१) अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के पश्चात्, तेरहवीं शताब्दी में दक्षिण में हिन्दी का संचार हुआ।

(२) मुहम्मद तुगलक ने जब चौदहवीं शताब्दी में अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद में स्थानान्तरित की, तब समस्त दिल्ली के साथ वहाँ की भाषा भी दक्षिण में पहुँची।

(३) मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व नाथ-पंथियों ने महाराष्ट्र की धार्मिक जागृति में योगदान दिया और इस तरह उनके द्वारा वहाँ हिन्दी का प्रवेश हुआ तथा महानुभाव तथा वारकरी पंथ-प्रवर्तकों ने उसका प्रचार किया।

(४) मुसलमानों के आक्रमण के समय आर्यों ने अपनी सांस्कृतिक एकता स्थिर रखने के लिए मध्यदेश की भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया और इस तरह क्रमशः हिन्दी का दक्षिण में स्वतंत्र उदय हुआ।

---

१. New History of Indian People **(भारतीय इतिहास परिषद्) पृष्ठ ३७६** ।

तथ्यों की परीक्षा

अब हम उपर्युक्त तथ्यों की क्रमशः परीक्षा करेंगे—

तथ्य (१) और (२) के संबंध में निवेदन है कि मुसलमान शासकों के देवगिरि या सुदूर मदुरा तक पहुँच जाने मात्र से वहाँ उत्तर की भाषा का संचार नहीं हो सकता। किसी भी भाषा को जनता तक पहुँचने के लिए समय अपेक्षित है। यह हो सकता है कि अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मद तुगलक के बार-बार दक्षिण-अभियान और अन्त में वहाँ शासन-व्यवस्था स्थापित करने से जनता हिन्दुई या देहलवी भाषा से अधिक परिचित हो गई हो; क्योंकि उसे अधिकारियों और फौजियों के सम्पर्क में बार-बार आना पड़ता था। पर दक्षिण में हिन्दी-प्रवेश तुर्क-शासकों के पूर्व ही हो चुका था। देवगिरि के यादवों के काल में ही हम महानुभावों और वारकरी संतों को हिन्दी में पद-रचना करते हुए देखते हैं। वारकरी-संत नामदेव का समय, जिनके बहुत अधिक हिन्दी-पद मिलते हैं, सन् १२७० और १३५० के मध्य है और उनके पूर्व महानुभाव-पंथ के संस्थापक चक्रधर स्वामी का मत-प्रचार-काल १२६३ ई० और १२७१ ई० के मध्य है। चक्रधर की हिन्दी चौपदी मिलती हैं। अतएव तुर्कों के दक्षिण-विजय के पूर्व दक्षिण में हिन्दी का प्रवेश और प्रचार हो गया था। मुसलमानों के संसर्ग से यह अवश्य हुआ कि प्रचलित हिन्दी में विदेशी फारसी-अरबी शब्द क्रमशः आने लगे। पहले तो मुसलमान कवि ही उनका प्रयोग करते रहे; परंतु बाद में वे इतने अधिक प्रचलित और टकसाली हो गये कि हिन्दी संतों की जबान पर भी चढ़ गये और उनकी 'वाणियों' में उतरने लगे। महाराष्ट्र में वारकरियों से पूर्व महानुभावपंथी संतों की वाणियों में खड़ीबोली के साथ साथ ब्रजभाषा और मराठी का पुट मिलता है। अरबी-फारसी शब्दों का प्रवेश उनमें नहीं है।

वारकरी संत नामदेव ने भी मुसलमानी सम्पर्क के पूर्व हिन्दी में पद-रचना प्रारम्भ कर दी थी। तात्पर्य यह कि तुर्कों के महाराष्ट्र में प्रवेश के पूर्व शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न हिन्दी के ब्रज और खड़ीबोली के रूप वहाँ विद्यमान थे और मुसलमानों के प्रवेश के पश्चात् उनमें विदेशी शब्दों का आगमन होने लगा।

तथ्य (३) के संबंध में निवेदन है कि 'नाथ-पंथ' ने वारकरी-सम्प्रदाय के पूर्व ही महाराष्ट्र में धर्म-जागृति का कार्य किया है। नाथों के प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ, जो ज्ञानेश्वर की गुरु-परम्परा में आते हैं, कब पैदा हुए और कब दक्षिणापथ में आये, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता; पर ईसा की बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में इस पंथ का खूब प्रचार था, इसका उल्लेख हो चुका है। मुसलमानों के दक्षिण-प्रवेश के पूर्व उनका वहाँ पहुँचना असंदिग्ध है। नाथों के मत-प्रतिपाद्य ग्रंथ मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी हैं। जादूटोने के मंत्र, जो महाराष्ट्र में नाथों द्वारा प्रचलित हुए थे, भी हिन्दी में हैं और जनता उनका उच्चार करती रही है। वारकरी-संतों में गुरु गोरखनाथ के हिन्दी-उपदेशों को जानने की स्वाभाविक इच्छा रही होगी। उनके द्वारा उनका मनन-चिन्तन और उपदेश भी होता होगा। हम पहले अध्याय में देख चुके हैं कि हिन्दी और मराठी भाषाओं में लिपि और प्रवृत्तियों की

दृष्टि से कितनी निकटता है ! अतएव हिन्दी पढ़ने और सीखने में मराठी-भाषियों को विशेष कठिनता का अनुभव नहीं हुआ। 'नाथों' के महाराष्ट्र-प्रवेश के पूर्व भी महाराष्ट्र के मालखेट में दसवीं शताब्दी में रचित अपभ्रंश कृतियों में हिन्दी-विकास के चिह्न दिखलाई देते हैं। अतएव नाथों को भी दक्षिण में सबसे प्रथम हिन्दी ले जाने का एकान्त श्रेय नहीं दिया जा सकता। वे प्रचारक ही कहे जा सकते हैं।

चौथे और अन्तिम तथ्य के संबंध में निवेदन है कि आर्यों की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत का सुदूर दक्षिण में तुर्कों और नाथों के आगमन के पूर्व ही प्रचार रहा है। वेदों के भाष्य, धर्म, दर्शन तथा आदि ग्रंथों का प्रणयन अनेक दाक्षिणात्यों द्वारा हुआ है। मध्यदेश में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषाओं का जब महत्त्व बढ़ा, तब वे भी दक्षिण में पहुँचीं। सन् ११२९ ई० में चालुक्यवंशीय राजा सोमेश्वर तृतीय रचित 'अभिलषितार्थ चिंतामणि' में जहाँ संस्कृत के अतिरिक्त कन्नड़, तेलुगु और मराठी भाषा के उदाहरण मिलते हैं, वहाँ हिन्दी के भी उदाहरण विद्यमान हैं। और यदि पुष्पदन्त की प्राकृताभास भाषा के हिन्दी-रूप पर विचार करें, तो दक्षिण में हिन्दी के चिह्न ईसा की दसवीं शताब्दी तक देखे जा सकते हैं।

"प्राचीन लेखों तथा ग्रंथों से यही ज्ञात होता है कि शौरसेनी अपभ्रंश, जो नागर अपभ्रंश भी कहलाती थी, लगभग ८०० ई० से शुरू होकर लगभग १२००–१३०० ई० तक उत्तर भारत में विराट साहित्य-भाषा के रूप में विराजती रही। संस्कृत के बाद इस शौरसेनी अपभ्रंश का स्थान था। चार-छः सौ वर्षों तक सिन्धु प्रदेश से पूर्वी बंगाल तक और काश्मीर, नेपाल, मिथिला से लेकर महाराष्ट्र और उड़ीसा तक तमाम आर्यावर्ती देश इस शौरसेनी या नागर अपभ्रंश नामक साहित्यिक भाषा का क्षेत्र बन गया था।"[१] तभी दिल्ली में पैदा होनेवाला पुष्पदन्त जब महाराष्ट्र के मालखेट में जाता है, तब शौरसेनी अपभ्रंश में सहज ही ग्रंथ-रचना कर सका।

सन् ८०० और १००० ई० काल तक स्थिति यह थी कि "किसी उत्तर भारतीय आर्य भाषी को यदि देशाटन करना और साथ-साथ साधारण जनों तथा शिष्ट जनों से मिलना होता था, तो संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी अपभ्रंश के सिवा उसका कार्य ही नहीं चलता था। शौरसेनी अपभ्रंश उन दिनों अन्तःप्रादेशिक भाषा थी। आजकल की ब्रज, खड़ीबोली और विभिन्न प्रकार की हिन्दी का उद्गम इस शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुआ है। अब की तरह एक हजार वर्ष पहले हिन्दी ही अपने पूर्व रूप में अन्तःप्रादेशिक भाषा के रूप में अखिल उत्तर भारत पर फैली थी और तमाम आर्यभाषी लोगों में पढ़ी, पढ़ाई और लिखी जाती रही है।"[२]

निष्कर्ष यह कि दक्षिण में हिन्दी का संचार आर्यों के दक्षिण-प्रवेश का स्वाभाविक परिणाम है। दक्षिण के आर्यों ने अपने मूल स्थान मध्यदेश से सम्पर्क बनाए रखने के लिए वहीं की भाषा को अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा स्वीकार किया। राजनीतिक,

१. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ), पृष्ठ ७९।

२. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (पोद्दार-अभिनंदन ग्रंथ), पृष्ठ ७९।

आर्थिक, धार्मिक आदि कारणों से दक्षिण और उत्तर भारत के आर्यों का किस प्रकार परस्पर सम्पर्क होता रहता था, यह हम देख ही चुके हैं।

दक्षिणापथ अर्थात् महाराष्ट्र में मुसलमानों के आगमन के पूर्व हिन्दी प्रचलित थी, यह महानुभाव और अन्य सन्तों की वाणी से सिद्ध हो जाता है। मुसलमानों के राज्य स्थापित होने का यह परिणाम अवश्य हुआ कि ब्रज और खड़ीबोली मिश्रित हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्दों का विशेष समावेश होने लगा और हिन्दी की नवीन शैली का जन्म हुआ, जिसे बाद में, हिन्दी, दक्खिनी हिन्दी, रेखता आदि के नाम से अभिहित किया गया।

'रेखता' पद्य की भाषा का नाम था। राग-रागिनियों के मेल को संगीतशास्त्र में रेखता कहा जाता है। प्रतीत होता है, मिश्रित भाषा के स्वरूप का यह नाम वहीं से लिया गया है। ब्रजभाषा को महाराष्ट्र में 'ग्वालेरी' भी कहा जाता रहा है। सत्रहवीं शताब्दी में महिपतिबुआ ने मराठी में 'भक्ति-विजय' नामक सतचरित्र लिखा है। उसमें उन्होंने नाभाजी के भक्तमाल की ब्रजभाषा को 'ग्वालेरी' कहा है।[1] मुसलमान शासकों ने दिल्ली से पृथक् शैली में 'दक्खिनी' का विकास किया। जबतक उसमें देशी शब्द प्रचुर रहे, वह हिन्दी बनी रही और जब विदेशी शब्दों की प्रचुरता बढ़ी, उर्दू हो गई।

महाराष्ट्र के संतों ने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी उत्साह से रचना की है और यह उनके हृदय की राष्ट्रीय मंगल-भावना का परिणाम है कि मराठीतर जनता भी उनके उपदेशों से लाभान्वित होती रहती है। उनकी वाणी का रसास्वाद करने के पूर्व, हमें महाराष्ट्र में प्रचलित मुख्य संत-सम्प्रदायों से परिचित हो जाना चाहिए।

---

१. **नाभाजी विरंची अवतार। तेणे संत चरित्र ग्रन्थ थोर**
ग्वालेरी भाषेंत लिहिला असे। (महाराष्ट्र सारस्वत), पृष्ठ ६२३।

तीसरा अध्याय

महाराष्ट्र के प्रमुख संत-सम्प्रदाय

सामान्य जनता में सांसारिकता से विरक्त परमतत्वान्वेषक को 'संत' कहने की परिपाटी है। परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में निर्गुण ब्रह्मोपासकों को 'संत' और सगुण ब्रह्मोपासकों को 'भक्त' नाम से अभिहित करने की परिपाटी है। स्वर्गीय बड़थवाल ने इसकी उत्पत्ति पालि भाषा के उस शांत शब्द से मानी है, जिसका अर्थ निवृत्तिमार्गी या विरागी होता है। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यह सत् शब्द का बहुवचन हो सकता है, जिसका अभिप्राय एकमात्र सत्य में विश्वास करनेवाला अथवा उसका पूर्णतः अनुभव करनेवाला व्यक्ति समझा जाता है।[1] इसीसे मिलती-जुलती बात पं० परशुराम चतुर्वेदी भी कहते हैं—"संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है, जिसने सत्‌रूपी परमतत्त्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्‌रूप हो गया हो, जो सत्यस्वरूप नित्य सिद्धवस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखंड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो, वही संत है।[2] 'संत' के इस रूप को समझ कर भी हिन्दी वाङ्मय में केवल निर्गुणवादी को संत कहने की परिपाटी चल पड़ी है, जो केवल व्यावहारिक मात्र कही जा सकती है। 'परम सत्य' का साधक चाहे अपने 'पिंड' में 'उसके' दर्शन करे, चाहे पिंड से बाहर सृष्टि के अणु-अणु में 'उसका' स्पंदन अनुभव करे, संत ही है। सगुण और निर्गुण में विभाजक रेखा खींच कर एक को 'भक्त' और दूसरे को 'संत' कहने से इतिहास-लेखन में सुविधा हो सकती है, तथ्य-ग्रहण में नहीं।

मराठी-साहित्य में 'संत' शब्द व्यापक अर्थ में व्यवहृत होता है। वहाँ विष्णु के अवतार 'राम' के उपासक तुलसीदास संत हैं और ब्रह्म के प्रतीक 'राम' का नामस्मरण करनेवाले निर्गुणी कबीर भी संत हैं। वहाँ भक्त और संत के बीच कोई भेद नहीं माना

---

१. **हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय—प्रस्तावना, पृष्ठ ४।**

२. **उत्तर भारत की संत-परम्परा, पृष्ठ ४।**

गया। धुंडा महाराज ने विगतवर्ष (सन १९५४ में) मराठवाड़ा संत-साहित्य-परिषद् में कहा था—"जिसमें मानव जाति के हृदयों में ईश्वरभाव, सद्धर्मनिष्ठा, नैतिकता, परधर्म सहिष्णुता, अन्तर्मुखता, सेवा, त्याग, प्रेम आदि दैवी गुण जागृत होते हैं, वे सब संत वाङ्मय हैं।"[1] 'वैकुण्ठवासी संत' जनता की आत्मा में परमात्मा की तड़पन पैदा करने के लिए भूलोक में आते हैं। उनका यही साध्य है और उस तक पहुँचने के लिए उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार भिन्न-भिन्न साधन प्रस्तुत किये हैं। उन्हीं साधनों के अनुसार उनके 'पंथ' हो गये हैं। पंथों की विभिन्नता में गन्तव्य की एकता निस्संदेह है। संत नामदेव ने अपने एक अभंग में संत के लक्षणों का वर्णन किया है। उनके मत से जो सब प्राणियों में परमात्मा को देखता है, जो सोने को मिट्टी और जवाहरात को पत्थर समझता है, जिसने अपने हृदय से क्रोध और वासना को हटा दिया है, जो शांति और क्षमा को मन में स्थान देता है, जिसकी वाणी भगवान का नाम लेती रहती है, वह संत है।"

जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलनभाव को साध्य मानकर लोक-मंगल की कामना करता है, उसे हम 'संत' की श्रेणी में रखते हैं। महाराष्ट्र में समय-समय पर जो धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं, उसका यहाँ विहंगावलोकन किया जाता है।

उत्तर भारत से जब आर्य महाराष्ट्र में आकर बसे तब अपने साथ वैदिक धर्म की परम्परा लेकर आये। और वहाँ उसीकी प्रतिष्ठा हुई। उसके पश्चात् जब उत्तर में अहिंसा के तत्व को लेकर जैन और बौद्ध मतों का उदय और प्रचार हुआ, तब वे भी महाराष्ट्र में संचरित हो गये। यद्यपि जैन मत बौद्धमत के पूर्व ही प्रादुर्भूत हो चुका था, तोभी महाराष्ट्र में पहले बौद्ध मत का ही प्रवेश हुआ। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व सातवाहन-सम्राटों के समय में महाराष्ट्र में बौद्धपंथ की महायान शाखा ने जनता में धर्मोपदेश दिया। महायान शाखा में बुद्ध और बोधिसत्व की भक्तिपूर्ण पूजा मोक्ष-प्राप्ति का एक साधन मानी जाती है। उसमें भक्ति को ज्ञान से अधिक महत्व दिया जाता है। पौराणिक मत के अनुसार उसमें देवताओं की कल्पना है। बुद्ध और बोधिसत्व के अनेक अवतार माने गये हैं, जिनकी संख्या अस्सी हजार है। इसके अतिरिक्त शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि पौराणिक देवताओं का भी उसमें समावेश है। यही कारण है कि सामान्य जनता उसके प्रति सहानुभूति रख सकी। महाराष्ट्र में ठाणे, रत्नागिरि, कुलाबा, कोंकण, पुणे, नाशिक, औरंगाबाद, सातारा आदि स्थानों में बौद्ध-गुफा-मंदिर हैं, जिन्हें महाराष्ट्र में 'लेण' कहते हैं। प्रत्येक 'लेण' एक ही चट्टान को काटकर बनाई जाती है। ये बौद्ध चैत्य हैं। इनमें बौद्ध मूर्त्ति और चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने पाये जाते हैं।

---

१. प्रतिष्ठान (जुलाई १९५४) पृष्ठ १२।

महाराष्ट्र में बौद्धमत के पश्चात् जैनमत का प्रवेश हुआ। इस पंथ में अहिंसा और भिक्षावृत्तियुक्त परिव्रजा को श्रेष्ठ माना जाता है।

इस पंथ के संस्थापक महावीर 'जिन' की पदवी से विभूषित किये गये हैं, जिसका अर्थ है—इन्द्रियविजयी। तप और इन्द्रिय-दमन पर उनका विशेष आग्रह है। उपवास तप का ही एक अंग है। यति और गृहस्थ दोनों को उसे करने का उपदेश दिया जाता है। महावीर चौबीसवें तीर्थंकर माने जाते हैं। जो भवसागर तरने का मार्गदर्शन करता है, उसे तीर्थंकर कहते हैं। इस पंथ के श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेद हैं। श्वेत वस्त्रधारी श्वेताम्बर और वस्त्रविहीन दिगम्बर कहे जाते हैं। परन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय में पहले संन्यासी भले ही नग्न रहा करते हों; पर सामान्य जनता वस्त्र-धारण करती रही है। श्वेताम्बर के भी दो उपभेद हैं—एक मूर्त्तिपूजक और दूसरे स्थानकवासी। श्वेताम्बर में मठ की दृष्टि से साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—ये चार वर्ग हैं। दिगम्बर में साध्वी को स्थान नहीं है।

महाराष्ट्र में बौद्धों की 'लेण' की अनुकृति पर जैनियों की भी लेणें पाई जाती हैं; परन्तु उनकी संख्या साठ-सत्तर से अधिक नहीं है। बौद्धों के समान जैनियों की लेणें बड़ी नहीं हैं। वे पुणें, नासिक और खानदेश में यत्र-तत्र हैं। लेण में महावीर की मूर्ति सिंहासन-स्थित होती है, पास ही उनके शिष्य गौतम स्वामी, चार नाग और पारसनाथ की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। महाराष्ट्र में जितनी प्राचीन जैनी लेणें हैं, उतने प्राचीन जैन-मंदिर नहीं हैं। महाराष्ट्र में बौद्धचैत्यों की अधिक संख्या होने से सिद्ध होता है कि वहाँ जैनमत का अधिक प्रभाव और प्रचार नहीं हो पाया।

महाराष्ट्र के दक्षिण भाग में वीर शैव अर्थात् लिंगायत पंथ भी प्रचलित था। इसकी स्थापना कर्नाटक में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुई। बसवेश्वर इसके संस्थापक हैं। उस समय द्रविड़ देशों में शैव और वैष्णव मत का प्रचलन था। बसव ने वहीं के शैवमत से अपने लिंगायत पंथ की प्रेरणा ग्रहण की। 'वीर शैवाचार प्रदीपिका' में इस पंथ के आचार-धर्म का निर्देश है। सभी वर्णों को धर्म-मर्यादा के भीतर आचरण कर मोक्ष प्राप्त करने का इसमें उपदेश है। ब्राह्मण को लिंगायत होने के लिए तीन वर्ष, क्षत्रिय को छह वर्ष, वैश्य को नव वर्ष और शूद्र को बारह वर्ष उम्मीदवारी करनी पड़ती थी। शिवलिंग-पूजक जाति भेदातीत माना जाता था। पहले सभी वर्णों के व्यक्ति इसकी ओर आकृष्ट हुए; परन्तु जब इसमें ब्राह्मणों की अपेक्षा अन्य जातियों का प्राबल्य हुआ, तब ब्राह्मण इसमें से क्रमशः छुटने लगे। साम्प्रत इस मत के अनुयायियों में वैश्यों की संख्या अधिक है।

लिंगायतों में वर्ण-भेद पाया जाता है। परन्तु अहिंसा-तत्त्व को जैन और बौद्ध मतों के समान ही महत्त्व दिया जाता है। यह मत वैदिक मत के बहुत सन्निकट है।

चातुर्वर्ण्य का निषेध और शैवव्रत का पालन इसके प्रारंभिक मुख्य लक्षण थे ; पर बाद में तो इसमें भी जाति-भेद प्रविष्ट हो गया। जंगम लिंगायतों में श्रेष्ठ और पूज्य ब्राह्मण माना जाता है। वह छोटी जाति के लिंगायत के यहाँ भोजन नहीं करता। यह पंथ महाराष्ट्र की सीमा पर ही रहा।

महाराष्ट्र में जिन प्रमुख सम्प्रदायों ने जनता को अधिक प्रभावित किया, वे हैं---

(१) नाथ-सम्प्रदाय,
(२) महानुभाव-सम्प्रदाय,
(३) वारकरी-सम्प्रदाय,
(४) दत्त-सम्प्रदाय,
(५) समर्थ-सम्प्रदाय।

इनमें वारकरी-सम्प्रदाय का प्रभाव सर्वव्यापक है। इसने पूर्ववर्ती नाथ-सम्प्रदाय को अपनेमें समाहित कर लिया है और परवर्तियों को इतना अधिक प्रभावित किया है कि उनमें तात्त्विक भेद प्रायः बहुत ही कम रह गया है, जो आगे होनेवाले सिंहावलोकन से स्पष्ट हो जायगा।

(१) नाथ-सम्प्रदाय

वारकरी-सम्प्रदाय के स्तम्भ ज्ञानेश्वर अथवा ज्ञाननाथ अपनी गुरु-परम्परा में आदिनाथ—मत्स्येन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गैनीनाथ—निवृत्तिनाथ का उल्लेख करते हैं। अतः स्पष्ट है कि ज्ञानेश्वर के पूर्व महाराष्ट्र में 'नाथ-मत' प्रचलित था। मराठी के प्रथम ग्रन्थ 'विवेकसिन्धु' के रचनाकार मुकुन्दराय नाथपंथी कहे जाते हैं और मुकुन्दराय का काल बारहवीं शताब्दी माना जाता है। अतएव मुकुन्दराय के पूर्व यह मत महाराष्ट्र में प्रतिष्ठा पा चुका होगा। महाराष्ट्र में 'गोरख-अमर-संवाद और गोरख-गीत' क्रमशः गोरखनाथ और उनके शिष्य गैनीनाथ रचित माने जाते हैं। गोरखनाथ के कालनिर्णय से उनके मत का महाराष्ट्र में 'संचार-काल' निश्चित हो सकता है। पर गोरखनाथ का व्यक्तित्व इतना व्यापक और प्रभावशाली रहा है कि देश के कोने-कोने से उनका संबंध जोड़ा जाता है। जगह-जगह उनके मठ, मंदिर, समाधि-स्थल आदि बिखरे हुए हैं। ब्रिग्ज उन्हें पंजाबी, ग्रियर्सन काठियावाड़ी और मोहनसिंह पेशावरी कहते हैं। परन्तु उन्हें बंगाली और गोदावरी तीरस्थ चन्द्रगिरिवासी दाक्षिणात्य भी कहा जाता है। अधिक मत उन्हें उत्तर भारत के मानने के पक्ष में हैं। उनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक अनुमाना जाता है। महाराष्ट्र में

१. देखिए—नाथ-सम्प्रदाय, पृष्ठ ९६—१०२।

नाथ-सम्प्रदाय का संचार बारहवीं शताब्दी निर्धारित किया गया है और यदि गोरखनाथ के द्वारा ही महाराष्ट्र में नाथ-मत प्रचलित हुआ है तो उनका समय ईसा की दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी हो सकता है। डा० बड़थवाल विक्रम की ग्यारहवीं और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी विक्रम की दसवीं शताब्दी मानते हैं।

वारकरी संतों की गुरु-परम्परा 'आदिनाथ' से प्रारम्भ होती है। और नाथ-सम्प्रदाय में आदिनाथ ही उसके प्रवर्तक माने जाते हैं। ये आदिनाथ कौन हैं—इसका निश्चित ज्ञान नहीं है। ऐतिहासिक शोध से कुछ भी प्राप्त नहीं है। धार्मिक विश्वास है कि आदिनाथ भगवान शिव ही हैं। 'गोरख-विजय' में एक कथा है कि एक दिन शिवजी समुद्र के किनारे एक पहाड़ी पर पार्वती को जीवन-मृत्यु-संबंधी महाज्ञान नामक उपदेश दे रहे थे। उसका परिणाम यह कहा जाता है कि जो उसे सुनता है, वह मृत को बचा सकता और देवताओं को अपने अधीन कर सकता है। जिस समय शंकर-पार्वती महाज्ञान की चर्चा में रत थे, मत्स्येन्द्रनाथ वहीं तपस्या कर रहे थे और उसे सुन रहे थे। जब शिवजी ने यह जाना, तब उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ को शाप दे दिया कि यह महाज्ञान तू नारी-माया में फँसकर खो देगा। मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) ने गोरखनाथ आदि शिष्यों में 'वह ज्ञान' संचरित कर दिया। पार्वती को विश्वास था कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो नारी के वशीभूत न हो। पार्वतीजी परीक्षाप्रिय हैं। उन्होंने मीननाथ और गोरख आदि की परीक्षा ली। गोरखनाथ को छोड़ कर सभी मायावश हो गये। जब मीननाथ कदलीपत्तन में जाकर नारी-जाल में फँसे, तब गोरखनाथ द्वारा उनका उद्धार हुआ।

इस कथा से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नाथ मत शैवमत से निकला है और गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ थे तथा गोरखनाथ चरित्र की उच्चता में अपने गुरु के भी गुरु थे। गोरख मत्स्येन्द्रनाथ के सचमुच शिष्य थे, यह भी अकाट्य रूप से नहीं कहा जा सकता। 'गोरखबानी' से ज्ञात होता है कि गोरख ने लोक-मर्यादा की दृष्टि से ही मत्स्येन्द्रनाथ को अपना गुरु मान लिया था। वे कहते हैं—

> 'अवधू ईश्वर हमारे चेला भणीजै मछीन्द्र बोलिए नाती
> निगुरी पिरथी परलै जाती ताथैं हम उलटी थपना थापी।'[1]

(हे अवधूत, शिव हमारे चेला हैं, मत्स्येन्द्रनाथ नाती चेला, जो वस्तुतः उल्टी स्थापना है। यदि हम ऐसा न करते तो गुरुहीन पृथ्वी प्रलय में चली जाती।) क्या इसीलिए 'शिव' को कल्पित गुरु मानकर गोरख ने अपनी गुरु-परम्परा चला दी? गोरख-विजय की 'कथा' से भी यह ध्वनि निकलती है कि गोरखनाथ अपने गुरु से आत्मबल और संयम में अधिक दृढ़ थे। हो सकता है, लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए ही उन्होंने 'मत्स्येन्द्रनाथ' का शिष्यत्व स्वीकार किया हो।

---

1. **गोरखबानी पृष्ठ ४०।**

नाथमत के पूर्व बौद्ध और जैन मत का प्रचार हो चुका था। अतः इसमें सदाचार, अहिंसा आदि प्रमुख उपकरणों के कारण इसे बौद्ध और जैन मतोत्पन्न भी कहा जाता है।

गोरखनाथ की गणना वज्रयानी बौद्धों के चौरासी सिद्धों में की जाती है। बुद्ध भगवान के निर्वाण के पश्चात् उनका मत महायान और वज्रयान शाखाओं में बिखर चुका था। वज्रयान महायान का ही उत्तररूप कहा जाता है। महायान में बुद्ध 'उद्धारक' और वज्रयान में 'वज्रगुरु' के रूप में प्रचारित किये गये। तांत्रिक सिद्धि में जो प्रवीण होता, वह 'वज्रगुरु' कहलाता था। वज्रयान सम्प्रदाय के नैतिक शैथिल्य के कारण गोरखनाथ ने नूतनपंथ स्वीकार किया, जिसमें बौद्धमत के कुछ तत्त्व, विशेषकर मनोलय योग (शून्य-सम्पादन) का स्वभावतः संचार हो गया। इस प्रकार नाथ-मत का बौद्धमत से संबंध जुड़ जाता है। और चूँकि नाथपंथियों के नाम के साथ जैनी साधुओं के समान ही 'नाथ' शब्द जुड़ा रहता है, इसलिए यह कहा जाने लगा कि इसकी उत्पत्ति जैनमत से है। परन्तु 'नाथ' शब्द के सादृश्य के कारण नाथ-मत को जैनमत से नाथना उचित प्रतीत नहीं होता। फिर भी जैन-मत से नाथमत का कोई सम्पर्क ही न रहा हो, सो बात नहीं है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र मीननाथ और पारसनाथ की गणना जैन संतों में की जाती है और बंबई के एक जैन मंदिर में गोरखनाथ की मूर्ति भी है। नाथ-मत में मलधारणाव्रत-जैसे संस्कार को देखकर जैन-प्रभाव की कल्पना होती है।

सत्य तो यह है कि हमारे देश के विभिन्न मत-सम्प्रदाय एक दूसरे के इतने सन्निकट हैं कि वे परस्पर आचार-विचार का आदान-प्रदान करते रहे हैं। प्रत्येक नूतन सम्प्रदाय अपने पूर्ववर्ती सम्प्रदायों का किसी-न-किसी रूप में ऋणी रहता आया है। नया मत ग्रहण करते समय जनता अपने पूर्व विश्वास और आचार-धर्म को शत-प्रतिशत नहीं त्याग पाती। प्राचीन संस्कारों के प्रति मानव-मन की सहज ममता रहती है।

नाथ शब्द की उत्पत्ति के संबंध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"ना का अर्थ है अनादि सम और थ का अर्थ है भुवन त्रय का स्थापित होना। इस प्रकार नाथ-मत का स्पष्टार्थ वह अनादि धर्म है, जो भुवन त्रय की स्थिति का कारण है। श्री गोरख को इसी लिए नाथ कहा जाता है। फिर ना शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म जो मोक्षदान में दक्ष है, उनका ज्ञान कराना और थ का अर्थ है (अज्ञान के सामर्थ्य को) स्थगित करनेवाला। चूँकि नाथ के आश्रयण से इस नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरुद्ध होती है, इसलिए 'नाथ' शब्द का व्यवहार किया जाता है।"[1]

नाथ-पंथी नाथ, जोगी, दर्शनी और कनफटा कहलाते हैं। 'नाथ' क्यों कहलाते हैं, इसकी चर्चा की जा चुकी है। 'योगी' इसलिए कहलाते हैं कि ये हठयोग—(यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि) की साधना करते हैं। 'दर्शनी' इसलिए कहलाते हैं कि ये कानों में भारी कुंडल धारण करते हैं और 'कनफटा' इसलिए कहलाते हैं कि इनके कान फटे हुए होते हैं। महाराष्ट्र में इन्हें गोसावी भी कहते हैं। नाथों में कान फाड़ने की प्रथा कैसे और कब प्रारम्भ हुई, कहना कठिन है। कोई गोरखनाथ को इसका

१ नाथ-सम्प्रदाय, पृष्ठ ३।

जन्मदाता कहते हैं, तो कोई मत्स्येन्द्रनाथ को। एक किंवदंती है कि जब मत्स्येन्द्रनाथ ने शिव भगवान के आदेश से योग का प्रचार प्रारम्भ किया, तब उन्होंने शिवजी को कनफटे रूप में विशाल कुंडल धारण किये हुए देखा। दूसरी किंवदन्ती है कि जब मत्स्येन्द्रनाथ मत्स्यरूप में थे, तब उनके कान फटे हुए थे। इससे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने अनुयायियों में यह प्रथा प्रचलित की होगी।

गोरखनाथ ने जोगियों की कई श्रेणियाँ निर्दिष्ट की हैं—जैसे आरम्भ जोगी, परिचय जोगी और निष्पत्ति प्राप्त जोगी। आरम्भ जोगी 'उन्मन' (समाधि की एक अवस्था) में खेलता है और 'अहनिसि' (अहर्निश) देवता (ब्रह्म) के साथ मेल करता रहता है तथा 'निसपति' (निष्पत्ति) जो अग्नि और जल में जैसे लोहा शुद्ध होता है वैसे ही 'नाना कठोर' साधनाओं द्वारा शुद्ध हो जाता है।[1]

गोरख के नाम पर चलनेवाले तंत्र-मंत्रों से भी गोरख और उनके मत का जनता पर आतंक छा जाना स्वाभाविक था। 'मंत्र-तंत्र' के अतिरिक्त नाथपंथी योग-साधना पर भी जोर देते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि योग के अंग हैं। इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों पर नियंत्रण रख मूलाधार स्थित कुंडल को जागृत करके ब्रह्मरंध्र (दशम द्वार) में समाधिस्थ होना योगी का परम लक्ष्य माना जाता है। बिन्दु (वीर्य) रक्षा तथा समाहार उसका आदर्श कर्म है। 'गोरख' कहते हैं—

'काछ का जति मुष का सती
सो सत पुरुष उतमों कथी।'[2]

लंगोट का पक्का और मुख का सच्चा उत्तम सत् पुरुष कहा जाता है।

नाथमत में स्वर-विज्ञान का भी महत्त्व है। गोरखबानी में कहा है—

'सूरजे खायबा, चन्द्र सोयबा
उभै न पीबा पानी।' (पृष्ठ ६५)

जब दाहिना स्वर चले तब खाना और बायाँ चले तब सोना तथा दोनों के चलते समय जल न पीना चाहिए।

इस मत में गुरु-महिमा का बड़ा महत्त्व है। परन्तु जो गुरु कथनी और करनी में एक है, वही गोरख को मान्य है। उन्होंने कहा है—

'रहता हमारे गुरु बोलिये,
हम रहता का चेला,
मन मानै तो संग फिरै,
नहिं तर फिरै अकेला।'

माया को मारकर सुषुम्नानाड़ी के मार्ग से कुंडलिनी शक्ति को ब्रह्मांड में ले जाकर ब्रह्मरस का पान करके योगी संतुष्ट होता है।

---

१. **गोरखबानी।**

२. **गोरखबानी, पृष्ठ ४२।**

शक्तियुक्त शिव को अन्तिम सत्य माना गया है—

'शिवस्याभ्यांतरे शक्तिः शक्तेरभ्यंतरे शिवः ।

अंतरम् नैवजानीयात् चन्द्रचंद्रिकयोरिव ।' (गोरख सिद्धांत-संग्रह, पृष्ठ ३१)

शिव और उनकी शक्ति का अन्योन्य संबंध है। शंकराचार्य जहाँ ब्रह्म की माया से भासमान् जग को असत्य कहते हैं, वहाँ गोरख शिव की माया से भासमान् जगत् को सत्य मानते हैं। इसीसे वे जग का पूर्णभोग करना चाहते हैं। गोरख के शिव अपनी शक्ति से बिलकुल अभिन्न हैं। जग के पिंड ब्रह्मांड के ही अंग हैं। पिंड में ही ब्रह्मांड समाया हुआ है।

नाथ-मत में कार्य-कारण की अभिन्नता है। उत्पत्ति के पूर्व कार्यरूपी जगत् कारणरूपी शिव में समाविष्ट समझा जाता है। व्यक्त और अव्यक्त दोनों अवस्थाओं में शिव और उनकी शक्ति जगत् पिंडों में व्याप्त रहती है। 'आत्मा और जगत् के मध्य संचरित रहने वाले शिव के साथ ऐक्य अनुभव करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। यही सामरसीकरण कहलाता है। ब्रह्मांड के मूल में कुंडलिनी शक्ति रहती है और पिंड के मूल में भी वह सुप्तावस्था में रहती है। साधक उसको जाग्रत कर परमानन्द लाभ करता है।'[1]

कुंडलिनी की जागृति के लिए मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग की साधना आवश्यक होती है। नामदेव ने योग की साधना का उल्लेख किया है—

'इड़ा पिंगुला अउर सुखमना,
पउनै बंधि रहाउगो।
चंदु सूरजु दुइ सम करि राखउ,
ब्रह्म जोति मिलि जाउगो।'

नाथों के मेखला, शृङ्गी, कंथा, कर्णमुद्रा, कौपीन, पुंगी, व्याघ्राम्बर, खड़ाऊँ, झोली तथा कनछेदन बाह्याचार और रूप हैं। ये भिक्षा के समय एकतारा बजाते, 'अलख निरंजन' कहते हैं और पुंगी बजाकर भोजन करते हैं।

नाथ-मत में 'कैवल्यमुक्ति' का मार्ग सभी वर्णों और स्त्री-पुरुषों के लिए समान रूप से मुक्त है।

महाराष्ट्र में नाथ-मत के प्रतिष्ठापक गोरखनाथ के संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रंथों के अतिरिक्त मराठी में 'अमरनाथ संवाद' और ओवीबद्ध 'गोरख गीता' ग्रंथ भी मिलते हैं। 'गोरख के इन दो ग्रंथों के अतिरिक्त नवनाथों की भी दक्षिण में बहुत प्रसिद्धि है। परन्तु ये नवनाथ कौन हैं, निश्चित नहीं कहा जा सकता। भिन्न-भिन्न ग्रंथों में इनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। 'महार्णव तंत्र' के अनुसार उनके नाम है—गोरखनाथ, जालंधरनाथ, नागार्जुन, सहस्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ। नाथ-सम्प्रदाय की बहुमान्य गुरु-परम्परा निम्नलिखित अनुसार है —

१. **प्रसाद (मराठी) फरवरी, १९५४, पृष्ठ २५-२६ ।**
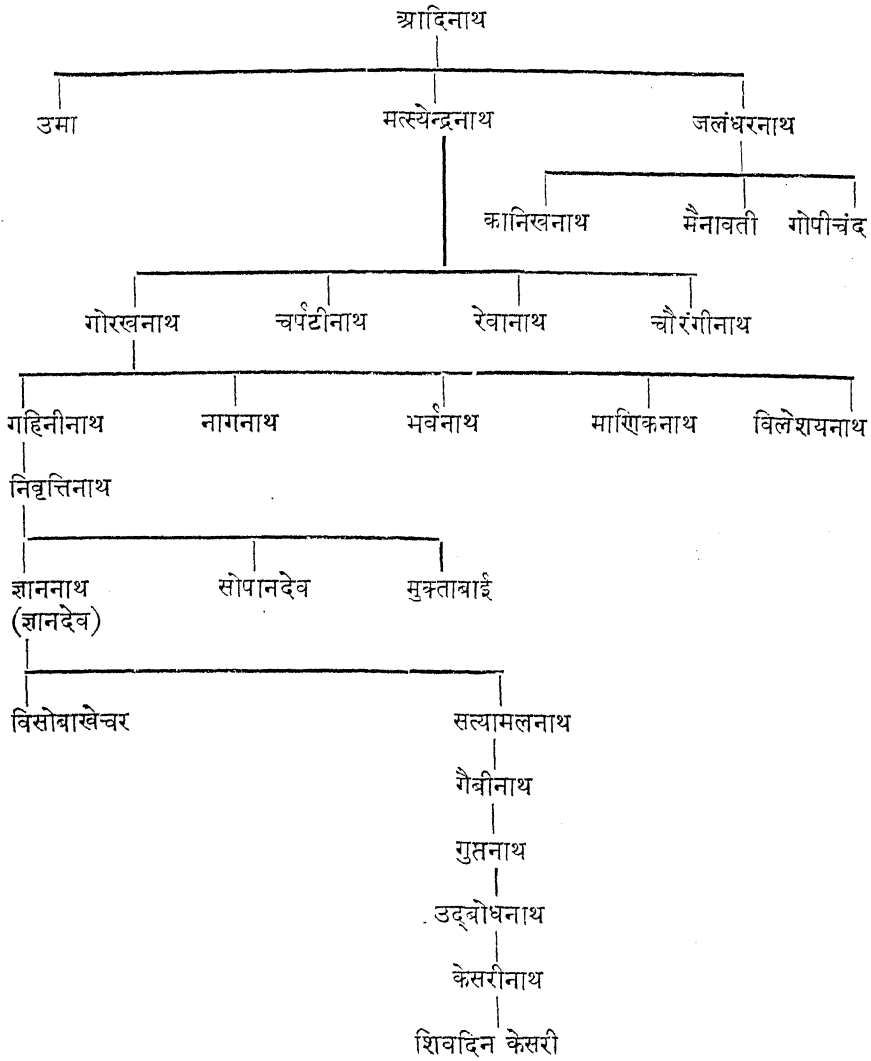
परन्तु श्रीदत्तो वामन पोतदार ने भारत-इतिहास-संशोधन मंडल, पुणे के चतुर्थ सम्मेलन वृत्त में (शके १८३८ पृष्ठ २० पर) गोरखनाथ के पूर्व की थोड़ी भिन्न परम्परा इस प्रकार दी है—

'आदिनाथ
|
उदोनाथ
|
मछीन्द्रनाथ
|
गोरखनाथ
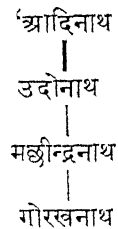
यह परम्परा श्री पोतदार को किसी प्राचीन ग्रंथ में प्राप्त हुई है, 'मछीन्द्रनाथ' (मत्स्येन्द्रनाथ) और आदिनाथ के बीच 'उदोनाथ' का कहाँ से प्रवेश हो गया? पर जिस प्राचीन ग्रंथ की 'ओवी' से यह परम्परा उन्हें प्राप्त हुई है, उसीमें उमानाथ को ही 'जगदम्बा' कहा गया है। अतएव आदिनाथ (शंकर) ने पहले जगदम्बा (पार्वती) को उपदेश दिया और फिर उनसे 'मछीन्द्रनाथ' ने प्राप्त किया। नाथ-सम्प्रदाय में पार्वती को 'उदोनाथ' भी कहते हैं। अतएव पहली गुरु-परम्परा में जहाँ 'मछीन्द्रनाथ' आदिनाथ के सीधे शिष्य होते हैं, वहाँ दूसरी परम्परा में उन्हें 'उदोनाथ' का शिष्यत्व स्वीकारना पड़ेगा। यही केवल अन्तर है।

यद्यपि चोखामेला तक नाथ-परम्परा दी गई है, परन्तु वास्तव में यह ज्ञाननाथ से आगे नहीं बढ़ती। (यों ज्ञानेश्वर भी अंत तक 'नाथ' नहीं रहे। वारकरी-मत के अन्तर्गत 'भागवत मत' के पोषक बन गये।) महाराष्ट्र में त्र्यंबक के पास ब्रह्मगिरि पर गोरखनाथ की गुफा, गैनीनाथ का मठ और निवृत्तिनाथ की समाधि है। सातारा जिले में गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ की समाधियाँ हैं।

महाराष्ट्र में नाथ-पंथ के लोप हो जाने के दो कारण श्री मुकाशी ने दिये हैं। 'पहला यह कि वाह्याचार पर अधिक ज़ोर देने से मूल शुद्ध योगाभ्यास का अनुभव और बोध पीछे रह गये तथा साम्प्रदायिक विकृति बढ़ गई। दूसरा यह कि महाराष्ट्र में यह मत चला ही था कि वारकरी पंथ के प्रभावी प्रवाह में उसे विलीन होना पड़ा।'[1] परन्तु हमारे मत से इसके न पनपने का कारण इसका मूलतः ज्ञानमार्गी होना और 'बिन्दु-रक्षा' पर अत्यधिक आग्रह करना है। यद्यपि गृहस्थाश्रम में योग-साधना का स्पष्ट निषेध नहीं है, तो भी गृहस्थ योगी समाज में समादृत नहीं होता। जनसाधारण का मन 'अलख' कहने से नहीं भरता, वह अलख को लखना चाहता है। महाराष्ट्र के दक्षिण में—तमिल देश में—ईसा की चौथी शताब्दी से अलवार सगुण उपासना की साधना कर रहे थे। वे अपने नाम-संकीर्तन-यज्ञ द्वारा यह प्रचारित कर रहे थे कि भगवान के चरणों में अपने हृदय का प्रेम अर्पित करने से भव का ताप मिटता और मोक्ष प्राप्त होता है। इसके लिए किसी कर्मकांड की आवश्यकता नहीं, नाम-स्मरण ही बस है। वर्ण, जाति, (स्त्री-पुरुष), गृहस्थ ब्रह्मचारी, किसी का भी 'साहब' के दरबार में प्रवेश निषिद्ध नहीं है। जिस समय अलवार भाव-विभोर हो कीर्तन करते थे, हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष भक्ति-रस में मग्न हो जाते थे। अलवारों के भजनों का संग्रह 'प्रबन्धम्' के नाम से हुआ है और वह 'तमिलनाड' में अति प्रसिद्ध है, अति समादृत है।

क्रमशः अलवारों की यह नाम-संकीर्तन-भक्तिधारा महाराष्ट्र में संचरित हो गई। भगवान को स्थूल रूप में देखने का प्रलोभन कम आकर्षक न था। नाथाभिमुख महाराष्ट्र-जनता ने ज्ञानेश्वर काल में ही नामदेव और ज्ञानदेव के नेतृत्व में अलवारों के नाम संकीर्तन-यज्ञ से प्रभावित हो, 'पंढरपुर के विट्ठल' में साक्षात् भगवान के दर्शन किये।

---

१. **प्रसाद (मराठी) फरवरी, १९५४ पृष्ठ २८**

वारकरी संत जो अपनी गुरु-परम्परा नाथों से जोड़ते हैं, वह इसीलिए कि उनके संस्थापक ज्ञानेश्वर ने स्वयं अपनी गुरु-परम्परा नाथों से वर्णित की है। 'नाथ-पंथ ने शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त को योगमार्ग के अनुभव से ग्रहण करने का उपदेश दिया। इसीलिए ज्ञानेश्वर ने अद्वैत के साथ योग ग्रहण किया और उसमें भक्ति का समावेश कर महाराष्ट्र में भागवत धर्म का प्रारम्भ किया।'[1]

इस नूतन पंथ ने वैष्णवों और शैवों के संघर्ष का अंत कर दिया—

'तुका म्हणे भक्ति साठीं हरि हर
हरिहरा भेद नाहीं, नका करू वाद।'

(सकल संत-गाथा, पृष्ठ २६४)

(तुकाराम कहते हैं कि भक्ति के लिए हरि और हर हैं और हरि तथा हर में भेद नहीं है। फिर झगड़ा क्यों करते हो?)

(२) महानुभाव-सम्प्रदाय

जिस समय महाराष्ट्र में नाथ-मत वारकरी मत में विलीन हो रहा था, उसी समय ईसा की तेरहवीं शताब्दी में चक्रधर द्वारा प्रवर्तित महानुभाव-पंथ का प्रादुर्भाव हो रहा था। यह मत महाराष्ट्र में ही उत्पन्न होकर नहीं रह गया, उत्तर भारत और काबुल तक इसने प्रवास किया। इसे महानुभाव (महान् अनुभवः यस्य सः) के अतिरिक्त मानभाव, महात्मा, अच्युत, जयकृष्णी, भटमार्ग, परमार्ग आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। महाराष्ट्र में यह मानभाव और महात्मा पंथ, गुजरात में अच्युत और पंजाब में जयकृष्णी पंथ कहलाता है।

इसके संस्थापक चक्रधर स्वामी का जन्म गुजरात में ईसा सन् ११९४ में हुआ। ये सन् १२२३ के लगभग महाराष्ट्र में आये और सन् १२७४ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनका जीवन-चरित्र बड़ा रहस्यपूर्ण और रोचक है। इनका मूल नाम हरपाल देव था और ये गुजरात के विशाल देव राजा के पुत्र थे। कहा जाता है कि सन् ११५३ में जब इनकी असामयिक मृत्यु हो गई तब द्वारावती के चाँगदेव राउल ने देह-परित्याग करके इनके मृत शरीर में प्रवेश कर नवीन अवतार धारण किया। इन्हें द्यूत-क्रीड़ा का बड़ा नशा था। कई बार ये बहुत-सा द्रव्य हार चुके थे।

इस घटना के पश्चात् से हरपाल का मन संसार से उचट गया। एक दिन उसने पिता से कहा कि मैं रामटेक (नागपुर के निकट अत्यन्त मनोहर स्थल, जिसे कुछ विद्वान् मेघदूत का रामगिरि भी कहते हैं) में भगवान राम के दर्शन करने जाऊँगा। महाराष्ट्र के यादव राजाओं से गुजरात-राज्य का शत्रुभाव होने से पहले तो पिता ने आज्ञा नहीं दी। पर जब पुत्र ने विशेष आग्रह किया तब जाने की अनुमति दे दी। साथ में पिता ने जो अंगरक्षक दिये थे, उन्हें चतुराई से लौटाकर वह रामटेक न जाकर ऋद्धिपुर पहुँच गया। वहाँ उसने

1. महाराष्ट्र-परिचय, पृष्ठ २७६।

गोविंद प्रभु से मंत्रोपदेश ग्रहण किया। गोविंद प्रभु ने उसका नाम 'चक्रधर' रख दिया। अपने गुरु से शक्ति स्वीकार कर चक्रधर स्वामी सालबर्डी की रमणीय पहाड़ी पर गये और बारह वर्ष तक वहीं तप करते रहे। उसके पश्चात् आंध्र प्रान्त में भ्रमण करते समय उनका, घोड़े के व्यापारियों से, संपर्क हो गया और वे उन्हें वारंगल ले गये जहाँ व्यापारियों को अपने घोड़ों के व्यापार में लाभ हुआ। वहीं एक व्यापारी ने अपनी कन्या हंसा से उनका विवाह कर दिया। बहुत समय विलास में बीतने पर एक दिन किसी 'अवधूत' के दर्शन से पुनः उनमें विरक्ति जाग्रत हुई और वे घर से भाग खड़े हुए और विदर्भान्तर्गत अचलपुर पहुँच गये। अचलपुर से भ्रमण करते हुए मेहकर पहुँचे, जहाँ कुछ समय व्यतीत कर सिंहस्थ के लिए नाशिक रवाना हो गये। मार्ग में प्रतिष्ठान (पैठण) पहुँचकर इन्होंने संन्यास-दीक्षा ली। यहाँ नागाम्बिका नामक साधिका ने इनसे दीक्षा ली और ये यहीं ठहर गये। इसी समय से चक्रधर पूर्णरूप से विरक्त हो अपने मत का प्रचार करने लगे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

इनके शिष्यों की संख्या ५०० के लगभग है। उनमें नागदेवाचार्य, महीन्द्र, जनार्दन, दामोदर, भांडारेकर, बाइसा उर्फ नागाम्बिका और महदंबा प्रमुख हैं। महदंबा, नागदेवाचार्य की चचेरी बहिन थी। नागदेव के शिष्यों में दामोदर पंडित प्रसिद्ध गायनाचार्य और कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। नागदेव की शिष्य-परम्परा भी बड़ी है। यद्यपि जाति-भेद चक्रधर को मान्य न था, पर पंथ के प्रारंभ होने से तीन सौ वर्ष तक महानुभाव-मत ब्राह्मणों में ही फैलता रहा। बाद में अन्य जातियाँ भी उसमें सम्मिलित होने लगीं।

महानुभाव-पंथ के समय नाथ-मत प्रचलित था। अतएव उसपर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। महानुभाव-मत में नाथों के ज्ञान को अपनाकर भी भक्ति का बहिष्कार नहीं किया गया। यही नहीं, ज्ञान से भक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया। दोनों मार्गों को ईश्वरप्राप्ति का साधन माना गया। उनका विश्वास है कि निराकार भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए साकार रूप धारण करते हैं।

महानुभावों ने कृष्ण-भक्ति को अपनाया। श्रीकृष्ण, श्री दत्तात्रेय, द्वारावती के चांगदेव राउल, ऋद्धिपुर के गुंडम राउल और चक्रधर—ये 'पंच कृष्ण-अवतार' कहे जाते हैं। चक्रधर का नाम, रूप, लीला, चेष्टा, स्थान, श्रुति, स्मृति और प्रसाद-पंथ में

अतिप्रिय हैं। महानुभाव राम, वामन आदि को ईश्वर-अवतार नहीं मानते। इस मत में नाथों के समान ही नैतिक चरित्र पर बल दिया गया है। साधक के लिए चित्रांकित स्त्रीदर्शन भी निषिद्ध ठहराया गया है।[1] परन्तु नियम की यह कठोरता विशेष परिस्थितियों में टिक नहीं पाई। स्वयं चक्रधर स्वामी ने महदंबा नामक स्त्री को शिष्या-पद से गौरवान्वित किया था। जातिपाँति का बन्धन भी सिद्धान्त-रूप से महानुभावों को स्वीकार नहीं है। इसमें भी नाथों का प्रभाव देखा जा सकता है।

दर्शन के क्षेत्र में महानुभाव जीव, देवता, प्रपंच और परमेश्वर—इन चार पदार्थों को अनादि मानते हैं।

जीव :—गीता के कथनानुसार चक्रधर ने भी जीव की नित्यता मानी है।

देवता :—परमेश्वर की आज्ञा से देवता सृष्टि का संचालन करते हैं। उनके नौ समूह हैं। ब्रह्मांड में उनकी संख्या ८१ करोड, ११ लाख और १० है। वे नित्यबद्ध और मर्यादित शक्तियुक्त हैं। मुक्ति देने की क्षमता उनमें नहीं है। सृष्टि के प्राणियों को उनके कर्मानुसार सुख-दुःखमय फल प्रदान करते रहते हैं।

प्रपंच (जगत्) :—इसका अन्तिम भाग परमाणु प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। इसके दो भाग हैं—कार्य और कारण रूप। कारण-रूप जगत् नित्य है। कार्य-रूप जगत् अनित्य है—उसका नाश होता है।[2] न्याय-दर्शन में भी जगत् की नित्यता प्रतिपादित की गई है।

परमेश्वर :—नित्य है। इसे अन्तिम सत्य कहा गया है। यह स्वयं, प्रकाश, व्यापक, आनंदमय, सर्वसाक्षी, ज्ञानमय और सर्वकर्त्ता है। महानुभाव पेट और पीठ के समान परमेश्वर और ब्रह्म को एक ही परमेश्वर के दो अंग मानते हैं।

जीव और माया—जीव को प्रेरित करनेवाली माया है। जबतक 'जीव' मुक्त नहीं हो जाता, वह उसके साथ संलग्नरूप से लगी रहती है।[3] जीव कर्मों का शुभाशुभ फल भोगता रहता है। जीव के शुद्ध स्वरूप को ईश्वर और माया के अतिरिक्त और कोई नहीं देख सकता। जीव कृत कर्मों के फल-प्रदाता देवता माने गये हैं। उनकी नियुक्ति ही इसीलिए की गई है। देवता जबतक जीवों को नहीं देख सकेंगे, तबतक वे उनके कर्मों का फल कैसे दे सकेंगे? अतएव प्रत्येक देवता का 'मल' वासना-रूप 'जीव' धारण करता है जिससे देवता जीव के व्यापारों के दर्शन करते हैं। प्रत्येक जीव ८१०१२५००१० 'मल' से आवृत्त है। सूक्ष्म शरीर की रचना के पश्चात् वह स्थूल शरीर धारण कर लेता है।

---

1. **'स्त्री दर्शनमात्रेंचि माजवी' चित्रींची स्त्री न पहावी (आचार ६-१०)**
(स्त्री दर्शनमात्र से ही उन्मत्त बनाती है। इसलिए चित्र-लिखित स्त्री को भी न देखना चाहिए।)
2. **ब्रह्म-विद्या शास्त्र (मुकुंदराज), पृष्ठ २९।**
3. **वही, पृष्ठ २३।**

जीव और ईश्वर—महानुभावों के मत से 'जीव' को मुक्त करने का सामर्थ्य देवताओं में नहीं है ; क्योंकि वे स्वयं नित्यबद्ध हैं। ईश्वर ही उन्हें मोक्ष-प्रदान कर सकता है। परन्तु जबतक 'जीव' अविद्या से जकड़ा हुआ है, वह ईश्वर का परमानन्द लाभ नहीं कर पाता। यहाँ विद्या और अविद्या को समझ लेना चाहिए। विद्या दो प्रकार की होती है—(१) परा और (२) अपरा। परा उसे कहते हैं जिससे परमात्मा जाना जाता है और अपरा उसे जिससे देवी-देवताओं की उपासना की जाती है। जो परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होने के बाद विहित आचार करते हैं, उन्हें भगवान अपरोक्ष ज्ञान देकर सब पदार्थों को प्रत्यक्ष कराते हैं। परमात्मज्ञान के अनुसरण से क्या तात्पर्य है? 'ज्ञान प्राप्त होने पर सर्वसंगपरित्याग कर नन्हें बालक के समान पूर्ण रीति से परमेश्वराधीन होने और उनके कथित आचारानुसार आचरण कर उनकी आज्ञा पालने का नाम 'अनुसरण' है।'[1] अनुसरण से देवताओं के प्रति किये गये कर्मों का भोग रुक जाता है। विशुद्ध जीव की अविद्या से मुक्ति ही मोक्ष है। आत्मज्ञान से यह मोक्ष संभव होता है, पर प्रेम अर्थात् भक्ति से भी मोक्ष मिलता है। 'सूत्र-पाठ' में यद्यपि परेमश्वर निराकार कहा गया है, तथापि वह जीवों पर कृपा कर पृथ्वी पर अवतार लेता है और उन्हें अपना सान्निध्य प्रदान करता है। सान्निध्य प्राप्त होने पर उसकी दासता से मुक्ति हो जाती है।

आचार-धर्म—महानुभाव-मत में अहिंसा, निस्संग, निवृत्ति और भक्ति इन चार सूत्रों की मान्यता है। उसमें आत्म-परीक्षा, गुरुभक्ति वैराग्य-प्रदर्शन-विमुखता आदि आचार-पालन का उपदेश दिया गया है। यद्यपि चक्रधर स्वामी स्वयं वर्ण-व्यवस्था में आस्था नहीं रखते थे, तथापि उन्होंने अपने अनुयायियों से उसके विरुद्ध विद्रोह करने का आग्रह नहीं किया। यह 'पंथ' भगवद्गीता के अहिंसा और सत्य पर आश्रित होने के कारण चक्रधर स्वामी के मुख से निकले हुए उपदेश-वचनों (सूत्र) और गीता को पूज्य मानता है।

कबीर के समान चक्रधर स्वामी ने भी अपने हाथ से किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। उनके शिष्यों ने ही उनके वचनों का संग्रह किया है। महानुभावों ने लोक-भाषा के माध्यम से अपने उपदेशों का ग्रंथरूप में प्रचार किया। ज्ञानेश्वर के पूर्व से ही मराठी में महानुभावों के ग्रंथ रचे जाते रहे हैं। ज्ञानेश्वर तक आते-आते मराठी अधिक क्षेत्रों में प्रचलित और विकसित हो चुकी थी।

महाराष्ट्र में महानुभाव-पंथ बहुत काल तक तिरस्कृत रहा। एकनाथ और तुकाराम महाराज तक ने अपने अभंगों में इसकी भर्त्सना की है। सन् १७८२ के लगभग श्री सवाई माधवराव पेशवा ने इनके संबंध में 'विप्रव्यवहार निर्णय' दिया था—

'मान भाव अतिनिंद्य सर्वधर्म बहिष्कृत, चातुर्वर्ण्य की निकृष्ट-से-निकृष्ट जाति तक में भी नहीं, षड् दर्शनों में भी नहीं, अविधि मंडित, नीलाम्बर हैं। इनका कोई उपदेश ग्रहण न करे, जिसने ग्रहण किया हो, उसका बहिष्कार किया जाय।'

---

१. महानुभाव आचार—डा० कोलते, पृष्ठ ७-८।

महाराष्ट्र में महानुभावों के संबंध में कतिपय तिरस्कार-सूचक उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। यथा........'मानभावी ऊ (महानुभावी जुआं) मानभावी कावा (महानुभावी धूर्तता) गड़बड़ गुंडा।' महानुभाव यद्यपि कृष्णभक्त हैं, तथापि वे वारकारियों के तीर्थस्थल—पंढरपुर में नहीं जाते।

महानुभावों के प्रति संदेहजनक वातावरण होने के कुछ कारण ये हैं :—

(१) महानुभाव पंथीय ग्रंथ गुप्त लिपियों में (जिनमें सकळ और सुंदरी लिपियाँ प्रमुख हैं) रक्षित रहने से जनता उनके तत्त्वों को भली-भाँति समझ नहीं सकी।

(२) जनता में यह मान्यता रही है कि मुस्लिम शासकों के साथ इनका कोई गुप्त समझौता है, (कदाचित् इन्होंने अपने को हिन्दू न कहा हो।) इसलिए इन पर 'काफिरों' पर लगनेवाला 'जजिया' कर नहीं लगा।

(३) जनता में यह विश्वास कि देवी-देवताओं की मूर्तियों के प्रति इनकी अश्रद्धा है।

सन् १९१५ के लगभग स्व० विनायकराव भावे ने प्रथम बार महानुभावी लिपियों में सकळ और सुन्दरी लिपि की 'कुंजी' प्रकट कर 'पंथ' के पवित्र ग्रन्थों के तत्त्वों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इनके पश्चात् यशवंतराव देशपांडे, वा० ना० देशपांडे, स्व० हरिभाऊ नेने, डा० विष्णु भिकाजी कोलते आदि ने इस पंथ के दर्शन और आचार पर यथेष्ट प्रकाश डाला है, जिससे जनता में प्रचलित भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। मुसलमान शासक किसी भी जाति के साधुओं पर 'जजिया' नहीं लगाते थे और महानुभाव आचार्य मूर्तियों के प्रति भी अनादर व्यक्त नहीं करते थे। चक्रधर ने साधकों को मूर्तिपूजा में ही न भूले रहने का उपदेश मात्र दिया है। उनके कथन 'मूर्खस्य प्रतिमा पूजा' का यही अर्थ है। महानुभाव पंथ द्वैतवादी होते हुए भी बहुदेवोपासना का पक्षपाती नहीं है। क्योंकि यह देवताओं में मोक्ष प्रदान के सामर्थ्य पर विश्वास नहीं करता। यह वेदों में भी विश्वास नहीं करता। इसलिए अवैदिक मत है। यह अपने पड़ोस में पल्लवित लिंगायत-मत से भी कई बातों में साम्य रखता है। इसमें पाँचकृष्णों का मान है और उसमें शिव के पाँचमुखों के रूप पंचाचार्य की महिमा है। दोनों को सामाजिक विषमता अमान्य है। दोनों पंथों में शव को भूमि-समाधि दी जाती है। पर यह समता आकस्मिक है। लिंगायत-मत का प्रत्यक्ष कोई प्रभाव महानुभावों पर पड़ा हो, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

(३) वारकरी-सम्प्रदाय

वारी (यात्रा) करी (करनेवाला)=यात्रा करनेवाला। जो यात्रा करता है वह वारकरी कहलाता है। धार्मिक दृष्टि से (उसे वारकरी कहते हैं जो पंढरपुर स्थित विट्ठल की मूर्ति का उपासक है और आषाढ़ तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को नियमित रूप से पंढरपुर की यात्रा कर मूर्ति के दर्शन करता है। यह धर्म-यात्रा आषाढ़ कार्तिक की शुक्लपक्षीय एकादशी के अतिरिक्त अन्य महीनों की एकादशी को भी की जा सकती है।)

इस पंथ में पंढरपुर की 'वारी' की जाती है। इसलिए यह वारकरी कहलाता है। इसमें पांडुरंग को प्रिय तुलसी की माला धारण की जाती है, इसलिए यह माळकरी कहलाता

है। इसमें भगवान् को सर्वस्व अर्पित किया जाता है। इसलिए इसे भागवत सम्प्रदाय भी कहते हैं। यह पंथ कब से प्रारंभ हुआ, यह कहना कठिन है। प्रसिद्ध संत बहिणाबाई का एक अभंग है जिसमें उन्होंने ज्ञानेश्वर को इस पंथ की नींव कहा है। पर ज्ञानेश्वर के समकालीन संत नामदेव कहते हैं—"हमारे पहले भी अनेक भक्त हो गये हैं"। (पूर्वी अनंत झाले) अतएव ज्ञानेश्वर और नामदेव के पूर्व से यह पंथ महाराष्ट्र में प्रचलित है। इसका संबंध पंढरपुर की विठ्ठल-मूर्ति से होने के कारण पहले हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि यह पंढरपुर में कहाँ से और कब आई। कई स्थलों पर इसे कन्नड़ से आई हुई कहा गया है।

नामदेव कहते हैं—"कानडा विठ्ठल पंढरीये।"
(कानडा का विठ्ठल पंढरपुर में है।)
एकनाथ गाते हैं—"कानडा विठ्ठल, कानडा विठ्ठल,
कानड़ा विठ्ठल विटेवरी॥
कानड़ा विठ्ठल, कानड़ा बोले,
कानड्या विठ्ठले, मन वेधियले॥"

विठ्ठल की उत्पत्ति कई प्रकार से लगाई जाती है। डा० ट्रंप इसकी उत्पत्ति विष्ट से लगाते हैं—विष्ट—वीठल—विठ्ठल।

राजवाड़े विठ्ठल को विष्ठल से उत्पन्न बतलाते हैं। विष्ठल का अर्थ होता है दूर। जो देवता दूर रहता है, वह 'विठ्ठल'। इसका अर्थ यह हुआ कि विठ्ठल-मत पंढरपुर में दूर से लाया गया है। परंतु अनेक विद्वान् इसकी उत्पत्ति 'विष्णु' से मानते हैं। विष्णु का कन्नड़ रूप बिट्टि है। अतएव डा० भांडारकर का यह मत साधु जान पड़ता है कि विठ्ठल 'कानड़ी' है। 'विठ्ठल' को विष्णु के कृष्णावतार का बालरूप माना जाता है, जो अपने भक्त पुंडलीक को वर देने के लिए पंढरपुर चलकर आये और उसीके संकेत पर वीट (ईंट) पर खड़े हो गये और अभीतक खड़े हैं।[1] कीर्तन के प्रारम्भ प्रसंगोपरान्त और अन्त में "पुंडलीक वर दे हरि विठ्ठल" की शांति-घोषणा की जाती है। जिससे यह प्रतीत होता है कि पुंडलीक को वर देनेवाले हरि विठ्ठल ही हैं। भक्त पुंडलीक और विठ्ठल की प्रतिमा के अस्तित्व-काल के संबंध में महाराष्ट्र के विद्वानों ने पर्याप्त शोध की है। विठ्ठल-मंदिर में सन् १२७३ का ज्ञानदेव कालीन एक शिलालेख है। उसमें मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए दान-दाताओं के नामों का उल्लेख है। दाताओं में रामदेव राव यादव और उनके मंत्री हेमाद्रि का नाम है। इससे इस मंदिर की प्राचीनता सिद्ध होती है। जब सन् १२७३ में इसका जीर्णोद्धार हुआ तब यह पाँच-छः सौ वर्ष पुराना अवश्य

१. **'युगे अठ्ठावीस विटेवरी उभा' (अट्ठाईस युग से ईंट पर खड़ा हुआ है)—नामदेव की आरती (प्रसाद-एप्रिल १९५४, पृष्ठ २८)।**

रहा होगा। इसके अतिरिक्त मंदिर में एक दूसरा शिलालेख (सन् १२२० का) है जिसमें होयसला यादव सोमेश्वर के मैसूर राज्यान्तर्गत कड्डूर गाँव के दान का उल्लेख है। इसी लेख में 'पुंडलीक' मनि का भी उल्लेख है[1]।

श्री क्षेत्र आलंदी में हरि हरेन्द्रस्वामी के मठ में किसी कृष्णस्वामी की समाधि मिली है। उसमें शके ११३१ अंकित है और समाधि पर विट्ठल रुक्मिणी की मूर्ति है। यह ज्ञानेश्वर के जन्म से ६० वर्ष पूर्व का काल है। ज्ञानेश्वर महाराज के पूर्वज भी पंढरपुर की यात्रा करते थे। नामदेव के अभंगों में इसका उल्लेख है। आदि शंकराचार्य रचित एक पांडुरंगाष्टक भी प्रसिद्ध है जिसका एक अंश है—"पर ब्रह्मलिंग भजे पांडुरंगम्[2]।" विट्ठल पांडुरंग भी कहलाते हैं।

मैसूर-शासन के सन् १६२६ के प्राचीन वस्तु-संशोधन-विभाग के विवरण में शके ४३८ के एक ताम्रपट का उल्लेख है; जिसमें राष्ट्रकूट अभिधेय ने जयद्वीप नामक ब्राह्मण को अनेवरी, चाल, कंदक व दुइपल्ली के साथ 'पांडुरंग पल्ली' गाँव दान में देने का निर्देश है। पांडुरंग पल्ली पंढरपुर है और अन्य गाँव पंढरपुर तालुके के आनवली, चळ और कोंढ़रकी हो सकते हैं। इन सब उल्लेखों से प्रतीत होता है कि शालिवाहन शके के प्रथम शके में पंढरपुर की स्थापना हुई होगी और यही समय भक्तराज पुंडलीक का होना चाहिए[3]।

विट्ठल की प्रतिमा के हाथों में विष्णु के चक्र और पद्म-चिह्न हैं। वारकरी विट्ठल को विष्णु का कृष्णावतार मानकर पूजते हैं। प्रतिमा के मस्तक पर 'शिवलिंग' का चिह्न समझ कर कोई उसे शैव मत का प्रतीक भी मानते हैं। परन्तु श्री खरे उसे शिव-लिंग नहीं, कृष्ण का मुकुट मानते हैं[4]। यदि हम क्षणभर को यह भी मान लें कि प्रतिमा के मस्तक पर शिवलिंग है तब भी कोई आपत्ति नहीं। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत-प्रचार से दक्षिण में वैष्णवों-शैवों में जो संघर्ष प्रारंभ हो गया था, वह 'विष्णु' की विठ्ठल मूर्ति पर 'शिव' की स्थापना से समाप्त हो गया होगा। वारकरी संतों ने विष्णु और शिव को एक कर जनता के हृदयों से साम्प्रदायिक कलुष को धोने का ही प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त जब मूर्ति के हाथों में चक्र और पद्म हैं तब मस्तक पर शिव का आभास होने पर भी उसका विष्णुत्व रक्षित रह जाता है।

---

१. श्री विट्ठल आणि पंढरपुर, पृष्ठ ३७।
२. प्रसाद, एप्रिल, १६५४ पृष्ठ २८।
३. वही, एप्रिल, १६५४ पृष्ठ २८।
४. देखिए—श्रीविट्ठल आणि पंढरपुर (खरे), पृष्ठ ७२।

कोई उसे जैनमूर्ति कहते हैं। भारतवर्षीय अर्वाचीन कोश पृष्ठ २८८ में इसे नेमिनाथ तीर्थंकर की मूर्ति कहा गया है और अपने कथन के समर्थन में निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है। "नेमिनाथस्य या मूर्तिः त्रिषु लोकेषु विश्रुता। द्वौ हस्तौ कटि-पर्य्याये स्थापयित्वा महात्मनः। मूर्तिः तिष्ठति सा सम्यक् जैनेन्द्रेण च पूजिता""""आदि।"

परन्तु उपर्युक्त श्लोक के कर्ता और ग्रंथ-संदर्भ का उल्लेख न होने से इस मत को निराधार ही मानना पड़ेगा। कोई उसे बुद्ध-मूर्ति मानते हैं। इस मत को पुरस्सर करनेवाले श्री आनंद रामचंद्र कुलकर्णी, (सेक्रेटरी बुद्ध सोसाइटी, नागपुर) हैं। इस संबंध में उन्होंने एक चौपतिया पत्रक प्रकाशित किया है। उसमें वे यह तो स्वीकार करते हैं कि पंढरपुर की विठ्ठल-मूर्ति विष्णु की मूर्ति है; पर उनका कहना है कि भगवान बुद्ध को हम विष्णु का ही अवतार मानते हैं। इसलिए 'विठ्ठल' को बुद्ध की प्रतिमा भी कहा जा सकता है।

श्री कुलकर्णी की यह मान्यता ठीक है कि पुराणों में बुद्ध को भी एक अवतार माना गया है। पर जब वे यह कहते हैं कि पंढरपुर के मंदिर में पत्थर के स्तम्भ पर ध्यानस्थ मूर्ति बुद्ध की लगती है, विष्णु के अवतार कृष्ण की नहीं, तभी विवाद उठता है। वे कहते हैं कि यदि वह कृष्ण की मूर्ति होती तो उसके साथ ही रुक्मिणी होतीं। पड़ोस में जो रुक्मिणी की प्रतिमा दिखाई गई है, वह बाद की असत्य कल्पना है और विठ्ठल की मूर्ति को कृष्णमूर्ति सिद्ध करने के लिए वहाँ लाई गई है। फिर वे पूछते हैं कि मूर्ति के हाथ कमर पर क्यों हैं? यदि वह राम की मूर्ति होती तो हाथ में धनुषबाण होते और यदि कृष्ण की होती तो गदा अथवा सुदर्शन-चक्र सुशोभित होता। पर उसके हाथ में कोई भी शस्त्र नहीं है। इससे उनका निष्कर्ष यह है कि चूँकि बुद्ध अहिंसा के अवतार थे, इसलिए उनके हाथ रिक्त दिखलाये गये हैं।

इस संबंध में हमारा यह कहना है कि जिस प्रकार वे कृष्ण को एकाकी मुद्रा में देखने के अभ्यासी नहीं हैं, उसी प्रकार क्या उन्होंने बुद्ध भगवान की ध्यानस्थ मूर्ति खड़ी और कमर पर हाथ रखे देखी है? बुद्ध की शांत पद्मासन-मुद्रा प्रसिद्ध है। फिर 'पत्रक' में वारकरी संतों के वचन उद्धृत कर उनसे 'बुद्ध' के उपदेशों का अर्थ लिया गया है। जैसे तुकाराम का यह वचन उद्धृत किया गया है, 'विठ्ठल गणपति दुजा नहीं।' (विठ्ठल और गणपति भिन्न नहीं हैं) और यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि विठ्ठल की मूर्ति बुद्ध की है; क्योंकि बुद्ध को गणपति भी कहा गया है। अपने समर्थन में अमरकोश से बुद्ध के ये नाम भी उद्धृत किये गये हैं—

'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः
समंतभद्रो भगवान्, मारजिल्लोकजित्, जिनः।
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।'

परन्तु अमरकोश में तो विनायक शब्द है और तुकाराम तो गणपति कहते हैं। यहाँ श्री कुलकर्णी ने गणपति का अर्थ विनायक मानकर विठ्ठल को 'बुद्ध' सिद्ध करने की

खींचतान की है। अंत में उन्होंने वारकरी-सम्प्रदाय के पाँच सदाचार-नियमों को उद्धृत किया है—

(१) मैं प्राणियों की हिंसा नहीं करूँगा।
(२) मैं चोरी नहीं करूँगा।
(३) मैं व्यभिचार अथवा पर-स्त्रीगमन नहीं करूँगा।
(४) मैं झूठ नहीं बोलूँगा।
(५) मैं शराब नहीं पीऊँगा।

इन सदाचार-नियमों को आप बुद्ध के पंचशील कह कर यह सिद्ध करते हैं कि विठ्ठल बुद्ध की मूर्ति है और उसकी उपासना करनेवाला वारकरी-मत बौद्ध मत ही है।

इस संबंध में यही कहना है कि उपर्युक्त 'पंचशील' संसार के प्रायः सभी धर्ममतों में मिल जायेंगे। तब इन्हीं पाँच नियमों को मानने से ही वारकरी बौद्धमतावलम्बी कैसे सिद्ध हो गये?

यह बात सत्य है कि वारकरी-मत पर नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव है। और नाथ सम्प्रदाय को बौद्धमत की परिष्कृत स्वतन्त्र शाखा कहा जा सकता है। पर वारकरी मत बौद्ध-मत नहीं हो सकता; क्योंकि उसके अंतरंग में आस्तिकता है, भक्ति का अजस्र स्रोत है। बौद्धमत का दार्शनिक दृष्टिकोण वारकरियों से सर्वथा भिन्न है। एक आत्मवादी है और दूसरा अनात्मवादी। अतः श्री कुलकर्णीजी का वारकरियों को बौद्ध सम्प्रदाय में घसीटना प्रचार-प्रयास मात्र प्रतीत होता है।

वारकरी मत भागवत धर्म कहलाता है। इस धर्म का मर्म श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में समझाया गया है। इसकी उत्पत्ति भागवत के उपदेशों से हुई है। शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार से अनेक या एक जन्म के स्वभाव का अनुसरण जो कर्म करे, वह सब नारायण के लिए ही है। इस भाव में उन्हें उन्हीं को समर्पित कर दे। भगवान् को आत्मसमर्पण करने का मार्ग गीता में भी उल्लिखित है। भागवत में नाम-संकीर्तन पर भी आग्रह प्रदर्शित किया गया है। कलियुग में यह सहज साधना मानी गई है। यही कारण है, संतों ने नाम-संकीर्तन को जीवन का यज्ञ बना लिया था। सृष्टि के प्राणियों में परमात्मा को अनुभव करना भागवत धर्म ही है। ज्ञानेश्वर कहते हैं, 'जे जे भेटे भूत। तें तें मानिजे भगवंत।' (ज्ञानेश्वरी अध्याय १०, ११८) हरि की व्यापकता तुकाराम ने भी अनुभव की है। अपने एक अभंग में वे कहते हैं—

'विश्वीं विश्वंभर। बोले वेदांतीचे सार।'

एक स्थल पर वे और भी गाते हैं—

'विष्णुमय जग वैष्णवाचा धर्म।'

यह पंथ अद्वैतमतवादी होते हुए भी भक्ति-प्रधान है। वेदान्त से सच्ची भक्ति का स्रोत झरता है। यह तथ्य इस मत से प्रतिपादित होता है। परमात्मा व्यापक, निर्गुण,

निराकार होते हुए भी सगुण साकार है। तुकाराम कहते हैं—'दोन्हीं टिपरी एकचि नाद।'

एकनाथ महाराज भी भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं मानते—

'भक्तीचे उदरीं जन्मलें ज्ञान,
भक्तीने ज्ञानासी दिधलें महिमान
भक्ति ते मूळ, ज्ञान तें फळ,
वैराग्य केवल तेथीचें फूल।'

(भक्ति के उदर से ज्ञान का जन्म हुआ है। भक्ति मूल है, वैराग्य उसका फूल और ज्ञान फल है।)

पंढरी राय विट्ठल की भजनोपासना अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की प्रदाता मानी गई है। इस पंथ में श्री निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, निलोबाराय, आदि संतों की और वेद, गीता, भागवत, ज्ञानेश्वरी, श्रीनाथ भागवत, श्रीतुकाराम बुआंची गाथा, हरिपाठ तथा अन्य संतों के ग्रंथ मान्य हैं।

सोमवार, एकादशी, महाशिवरात्री, (वारकरियों के गुरु नाथ हैं जो शिव से अपनी परम्परा मानते हैं, अतः उन्हें भी शिव पूज्य हैं) भी मान्य हैं। गंगा, गोदावरी आदि नदियों को तीर्थ रूप माना जाता है।

आचार—वारकरियों के आचार-धर्म-आदेश सार-रूप में इस प्रकार हैं—

(१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुरूप कार्य करते रहो। (वारकरियों ने वर्ण-व्यवस्था को भक्तिमार्ग में प्रतिबन्धक नहीं माना।)

(२) 'आसाढ़ी कार्तिकी विसरूनका।' (नामदेव ने प्रत्येक वारकरी के लिए प्रतिवर्ष दो बार आषाढ़ी और कार्तिकी की एकादशी को पंढरपुर की यात्रा का संकेत किया है।)

(३) गले में तुलसी की माला धारण करो।

(४) गोपीचन्दन का उर्ध्व पुंड्र लगाकर मुद्रा धारण करो और लकड़ी में भगवा वस्त्र बाँधकर पताका लेकर चलो।

(५) परस्त्री, पर-धन और मद्यपान से दूर रहो।

(६) पंढरपुर जाने पर चंद्रभागा नदी में स्नान, विट्ठल के दर्शन, ग्राम-प्रदक्षिणा और भजन-कीर्तन करो।

(७) परस्पर ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भेद मत रखो।

भगवान कृष्ण के रूप की उपासना वारकरियों के हृदय का हार है—

'धनि धनि बनखंड ब्रिंदाबना। जहं खेले श्री नाराइना।' (नामदेव)

वारकरी संतों की सूची—

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश पृष्ठ १७६ में इस प्रकार दी गई है—

१ क्रमांक	२ संतों के नाम	३ समय		४ समाधिस्थान
१.	निवृत्तिनाथ	सन् ११९५	१२१९	त्र्यंबकेश्वर
२.	ज्ञानेश्वर महाराज	,, ११९७	१२१८	आलंदी
३.	सोपानदेव	,, ११९९	१२१८	मासवड़
४.	मुक्ताबाई	,, १२०१	१२१९	एदलाबाद
५.	विसोबा खेचर	,, ?	१२३१	?
६.	नामदेव	,, ११९२	१२७२	पंढरपुर
७.	गोरा कुंभार	,, ११८९	१२३९	तेर
८.	सावता माळी	,, ?	१२१७	अरणभेंड़ी
९.	नरहरि सुनार	—	१२३५	पंढरपुर
१०.	चोखामेला	—	१२३०	पंढरपुर
११.	जगमित्र नागा	—	१२५२	परली (बैजनाथ)
१२.	कूर्मदास	१२५३	—	लऊल
१३.	जनाबाई	—	—	पंढरपुर
१४.	चाँगदेव	?	१२२७	पुणतांबे
१५.	भानुदास	१३७०	—	पैठण
१६.	एकनाथ	१४७०	१५२१	पैठण
१७.	राघव चैतन्य	—	—	ओतूर
१८.	केशव चैतन्य	—	१३९३	गुलबर्गा
१९.	तुकाराम बुवा	—	१५७२	देहू
२०.	निलोबाराय	—	—	पिंपलनेर
२१.	बोधलेबुवा	तुकाराम के	समकालीन	
२२.	शंकरस्वामी	—	—	शिरुर
२३.	मल्लाप्पा	—	—	आलंदी
२४.	मुकुंदराज	—	—	आंबे
२५.	कान्होपात्रा	—	—	पंढरपुर
२६.	जोगा परमानन्द	—	—	बार्शी

महाराष्ट्र के संतों ने 'कृष्ण' के प्रायः बाल और मर्यादित रूप को अपनाया है। उन्होंने उत्तर के भागवत सम्प्रदायी भक्तों की नाईं कृष्ण का राधा और गोपी का शृंगारमूलक भक्तिरस का विशेष पान नहीं किया। इसीलिए पंढरपुर में विठ्ठल (कृष्ण) की मूर्ति के निकट राधा-रानी न होकर, रुक्मिणी देवी प्रतिष्ठित हैं।

यह कहा जा चुका है कि वारकरी-संत कृष्ण (विठ्ठल) के प्रति भक्ति रखते हुए भी अद्वैतवादी हैं। उत्तर भारत के भक्त संतों के समान वे आराध्य के चरणों में देह-मुक्त हो जाने पर भी नहीं रहना चाहते। वे भव-बंधन से छूट कर मोक्ष चाहते हैं—भगवान में एकाकार होना चाहते हैं। अपवाद स्वरूप नामदेव का एक अभंग है[1] जिसमें वे पंढरी राय के चरणों की सेवा के लिए बार-बार जन्म लेना चाहते हैं। पर यह अभंग उस समय का है जब नामदेव विठ्ठल के सगुण रूप के उपासक थे और ज्ञानदेव के सम्पर्क में नहीं आये थे। ज्ञानेश्वर के प्रभाव में आने पर उन्होंने विसोबा खेचर से 'उपदेश' ग्रहण कर विठ्ठल को सर्वव्यापी अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया।

नवधा भक्ति में—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्,
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥"

का समावेश होता है। महाराष्ट्रीय वारकरियों ने 'श्रवण और कीर्तन' को पुरस्सर करने के लिए एक नूतन संस्था का जन्म दिया। नामदेव इसके प्रथम आचार्य हैं। वे जनता के मध्य खड़े होकर ताल और मृदंग के साथ कीर्तन करते और पुराणों से उदाहरण दे-देकर अपने अभंगों की व्याख्या करते थे। उनके इस 'कीर्तन' में ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ आदि संत भी सम्मिलित होते थे। नामदेव की इस कीर्तन-पद्धति का महाराष्ट्र में खूब प्रचलन हुआ। इसे 'निरूपण' भी कहते हैं।

(४) दत्त-सम्प्रदाय

महाराष्ट्र में इस सम्प्रदाय का पुनरुद्धार पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ। दत्त त्रिमूर्तिदेवता हैं जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश का समावेश है। साथ ही इनमें सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का ऐक्य दर्शन भी होता है। सूर्य, शक्ति, गणपति, विष्णु और शंकर की 'पंचायतन-पूजा' की परिपाटी शंकराचार्य ने जनता की मत-विभिन्नता का अन्त करने के लिए प्रारंभ की थी। इसी भावना से इस त्रिमूर्ति देवता की सृष्टि की गई

---

१. पाहतां तुझे चरण हरली भवकथा। पुढती एक चिंता वाटत से।
ऋणीं मुक्ति पद देसी पांडुरंगा। मग या सत संगा कोठे पाहूँ ॥
मग हें पंढरी आनंद सोहळा। कवणाचे डोळा पाहूं देवा।
मग हे हरिकथा अमृत संजीवनी। वचणाचे श्रवणी एकों देवा।
नामा म्हणें मज पंढरीची सोय। अनन्त जन्म होय याचि लागीं।

प्रतीत होती है। दत्तावतार की शिव पुराण, हरिवंश पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में चर्चा है; परन्तु जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में जहाँ दशावतारों की वंदना की है, वहाँ 'दत्त' का उल्लेख नहीं है। क्षेमेन्द्र के 'दशावतार-चरित' में भी दत्तावतार का उल्लेख नहीं है। दशावतार का काल-निर्णय संदिग्ध है।

पर दत्त की जन्मतिथि मार्गशीर्ष पूर्णिमा मानी जाती है। इनके जन्म की कथा इस प्रकार है। एक बार अत्रि ऋषि ने ऋक्षकुल पर्वत पर पुत्र-प्राप्ति के लिए तप किया। तप के तेज से जब ज्वाला निःसृत होने लगी तो त्रिलोक तप उठा और जनता 'त्राहि त्राहि' कर उठी। तब सब देवता उनके पास गये और उन्हें वरदान दिया कि उन्हें ऐसा पुत्र प्राप्त होगा जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों का अंश धारण करेगा। समय पाकर अत्रि की पत्नी अनुसूया को जो पुत्र हुआ, उसका नाम दत्त रखा गया।

त्रिमुखी दत्तात्रेय ने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की, वर्ण-व्यवस्था की पुनर्घटना की और यज्ञ-कर्मों का पुनरुद्धार किया। दत्त-सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—शंकर, विष्णु, ब्रह्मदेव, वशिष्ठ, शक्ति, पाराशर, शुक्र, गौडपादाचार्य, गोविंदाचार्य, शंकराचार्य, विश्वरूपाचार्य, ज्ञानगिरीय, सिंहगिरीय, ईश्वरतीर्थ, नृसिंहतीर्थ, विद्यातीर्थ, मली महानंद, देवतीर्थ सरस्वती, यादवेन्द्रतीर्थ, सरस्वती-कृष्ण सरस्वती, नृसिंह सरस्वती, माधव सरस्वती। श्री पादश्रीवल्लभ इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य और दत्तात्रेय के अवतार माने जाते हैं। वीठापुर में आवळ राजा के यहाँ इनका ईसा की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरकाल में जन्म हुआ। ये यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् माता की आज्ञा से घर त्याग कर काशी होते हुए बदरिकारण्य पहुँचे और वहाँ इन्होंने नारायण के दर्शन प्राप्त किये। वहाँ से ये गोकर्ण गये, जहाँ तीन वर्ष तक रहे। वहाँ से कुरवपुर (कुरगड्डी-बेजवाड़ा के निकट) गये और कई चमत्कार करने के पश्चात् अदृश्य हो गये। इनके पश्चात् सन् १४०८ से १४५८ तक नृसिंह सरस्वती ने इस सम्प्रदाय का नेतृत्व ग्रहण किया। इनका जन्म विदर्भ स्थित करंजनगर (वर्तमान कारंजा) में ब्राह्मण कुल में हुआ। इन्हें भी दत्तात्रेय का अवतार कहा जाता है। इन्होंने भी बदरिकारण्य की यात्रा की और संन्यासी के रूप में अनेक स्थानों में भ्रमण किया। एकनाथ महाराज के गुरु जनार्दन स्वामी दत्त-सम्प्रदाय के बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। इनका जन्म सन् १५०४ में चालीसगाँव में हुआ। इन्हें हिन्दू और मुसलमान जनता का समानरूप से आदर प्राप्त था। इनके शिष्य एकनाथ ने वारकरी-मत स्वीकार कर लिया था। हुमणाबाद के माणिक प्रभु इस सम्प्रदाय के अंतिम प्रसिद्ध संत हो गये हैं जिनके आगे हिन्दू-मुसलमान दोनों नतमस्तक होते थे। इस तरह हम देखते हैं कि दत्त-सम्प्रदाय ने वर्ण-व्यवस्था को अखंडित रखते हुए भी सभी जातियों में, यहाँ तक कि मुसलमानों में भी, समभाव उत्पन्न करने का यत्न किया। कई मुसलमान दत्त सम्प्रदायी आचार्यों के उपासक हो गये थे।

सम्प्रदाय के ग्रंथ 'गुरु-चरित्र' में आचार धर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है। ब्राह्मणों को वेदाध्ययन, संध्यापूजा आदि का आदेश है। उन्हें यह भी आदेश है कि वे

शूद्रों तथा दुराचारियों के यहाँ अन्न ग्रहण न करें। जनता को लोकविरुद्ध आचार-पालन का निषेध किया गया है। इस सम्प्रदाय में सगुणोपासना और योग-मार्ग ग्रहण करने का निर्देश है।

दत्तात्रय अमर हैं, ऐसी साम्प्रदायिकों की मान्यता है। नाथ-पंथियों में दत्त सिद्धि-प्रदाता, दिगम्बर और अवधूत कहे गये हैं और महानुभावों में पंच कृष्णों में दत्त एक माने गये हैं। परंतु वे त्रिमूर्ति दत्त नहीं हैं। महानुभावों में दत्त देवावतार नहीं, ईश्वरावतार हैं। फिर भी ये समन्वयवादी देवता होने से प्रत्येक सम्प्रदाय में पूजित हैं"।[1]

इस पंथ का अद्वैत दर्शन है। ब्रह्म को निरामय, नित्यानंद तथा ज्ञान की आँखों से ज्ञातव्य कहा गया है। ब्रह्म की इच्छाशक्ति ही प्रकृति है और जीव ही मूल रूप से ब्रह्म है। भिन्न-भिन्न देह धारण करने से भिन्न-भिन्न दिखाई देता है। यह संसार महेश के संबंध से उत्पन्न हुआ है, उन्हीं के संबंध में रहता है और उन्हीं के संबंध में उसका 'लय' हो जाता है। नंददास के शब्दों में 'वा गुण की परछाँह री मायादर्पण बीच' के समान यह समस्त सृष्टि है। जिस प्रकार सूर्य के विना उसका तेज पृथक नहीं रह सकता, उसी प्रकार महेश के विना उसकी सृष्टि का अस्तित्व नहीं टिक सकता।

(५) समर्थ-सम्प्रदाय

ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में समर्थ रामदास ने अपने पंथ का महाराष्ट्र में प्रचार किया। यह मुस्लिम साम्प्रदायिकता के अतिरेक का काल था। अपने 'परचक्र निरूपण' में 'समर्थ' ने जनता की दयनीय स्थिति का बड़ा ही करुण चित्र अंकित किया है। जनता अखण्ड चिंता के प्रवाह में पड़ी हुई थी, किसी को कोई मार्ग नहीं सूझता था। जनता को वैदिक धर्म और वर्णाश्रम के पंथ पर खींच कर उसमें स्वकर्तव्य बोध जाग्रत करने का संकल्प 'समर्थ' ने किया और यह अमर मंत्र प्रचारित किया कि 'भगवन्त के अधिष्ठान सहित आन्दोलन में सामर्थ्य निहित है।' सन् १६४४ में जांबे में उन्होंने अपने सम्प्रदाय की स्थापना की।

समर्थ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दासबोध' में अन्य पूर्ववर्ती संतों की भांति अद्वैत का ही प्रतिपादन किया है। संसार में आत्मज्ञान अप्रतिम है। यही सर्व विद्या का सार है। जीवात्मा परब्रह्म से अभिन्न है। इसे ही जानने का नाम आत्मज्ञान अथवा आध्यात्म विद्या है और परब्रह्म निर्गुण निराकार है। परब्रह्म एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न भासता है—

'ब्रह्म एकचि असे। परि तें बहुविध भासे।'[2]

---

१. "जय जय दत्तराज योगी, जय जय महाराज योगी
शंख, चक्र और त्रिशूल विराजे गले बड़ी वनमाला
जोगदंड अवधूत दिगंबर बनारस रहनेवाला।"

प्रसाद (मराठी), जून १९५४, पृष्ठ ४०।

२. वही, जुलाई, पृष्ठ ४८।

(ब्रह्म एक ही है, पर वह बहुविध भासता है ।) ब्रह्म निर्गुण निराकार, निर्विकार शाश्वत, दृश्य और शून्य से भी भिन्न है अर्थात् केवल ज्ञानस्वरूप है। सभी स्थानों में एक ब्रह्म ही है।

समर्थ ने दृश्यमान जगत् को 'माया' नाम से अभिहित किया है। पंचमहाभूत माया ही है। ब्रह्मज्ञान से 'माया' का नाश होता है। इस प्रकार शंकराचार्य की माया की कल्पना का रामदासी 'माया' से बिलकुल मेल खाता है।

रामदास विवेक को जागृत कर जगत् में जगदीश के दर्शन की प्रेरणा देते हैं। रामदास वर्णाश्रम-धर्म के पोषक थे और ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को उन्नत करने की चिंता रखते थे। उनका विश्वास था कि जो ब्राह्मण वर्णाश्रम धर्म में अग्रस्थान रखता है, उसे आदर्श बनना ही चाहिए। तभी वह 'वर्णानां गुरुः' कहला सकता है। उन्होंने ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों को भी स्वकर्मनिरत रहने की चेतना दी। अपने विहित कर्म को करने का उन्हें बार-बार आदेश दिया है। उन्होंने 'कर्म-मार्ग' से उपासना का महत्त्व प्रतिपादित किया है। श्रवण, कीर्तन और आत्मनिवेदन भक्ति का उन्होंने आग्रह किया है। सम्प्रदाय में रामोपासना अनिवार्य समझी जाती है। स्वयं निर्धन होकर समाज सेवा साधकों का लक्ष्य समझा गया। निस्पृहता, त्याग और परोपकार आचार-धर्म के मूल सूत्र हैं। भिक्षा को उन्होंने पेट भरने का साधन नहीं, मुख्य दीक्षा कहा है। रामदासियों को मेखला, शिरोवस्त्र, झोली और रामनामांकित वस्त्र तथा भगवा झंडे में पंचवस्त्र तथा कुबड़ी (कक्ष-दंड) साथ रखने का विधान है। हरिकथा-निरूपण, राजनीति-व्यवहार, सावधानता और अत्यंत साक्षेप-पंथ की चतुःसूत्री कहलाती है।[1] राम-मंदिर में रामोपासना और हनुमान-मंदिर में बलोपासना का उपदेश समर्थ ने जनता को दिया। उनकी सेवा की सीमा ब्राह्मण-वर्ग ही नहीं थी, वे तो अपने ज्ञान को सभी तक पहुँचाने का आग्रह करते रहे हैं। उनका उपदेश है—

जें-जें कांहीं आपणांस ठावे। तें तें इतरां शिकवावें
शहाणे करून सोडावें। सगले जना॥

(जो हमें आता है, वह दूसरों को भी सिखलाना चाहिए। सबको बुद्धिमान बनाकर ही छोड़ना चाहिए।)

लोक-कल्याण की इतनी प्रबल भावना समर्थ में भरी हुई थी। उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार प्रकट की है—आदि नारायण—महाविष्णु—हंस—बुद्धदेव—वसिष्ठ—राम—रामदास।

महाराष्ट्र में रामदासी मठों की संख्या पर्याप्त है। जयरामस्वामी, बड़गांवकर, रंगनाथ स्वामी, आनंदमूर्ति और केशवस्वामी को 'दास-पंचायतन' की संज्ञा दी गई है। ये पाँचों समर्थ रामदास के समकालीन और अनुयायी हैं। महाराष्ट्र के सभी सम्प्रदाय के संतों ने

१. प्रसाद (मराठी जुलाई), १६५४ पृष्ठ ६६ ।

वैदिक धर्म के आचार-विचार की स्वत्व-रक्षा का आग्रह किया है। सभीने वर्ण व्यवस्था को ध्वस्त करने का कभी भी संकल्प नहीं किया, प्रत्युत उसकी रक्षा का ही उपदेश दिया है। वर्ण-व्यवस्था के भीतर रहकर आत्मज्ञान प्राप्त करने की ओर उनका निर्देश है। वे तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अद्वैती हैं; पर उनका अद्वैत भक्तिरस से सिक्त है। इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति कबीर के समान उलटबाँसी का रूप धारण नहीं कर पाई। उन्होंने सहजभाव से लोकभाषा में जनता को राम देवता में अधिष्ठित भगवान की सर्वव्यापकता का आभास करा कर उनके चरणों में अपने विहित कर्मों को समर्पित करने का उपदेश दिया है। उनके पंथ में विठ्ठल, दत्तात्रय, राम—किसी को भी केन्द्र-विंदु मानकर, उसे सर्वव्यापी अनुभव कर, उसका नामोच्चार साधना का एक मार्ग माना गया। वारकरी और समर्थ सम्प्रदाय के तत्त्वों में कोई मौलिक भेद नहीं है। समर्थ सम्प्रदाय में मठों और महन्तों को प्रचार की दृष्टि से महत्त्व प्रदान किया गया है। यही अन्तर है। सम्प्रदाय की कार्य-प्रणाली के बीस लक्षण समझे जाते हैं, जिनमें (१) लेखन, (२) वाचन, (३) अर्थ बोध, (४) आशंका निवृत्ति, (५) अनुभव, (६) गान, (७) नृत्य, (८) ताली बजाना, (९) अर्थभेद, (१०) प्रबन्ध रचना (११) प्रबोध, (१२) वैराग्य, (१३) विवेक, (१४) पर-संतोषीकरण, (१५) राजनीति, (१६) एकाग्रता, (१७) समय और प्रसंग ज्ञान, (१८) उदासीनता, (१९) समाधान और (२०) रामोपासना की गणना है। वारकरियों द्वारा प्रवर्तित भागवत धर्म को समयानुरूप उत्थापित करने के लिए समर्थ-सम्प्रदाय अग्रसर हुआ। अगले अध्याय में हम सभी सम्प्रदायों के उन संतों का परिचय प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने हिन्दी को अपनी अमोल वाणी का माध्यम बनाकर राष्ट्रभाषा की पदवी प्रदान की।

---

(१)

शक-संवत की १२वीं शताब्दी के महानुभावी संत दामोदर पंडित की हिन्दी-रचना

लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि का छायाचित्र

[स्व० हरिभाऊ नेने के सौजन्य से

(२)

दामोदर पंडित की हिन्दी-रचना

तीन सौ वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि से

चौथा अध्याय

मराठी संतों की हिन्दी वाणी : संत-परिचय और वाणी-विवेचन

पिछले अध्याय में हमने महाराष्ट्र में प्रचलित नाथ, महानुभाव, वारकरी, दत्त और रामदासी संत-सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्त और आचार-धर्म की स्थूल रूपरेखा प्रस्तुत की है। अब हम उन प्रमुख संतों का परिचय देते हैं, जिनकी वाणी ने हिन्दी के माध्यम से लोक-कल्याण की वर्षा की है। नाथ-सम्प्रदाय ने महाराष्ट्र में धर्म-जागृति का बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यद्यपि ज्ञानेश्वर महाराज के जाज्वल्यमान व्यक्तित्व में यह सम्प्रदाय हतप्रभ हो गया, तथापि उसकी सृष्टि और सृष्टिकर्ता को देखने से ज्ञान-दृष्टि कभी भी महाराष्ट्र-संतों से ओझल नहीं रही। महानुभावी, वारकरी, दत्तानुयायी और रामदासी-सभी संतों ने नाथमत से थोड़े-बहुत अंश में प्रेरणा ग्रहण की है; परन्तु विशुद्ध नाथ-सम्प्रदायी महाराष्ट्रीय संतों में ज्ञानदेव के पूर्व निवृत्तिनाथ और गैनीनाथ का ही प्रमुखता से उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु इन्होंने भी नाथ-मत के अनुसार केवल 'ध्यान-योग' पर ज़ोर नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि गैनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को बालकृष्ण-भक्ति की भी दीक्षा दी। जो हो, ज्ञानेश्वर के पश्चात् भी 'नाथपंथी' परम्परा राशिन और पैठण में चलती रही है, जो इस प्रकार है—

आदिनाथ—मछेन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गैनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर)—
सत्यामलनाथ—गैबीनाथ—गुप्तनाथ—उद्बोधनाथ—केसरीनाथ— शिवदिन-
नाथ—नरहरि—महीपति।

परन्तु इन संतों को विशुद्ध 'ध्यान योगी' नाथपंथी कहना कठिन है। क्योंकि इन्होंने ज्ञानेश्वर को अपना गुरु मानकर उनके आदर्शों को स्वीकार किया है। ज्ञानेश्वर ने अपने जीवन के उत्तरकाल में वारकरी सम्प्रदाय को अपना ही नहीं लिया था, वे उसकी आधार-शिला भी बन गये थे। और वह सम्प्रदाय नाथपंथ के समान कोरा ज्ञानमार्गी नहीं है, उसमें भक्ति का भी समावेश है। ऐसी दशा में राशिन और पैठण के संतों को ज्ञानेश्वर की परम्परा में रखा जाय अथवा मछेन्द्रनाथ और गोरखनाथ की विशुद्ध नाथ-

पंथी परम्परा के अन्तर्गत लिया जाय, इसका निर्णय हम उनकी रचनाओं के अध्ययन से ही कर सकते हैं। पैठण के शिवदिन केसरी की हिन्दी-रचनाओं से ऐसा ज्ञात होता है कि ये शुद्ध ज्ञानमार्गी हैं। परन्तु मराठी में इन्होंने अपनी कुलदेवी तुलजापुर की भवानी और पंढरपुर के विठ्ठल पर स्तुतिपरक पद-रचनाएँ की हैं, जिनमें भक्ति का स्वर स्पष्ट है। ये कथा-कीर्तन भी करते रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञानेश्वर के पूरवर्ती महाराष्ट्रीय संतों ने भले ही अपनी गुरु-परम्परा आदिनाथ से निर्धारित की हो; पर वे वास्तव में विशुद्ध ज्ञानमार्गी नहीं थे, उनमें भक्ति का भी समावेश हो गया था।

विशुद्ध ज्ञानमार्गी नाथ-पंथियों में ज्ञानेश्वर से पूर्व जो संत हुए हैं, उन्होंने संभवतः हिन्दी में भी उपदेश दिया हो; पर वे मुझे अभी प्राप्त नहीं हो पाये। महाराष्ट्र में गोरखनाथ के नाम पर जो तंत्र-मंत्र हिन्दी में प्रचलित हैं, वे किसी मराठी भाषी नाथ-सम्प्रदायी के हैं, अथवा स्वयं गोरख या उनके महाराष्ट्रीय शिष्य के हैं, यह कहना कठिन है।

ऐसी दशा में संत-पंथ के अनुसार संतों को विभाजित करना कठिन है; क्योंकि संत प्रायः समन्वयवादी हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए महानुभाव पंथ को ही लीजिए। इस पंथ के संतों ने यद्यपि नाथ-योगियों पर तीखा व्यंग्य किया है, तो भी उनका नाथमत से सम्पर्क रहा है। चक्रधर के गुरु गोविन्द प्रभु अथवा गुडेमराउल नाथपंथी चांगदेव के शिष्य थे। चांगदेव राउल ने जिन्हें चक्रपाणि भी कहते हैं, हरपालदेव के (जो चक्रधर के पूर्वावतार थे) शरीर में प्रविष्ट हो, उसे जीवित किया था। इस आख्यायिका से महानुभाव और नाथ-पंथ का संबंध प्रकट होता है।[1] इसी प्रकार जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, ज्ञानदेव भक्ति-मतवादी वारकरी होते हुए भी नाथों के गुरुत्व को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकारते हैं। वे नाथमत को 'पंथराज' कहते हैं। रामदास-काल में बहियाबाई वारकरी संत श्रेष्ठ तुकाराम की शिष्या रही है और उनकी समाधि के अनन्तर समर्थ-मत के प्रवर्तक रामदास महाराज की भी शिष्या रही है। अतः उनकी गणना तुकाराम तथा रामदास दोनों की शिष्य-परम्परा में होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों को पंथ विशेष के अन्तर्गत रखना आसान नहीं है। हिन्दी भाषा के विकास की दृष्टि से महाराष्ट्र में होनेवाली राजनीतिक उथल-पुथल को सम्मुख रखकर संतों का अध्ययन अधिक उचित होगा; क्योंकि उसका प्रभाव भाषा और साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर हमने संतों की वाणियों के अध्ययन का विभाजन इस प्रकार किया है—

प्रथम खण्ड : मुसलमान-आक्रमण के पूर्व (यादवकालीन) संतों की हिन्दी-वाणी।

द्वितीय खण्ड : मुसलमान-आक्रमण के पश्चात् (मुसलमानकालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी।

---

१. देखिए—महाराष्ट्र-परिचय, पृष्ठ ३३१।

तृतीय खण्ड : मुसलमान वर्चस्व के ह्रासोपरान्त (शिवाजी कालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी।

चतुर्थ खण्ड : पेशवाकालीन और पेशवोत्तर मराठी संतों की हिन्दी-वाणी।

प्रथम खण्ड में मुसलमान-आक्रमण के पूर्व यादवकालीन संतों की हिन्दी-वाणी की चर्चा की गई है। इसमें महानुभावी संत तथा ज्ञानेश्वर महाराज और उनकी बहिन मुक्ताबाई का समावेश है। ज्ञानेश्वर की समाधि के दो वर्ष पूर्व मुसलमानों ने महाराष्ट्र पर आक्रमण कर दिया था। पर उसका महाराष्ट्र-जीवन पर प्रभाव नहीं पड़ा था। द्वितीय खण्ड में नामदेव से लेकर तुकाराम के पूर्व तक के संतों का परिचय है। तृतीय खण्ड में तुकाराम और रामदास तथा उनके समसामयिक संतों का परिचय है। चतुर्थ खण्ड में हरिहरनाथ, शिवदिन केसरी, अमंतराम आदि संतों का परिचय है।

प्रथम खंड

मुसलमान-आक्रमण के पूर्व (यादवकालीन) : मराठी संतों की हिन्दी-वाणी

चक्रधर और हिन्दी

महाराष्ट्र में सबसे प्राचीन हिन्दी-वाणी महानुभाव पंथ के प्रवर्तक महात्मा चक्रधर की प्राप्त होती है। इनका परिचय महानुभाव-पंथ की चर्चा करते समय विस्तार के साथ दिया जा चुका है। अतएव यहाँ उसके पिष्ट-पेषण की आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल उनकी चौपदी दी जाती है, जिन्हें उन्होंने पैठण (प्रतिष्ठान) में गाया था—

"मूल स्थानीं भिउ बंध बांधो हो जोई ना काल कलाई ॥
गुरुवचनें उठीयाना दृढ़ बंधाई जे वीना चंचल नाहीं।
सुती बंधी स्थिर होई जेणे तहमी जाई
सो परी मोरो वैरी, आपणाँ काई ॥

× ×   × ×

पांचे पंचायत पांवै जन हो धावती आप आण स्थानीं।
पवण पुरो हो मनि स्थिर करो हो चन्द्र मैली वा भान।
अयागमन दुई जे वारो बुद्धि राखो अपन ये।
झाटिये जातां निवारो हो भिडे न वायो जाई ॥
आँखें निरंजन लो लो करी हो भाव अभाव दोन्ही नाहीं।

यह मराठी-गुजराती मिश्रित हिन्दी है। इसमें 'नाथों' के सूर्य-चन्द्र-नाड़ी मेल, प्राणायाम आदि साधनों पर व्यंग्य है। महाराष्ट्र में मुसलमान-संसर्ग के पूर्व यह रची गई है। इसमें 'बांधो', 'करो' जैसे विधि-क्रियारूप खड़ी बोली की स्वतंत्र सत्ता के निर्देशक हैं। चक्रधर महाराज की हिन्दी में इतनी गति नहीं प्रतीत होती, जितनी उन्हींकी समकालीना शिष्या 'महदायिसा' की है।

महदायिसा

इस कवयित्री को महदायिसा के अतिरिक्त, महदंबा, उमाम्बा और रूपाई भी कहते हैं। यह मराठी की आदि कवयित्री कही जाती है। इसके जन्म और मरण के संबंध में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। 'नागदेव-स्मृति'-ग्रंथ से इतना ही ज्ञात होता है कि इसके पूर्वज वामनाचार्य देवगिरि के यादवराजा महादेवराय के यहाँ पुरोहित थे। डा० तुलपुले ने 'महाराष्ट्र सारस्वत' के परिशिष्ट (पृ० ८८५) में वामनाचार्य का वंश-विस्तार इस प्रकार दिया है—
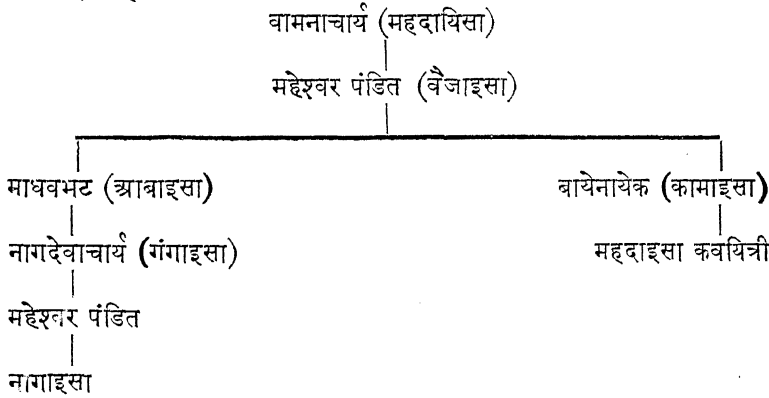
इस प्रकार महदायिसा नागदेवाचार्य की चचेरी बहिन होती है। महदायिसा बाल-विधवा थी। नागदेवाचार्य के साथ ही इसने चक्रधर का अनुसरण किया। चक्रधर के देहान्त के पश्चात् यह ऋद्धिपुर में गोविन्दप्रभु के पास रहने लगी। इस कवयित्री की गुरुभक्ति बड़ी प्रबल थी। यह अपने काल में अत्यंत विदुषी समझी जाती थी। नागदेवाचार्य ने इसे वृद्धा (म्हतारी) कहा है। इसका प्रयाण-काल शके १२३० है। 'स्मृति-स्थल' में नागदेवाचार्य का अपनी 'म्हतारी' के निकट रहने का उल्लेख है। अतएव महदायिसा का प्रयाणकाल शके १२३० के पूर्व होना चाहिए। इस कवयित्री ने मराठी में धवळे, मातृकी, रुक्मिणी-स्वयंवर और गर्भकाण्ड ओव्या नामक ग्रंथों की रचना की है। इसे मराठी की प्रथम कथा-काव्य लेखिका होने का श्रेय प्राप्त है। इसने हिन्दी में भी रचना की है। पता नहीं, कितने पद काल-कवलित हो गये। एक पद जो प्राप्य है, वह नीचे दिया जाता है—

> "नगर द्वार हो भिच्छा करो हो, बापुरे मोरी अवस्था लो।
> जिहाँ जावो तिहाँ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिंता लो।
> हाट चौहाटां पड रहूं हो मांग पंच घर भिच्छा
> बापुड लोक मोरी आवस्था कोउ न करी मोरी चिंता लो।

'मार्ग' के आचार्य के अनुसार साधिका भिक्षा माँगकर चौहाटे में पड़ी रहती है। उसके गुरुदेव ही उसकी चिंता करते हैं। वह उन्हीं का आह्वान करती है। महदायिसा की गुरुभक्ति प्रसिद्ध है।

महदायिसा के हिन्दी-पद की भाषा खड़ी बोली और व्रज का मिश्रण है। अभिव्यक्ति में सहज प्रासादिकता है। करुणभाव की छाया है। चक्रधर स्वामी की अपेक्षा महदायिसा की भाषा में अधिक प्रौढता है, अधिक हिन्दीपन है। क्या ही अच्छा होता, इनके और भी हिन्दी पद प्राप्त हो सकते !

दामोदर पंडित

महानुभाव संत कवियों में दामोदर पंडित का मूर्धन्य स्थान है। इनके जन्म-स्थान और दीक्षापूर्व जीवन का वृत्त अज्ञात है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये इस पंथ में आने के पूर्व नाथपंथी थे। शके १२०९ में नागदेवाचार्य 'रिद्धपुर' से लौटकर गोदावरी तट स्थित 'निंवा' नामक स्थान में रहने लगे। सम्भवतः वहीं इनकी दामोदर पंडित से भेंट हुई। कहा जाता है कि शके ११९४ में इन्होंने सपत्नीक महानुभाव-मार्ग में दीक्षा ली। इनकी पत्नी हिरांबा अत्यंत सुशीला और पंडिता थी। उसमें उत्कट गुरु-भक्ति थी। एक बार उसने अपने गुरु नागदेवाचार्य को घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। उस समय उसकी प्रिय पुत्री आसन्नमरणा थी तो भी वह उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगी रही। आचार्य को भोजन खिलाने के पश्चात् जब उसने पुत्री की सुधि ली, तब उसने देखा कि वह कभी की बेसुध हो चुकी थी—प्राणान्त कर चुकी थी। इस दृश्य को देखकर उसके हृदय का बाँध फूट पड़ा। वह विचलित होकर रो उठी। इस घटना ने उसका जीवन-क्रम ही पलट दिया। वह विरक्त हो गई और गुरु के सान्निध्य में रहने लगी। दामोदर पंडित ने संन्यास नहीं लिया। वे अपने पुत्र के पालन-पोषण में लगे रहे। उनका मन निवृत्ति से दूर ही भागता रहा। कई बार संन्यास लेने की इच्छा करते रहने पर भी, ले न पाते। किंवदंती है कि एक दिन हिरांबा ने पति को यह संदेश भेजा कि जिस चूल्हे की तुमने खीर खाई है, क्या उसी की राख खाने ठहरे हुए हो? पत्नी का यह व्यंग्य कवि के हृदय में चुभ गया। दामोदर पंडित संन्यासी हो गये और पत्नी के समान ही गुरु के आश्रम में रहने लगे।

संन्यस्त कवि संस्कृत के आचार्य तो थे ही, मराठी पर भी पूर्ण अधिकार रखते थे। हिन्दी से भी उनका परिचय था, जो उनकी अनेक चौपदियों की रचनाओं से प्रकट है।

साहित्य और दर्शन के अतिरिक्त संगीतकला के प्रति भी उनकी अत्यधिक रुझान थी। उनके कण्ठ से संगीत रह-रह कर झर उठता था, जिसके नाम में वे स्वयं भूल जाते थे। महानुभाव-मार्ग में संन्यासियों के लिए गायन का निषेध होने से उन्हें बड़ा मानसिक बोझ अनुभव होता था। एक दिन उनके संयम का बाँध टूट ही तो गया। वे आत्मविभोर होकर गाने लगे। गुरु के कानों में संगीत-ध्वनि पड़ते ही वे चुपके से दामोदर पंडित के पीछे आ खड़े हुए। दामोदर पंडित वेदनाभरे स्वर में गा रहे थे, जिसका भावार्थ यह था कि "हे मेरे गोविन्द राजा, जिस प्रकार शिशु अपनी माँ के लिए रोता है, उसी प्रकार मैं भी तेरे लिए रोने लगता हूँ। गीत गाकर मैं तुझे अपनी ओर खींचना चाहता हूँ। क्या यह मेरा अपराध है?"

आचार्य इस भाव-भीने गीत को सुनकर विचलित हो उठे। वे दामोदर पंडित के सामने आ गये और बोले—"तुम पर अब गायन-निषेध की आज्ञा नहीं रही। चक्रधर स्वामी ने जो 'गीतुविखो' कहा है। वह विलासी गीतों के लिए लागू होता है, तुम्हारे गीतों के लिए नहीं।" पंडित के कण्ठ और गीत-माधुर्य का यह उत्कट उदाहरण है।

ग्रन्थ-रचना

कवि की भागवत के दशम स्कंध की कथा पर आधारित 'बछाहरण' और भिन्न-भिन्न रागनियों में रचित साठ चौपदियाँ प्रसिद्ध हैं। चौपदियों में नाथ-पंथियों पर व्यंग्योक्तियों की वर्षा है। इसीसे अनुमाना गया है कि ये महानुभाव पंथ में आने के पूर्व स्वयं नाथ-पंथी रहे हैं। इसीलिए आचार्य ने 'नाथों' से मुठभेड़ होने के लिए कदाचित् इन्हें आदेश दिया हो। जो हो, यह बात सत्य है कि इनकी चौपदियों में नाथ-मत पर निर्मम प्रहार है। नाथ-मत में जब औघड़ियों और कनफटियों के गुह्याचार्य प्रबल हुए और भक्ति के प्रति स्वभावतः उपेक्षा दिखलाई दी तब जनता में उनकी प्रतिष्ठा गिरने लगी। महाराष्ट्र के ही नहीं, उत्तर भारतीय संतों की भी विविध योग-साधनाओं पर व्यंग्योक्तियों की प्रवृत्ति पाई जाती है। भक्ति-मार्गी संत-मंडली के प्रति जहाँ जनता में श्रद्धा का भाव प्रबल हो रहा था, वहाँ नाथ पंथियों के प्रति आतंक और उपेक्षा की भावना बढ़ रही थी। महाराष्ट्र में महानुभावों ने सर्वप्रथम नाथ-पंथियों पर प्रहार करना प्रारम्भ किया।

एक चौपदी में दामोदर पंडित नाथ-पंथी योगी, वैरागी और भोगी की व्याख्या करते हैं—

"नवनाथ कहे सो नाथ पंथी,
जगत कहे सो जोगी।
विरद बुझे तो कहि वैरागी,
ज्ञान बुझे सो भोगी।"

फिर वे गरुआ (गर्व करनेवाले अवधूतों) को सुनाते हैं—

"सुन हो तुम्ह सिद्धान्त गुरुआ,
सारा ज्ञान पंथु हमारा
शुन्य निरसुन्य काहां के कहिजे,
ये शिव शकती समाजु गती,
कवण युक्ति तुम पाया
ब्रह्मा विष्णु महेश चन्द्र रवि,
भ्रमण करत समाया।"

दंभ और लोभ बन्धनकारी होते हैं। 'पंडित' चेतावनी देते हैं—

"हटो हटो रे दंभ करण,
माथें निव्रित नावे।
जता जता दंभ करेगा,
तंता बंधन पावे।
चिथड़ा फाटा तुटा पहेरो,
उपरि चोर न आवे।
येहि रहनि जे चालती,
ते जंगल मध्ये सोवे।"

(जो गरीबी धारण कर लेते हैं, उनपर चोरों की दृष्टि नहीं जाती और वे निर्भीक हो सुख की नींद सोते हैं।)

दामोदर पंडित की हिन्दी में मराठी की छाया है। उसमें खड़ी बोली के साथ-साथ व्रजभाषा रूप भी विद्यमान है। व्रजभाषा काव्यभाषा के रूप में उत्तर में प्रचलित रही है और वह दक्षिणापथ में भी संचरित हो गई थी।

दामोदर पंडित की हिन्दी-रचनाओं में यद्यपि काव्य का कोई चमत्कार नहीं है, तथापि मुसलमानों के संसर्ग से रहित दक्षिण में हिन्दी का रूप किस प्रकार सहज रीति से विकसित हो रहा था, इसकी झलक इनकी भाषा में दीख पड़ती है।

ज्ञानेश्वर

यद्यपि ज्ञानेश्वर ने अपनी गुरु-परम्परा आदिनाथ से स्वीकार की है और स्वयं 'नाथ-मत' में दीक्षित भी हुए हैं, तथापि वे वारकरी सम्प्रदाय की 'नींव' के पत्थर माने जाते हैं। अतएव हम उन्हें 'वारकरी पंथी संत' के अन्तर्गत ही रखना चाहते हैं।

उनका जन्म पैठण के निकट आळन्दी ग्राम में हुआ था। उनकी जन्मतिथि के संबंध में थोड़ा मतभेद है। एक मत के अनुसार श्रावण वदी अष्टमी शके ११९७ (सन् १२७५) और दूसरे मत के अनुसार शके ११९३ (सन् १२७१) में उनका जन्म हुआ। प्रथम मत के पोषक डा० रानडे, तुलपुले, पांगारकर आदि और दूसरे मत के पुरस्सरकर्ता महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे, दांडेकर आदि हैं। ज्ञानदेव की 'ज्ञानेश्वरी' का रचनाकाल प्रायः निश्चित है। स्वयं ज्ञानदेव की यह ओवी 'ज्ञानेश्वरी' के अन्त में मिलती है—

"शके बाराशे बारोत्तरें। तैं टीका केलीं ज्ञानेश्वरें॥
सच्चिदानन्द बाबा आदरें। लेखकू जाला॥"[1]

ज्ञानेश्वर का समाधिकाल उनके समकालीन नामदेव तथा अन्य सन्तों के अभंगों से निश्चित हो जाता है।

---

१. शके १२१२ (सन् १२९०) में ज्ञानेश्वरी की टीका लिखी और सच्चिदानन्द बाबा ने सादर लेखन का कार्य किया।

नामदेव कहते हैं—

धन्य अलकापूर इन्द्रायणी तीर। दैव सिद्धेश्वर नांदे तेथें
पुण्य क्षेत्र ऐसें पाहूनीया आधीं। कृष्णा कार्तीक मास त्रयोदशीं।
देव गुरुवार दुर्मुख संवत्सर। करिती सुरवर कुसुम वृष्टी।
नामा म्हणे ज्ञानराज ब्रह्म पूर्ण। समाधि निधान संजीवनी।

विसोबा खेचर कहते हैं—

"शके बाराशें आठरा। दुर्मुख नाम संवत्सरा।
गुरुवासर कार्तिक मासीं। कृष्णपक्ष त्रयोदशी।
माध्यान्हीं दिनकर। राहे क्षणमात्र स्थिर॥
खेचर बंदी ज्ञानेश्वर। जोडोनिया दोन्ही कर॥"

जनाबाई कहती हैं—

"धन्य सर्व काल धन्य तो सुदिन। धन्य हा निधान ज्ञानदेव
बारा शतें अठरा दुर्मुख संवत्सर। तिथी गुरुवासर त्रयोदशी॥
शरदृतु कृष्णपक्ष कार्तीक मास। बैसे समाधीस ज्ञान राजा
नामयाची जनी लागते चरणीं। ज्ञानेश्वरी ध्यानीं जपत से।"

चोखामेला कहते हैं—

कृष्ण त्रयोदशी कार्तिक मास। बैसे समाधीस ज्ञानदेव।
जातिहीन चोखा जोडुनि कर। समाधी निर्धारि संजीवनी॥

शके १२१८, कृष्णपक्ष त्रयोदशी, गुरुवार ज्ञानेश्वर की समाधि-तिथि निश्चित है। और ज्ञानेश्वर यह भी कहते हैं कि बाईस वर्ष ही वे जीवित रहे।[1]

समाधिकाल शके १२१८ से २२ वर्ष घटा देने पर शके ११९६ जन्म शके निश्चित करना पड़ता है; पर परम्परा जन्मकाल शके ११९७ के पक्ष में है। यदि ज्ञानेश्वरी की पंक्तियाँ प्रक्षिप्त नहीं हैं, तो ज्ञानेश्वरी का रचनाकाल शके १२१२ अकाट्य प्रमाण है और समाधिकाल भी सम सामयिक बहु संतों द्वारा समर्थित होने से असंदिग्ध हो जाता है। ज्ञानेश्वर स्वयं बाईस वर्ष जीवित रहने की बात कहते हैं। बाईस वर्ष को हम लगभग बाईस वर्ष मानकर परम्परा पुष्ट शके ११९७ को उनका जन्मकाल मान लेते हैं। डा० रानडे और तुलपुले भी इसी मत के समर्थक हैं।

जीवन-झलक

ज्ञानेश्वर के पिता विठ्ठलपंत बचपन से ही निवृत्तिमार्गी थे। यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् अल्पकाल में ही उन्होंने वेद और शास्त्रों का अध्ययन कर डाला था और पिता की आज्ञा लेकर अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्रा की थी। जब वे आळंदी पहुँचे, तब रुक्मिणीबाई से उनका विवाह हो गया और वे वहीं रहने लगे। विठ्ठलपंत का मन गृहस्थी के कार्य में नहीं लगता था। वे बार-बार काशी जाने का आग्रह करते। एक दिन

1. 'महाराष्ट्र-सारस्वत' (चतुर्थ आवृत्ति) पृष्ठ १४८-१४९।

पत्नी से गंगास्नान की आज्ञा प्राप्त कर काशी भाग ही गये। वहाँ 'महाराष्ट्र सारस्वतकार' के अनुसार उन्होंने श्रीपाद स्वामी से संन्यास-दीक्षा ग्रहण की।[१] परन्तु श्री आजगांवकर के अनुसार उन्होंने यह दीक्षा रामानन्द स्वामी से ली।[२] वहाँ उनका नाम चैतन्य स्वामी रखा गया। एक बार श्रीपाद या रामानन्द स्वामी रामेश्वर की तीर्थ-यात्रा के मार्ग में जब आळंदी पहुँचे तब चैतन्य स्वामी की पत्नी उनसे मिली। स्वामीजी ने उसे 'पुत्रवती भव' का आशीर्वाद दिया, जिसे सुनकर वह हँस पड़ी और उसने अपने विरक्त पति की समस्त गाथा कह सुनाई जब स्वामीजी को चैतन्य स्वामी के छलाचार का ज्ञान हुआ तब वे रुक्मिणी बाई को साथ ले काशी लौट गये और चैतन्य स्वामी की असत्य कथन पर कड़ी भर्त्सना की। चैतन्य स्वामी पुनः विठ्ठलपंत होकर आळंदी लौट आये। तब शके ११९५ के पश्चात् उनके निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई नामक चार संतति हुईं। पंत ने संन्यास त्याग कर गृहस्थाश्रम स्वीकार किया था, अतएव ब्राह्मण-वर्ग के वे कोप-भाजन बने। ब्राह्मण-वर्ग ने प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्हें देहांत प्रायश्चित्त का निर्णय दे दिया! उन्होंने सहर्ष त्रिवेणी में जाकर देह अर्पित कर दी। चारों भाई-बहिन नाथ-मत में दीक्षित हो गये थे। फिर भी आळन्दी के ब्राह्मणों ने उन्हें पैठण के ब्राह्मण-समाज से 'शुद्धि-पत्र' लाने का आग्रह किया। ज्ञानदेव के अलौकिक चमत्कार-प्रदर्शन के कारण उन्हें 'शुद्धिपत्र' की प्राप्ति हो गई। वहाँ से ज्ञानदेव निकासे गये। वहीं महालय़ा मन्दिर में एक खम्भे पर कोयले से ज्ञानेश्वरी की रचना के बाद उन्होंने नामदेव और अपने भाई तथा अन्य संतों के साथ भारत के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों की यात्रा की। यात्रा से लौटने पर ही ज्ञानेश्वर ने समाधि की तिथि निश्चित कर डाली। नामदेव तथा अन्य संतों के अश्रुभरित नेत्रों के सम्मुख संत ज्ञानदेव ने आळंदी के सिद्धेश्वर मंदिर के सम्मुख जीवित समाधि ले ली। नामदेव के अभंगों में इस प्रसंग का बड़ा ही करुण उल्लेख है।

ज्ञानेश्वर ने अपनी बाईस वर्ष की आयु में जो ग्रंथ-रचना का कार्य किया, वह उनके असाधारण व्यक्तित्व का ही द्योतक है। आज महाराष्ट्र-घरों में उनकी 'ज्ञानेश्वरी' वेदों के समान पवित्र और पूज्य मानी जाती है। उसमें उन्होंने केवल गीता की टीका ही नहीं लिखी, काव्य की मधुर चमत्कृति भी संचित कर दी है जिसे पढ़ते समय आत्मा ज्ञान से प्रकाशित और मन काव्य सौष्ठव से चमत्कृत हो उठता है। यह भगवद्गीता पर मराठी में प्रथम टीका है। ७७० मूल श्लोकों पर ९००० ओवियों में यह सम्पूर्ण हुई है। इसमें गीता के अर्थ का स्वतंत्र प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपादन में ज्ञानदेवत्व झलक उठा है। तभी इसकी स्वतंत्र सत्ता और प्रतिष्ठा है। किंवदन्ती है कि ज्ञानेश्वरी की रचना को सुनकर निवृत्तिनाथ ने उसकी बड़ी प्रशंसा तो की; पर यह भी कहा कि यह तो दूसरे की कृति का भावार्थ है। तुम अपना भी तो कोई ग्रंथ लिखो। अपने गुरु और बन्धु से प्रेरित होकर उन्होंने अमृतानुभव' की रचना की। इसे कवि ने

१. महाराष्ट्र सारस्वत पृष्ठ १३३।
२. महाराष्ट्र संत कवयित्री, पृष्ठ २७।

'अनुभवागत' भी कहा है। इसमें शिव-शक्ति की एकता, शब्द-मंडन, शब्द-खंडन, स्फूर्तिवाद आदि विषयों का अन्वय-पद्धति पर विवेचन और शंकर-मत का समर्थन है।

इनके अतिरिक्त उनकी 'चांगदेव पासष्टी' नामक एक रचना और है। इसमें हठयोगी चांगदेव को ज्ञानदेव द्वारा प्रेषित उपदेश है। इसका एक रोचक प्रसंग है। एक बार जब चांगदेव ज्ञानदेव को पत्र लिखने बैठे तब उन्हें यह नहीं सूझा कि वे अवस्था में छोटे ज्ञानदेव को क्या लिखें....'आशीर्वाद' या 'तीर्थ रूप'? अतः उन्होंने कोरा कागज़ ही भेज दिया। उसे देखकर ज्ञानदेव की बहिन मुक्ताबाई ने व्यंग्य किया कि " 'चांगदेव' ने इतने वर्षों तक साधना की ; पर अभी तक वह कोरे ही रहे।" निवृत्तिनाथ यह सुनते ही बोल उठे "कोरा कागज यह बतलाता है कि अभी तक चांगदेव का अंतरंग कोरा और निर्मल है।" मुक्ताबाई मौन रह गई। अपने भाई की आज्ञा से ज्ञानदेव ने पैंसठ ओवियों में चांगदेव को उत्तर लिखा। वही 'चांगदेव पासष्टी' है। ज्ञानदेव के यही ग्रंथ प्रामाणिक कहे जाते हैं। इन ग्रंथों के अतिरिक्त उनके अनेक अभंग भी प्रचलित हैं। उन अभंगों में भक्ति-प्रवाह-रस को देखकर 'भारद्वाज' नामक एक विद्वान् ने यह प्रतिपादन किया कि महाराष्ट्र में दो ज्ञानदेव नामक संत हो गये हैं। एक नाथ-पंथी हठयोगी ज्ञानदेव और दूसरे भक्त ज्ञानदेव ; पर 'भारद्वाज' के मत का समर्थन नहीं हुआ। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव नामक एक ही संत हैं। उन्होंने भारत की तीर्थ-यात्रा के समय नामदेव को भी अपने साथ लिया था और उत्तर भारत के क्षेत्र देखे थे। सम्भवतः इसी समय उन्होंने हिन्दी में भी पद-रचना की। परन्तु महाराष्ट्र में उनकी रक्षा का प्रयत्न नहीं हुआ। जो एक-दो पद उपलब्ध हुए हैं, उन्हें यहाँ दिया जा रहा है—

"सब घट देखो माणिक मौला
कैसे कहूँ मैं काला धवला
पंचरंग से न्यारा होय
लेना एक और देना दोय। ध्रुवपद।

निर्गुण ब्रह्म भुवन से न्यारा
पोथी पुस्तक भये अपारा।
कोरा कागद पढ़ कर जाय
लेना एक और देना दोय।

अलख पुरुष मैं देखा दिष्टि
करकर आउन समार मुष्टि (?)
छाटा में कछू न होय
लेना एक और देना दोय।

1. देखिए—'ज्ञानदेव और ज्ञानेश्वर' (भारद्वाज)।

खलल दिया त्रिलिका
तिरते तिरते मन न थका

इस पार न भावे कोय
लेना एक न देना दोय।

निर्गुन दाता कर्ता हर्ता
सब जुग बन मो आपहिता

सदा सर्वदा अच्चल होय
लेना एक न देना दोय।"

भगवान सब प्राणियों में समाया हुआ है। इसका कोई रूप-रंग नहीं है, उसे काला और धवल कैसे कहा जा सकता है? पोथी-ज्ञान से निर्गुण ब्रह्म नहीं जाना जा सकता। उस 'अलख' को अन्तर्दृष्टि से 'लखा' जा सकता है। श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने उनका एक और पद प्रकाशित कराया है—

''सोई कच्चा वे नहीं गुरू का बच्चा
दुनिया तज-कर खाक रमाई, जाकर बैठा वन मों
खेचरि मुद्रा वज्रासन मां ध्यान धरत है मन मों
तीरथ करके उम्मर खोई जागे जुगति मो सारी
हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर को तिनके ऊपर जाना
सदगुरु की (जब) कृपा भई तब आपहि आप पिछाना।'[1]

वनवास, मुद्रा, आसन, अभ्यास, तीर्थाटन और पोथी-ज्ञान से सच्चा वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। वह तो गुरु के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है और उसी से 'परमार्थ-पथ' प्रशस्त होता है। इन पंक्तियों में ज्ञानदेव की हठयोग की क्रियाओं में आस्था प्रकट नहीं होती और न सर्वथा निवृत्ति में ही उनका विश्वास जान पड़ता है। वे संसार में पद्माम्बुजवत् रहकर प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति साधने के पक्ष में हैं। ज्ञानेश्वर का तात्त्विक पक्ष 'ज्ञानेश्वरी' से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने ईश्वर और जगत् का संबंध अग्नि और उसकी ज्वाला, कमल और उसकी पंखुड़ी, रत्न और उसकी चमक, शर्करा और उसकी मिठास, समुद्र और उसकी लहर के समान अभिन्न प्रतिपादित किया है। वे जगत् को मिथ्या नहीं, सत्य और चैतन्य रूप मानते हैं। उसमें परब्रह्म समाया हुआ अनुभव करते हैं। सृष्टि और ब्रह्म में भिन्नता का आभास माया है। ज्ञानेश्वर के नाथ गुरुओं ने 'शून्यवाद' को प्रमुखता दी थी; पर ज्ञानदेव ने समाज के अनुकूल निष्काम भक्तिपरक भागवत मत को प्रतिष्ठित किया जो महाराष्ट्र में 'वारकरी पंथ' कहलाता है।

---

१. **'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग १०, पृ० ६४।**

ज्ञानदेव के हिन्दी पद

ज्ञानदेव के उपर्युक्त दो हिन्दी पद दिये गये हैं। उनपर ध्यान देने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

(१) पहले पद भी भाषा में 'मौला' शब्द में मुसलमानी प्रभाव दिखलाई देता है। पद की सब पंक्तियों का भाव स्पष्ट नहीं है।

(२) दूसरे पद में पहले पद की अपेक्षा अधिक विदेशी शब्द हैं और पद की पंक्तियाँ भाव और भाषा की दृष्टि से अधिक स्पष्ट हैं।

निष्कर्ष—पहला पद ज्ञानेश्वर का प्रतीत है, जिसपर मुसलमानी प्रभाव न्यूनतम है और उसकी रचना महाराष्ट्र में हुई जान पड़ती है। ज्ञानेश्वर के समय में महाराष्ट्र पर अलाउद्दीन खिलजी का प्रथम आक्रमण सन् १६६४ में हो चुका था ; पर उसके दो वर्ष पश्चात् ही उन्होंने समाधि ली थी। इतने अल्पकाल में ज्ञानेश्वर की भाषा पर विदेशी प्रभाव पड़ना संभव नहीं जान पड़ता। प्रथम पद में 'मौला' शब्द लिपिक की असावधानी से आया जान पड़ता है अथवा मुस्लिम आक्रमण के पूर्व अरबी व्यापारियों के सम्पर्क से मौला जैसे शब्द महाराष्ट्र में प्रचलित हो गये हों।

दूसरे पद के संबंध में दो निष्कर्ष निकल सकते हैं। एक तो यह कि वह ज्ञानेश्वर-रचित नहीं है ; क्योंकि उसमें विदेशी शब्द अधिक हैं, भाषा में परिष्कार भी अधिक है। दूसरा यह कि यदि वह ज्ञानेश्वर-रचित है तो उसकी रचना नामदेव के साथ उत्तर-यात्रा के समय हुई होगी। क्योंकि उत्तर भारत मुसलमानों से प्रर्याप्त प्रभावित हो चुका था। उत्तर भारतीय जनता को उपदेश देते समय उन्होंने उनमें प्रचलित शब्दों को स्वभावतः ग्रहण कर लिया होगा। पता नहीं, श्रीभालेराव ने वह पद कहाँ से प्राप्त किया ? जो हो, हम उसे ज्ञानेश्वर-रचित मान सकते हैं। क्योंकि दक्षिण भारत के अत्यन्त प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर ने जब उत्तर भारत की यात्रा की होगी तब जनता उनके दर्शनों और उपदेशों को सुनने के लिए अवश्य आतुर हो उठती होगी और उसी परिस्थिति में उन्होंने हिन्दी पद लिखे होंगे। दुर्भाग्य है कि हमें उनके अन्य हिन्दी पद प्राप्य नहीं हैं। फिर भी यह हिन्दी के लिए कम सौभाग्य की बात नहीं है कि महाराष्ट्र के संत श्रेष्ठ ज्ञानदेव ने उसमें पद-रचना कर उसे गौरवान्वित किया।

मुक्ताबाई

महाराष्ट्र में इस संत कवयित्री को बड़ा आदर प्राप्त है। ज्ञानेश्वर की बहिन होने के नाते ही नहीं, ये स्वयं अत्यन्त परमार्थ-परक और तेजस्विनी होने के कारण पूजित हुईं। ज्ञानदेव के समान ही इनकी प्रारम्भिक जीवन-गाथा उपलब्ध नहीं है। ज्ञानेश्वरी ग्रंथ का समाप्ति-काल शके १२१२ निश्चित है। अतएव इसी शताब्दी में निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई का जन्म होना चाहिए। सामान्य रूप से इन भाई-बहिन का जन्म-काल इस प्रकार है—

(१) निवृत्तिनाथ : शके ११९५ श्रीमुख संवत्सर, माघ बदी १, प्रातःकाल।

(२) ज्ञानदेव : शके ११९७ युवा संवत्सर, श्रावण कृष्ण ८, मध्यरात।
(३) सोपानदेव : शके ११९९ ईश्वर संवत्सर कार्तिक सुदी १५ प्रहर रात।
(४) मुक्ताबाई : शके १२०१ प्रयाति संवत्सर, आश्विन सुदी १, मध्याह्न।

कहीं-कहीं इनके जन्म-शक में विभिन्नता भी पाई जाती है—

(१) निवृत्तिनाथ : शके ११९०
(२) ज्ञानदेव : शके ११९३
(३) सोपानदेव : शके ११९६
(४) मुक्ताबाई : शके ११९९

इन दो विभिन्न शक-तालिकाओं में से कौन प्रामाणिक है, यह कहना कठिन है। परन्तु परम्परा प्रथम तालिका पर विश्वास करती है। अतएव हम उसी को मानकर मुक्ताबाई का जन्म शके १२०१ निर्धारित करते हैं।

पिता विट्ठल पंत ने संन्यासी होकर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया, इसका प्रायश्चित ब्राह्मणों ने यह निश्चित किया कि पंत को शरीरान्त कर देना चाहिए। अतएव अपनी नन्हीं संतति को वहीं छोड़कर वे पत्नीसह प्रयाग गये और वहीं गंगा में प्रवाहित हो गये। माता-पिता के सहसा छोड़ जाने पर चारों भाई-बहिन अपने पैतृक गृह आपेगाँव लौट गये। उस समय मुक्ताबाई की आयु चार वर्ष की थी। संन्यासी की संतति होने से जनता की उनके प्रति सहानुभूति नहीं थी। कुछ समय पश्चात् वे आपेगाँव से आळंदी और वहाँ से पैठण आदि स्थानों में गये। नेवासे में किंवदन्ती के अनुसार ज्ञानेश्वर ने एक पतिव्रता स्त्री के मृत पति को कर-स्पर्श से प्राण-दान दिया। यहीं ज्ञानेश्वर की सच्चिदानंद बाबा से भेंट हुई जो ज्ञानेश्वरी के पाण्डुलिपिकार बने।

मुक्ताबाई में बचपन तो था ही, वाचालता भी बहुत थी। एक बार चारों भाई-बहिन पंढरपुर विट्ठलनाथ के दर्शन को गये। वहाँ नामदेव भी थे। नामदेव ने अभिमान के साथ संतों से कहा कि "मुझे पांडुरंग साकार दर्शन देते हैं। यह सौभाग्य किस संत को प्राप्त है?" संतों ने जब नामदेव को नमस्कार किया, तब नामदेव ने अभिमान में उन्हें प्रतिनमस्कार नहीं किया। मुक्ताबाई से यह दृश्य नहीं देखा गया। वे बोल उठीं—"पंढरपुर में आनेवाले सभी संत तेरे पैरों पर सिर रखते होंगे, मेरे भाइयों ने भी पांडुरंग के साथ-साथ तुझे भी नमस्कार किया; परन्तु जबतक तेरा अभिमान नहीं जायगा, मैं तुझे नमस्कार नहीं करूँगी।" भाइयों ने बहिन के स्पष्ट कथन से जब अरुचि प्रदर्शित की तब वे पुनः बोलीं—"ज्ञान के विना भक्ति व्यर्थ है, जबतक ज्ञान नहीं होगा, अहंकार नहीं जायगा और अंहकार के गये विना ज्ञान नहीं होगा।" उन्होंने पुनः नामदेव पर कशाघात किया—"इस चंदन के वृक्ष को अंहकार रूपी सर्प ने घेर रखा है, जबतक वह दूर नहीं होगा, तबतक उसका संसर्ग भयानक है।[1] अतः यह निर्णय हुआ कि ज्ञानेश्वर की गुफा में संत गोरा कुंभार के द्वारा सब संतों की परीक्षा ली जाय। यदि नामदेव उसमें उत्तीर्ण हो गये तो सभी उनका वन्दन करेंगे—उनके संतत्व को मान देंगे। कहा जाता है, जब

१ **'महाराष्ट्र-संत कवयित्री'—पृष्ठ ३४।**

मुक्ताबाई गोरा कुंभार की ओर जाने को निकली तब ऐसा प्रतीत हुआ मानों आकाश में मोतियों का चूर्ण बिखर गया हो अथवा बिजली की कड़कड़ाहट और चमचमाहट से आकाश भासमान हो उठा हो अथवा सारा आकाश ही पीताम्बर ओढ़े हुए हो ।[1] मुक्ताबाई का यह 'तेजस्वी प्रस्थान' कहा जाता है । यह उसकी योग-साधना का चिह्न माना जाता है । गोरोबा के निकट जाकर वहाँ सब संतों को, जिनमें नामदेव भी थे, मुक्ताबाई ने आमंत्रित किया । गोरोबा ने सबके शिर को घड़े की तरह ठोकना प्रारम्भ कर दिया । जब नामदेव की बारी आई तब उनका भी शिर ठोका-पीटा गया और अंत में वे कच्चे संत घोषित किये गये । इसपर नामदेव को मुक्ताबाई पर बड़ा रोष आया और वे खीझते हुए पंढरपुर लौट गये । मुक्ताबाई की अन्तःप्रेरणा से उन्होंने अन्त में बिसोबा खेचर को अपना गुरु बना लिया; क्योंकि संतमत में बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता ।

मुक्ताबाई का स्वतंत्र चरित्र प्राप्य नहीं है । ब्राह्मणों ने संन्यासी की सन्तति होने के कारण चारों भाई-बहन को समाज में मान्यता प्रदान नहीं होने दी । इसीलिए मुक्ताबाई आजीवन अविवाहिता रहीं और अपने भाइयों के साथ परमार्थ साधना में लगी रही । जिस समय ज्ञानदेव ने शके १२९८ में आळन्दी में समाधि ली, उसकी आयु २१ वर्ष की थी । समाधि के निकट अश्रुपुष्पांजलि अर्पित करते समय वह इतनी ही बोली—

"आम्हां माता पिता नित्य ज्ञानेश्वर ।
नाहीं आतां थार विश्रांती सी ।"

ज्ञानदेव की समाधि के अनन्तर सोपानदेव ने भी शके १२१२ में 'सासवड़' में समाधि ले ली । इसके पश्चात् मुक्ताबाई निरन्तर उदास रहने लगी । अपने पितृ-स्थान के दर्शन करके वह माणगाँव गई, जहाँ शके १२१९, वैशाख वदी, १२ को मेघगर्जन और जलवृष्टि के समय उसने इहलीला समाप्त की । मुक्ताबाई ने अपने भाई निवृत्तिनाथ से ही गुरुदीक्षा ली थी । उसने चांगदेव को दीक्षा दी थी, यह चांगदेव ने स्वयं अपने एक अभंग में स्वीकार किया है ।[2] उन्होंने अनेक अभंगों में मुक्ताबाई का उल्लेख किया है ।

मुक्ताबाई की रचनाएँ बहुत कम प्राप्त हैं । 'ज्ञानदेवी गाथा' में उनके ४२ अभंग हैं । 'ताटीचे अभंग' भी उनके कहे जाते हैं; परन्तु वे 'गाथा' में नहीं हैं । वे प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं । वे ज्ञानदेव-भगिनी मुक्ताबाई के नहीं, और किसी मुक्ताबाई के हो सकते हैं । मुक्ताबाई के नाम पर एक हिन्दी-पद प्रचलित है—

"वाह वाह साहबजी सद्गुरुलाल गुसाईंजी
लालबीच मो उडला काला ओंठ पीठसों काला ।
पीत उन्मनी भ्रमरगुंफा रस झूलन वाला ॥

---

१. **मोतियांचा चुरा फेंकिला अंबरी, विजूनिया परी कील झालें ॥
जरी पीतांबर नेसविली नया । चैतन्याचा गाया नील बिन्दु ॥
तळी परी पसरे शून्याकार जालें । सूर्याची ही पिलें नाचू लागे ॥**

१. **मुक्ताई जीवनचा गया दिधले, निर्गुणी साधंले घर कैसें । महाराष्ट्र संत कवयित्री, पृ० ३८ ।**

सदगुरु चेले दोनों बराबर एक दस्तयों भाई ।
एक से एक दर्शन पाये महाराज मुक्ताबाई ।"[1]

मुक्ताबाई का ज्ञानदेव से स्वतंत्र तत्त्वज्ञान नहीं है। नामदेव संबंधी आख्यायिका से यही जान पड़ता है कि वे कोरी भक्ति को निरर्थक समझती हैं। ज्ञान-समन्वित भक्ति उन्हें मान्य थी और साधना के पथ पर 'गुरु का मार्गदर्शन' आवश्यक समझती थीं। संत-परीक्षा-सभा के संबंध में मुक्ताबाई का गोरा कुंभार के निकट जाते समय का वर्णन करनेवाले अभंग में जो आकाश में प्रकाश आदि छा जाने का उल्लेख है, उसके आधार पर आजगाँवकर लिखते हैं कि "मुक्ताबाई की योगविद्या में अच्छी गति होनी चाहिए।[2] पर हम इस वर्णनमात्र को आलंकारिक मानते हैं। इससे मुक्ताबाई के तेजस्वी रूप का ही संकेत मिलता है, किसी योगसाधना का चमत्कार नहीं। स्वयं ज्ञानेश्वर ऐसी क्रियाओं में आस्था नहीं रखते थे। उन्होंने हठयोगियों का उपहास ही किया है। अतएव मुक्ताबाई अपने भाइयों के पथ-चिह्नों पर अग्रसर होनेवाली सात्विक साधिका रही हैं, जिनके अभंगों का पवित्र उच्चार संत-समाज में सादर होता रहता है।

---

१. **'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग १०, संवत् १९८६, पृ० ६४।**
२. **'महाराष्ट्र-संत कवयित्री', पृष्ठ ३४।**

द्वितीय खंड

मुसलमान आक्रमण के पश्चात् (मुसलमान कालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी की विवेचना

नामदेव का समय

जिस समय नामदेव का महाराष्ट्र में प्रादुर्भाव हुआ, उत्तर भारत में खिलजियों के शासक सैनिक-अभियान की महत्त्वाकांक्षा पूर्ण योजना बनाने में संलग्न थे। उत्तर भारत में तीन सौ वर्ष से मुसलमानों का शासन भारतीय जीवन में उथल-पुथल मचाये हुए था। परन्तु विंध्य और नर्मदा की उपत्यका को लाँघने का उनमें साहस एकत्र नहीं हो पाया था। अलाउद्दीन खिलजी के कानों में देवगिरि के यादव राजा के वैभव की कथाएँ नित्य पड़ा करती थीं और वह दक्षिण के द्वार पर रह-रहकर दस्तक दे रहा था। विदेशी आक्रमण की संभावना से यादव राजा सशंक अवश्य थे; परन्तु जनता का सामान्य सामाजिक जीवनक्रम अखंडित था—जाति-पाँति की जञ्जीरों में जकड़ा हुआ था। रोटी-बेटी-व्यवहार निर्बन्ध नहीं थे। वर्ण-व्यवस्था का इतना आतंक था कि संतों तक ने हृदय से उसकी असामाजिकता अनुभव करते हुए भी उसे विधि का विधान मान कर स्वीकार कर लिया था। देवगिरि के यादव राजा के मंत्री हेमाड़ पंत (हेमाद्रि) ने 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' नामक ग्रंथ की रचना कर इस प्रथा को और भी दृढ करने का उपक्रम किया। इस ग्रंथ में उन्होंने वर्ष भर में दो हजार व्रतों और अनुष्ठानों की व्यवस्था दी है। इसका तत्कालीन जनता पर जो गहरा प्रभाव पड़ा, वह आज तक अनुभव किया जाता है। महाराष्ट्र के प्राय: प्रत्येक धार्मिक पंथ में व्रतों का विधान है।

नामदेव के समय में नाथ और महानुभाव-पंथ प्रचलित थे। नाथमत स्पष्ट रूप से अलख निरंजन की योगपरक साधना का समर्थक और बाह्याडंबरों का विरोधी था। महानुभाव-पंथ में भी बहुदेवोपासना और वैदिक कर्मकांड का विरोध निहित था। परन्तु कृष्णोपासक होने के नाते मूर्तिपूजा का कड़ा निषेध नहीं था। सामान्य जनता पंढरपुर के विठ्ठल को अपना प्रधान उपास्य देव बनाये हुए थी। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को पैदल चलकर वहाँ जाते थे। यह यात्रा

'पंढरपुर की वारी' कहलाती थी और आज भी कहलाती है। जनता के मन को पंढरपुर के देवता से हटाने में नाथपंथियों ने कम उद्योग नहीं किया। ब्रह्म किसी मंदिर में नहीं, सब जगह है। यह बात नाथपंथी 'बिसोबा खेचर' ने विशेष रूप से प्रचारित की और नामदेव को, जो पंढरपुर के विठोबा के बड़े भक्त थे, अपने मत में मिला लिया। खेचर के उपदेशों से नामदेव और उनके समसामयिक तथा परवर्ती सन्तों ने विठ्ठल की व्यापकता को अवश्य अनुभव किया; परन्तु सामान्य जनता की पंढरपुर की 'वारी' जारी रही। यद्यपि नामदेव के पूर्व तक महाराष्ट्र मुसलमानों से पद-दलित नहीं हो पाया तो भी उनके एकेश्वरवाद के उपदेश नाथों द्वारा वहाँ भारतीय दर्शन में संचरित हो चुके थे। अतः मुसलमानों का संसर्ग होने पर भी उसे उनके धार्मिक मत में ऐसी कोई नवीनता नहीं दिखलाई दी, जिससे उसके प्रति उसका बरबस आकर्षण बढ़ता।

हिन्दू धर्म में ही जो विष्णु और शिव का संघर्ष था, उसे किसी ने बड़ी चतुराई से पंढरपुर की विठ्ठल (विष्णु) की मूर्ति के मस्तक पर शिव-चिह्न अंकित कर दूर कर दिया।

संक्षेप में, नामदेव के समय में वर्ण-व्यवस्था की तीव्रता थी। 'याति हीनों' को मंदिर-प्रवेश निषिद्ध था, यहाँ तक कि पुरोहितों ने मंदिर के द्वार पर नामदेव को भी कीर्तन करने की अनुमति नहीं दी थी।

यादव राजा के शासन में जनता का जीवन सुखी था। साहित्य और कला को प्रोत्साहन प्राप्त होता था। इसी युग में ज्ञानेश्वर जैसे सन्त ने ज्ञानेश्वरी और आनंदानुभव के समान प्रौढ़ साहित्य-रचना कर मराठी में नवीन युग को जन्म दिया।

नामदेव का जीवन-चरित्र

नामदेव ने दर्जी जाति के परिवार में, शके ११६२ प्रथम संवत्सर कार्तिक शुक्ल ११ रविवार को, सूर्योदय के समय, नरसी ब्राह्मणी ग्राम में जन्म धारण किया।[1] उनके पिता का नाम 'दामा शेट' और माता का 'गोपाई' था। नामदेव की एक बहिन भी थी जिसका नाम 'आऊबाई' था। नामदेव का विवाह उनकी ६ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। उनके चार पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं। उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—

१. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—१२६।
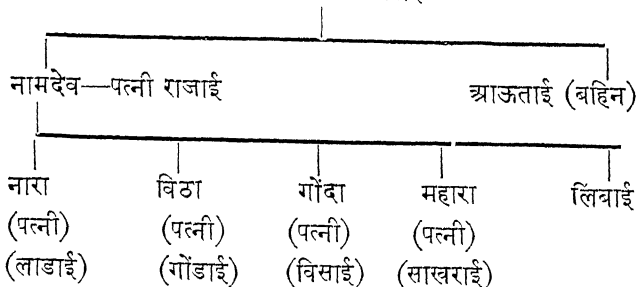
नामदेव के पिता विट्ठल-भक्त थे। प्रतिवर्ष वे पंढरपुर की 'वारी' (यात्रा) करते थे। अतएव बचपन से ही 'नामा' के मन में विट्ठल-भक्ति का उदय हो गया था। वे जब आठ वर्ष के थे तब उनकी माँ ने विट्ठल-मंदिर में दूध का नैवेद्य चढ़ाने को उन्हें भेजा। किंवदन्ती है कि मूर्ति ने उनके आग्रह को मानकर उनके कटोरे का दूध पी लिया। इस चामत्कारिक घटना का उल्लेख उनके एक आत्मकथात्मक पद में है—

"दूध कटोरे गडवै पानी
कपिल गाई तामै दुहि आनी ॥
दूध पीउ गोविंदे राइ
दूध पीउ मेरो मन पतिआइ।
नाहींत घर को बापु रिसाइ।
लै नामे हरि आगे धरी।
एक भगत मेरे ह्रदै बसै
नामे देखि नराइन हसै।
दूध पी आइ भगतु घरि गइआ।
नामे हरिका दरसुनु भइया।

नामदेव का मन घर-गृहस्थी में नहीं लगा। अतएव वे पंढरपुर में जाकर ही विट्ठल की सेवा में रहने लगे। वहीं उनकी ज्ञानेश्वर तथा उनके भाई-बहनों से भेंट हुई और उनके संसर्ग से उन्होंने विसोबा खेचर से दीक्षा ली। अब उनकी प्रेमपूर्ण भक्ति में ज्ञान का भी समावेश हो गया। उन्होंने ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत की यात्रा की और कहा जाता है कि उस यात्रा में उन्होंने कई चामत्कारिक बातें कीं। मारवाड़ में जब ये दोनों संत पहुँचे, तब बीकानेर के पास 'कोलादजी' नामक ग्राम के निकट उन्हें बड़ी प्यास लगी। खोजते-खोजते उन्हें एक गहरा कुँआ दिखाई दिया। ज्ञानेश्वर योगी होने के कारण सूक्ष्म देह धारण कर सहज ही कुँए में उतर गये और पानी पी आये और नामदेव से कहने लगे कि 'कहो तो तुम्हारे लिये भी पानी ले आऊँ।' नामदेव ने उत्तर दिया कि 'कहीं पानी भी माँग कर पिया जाता है।' वे ध्यानस्थ हो गये और 'विट्ठल विट्ठल' की रट लगाने लगे। कुछ ही क्षणों में ज्ञानेश्वर ने देखा कि कुँए का पानी ऊपर उठकर सतह पर लहरा रहा है। उन्होंने नामदेव की समाधि भंग कर यह दृश्य दिखलाया और उनकी भक्ति के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। कहा जाता है कि वह कुँआ आज भी 'कोलादजी' में है और 'नामदेव का कुँआ' कहलाता है। उत्तरभारत की यात्रा से लौटकर ज्ञानेश्वर ने आलंदी में समाधि ले ली। उस समय नामदेव भी उन्हीं के पास थे। उन्होंने ज्ञानदेव के वियोग का बड़ा ही हृदय-स्पर्शी चित्र अपने अभंगों में खींचा है। अपने प्रिय मित्र के समाधिस्थ हो जाने के बाद उनका मन 'पंढरपुर' से उचट गया। वे महाराष्ट्र से बाहर उत्तर पंजाब की ओर चले गये। पंजाब के 'घोमान' नामक स्थान पर आज भी नामदेव का मंदिर विद्यमान है। यह स्थान गुरुदासपुर जिले में है। इस गाँव

में नामदेव-सम्प्रदायी लोगों की ही बस्ती है। 'घोमान' के स्मारक को 'गुरुद्वारा बाबा नामदेवजी' कहा जाता है। उनके पंजाबी शिष्यों में विष्णुस्वामी, बहारेदास, जालतोसुनार, लब्धा खत्री और केशो कलाधारी मुख्य हैं। उन्होंने ८० वर्ष की आयु में सन् १३५० में पंढरपुर के विठ्ठल मंदिर के महाद्वार पर समाधि ले ली। उनके शिष्य 'परिसा भागवत' का इसी प्रसंग का एक अभंग है—

'आषाढ़ शुक्ल एकादशी।
नामा विनवी विठ्ठलासी।
आज्ञा व्हावी हो मजसी।
समाधि विश्रान्तिलागी।'

(नामदेव ने आषाढ़ शुक्ला एकादशी को विठ्ठल से प्राथना की कि मुझे चिर विश्रान्ति के लिए समाधि लेने की आज्ञा दो।)

सन्तों के चरित्रों में अनेक चामत्कारिक घटनाओं का समावेश होता है। नामदेव का चरित्र भी उनसे शून्य नहीं है। सुल्तान की आज्ञा से मरी हुई गाय जिलाना, आंवढ्या नागनाथ मंदिर के सामने जब ब्राह्मण पुजारी ने कीर्तन नहीं करने दिया तब उनके पश्चिम की ओर जाकर कीर्तन करना और स्वयं मंदिर के दरवाजे का पश्चिमाभिमुख हो जाना, आदि घटनाएँ उनके जीवन के साथ सम्बद्ध हैं और उनका उल्लेख उनके पदों में भी है।

ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव के अतिरिक्त महाराष्ट्र में पाँच नामदेव संत और हो गये हैं। पुणे के श्री आवटे ने 'सकळ संत गाथा' में नामदेव के २५०० अभंग दिये हैं। उनमें नामदेव नाम के साथ ५००-६०० से अधिक अभंग नहीं हैं। शेष 'विष्णुदास नामा' के नाम से हैं। प्रश्न यह है कि क्या विष्णुदास नामा और नामदेव दो भिन्न व्यक्ति हैं अथवा एक ही हैं? विष्णु (विठ्ठल) के दास होने से हो सकता है, नामदेव ने कभी अपने नाम के साथ विष्णुदास भी लगाया हो। इस संबंध में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासकार वि. का. राजवाड़े का कथन ध्यान देने योग्य है। वे लिखते हैं कि, नामा शिंपी का काल शके ११९२ से १२७२ तक है। विष्णुदास नामा, जो भिन्न व्यक्ति हैं, शके १५१७ में जीवित था। इसका प्रमाण आवटे की 'गाथा' में 'विष्णुदास नामा' का शुकाख्यान (पृष्ठ ५३४-५५७) है। उसकी अन्तिम ओवी है—

'ऐसे शुकदेव चरित्र। अगाध आणि विभिन्न।
विष्णुदास नामा विनवीत। भक्तांप्रती।
मन्मथनाथ संवत्सर पौष्य मासी।
सोमवार अमावस्येचा दिवशीं।
पूर्णता आली ग्रंथासी। श्रोते सावकाशी परिसीजे।'

इस ओवी में उल्लिखित मन्मथनाथ संवत्सर की पौष अमावस्या सोमवार शके १५१७ को पड़ती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह कवि एकनाथ का समकालीन था। अतएव विष्णुदास नामा के अभंगों को नामदेव के साथ छापना उचित नहीं है।'[1]

१. इतिहास संशोधन मंडळाचा, शके १८३३ चो अहवाल, पृष्ठ—१२२।

नामदेव की गाथा में ऐसे अभंग हैं जिनमें मीरा, कबीर, नरसी मेहता आदि का उल्लेख है जो निश्चय ही नामदेव के न तो पूर्ववर्ती हैं और न समकालीन ही। वे निश्चित ही नामदेव के बाद पैदा हुए हैं। नामदेव ने किसी भी अपने अभंग में इनका उल्लेख नहीं किया।

प्रोफेसर रानडे ने भी अपने ग्रंथ में राजवाड़े के मत का समर्थन किया है।[१] श्री राजवाड़े ने विष्णुदास नामा की एक 'बावन अक्षरी' प्रकाशित की है जिसमें 'नामदेव राय' की वन्दना है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं और भिन्न समय में हुए हैं।

श्री चांदोरकर ने एक महानुभावी 'नेमदेव' को भी खींच-तान कर नामदेव शिंपी (दर्जी) के साथ जोड़ दिया है।[२] इस 'नेमदेव' का महानुभावों के 'लीलाचरित्र' के 'विट्ठल बीरु कथन' प्रकरण में उल्लेख है जिसे कोली जाति का कहा गया है। इसने महानुभाव मार्ग में दीक्षा ग्रहण की थी। परन्तु वास्तव में इस 'नेमदेव' का वारकरी नामदेव से तनिक भी संबंध नहीं है।[३] नामदेवकालीन एक महानुभावमार्गी नामदेव और है। वह भी अपने को 'विष्णुदास नामा' कहता है। इसने 'महाभारत' पर ओवीबद्ध ग्रंथ लिखा है। कर्ण पर्व हरिभाऊ आपटे, सभापर्व देशपांडे और आदि पर्व और भीष्मपर्व के कुछ पृष्ठ स्वयं पांगारकर ने पंढरपुर में देखे थे। पांगारकर कहते हैं कि यदि यह 'नामा' महानुभावी होता तो उसके ग्रंथ के पृष्ठ पंढरपुर की पुरानी पोथियों में न मिलते; पर डा० देशपांडे 'महानुभावी मराठी वाङ्मय' में लिखते हैं कि 'विष्णुदास नामा को, जिसने भागवत पर ओवी लिखी है और जिनके महानुभावी लिपि में भी ग्रंथ हैं, शके ११९८ में महानुभाव दामोदर पंडित ने उपदेश दिया। इन्होंने भारत पर भी ओवीबद्ध काव्य लिखा है।'[४] अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस महानुभावी विष्णुदास का ज्ञानेश्वर के साथी संत नामदेव राय से कोई संबंध नहीं है।

नामदेव संबंधी एक और विवाद है।[५] पंजाब के गुरु ग्रंथ साहब में नामदेव के बहुत से पद संगृहीत हैं। उन पदों के लेखक संत नामदेव कहे गये हैं। महाराष्ट्र के कुछ विवेचकों का मत है कि गुरु ग्रंथ साहब के पद-रचयिता नामदेव का महाराष्ट्र के ज्ञानदेवकालीन नामदेव से कोई संबंध नहीं है। वह नामदेव की पंजाबयात्रा के समय उनका कोई शिष्य रहा होगा। जिसने बाद में अपने गुरु का नाम धारण कर हिन्दी में पद रचे होंगे। पर यह मत निम्नलिखित कारणों से निराधार सिद्ध होता है:—

(१) नामदेव संबंधी मराठी अभंगों में दो प्रमुख जीवन घटनाएँ वर्णित हैं, प्रायः वे ही ग्रन्थ साहब के हिन्दी पद्यों में भी आई हैं। नामदेव ने अपने अभंगों में आत्मकथा

---

१. इतिहास संशोधन मंडलाचा, शके १८३३ ची अहवाल, पृष्ठ—१८५।
२. पाँच संत कवी (तुलपुले), पृष्ठ—१४०।
३. ,, पृष्ठ—१४०।
४. मराठी वाङ्मय इतिहास (पांगारकर), खंड पहिला, पृष्ठ—५५४।
५. देखिए—लोक-शिक्षण (वर्ष अकरावें, पृष्ठ २३० से २५० और ३२५ से ३५२)।

लिखी है। (वह मराठी साहब में प्रथम आत्मकथा कही जाती है) इसमें वे 'शिपिआचे कुली जन्म झाला' (दर्जी के वंश में मेरा जन्म हुआ) लिखते हैं। हिन्दी के पदों में भी वे अपनी जाति यही बतलाते हैं; पर उसे 'छीपे' शब्द से परिचित कराते हैं :—

(१) छीपे के घरि जनमु दैला, गुरु उपदेसु मैला।
संतन्ह के परसादि नामा हरि भेटुला ॥[1]

(२) हीनडी जात मेरी जातुदम राइया
छीपे के जनमि काहे कउ आइआ ॥[2]

मराठी में दर्जी को शिपी कहते हैं। उत्तर भारत में उन्होंने अपने को शिंपी कहा होगा। लोगों ने 'शिंपी' की छिपी-छीपा समझा होगा और नामदेव ने उसी शब्द को उत्तर भारतीयों को समझाने की दृष्टि से ग्रहण कर लिया होगा। उत्तर भारत में 'छीपा' छींट छापनेवाले को कहते हैं।[3] यही रंगरेज भी कहलाता है। नामदेव ने छींपे का प्रयोग दर्जी के अर्थ में निस्संदेह किया है। क्योंकि वे जब पदों में रूपक बाँधते हैं, तब अपनेको 'दर्जी' मानकर ही चलते हैं। यथा—

'मन मेरो गजु जिह्वा मेरी काती,
मपि मपि काटउ जम की फासी।
कहा करउ जाती, कहा करउ पाती।
राम को नाम जपउ दिनराती।'

और भी

'सुइने की सुई, रुपे का धागा।
नामे का चितु हरिसउ लागा ॥[4]

'शिंपी' और 'छीपा' के शब्द-भिन्नत्व को लेकर पंजाब-प्रवासी नामदेव और महाराष्ट्रीय नामदेव को दो भिन्न व्यक्ति मानने का कोई दृढ आधार नहीं है।

विठ्ठल को दूध पिलाने की घटना, मृत गाय जिलाने का प्रसंग, मंदिर के द्वार फिरने आदि की घटनाएँ मराठी और हिन्दी अभंगों में समान रूप से वर्णित हैं।

---

१. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—८६।
२. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—१२६।
३. देखिए—बृहत हिन्दी-कोश (सं २००९ संस्करण), पृष्ठ—४५४।
४. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—८४।

(२) मराठी और हिन्दी-पदों में 'विठ्ठल' शब्द का समान प्रयोग हुआ है।[1] साथ ही हरि,[2] गोविंद,[3] रामु,[4] केशव,[5] माधव,[6] राम[7] आदि भी समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

(३) मराठी और हिन्दी पदों की भाव-धारा—में भी समानता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(अ) मराठी : शरण आलियाचें न पाहसी अवगुण
कृपेचें लक्षण तुज साजे।
त्रिभुवनी समर्थ उदार मनाचा।
कृपाळू दीनाचा ब्रीद तुझें।
गजेन्द्र गणिकेची राखिली तुवा लाज।
उद्धरिला द्विज अजामिळ॥ आदि

हिन्दी : राम कहत जन कस न तरे।
तारिले गनिका बिन रूप कुबिजा
बिआध अजामलु तारिअले। आदि

(आ) मराठी : एका नामाविण कांही। विठ्ठल कृष्ण लवलाही।
नामा म्हणे तरलोवाही। विठ्ठल विठ्ठल ममतांची।

(विठ्ठल विठ्ठल नाम से ही मेरा उद्धार हुआ)

हिन्दी : कउन कलंक रहिउ रामनामु लेत ही
पतित पवित भए रामु कहत ही।

---

१. हिन्दी पदों में . ई भै वीठलु ऊ भै वीठलु, वीठल बिनु संसारु नहीं। (पंजाबातील नामादेव पृ० ८३)।
२. 'मोहन कटोरी अम्रित भरी। लै नामैं आगे धरी। (वही पृष्ठ १२६)।
३. 'दूधु पीव गोविंदराइ (वही पृष्ठ १२६)।
४. मैं बउरी मेरा रामु भतारु।' (वही पृष्ठ १२७)।
५. 'आऊ कलंदर केसवा।' (वही पृष्ठ १४३)।
६. 'पतितपावन माधऊ बिरदु तेरा।' (वही पृष्ठ ६८)।
७. राम कहत जन कस न तरे। (वही पृष्ठ ८०)।
मराठी अभंगों में··· (अ) नावाड्या विठ्ठल भवसिंधु तारू' (सकळ संत गाथा नामा म्हणे नाम स्मरा श्रीरामाचें। (आवटे) नामदेव महाराजाचें अभंग पृष्ठ १६८)।
(ब) वाचे कसो सदा हरीचे नाम (वही पृष्ठ १६८)।
(स) नामा म्हणे कृपा करूनि ऐशा जीवा सोडवी केशवा माईबापा (वही पृष्ठ १६४)
(क) पर्वतप्राय पाप राशी होती दग्ध वाचेसी मुकुंद उच्चारतीं माधव हरहरी रामकृष्ण (वही पृष्ठ १६१)।
(ख) रात्री दिवस तुझा नामाचारे छंदु गोविन्द गोविन्द म्हणतसे (वही पृष्ठ १३६)।

भगवान की सर्वव्यापकता,[१] तीर्थ,[२] आदि बाह्याचारों की व्यर्थता, नाम और गुरु की महिमा के भाव, दोनों भाषाओं के अभंगों और पदों में समान रूप से विद्यमान हैं।

(५) दोनों भाषाओं के पद्यों में प्रह्लाद, ध्रुव, अजामिल, गणिका, पूतना, अहिल्या, द्रौपदी आदि के नाम और उनके कथा-संदर्भ बराबर पाये जाते हैं। अतः इनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि पंजाब और महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव अभिन्न हैं।

नामदेव का काल-निर्णय

ज्ञानेश्वरी की रचना का काल ज्ञानेश्वरी की साक्ष्य से ही निश्चित हो जाता है और वह है—शके १२१२। ज्ञानदेव तथा नामदेव यादवकालीन हैं और सहधर्मी संत भी। इनका अपने समसामयिक संतों पर इतना अधिक प्रभाव था कि उन्होंने अभंगों में इनकी चर्चा की है। अतः दोनों के समकालीन होने में शंका का कोई स्थान नहीं रह जाना चाहिए। फिर भी डा० मोहनसिंह दीवाना ने अपनी हाल की ही प्रकाशित पुस्तक 'भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी, नई पदावली' में नामदेव के काल को सन् १३६० .... १४५० ईसवी खींचना चाहा है। अपने मत के समर्थन में वे निम्नांकित तथ्य प्रस्तुत करते हैं:—

(१) नामदेव का मृत गाय को जिलाने का पद प्रसिद्ध है। उसमें सुल्तान, बिस्मिल की गई गऊ को जिलाने का आदेश नामदेव को देता है। प्रश्न है कि यह आदेशदाता सुलतान कौन हो सकता है? डा० मोहन सिंह कहते हैं कि 'दिल्ली का सुल्तान फीरोजशाह खिलजी १२८२ ई० में राज्य-सिंहासन पर बैठा और १२९६ ई० में कालवश हुआ। किन्तु ये तारीखें नामदेव से लग्गा नहीं खातीं; क्योंकि १२९६ ई० में ज्ञानदेव की समाधि का सन् मराठी इतिहासकार बतलाते हैं। फीरोज तुगलक सुलतान ने दिल्ली में १३५१ ई० से १३८८ ई० तक राज्य किया। किन्तु नामदेवजी का दिल्ली आना अप्रमाणित ही नहीं, कहीं संकेत तक भी नहीं मिलता। (अतः) मेरी सम्मति यह है कि

---

१. मराठी : जिकडे पाहें तिकडे विठोबा अवघा
बाहरी भीतरी सर्व निरंतरी
हे ब्रह्माण्ड पंढरी झाला मनें। (सकल संत गाथा पृष्ठ १६१)।

हिन्दी : ई भै वीठलु, ऊ भै वीठलु, बीठलु बिनु संसारु नहीं। (पंजाबातील नामदेव पृष्ठ २१)।

२. मराठी : तीर्थासी जाऊनी काय म्या करावे, (सकळ संत गाथा पृष्ठ १८४)।

हिन्दी : एकादशी व्रत रहै काहे कऊ तीरथ जाई···(पंजाबातील नामदेव पृष्ठ ६१)।

३. मराठी : जन्म मरणांचे दुःख गेले, बंध मोक्षाची फिटली काजळी
नामा म्हणें माझे सर्वही साधन, खेचर चरण न विसंबे···(सकळ संत गाथा पृष्ठ १५१)।

हिन्दी : भनति नामदेव सुक्रित सुमति भए।
अमयति रामु कहि को को न बैकुंठे गए। (पंजाबातील नामदेव पृष्ठ ६१)।

यह फीरोजशाह सुल्तान बहमनी हो सकता है, जो दक्षिण में ही रहा और सन् १४२२ में मरा। तो क्या हमें नामदेव की तारीख आगे तक बढ़ा लानी होगी?' (भूमिका पृष्ठ ३)।

(२) दीवानाजी ग्येशानन्द की हस्तलिखित पोथी का अपने उपर्युक्त ग्रंथ में उल्लेख करते हैं। जिसकी रचना सन् १५५२ ई० बतलाई जाती है और जो मथुरा में बैठकर रची गई कही जाती है। उसमें नामदेव को रामानन्द का शिष्य बतलाया गया है और रामानन्द का जन्म डा० मोहनसिंह १४२०....३० ई० के बीच नियत करते हैं और कबीर का १४५०....६० ई० के निकट। 'पोथी'-लेखक ग्येशानन्द का जन्म १५०० ई० के करीब कहा गया है। ग्येशानन्द ने अपने गुरु का नाम अनन्तानंद बतलाया है। दीक्षा के समय गुरु की अवस्था ५० के निकट कही गई है। अतः अनन्तानन्द का जन्म १४७०....८० ई० के बीच ठहरता है। अनन्तानन्द कबीर से पहले हुए हैं। डा० मोहनसिंह रामानन्द की शिष्य-परम्परा इस प्रकार देते हैं :—
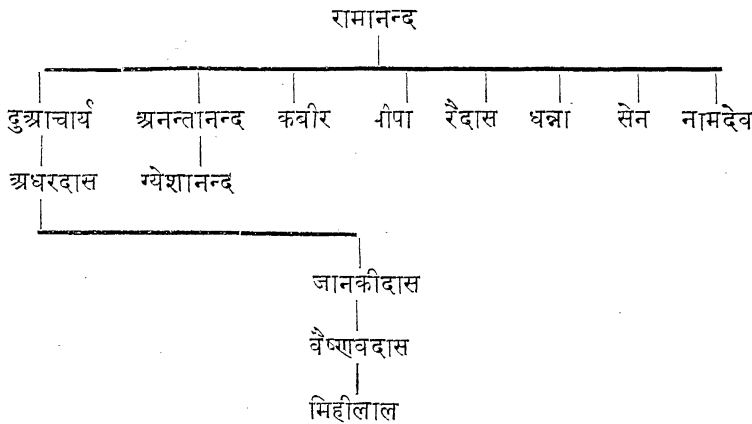
अब हम डॉ० मोहनसिंह द्वारा उपस्थित अनुमानों तथा तर्कों की परीक्षा करेंगे—

(१) नामदेव के पद में जो सुल्तान द्वारा मृत गाय को जिलाने का प्रसंग है, वह किस सुल्तान से संबंध रखता है, यह विचारणीय है। डॉ० मोहन सिंह उसका संबंध बहमनी राज्य के फीरोजशाह से लगाते हैं। फीरोज का समय १३९७-१४२२ ई० है। यह बहमनी राज्य का कट्टर और धर्मान्ध सुल्तान था। वह हिन्दू राजाओं तथा मत को समाप्त करने के लिए सदा कटिबद्ध रहता था। ऐसी दशा में क्या वह हिन्दू के चमत्कारी प्रभाव को उदारता से देख और सह सकता था? और यदि देख सकता था तो उसमें हिन्दूधर्म पर थोड़ी बहुत श्रद्धा जमनी चाहिए थी, क्योंकि मरी हुई गाय को जिलाना कम आश्चर्य की बात न थी। पर इतिहास में ऐसी कोई घटना का उल्लेख नहीं है। उसमें तो सुलतान फीरोज की हिन्दुओं के प्रति भयंकर अनुदार दृष्टि की ही चर्चा है।[1]

---

1. देखिए—भक्तशिरोमणि नामदेव की नई जीवनी, नई पदावली, पृष्ठ—७४-७५।

यह ठीक है कि नामदेव ने 'सुलतान' का नामोल्लेख कहीं नहीं किया और न उनके समकालीन संतों ने ही उसका नाम लिया है; पर चमत्कारी घटना का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। हो सकता है, प्रथम बार प्रचलित हो जाने और किसी अभंग में समाविष्ट हो जाने पर परवर्ती संतों और चरित्र-लेखकों ने भी उसे अपनी गाथाओं और चरित्रों में ग्रहण कर लिया हो।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या यह घटना सचमुच घटी है या केवल सन्त का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए बाद में गढ़ दी गई है? यदि अंतिम बात पर विश्वास करें तो नामदेव का वह पद प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा। 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' का संकलन नामदेव के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद सन् १६०४ में हुआ था। उस समय नामदेव का यह चमत्कार जनता में प्रचलित रहा होगा। फिर प्रश्न उठता है कि यदि किसी सुलतान के दरबार में यह घटना घटी होती तो वह कहीं किसी के द्वारा अवश्य लेखबद्ध हुई होती। हम इस घटना को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते। हो सकता है, यह घटनावाला 'पद' भगवान विठ्ठल के नाम का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए रचा गया हो। उपर्युक्त कारणों से नामदेव का फीरोजशाह बहमनी के समय रहना सिद्ध नहीं होता।

(२) नामदेव का रामानन्द से उपदेश ग्रहण करने का कहीं उल्लेख नहीं है। रामानन्द ज्ञानेश्वर के पिता के गुरु थे, इसका भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। नामदेव द्वारा लिखित ज्ञानेश्वर चरित्र में उसका नाम एक 'यति' लिखा है जो रामेश्वर जाते समय आळंदी में ठहरा था और जिसने ज्ञानेश्वर के पिता को काशी में संन्यास की दीक्षा दी थी। डा० रानडे भी इस संबंध में अनिश्चित मत रखते हैं। वे अपने प्रसिद्ध ग्रंथ Mysticism In Maharashtra में लिखते हैं, 'विठ्ठल पंथ' (ज्ञानेश्वर के पिता) ने काशी में संन्यास-दीक्षा या तो रामानन्द या उनके पंथ के किसी साधु से ली होगी। भावे के मत से उनके दीक्षा-गुरु श्रीपाद स्वामी थे।[1] यदि यह मान भी लें कि विठ्ठल पंथ के रामानन्द ही गुरु थे, तो इससे यह तो सिद्ध नहीं हो जाता कि उन्हें नामदेव के भी गुरु होना चाहिए। नामदेव का बिसोबा खेचर से दीक्षा लेना बहुत प्रसिद्ध है, रामानन्द से बिल्कुल नहीं। डा० मोहन सिंह ने जिस पुराने हस्तलिखित ग्रंथ का उद्घाटन किया है, उसकी प्रामाणिकता के संबंध में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। नामदेव के अभंगों और हिन्दी-पदों में कबीर का नाम नहीं आता। निश्चय ही कबीर नामदेव के समकालीन नहीं थे। इनके विपरीत ज्ञानदेव के समकालीन होने के अनेक प्रमाण हैं। ज्ञानदेव और नामदेव दोनों अपने अभंगों में एक दूसरे का उल्लेख करते हैं। महाराष्ट्र के नामदेवकालीन सन्तों की वाणियों में भी उनका उल्लेख है। ज्ञानदेव का समय उन्हीं की कृति ज्ञानेश्वरी से प्रायः निर्णित ही है। और वह है—सन् १२७५ से सन् १२९६। नामदेव ज्ञानदेव की समाधि के लगभग ५० वर्ष बाद समाधिस्थ हुए अर्थात् १३५० ई० में उनका निर्वाण हुआ। उनका जन्म सन् १२७० है। फीरोज बहमनी का समय १३९७ से १४२२ ईसवी है, जिसे नामदेवकाल नहीं माना जा सकता।

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ—१३३।

नामदेव को ज्ञानेश्वरी-रचयिता ज्ञानदेव-कालीन न मानने के पक्ष में यह भी दलील दी जाती है कि ज्ञानेश्वरी और नामदेव के अभंगों की भाषा में बहुत अन्तर है। इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि नामदेव-लिखित अभंगों की कोई पाण्डुलिपि नहीं है। जनता द्वारा लिखे अभंगों की भाषा का समय-समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यों ज्ञानेश्वरी की भी मूल पाण्डुलिपि ज्यों-की-त्यों रक्षित नहीं है। उसपर भी समय का प्रभाव पड़ सकता है ; पर ज्ञानेश्वर को धार्मिक ग्रंथ का गौरव प्राप्त होने से उसकी बहुत सावधानी से नकल की जाती रही होगी। फिर भी एकनाथ महाराज को उसके पाठ को संशोधित करने की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने उसका सावधानी से संपादन किया है। दूसरी बात यह है कि ज्ञानेश्वर संस्कृत में अधिक गति रखते थे। अतः उनकी भाषा में नामदेव से, जो अधिक पढ़े-लिखे न थे, संस्कृत-बहुलता स्वाभाविक है। श्रीभारद्वाज का यह कहना कि नामदेव के अभंगों में मुसलमानों के आक्रमण का उल्लेख है और ज्ञानेश्वरी में नहीं है, इसलिए नामदेव ज्ञानेश्वरकालीन नहीं हो सकते, विशेष तर्क-सम्मत नहीं है।

ज्ञानेश्वर के काल में यादव राजा रामचन्द्रराय राज्य करता था और अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण पर १२९४ ई० में चढ़ाई की। ज्ञानदेव ने सन् १२९६ में समाधि ली। और नामदेव तो ज्ञानेश्वर की समाधि लेने के लगभग ५५ वर्ष तक जीवित रहे और उन्होंने उत्तर भारत में भी काफी समय व्यतीत किया। भारत में मुस्लिम शासन की पीड़ा से वे परिचित हो चुके थे। उन्हीं के समय दक्षिण पर भी मुस्लिम-आक्रमणों का क्रम प्रारम्भ हो गया था। अतएव उनके अभंगों में उनका उल्लेख होना स्वाभाविक था। ज्ञानेश्वर को उनकी तीव्रता इसलिए अनुभव नहीं हुई कि उनके समय तक महाराष्ट्र में मुसलमानी सत्ता जम नहीं पाई थी। शरत्कालीन मेघ के समान खिलजी की सेना का आक्रमण हुआ और वातावरण स्वच्छ हो गया।

नामदेव की 'तीर्थावली' में ज्ञानेश्वर और नामदेव की सह यात्रा का विशद वर्णन है और अभी तक इस कृति को किसी ने अप्रामाणिक नहीं माना। शके १३३५ अर्थात् १४१३ ईसवी में गुजराती संत 'नरसी मेहता' ने अपने काव्य में नामदेव का अपनेसे पूर्व संत के रूप में उल्लेख किया है। अतएव नामदेव और ज्ञानेश्वर के युग्म को पृथक् करने का कोई प्रबल कारण प्रतीत नहीं होता।[1]

नामदेव ने मुक्ताबाई और ज्ञानेश्वर की प्रेरणा से बिसोबा खेचर से दीक्षा लेने का संकल्प किया। कहा जाता है, जब नामदेव खेचर के निकट गये तो वे मंदिर में शिव की पिंडी पर पैर रखे हुए बैठे थे। नामदेव को यह दृश्य अप्रिय लगा। तब गुरु ने उनसे कहा कि तुम मेरा पैर हटाकर अलग रख दो। नामदेव जहाँ गुरु का पैर रखते, वहीं एक शिव-पिंडी खड़ी हो जाती। इस कथा का मर्म यही है कि बिसोबा खेचर ने नामदेव को भगवान की व्यापकता का बोध करा दिया। उनकी सगुणभक्ति में निर्गुण ज्ञान का

---

१. मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (पांगारकर), भाग १, पृष्ठ—८११।

समावेश हो गया, जिससे उनकी दृष्टि व्यापक हो गई। उनके भगवान व्यापक हो गये। पंढरपुर के मंदिर से निकलकर सारे विश्व में छा गये।[1]

नामदेव की गुरु-परम्पराः—
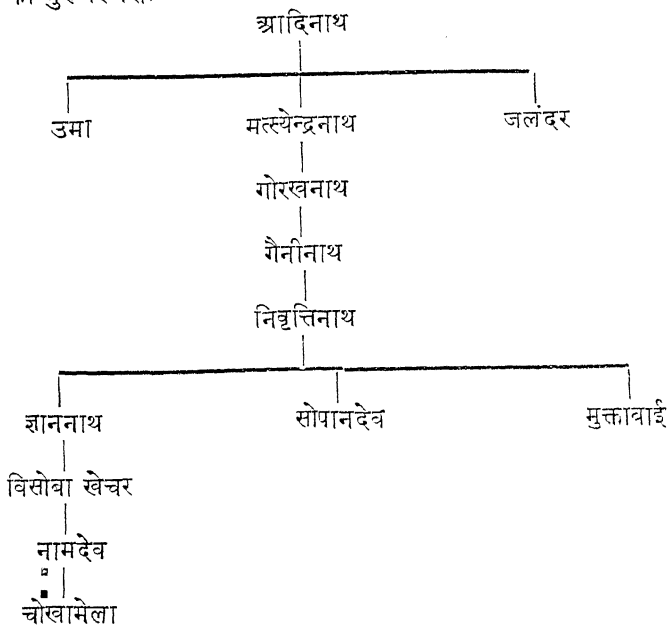
नामदेव के पदों में भक्त की भगवान के प्रति मिलन-उत्कंठा की मधुर अभिव्यक्ति है। इसे वे 'तालाबेली' शब्द से परिचित कराते हैं, जिसका अर्थ व्याकुलता है; पर ऐसी व्याकुलता जिसमें तीव्रता है—आतुरता है। वे कहते हैं—

'मोहि लागति तालाबेली ॥
बछरे बिनु गाइ अकेली ॥
पानीआ बिनु मीनु तलफै।
ऐसे रामनामा बिनु बापुरो नामा ॥'

यह तालाबेली उस प्रकार की है, जिस प्रकार की गाय को बछड़े के बिना होती है और मछली को पानी के बिना होती है।

नामदेव प्रेम की तीव्रता का भान लोकानुभूत उदाहरण देकर कराते हैं—

'जैसे बिखैहेत पर नारी,
ऐसे नामे प्रीति मुरारी।'

जिस प्रकार विषयी पर-नारी से प्रेम कर तड़पता है, उसी प्रकार की तालाबेली मेरी तुम्हारे प्रति है। 'परकीया' में प्रीति की विह्वलता अधिक मुखरित होती है। तभी बल्लभ

---

१. जिकड़े पाहे तिकड़ेविठोबा, अवधा भीमाचक्र भागा पुंडलीक बाहेरी भीतरीं सर्वनिरंतरीं, हे ब्रह्माण्ड पंढरी झाली मद। सकल सं. गा., पृ०—१६१।

सम्प्रदायियों ने 'राधा' और 'गोपियों' की सृष्टि कर परकीया प्रेमभक्ति की छटपटाहट व्यक्त की है। एक पद में 'राम' के प्रति प्रीति की सघनता का इसी प्रकार का उदाहरण दिया है—

'कामी पुरख कामनी पिआरी। ऐसी नामें प्रीति मुरारी।' (पृष्ठ १३०)

अपने राम की बावली वधू बनकर उसे रिझाने के लिए 'नामा' सिंगार करते हैं—

'मैं बउरी मेरा राम भरतार
रचि रचि ताकउ करऊ सिंगार।'

कबीर ने भी कई पदों में नामदेव की भाँति कान्ताभाव से अपने 'राम' की कामना की है और विरह में विना जल की मछली के समान तड़पने की व्यथा व्यक्त की है। उनकी एक पंक्ति तो बिलकुल नामदेव की ही जान पड़ती है—

'मैं बउरी मेरे राम भरतार
तां कारण रचि करौं स्यंगार।'

× × × ×

'हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।'

'हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।
किया सिंगार मिलन कै ताई
काहे न मिलौ राजा राम गुसाई॥'

'जैसे जल बिन मीन तलफै
ऐसे हरि बिन मेरा जिया कलकै।'[1]

'दुलहिन गावहु मंगलाचार।
हम घरि आये, हो राजा राम भरतार।'

× × ×

'बाल्हा आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहे तुम्हारी नारी,
मोको इहै अंदेस रे।

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ—१६४।

एकमेक ह्वै सेज न सोवै,
तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै नींद न आवै,
ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूं कामी को कांम पियारा
ज्यूं प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपगारी
हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं,
बिन देखे जीव जाइ रे।[1]

'राम' से मिलने की जो तालाबेली नामदेव में है, वही कबीर में है और वही दादू में भी—

'राम बिछोही बिरहनी, फिरि मिलन न पावे,
दादू तलफै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै।

दादू तो तालाबेली की कामना भी करते हैं; क्योंकि उसी से 'दरसन' के रस में मिठास आती है।

'तालाबेली प्यास बिन क्यों रस पीया जाय,
बिरहा दरसन दरद सों हमकों देहु खुदाय।'
कहा करौं कैसे मिलै रे तलपै मेरा जीव,
दादू आतुर बिरहनी कारण अपने पीव।

संत रज्जब की कसक भी उसी कोटि की है—

'बिरहिण व्याकुल केसवा, निसिदिन दुखी बिहाय,
जैसे चंद कुमोदिनी बिन देखे कुम्हलाइ।
खिन खिन दुखिया दगधिये बिरह विथा वन पीर,
धरी पलक में बिनसिये ज्यूं मछरी बिन नीर।'[2]

धर्मदास अपना 'दरद' बुझाते हैं—

'कहौं बुझाय दरद पिया तोसे,
तन तलफै हिय कछु न सुहाय।
तोहि बिन पिय मोसे रहत न जाय।[3]

---

१. संत-सुधासार (पृष्ठ ४४८)।
२. वही (पृष्ठ ५१६)।
३. संत-सुधासार—दूसरा खण्ड (पृष्ठ ८)।

गरीबदास की 'विपत' है—

'जब जब सुरति आवती मन में तब तब विरह अनल परजारै,
नैननि देखौं बैन सुनौ कब यहु वेदन जिय मारै।
सुनि री सखी यहु विपत हमारी बिन दरसन अति बिरहा बारै
गरीबदास सुख तबहीं लेखौं जबहीं ज्योतिहि ज्योति निहारे।

नामदेव को अपने प्रिय से मिलते समय लोकनिंदा का भय नहीं है।·······वे तो 'निसान बजाई : (डंके की चोट पर) मिलना चाहते हैं। यह भाव मध्यकालीन वृन्दावन की गोपियों के समान जान पड़ता है जिसमें 'कोउ कहो कुल्टा, कुलीन, अकुलीन कहो' की गूंज है।

'भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोगू,
तनु मनु राम मिआरे जोगू।
बादु बिबादु काहू सिउ न कीजै,
रसना रामु रसाइनु पीजै।
अब जीउ जानि ऐसी बनि आई,
मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई।
उसतुति निंदा करै नरु कोई
नामें श्रीरंगु मेतल सोई।

कबीर में भी इसी भाव की प्रतिध्वनि सुन पड़ती है—

'भलै नींदौ भलै नींदौं लोग,
तन मन राम पिआरे जोग।'

अपने 'राम' 'हरि,' 'केसव,' 'बीठुला,' 'माधव,' 'गोविन्द,' आदि के एकत्व को नामदेव जलतरंग न्याय के अनुसार विश्व-भर में अनुभव करते हैं—

'एतु अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
याइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥
सभु गोविंदु है, सभु गोविंदु है, गोविंदु बिनु नहीं कोई।
सूतु एकु मणि सत सहस जैसे उतिपोति प्रभु सोई॥
जलतरंग अरु फेन बुदबुदा, जलते भिन्न न कोई॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई।
मिथिला भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ॥
सुकित मनसा गुरु उपदेसी, जागतही मनु मानिआ॥
कहत नामदेऊ हरिकी रचना देखहु रिदै बिचारी॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरी केवल एक मुरारी॥'

कबीर ने भी इसी प्रकार भिन्नत्व में एकत्व अनुभव किया है—

'हम तौ एक एक करि जाना।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिन पहिचानां॥
एकै पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भाँडे, एक ही सिरजनहारा॥

और भी—

खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई।
(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १०४)
'जैसैं जलहि तरंग तरंगनी, ऐसैं हम दिखलांवहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे॥
(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १३७)

वारकरी-मत में एक देवोपासना का ही महत्त्व है। भूत, भैरव, शीतला आदि के पीछे दौड़नेवाली जनता को प्रबुद्ध कर 'नामा' कहते हैं—

'भैरउ भूत सीतला धरकै।
खरवाहन अहु, छार उड़ाकै
हउ तउ एक रमइआ लेअऊ।'
आन देव बनला बलि देअऊ।'

नामदेव अपने 'रमैया' के बदले में सब देवताओं को बदलावनी में दे सकते हैं, उन्हें उनकी चाह नहीं है।

नामदेव के पूर्व नाथ-सम्प्रदाय के प्रेरक सिद्धों ने बहुदेवोपासना, व्रत, तीर्थ आदि बाह्याडंबरों की व्यर्थता प्रचारित की है।[1] महाराष्ट्र संतों का संपर्क नाथों से रहने के कारण उन्होंने भी बाह्याडंबरों के प्रति उदासीनता व्यक्त की है।

नामदेव के पदों में सिद्ध और नाथों का स्वर सुन पड़ता है—

राम संगि नामदेव जनकेऊ प्रति सिया आई।
एकादसी व्रतु रहै काहे कऊ तीरथ जाई।
भनति नामदेव सुक्रित सुमति भए।

---

1. किन्तः तित्थ तपोवण जाइ, मोक्ख कि लाभइ पाणीं न्हाइ। (संत सुधासार पृष्ठ ६)।
(तीर्थ सेवन और तपोवनवास तथा जलस्नान से कहीं मोक्ष लाभ होता है ?)
सिद्ध तिल्लोपाद कहते हैं—
देव म पूजहू तिरथ ण जावा, देव पूजहि ण मोक्ख पावा। (संत सुधासार पृष्ठ १०)।
(न देव-पूजा करो न तीर्थ जाओ, देवपूजा से मोक्ष प्राप्त नहीं करोगे)।

सुन्दरदास कहते हैं—

मेघ सहै शीत सहै शीश परि घाम सहै,
कठिन तपस्या करि कन्द मूल खात है,
जोग करै जज्ञ करै, तीरथऊ व्रत करै,
पुण्य नाना विधि करै मन में सिहात है।
और देवी देवता उपासना अनेक करै,
आँबन की हौस कैसें अकड़ोडे जात हैं।
सुन्दर कहत एक रवि के प्रकाश बिन
जैगने की जोति कहा रजनी मिलात है।[१]

दादू कहते हैं—

दादू कोई दौड़े, द्वारिका केई कासी जाहि,
केई मथुरा कों चलै साहिब घट ही मांहि।[२]

गुरु तेग बहादुर कहते हैं—

तीरथ करै विरत पुनि राखै,
नहिं मनुआ बसि जाको,
निहफल धरम ताहि तुम मानो,
साँचु कहत मैं याको[३]

कबीर कहते हैं—

पीपर पत्थर पूजन लागे, तीरथ बर्त्त भुलाना,
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना,
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना[४]

पाहन—पूजा पर नामदेव ने भी व्यंग्य किया है

एकै पाथर कीजै पाऊ, दूजै पाथर धरिए पाऊ
जै इहु देऊ तऊ उहु भी देवा
कहि नामदेव हम हरि की सेवा।[५]

नामदेव गुरु के अनुग्रह की आवश्यकता अनुभव करते हैं क्योंकि—

"जऊ गुरदेऊ न मिलै मुरारी।
जऊ गुरदेऊ न उतरै पारि॥

---

१. संत सुधासार (वियोगी हरि, प्रथम संस्करण) पृष्ठ ६२२—६२३।
२. वही पृष्ठ ४८।।
३. वही पृष्ठ ३५२।
४. वही पृष्ठ १०४।
५. पंजाबातील नामदेव पद संख्या ७

जऊ गुरुदेऊ न वायु टिडावै ।
जऊ गुरदेऊ न यह दिस धावै ॥
जऊ गुरदेऊ त संसा टूटै ।
जऊ गुरदेऊ त जमते छूटै ॥"

नामदेव के गुरु-माहात्म्य की अनुभूति अन्य संतों में बराबर प्रतिध्वनित हुई है—

"सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार ।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावनहार ।
कहै कबीर गुरु एक बुधि बताई
सहजसुभाय मिलै रामराई ।"

—कबीर

दादू पड़दा भरम का रह्यो सकल घटि छाइ ।
गुरु गोवियंद कृपा करैं तो सहजैं ही मिट जाई ।
दादू सांचा गुरु मिलै, सम्मुख सिरजनहार ।

—दादू

गुरु विनु ऐसी कौन करे ?
माला तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै ।
भवसागर तैं बहुत राखै, दीपक हाथ धरै ।
सूर स्याम गुरु ऐसी समरथ छिन में ले उधरै ।
—सूर (सूरसागर-सार, साहित्य भवन लिमिटेड—प्रथम संस्करण पृष्ठ १२)

गुरु परसाद भई अनुभौ मति विष अंतिम सम धावैगा ।
कहि रैदास मोहे आपन पर तब उठि ठौरहि पालेगा ॥

—रैदास

सहजो गुरु परसन्न है मेट्यो सब सन्देह
गुरु बिना नहिं पार उतरै, करौं नाता भेष

—सहजोबाई ।

नाम-स्मरण से भ्रमों का नाश होता है, उसका नामोच्चार ही उत्तम धर्म है। नामदेव कहते हैं—

'हरि हरि करत मिटे सभि भरमा ।
बरिके (हरिके) नाम, ले ऊतम धरमा ।
प्रणकै नामा ऐसो हरी
जासु जपत भै अपदा टरीं ॥'[1]

नामदेव को जाति-पाँति से कुछ मतलब नहीं है। वे तो राम-नाम को ही सर्वस्व समझते हैं—

कहा करउ जाती, कहा करउ पाती
राम को नामु जपउ दिनराती ।[2]

---

१ पंजाबातील नामदेव (जोशी—१९४० संस्करण) पृष्ठ १०८ ।
२ वही—पृष्ठ ८४ ।

राम-नाम की बराबरी तप, दान और तीर्थ नहीं कर सकते—

'बानारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै,
अगनि दहै काइया कलपु कीजै
असुमेध जगु कीजै सोना गरभदानु
दीजै राम नाम सरि तऊ न पूजै ।"[1]

नाम की महिमा का नामदेव के उत्तरकालीन सभी संतों ने बखान किया है, क्योंकि परमार्थ-आध्यात्मिक-पथ में सभी को समान अनुभव होते हैं—

मन रे जब तैं राम कह्यौ
पीछे कहिबे कौ कछु न रह्यौ ।
रसना राम गुन रमि रस पीजै
गुन अतीत निरमोलक लीजै ।
विष तजि राम न जपसि अभागे
का बूड़े लालच के आगे

—कबीर

राम नाम जिनि छांडै कोई
राम कहत जन निर्मल होई—
रहै निरन्तर रामसौं अन्तरि मति राता,
गावै गुण गोविंद का दादू रसि माता

—दादूदयाल

'हमारे निर्धन के धन राम ।
चोर न लेत, घटत न कबहू, आवत गाढैं काम ।
बैकुंठनाथ सकल सुख दाता, सूरजदास सुखधाम'

—सूर (सूरसागर-सार (साहित्य भवन लिमिटेड) पृष्ठ १२)

गुरु-अनुग्रह से जब राम का नाम हृदय की धड़कन बन जाता है, तब साधक को किस प्रकार का अनुभव होने लगता है, इसकी झलक नामदेव देते हैं—

"जब देखा तब गावा ॥
तउ जन धीरजु पावा ॥
नादि समाइलो रे सतिगुर भेटिले देवा ॥
जह झिलिमिलि कारु दिसंता ॥
वह अनहद सबद बजंता ॥
जोति जोति समानी ॥ मैं गुर परसादी जानी ॥
रतन कमल कोठरी ॥ चमकार बिजुल तही ॥
नेरै नाही दूरि ॥ निज आतमै रहिआ भरपूरि ॥

---

1 पंजाबातील नामदेव—पृष्ठ ११७ ।

जह अनहत सूर उजारा ॥ तह दीप्रक जलै छंछारा ॥
गुर परसादी जानिआ ॥ जिनु नामा सहज समानिआ ॥"[1]

सद्गुरु की कृपा से भगवान् से भेंट हो गई। इससे मुझे धैर्य बँधा और झिलमिल प्रकाश दिखाई देने लगा। वहाँ अनहद नाद बज रहा था। मेरी आत्मज्योति उस परमात्मज्योति में समा गई। अन्तःकरण की कोठरी रत्न के प्रकाश से जाज्वल्यमान हो उठी। वहीं बिजली भी चमकने लगी। भगवान् की दूरी नहीं रह गई। आत्मा उसी से आपूर हो गई। असंख्य दीपक की ज्योति को मंद करनेवाले सूर्य का प्रकाश छा गया। नामा उसी में सहज समा गया।

उन्मनी अवस्था में 'लय योग' की नामदेव को कितनी स्पष्ट अनुभूति हुई है! उसी प्रकार की झलक और भी देखिए:—

अणभडिआ मंदलु बाजै,
बिनु सावन घनहरू गाजै ॥
बादल बिनु बरखा होई ॥
जउ ततु बिचारै कोई ॥
मोकउ मिलिउ राम सनेही ॥
जिह मिलिऐ देह सुदेही ॥
मिलि पारस कंचनु होइआ ॥
मुख मनसा भइआ भ्रमु भागा ॥
गुर पूछे मनुपति आगा ॥
जल भीतरि कुंभ समानिआ ॥
सभ रामु एकु करि जानिआ ॥[2]

(पद सं. ११)

एक बार यह अनुभव हो जाने पर तो सब कुछ त्याग कर 'उसी' को बार-बार प्राप्त करनेकी 'तालाबेली' जाग उठती है—

'बेद पुरान सासत्र आनंता गीत कबित न गावऊगो ॥
अखंड मंडल निरंकार महि अनहद बेनु बजावऊगो ॥
वैरागी रामहि गावऊगो ॥
सबहि अतीत अनाहदि राता, आकुलकै घरि जाऊगो ॥
इडा पिंगुला अउरु सुखमना पऊनै बंधि रहाऊगो ॥
चंदु सूरजु दुइ समकरि राखऊ ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो ॥
तीरथ देखि न जल महि पैसऊ जीअ जन्त न सतावउगो ॥
अठसठि तीरथ गुरु दिखाए घटही भीतरि नाऊगो ॥
पंचसहाई जनकी सोभा भलै भलै न कहावऊगो ॥
नामा कहै चितु हरि सिऊ राता सुन्न समाधि पावऊगो ॥[3]

---

१ पंजाबातील नामदेव—पृष्ठ ८६
२ वही, पृष्ठ ६१
३ वही, पृष्ठ ११४

योग की साधना में 'सुन्न समाधि' का बड़ा महत्त्व है। 'गोरख-शतक' में प्रश्न है—

'षटचक्रं षोड़साधारं त्रिलक्षं व्योमपंचकम्
स्वदेहे मे न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः ?'

(जो योगी छः चक्र, सोलह आधार और तीन लाख नाड़ी तथा पाँच व्योमों को, जो उसके शरीर में ही हैं, नहीं जानता वह कैसे योग में पूर्णता प्राप्त कर सकता है ?)

पहला मूलाधार चक्र, दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र, तीसरा नाभिस्थित मणिपूरक चक्र, चौथा हृदयस्थित अनाहत चक्र, पाँचवाँ कंठस्थित विशुद्धाख्य चक्र, छठवाँ भ्रूमध्यस्थित आज्ञा-चक्र है और मस्तक में शून्य चक्र की स्थिति मानी गई है।

तीन लाख नाड़ियों में दस नड़ियाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तजिह्वा, पुषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहुष और शंखिनी मुख्य कही गई हैं। परन्तु कुंडलिनी या लय-समाधि के लिए बाई ओर स्थित इड़ा, दाहिनी ओर स्थित पिंगला और रीढ़-मध्यस्थित सुषुम्ना का विशेष महत्त्व है।

कुंडलिनी-योग द्वारा आत्मज्योति व ब्रह्मज्योति से मिलन होता है। योगी प्राणायाम, मुद्रा आदि द्वारा कुंडलिनी-शक्ति को जाग्र कर रीढ़ के मध्य भाग में स्थित सुषुम्ना के मार्ग से मस्तक की ओर जहाँ ब्रह्मरंध्र है, ले जाता है। कुंडलिनी प्रत्येक चक्र को बेधती हुई ऊपर गतिशील होती है। अन्तिम चक्र तक पहुँचने पर जीवात्मा को वे सब अनुभव प्राप्त होते हैं जिसका वर्णन नामदेव ने किया। नामदेव के परवर्ती संत कवियों ने भी इस कुंडलिनी-योग की चर्चा की है........

'गगन गरजि मध जाइयेतहां दीसै तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषि हैं,हां भीजत हैं सब्र संत रे ॥[1]
........कबीर।

उन्मनि चढ़्या मगन रस पीवैत्रिभवन भया उजियार।
सुषमन नारी सहजि समांनी पीपीवनहारा।
दोइ पूड़ जोड़ि भिगाई माठी,भा महारसभारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीता,ट गई संसारी।
सुनि मंडल में मंदला बाजै, तमेरा मन नाचै।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया,इजि सुषमना काछै।''[2]
—कबीर।

उत्तर-भारत में जब नामदेव ने भ्रमण या तो उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में धार्मिक और सामाजिक कट्टरता दिखी दी। अतएव उन्होंने उन दोनों को बोध-बाणों से छेदने की चेष्टा की—

'पांडमरी गाइत्री ला[illegible] खेखाती थी ॥
लैक्ठेगा टगरी तोरी लांगत[illegible]गत जाती थी ॥

---

१. कबीर ग्रंथा, पृष्ठ ८८
२. वही पृष्ट ७

पांडे तुमरा महादेऊ धऊले बलद चढ़िया आवत देखिआ था ॥
मोदी के घर खाणा पाका वाका लड़का मारिआ था ॥
पांडे तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिआ था ॥
रावन सेती सरबर होइ घरकी जोइ गवाई थी ॥
हिंदू अंधा तुरकू काणा दोहां ते गिआनी सिआणा ॥
हिंदू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत ॥
नामें सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत ॥
(पंजाबातील नामदेव पृष्ठ १११)

पोथी पढ़न्ते पांडे के प्रति जिस प्रकार नामदेव की खीझ है उसी प्रकार कबीर की भी है—

तू राम न जपहि अभागी
बेद पुरान पढ़त तउ पांडे, खर चंदन जैसे भारा
राम नाम तत समझत नाहीं, अन्त पड़ै मुख छारा ॥

साथ ही वे मुल्ला का भी मान मर्दन करते हैं—

काजी कौन कतेब बखाने,
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति कै नाहीं जाने,
मुल्ला कहां पुकारै दूरि, राम रहीम रहया भरपूरि
यह तो अल्लह गूंगा नाही देखे खलक दुनी दिल मांही ।

नामदेव के विशिष्ट शब्द-प्रयोग

नामदेव ने कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द को प्रयुक्त किया है जो प्रायः सभी निर्गुणियों की कृतियों में पाए जाते हैं। यथा—खसम भर्तार, (भरतार) निरंजन, बीठुला, नाद, अनहत और सुन्न ।

खसम, भरतार, और निरंजन शब्द हमें सातवीं शताब्दी में सिद्धों की रचनाओं में भी मिलते हैं।

खसम : अरबी, खस्म से बना है जिसके अर्थ १. शत्रु, दुश्मन, २. स्वामी, मालिक, ३. पति, शौहर होते हैं।[1] इसकी विवेचना डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी कबीर नामक पुस्तक में की है। उन्होंने ख = आकाश, सम = समान अर्थ लेकर यह प्रतिपादित किया है कि मन की वह अवस्था जो सगुण और निर्गुण से परे हो।

सिद्ध सरहपाद ने आठवीं शताब्दी में खसम का प्रयोग संभवतः उसी अर्थ में किया है जिसकी ओर डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी का संकेत है।

सरहपाद बौद्ध सिद्ध थे। उन्होंने महायान दार्शनिकों की परिभाषा में ही संभवतः 'ख' का व्यवहार किया है। पर नामदेव और कबीर आदि संतों ने भी सभी स्थलों पर इसी अर्थ में प्रयोग किया है, यह कहना कठिन है।

'भगति करउ हरि को गुन गावउ।
आठ पहर अपना खसमु धिआवऊ।

यहाँ स्पष्ट ही नामदेव ने 'खसम' का प्रयोग 'स्वामी' अथवा मालिक के अर्थ में किया है, जो समस्त जगत् का स्वामी है, उसका आठों पहर ध्यान करने का उपदेश है। 'भरतार' का प्रयोग भी सरहपाद में मिलता है—

'एक्कु खाई अवर ऊणा विपोड़ई, बाहिंर गई भत्तारइ लेउइ'[1]
(एक खाइ अरु अंधहि फोडै, बाहर जाइ भतोरे लौडै।)

यहाँ भतार का प्रयोग पति के अर्थ में हुआ है। नामदेव में भी इसी अर्थ में यह प्रयुक्त हुआ है।

'मैं बउरी मेरा राम भतारु।'
(पंजाबातील नामदेव पद—संख्या ४१)

निरंजन : नाथ-पंथियों में बहुत प्रचलित शब्द है जिसका भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। गोरखनाथ ब्रह्म के अर्थ में 'आरती' गाते हैं—

'नाथ निरंजन आरती गाऊं, गुरु दयाल अज्ञा जो पाऊं।'
(यदि दयालु गुरु की आज्ञा पाऊं तो
परब्रह्म निरंजन नाथ की आरती गाऊं।)
'सकल भवन उजियारा होई, देव निरंजन और न कोई।'[2]

कबीर ने ब्रह्म और विशिष्ट प्रकार के जोगियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। यथा—

(१) कहै कबीर जो हरि रस भोगे, ताकू मिल्या निरंजन योगी।
(२) एक निरंजन अल्लह मेरा, हिन्दू तुरक दुहू नहि तेरा।
कहे कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा।

नामदेव निरंजन को अपने गोपाल राइ का विशेषण बनाते हैं—

सेवीले गोपाल राइ अकुल निरंजन।
भगति दान दीजै जाचहि संत जन।

गोपाल राई की, जिनका कोई कुल नहीं है और जो अंजन रहित है अर्थात् निराकार हैं, सेवा करनी चाहिए। निरंजन शब्द का नामदेव ने हिन्दी-पदों में एक बार ही निराकार ब्रह्म के लिए प्रयोग किया है।

---

१. **हिन्दी-काव्यधारा (राहुल) पृष्ठ १२।**
२. **गोरख-बाणी (बड़थ्वाल) पृष्ठ १९७।**
३. **कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ ८८।**

वीठुला, विट्ठलु, विट्ठल—का हिन्दी-पदों में संभवतः नामदेव द्वारा ही सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है। उत्तर-भारत में विष्णु का विट्ठल नाम उन्हीं के द्वारा प्रचलित हुआ है। नामदेव ने विट्ठल शब्द पंढरपुर की विट्ठल-प्रतिमा और व्यापक ब्रह्म दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया है। परन्तु इस संबंध में यह ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी-पदों में विट्ठल प्रायः सर्व-व्यापी ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि विसोबा खेचर से दीक्षित होने के पूर्व नामदेव की भक्ति पंढरपुर के मंदिर में स्थित विठोबा की मूर्ति में ही केन्द्रित थी। अतएव मराठी अभंगों में विट्ठल की मूर्ति के चरणों में बार-बार जन्म लेकर समर्पित होने की उत्कट भावना है। परंतु खेचर के जगाने के उपरान्त उनकी यह भावना व्यापक हो गई। चारों ओर उन्हें विट्ठल के दर्शन होने लगे—

'ई भइ बीठल ऊ भइ बीठल, बीठल बिन संसारु नहीं'

उत्तरभारत की यात्रा के समय नामदेव खेचर से दीक्षित हो चुके थे। अतएव उस समय रचित हिन्दी-पदों में स्वभावतः 'वीठलु' व्यापक ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। नामदेव के पद उत्तर भारत में इतने अधिक प्रचलित हो गये थे कि उनके भावों की प्रतिध्वनि हमें उनके परवर्ती संत-कवियों में बार-बार सुन पड़ती है। उत्तर भारतीयों को सर्वप्रथम निर्गुण भक्ति का मधुर रस पान कराने का श्रेय इसी महाराष्ट्रीय संत कवि को है। सिद्धों और नाथों ने तो भक्तिविरहित निर्गुणमत का ही प्रचार किया था।

कबीर ने भी विट्ठल, और वीठुला का नामदेव के समान निराकार ब्रह्म के अर्थ में प्रयोग किया है—

(१) गोकल नाइक वीठुला, मेरो मन लागौ तोहि रे
बहुतक दिन बिछुरे भए तेरी औसरि आवै मोहिरे ॥

(२) मन के मोहन वीठुला, यहु मन लागौ तोहिरे
चरन कवल मन मानिआ और न भावै मोहिरे ॥[1]

कुण्डलिनी, अनहत नाद, सुन्न—कुण्डलिनी के संबंध में 'गोरख-शतक' में चर्चा है—

कुण्ड अर्थात रीढ़ के निम्न भागस्थित स्वयंभू लिंग के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति आठ तह का कुण्डल बनाकर अपने मुख से ब्रह्मद्वार को नित्य ढाँप कर पड़ी रहती है। इड़ा (बाँई नाड़ी) और पिंगला (दाँई नाड़ी) का जब सुषुम्ना (रीढ़ के मध्य स्थित नाड़ी) से बहनेवाली प्राणवायु के साथ प्राणायाम आदि द्वारा मेल होता है तब कुण्डलिनी जाग्रत होती है और उसकी ऊर्ध्व गति होती है। वह षट्-चक्रों को बेधती हुई सहस्त्राधार अथवा ब्रह्म-रंध्र में प्रवेश करती है, जहाँ अमृत झरता है और जीवात्मा उसका पान करती है। इसी अवस्था में 'अनहत नाद' सुनाई पड़ता है, 'प्रकाश' दिखाई देता है। आत्म-ज्योति परमात्म-ज्योति से एकाकार हो जाती है। यहीं पहुँच पर समाधि की अवस्था सिद्ध होती है। इसी को कुण्डलिनी-योग अथवा लय-योग कहते हैं।

१. **कबीर-ग्रन्थावली (हरिऔध द्वारा सम्पादित नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण) पृष्ठ ८८।**

नामदेव कहते हैं—

अखण्डु मण्डलु निराकार महिं, अनहत बेनु बजाऊंगो
इड़ा पिंगला अउरु सुखमना पउनै बांधि रहाउगो ।
चंद्र सुरज दुई सम करि राखउ, ब्रह्म ज्योति मिलि जाउंगो ।

इड़ा और पिंगला नाड़ियों को ही चंद्र और सूर्य-नाड़ी कहा जाता है ।[1]

नाथ-मत में कुण्डलिनी योग-साधन का बड़ा महत्त्व है । ब्रह्म-रंध्र को गगन-मण्डल, सुन्न-मण्डल और सुन्न-महल भी कहा गया है ।[2]

योगी विसोबा खेचर से दीक्षा लेने के उपरान्त प्रतीत होता है, नामदेव कुण्डलिनीयोग-साधना में प्रवृत्त हुए और तभी से उनके पदों तथा अभंगों में उसका उल्लेख आने लगा ।

जह अनहत सूर उजारा, तह दीपक जलै छंछारा
गुरु परसादी जानिआ जनु नामा सहज समानिया ।

(पंजाबातील नामदेव पद-संख्या ६)

नामदेव की भाषा

अध्ययन की समस्या—नामदेव के पदों की मूल पाण्डुलिपि अप्राप्य है । उनके बहुत से हिंदी-पद सिक्खों के 'गुरु ग्रंथ साहिब' और थोड़े से आवटे द्वारा संकलित 'सकळ संत गाथा' तथा यत्र-तत्र मठों की पोथियों में मिलते हैं । 'गुरु ग्रंथ साहिब' का संकलन सन् १६०६ ई० के आस-पास नामदेव के समाधिस्थ होने के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद हुआ है । इस अवधि में मूल पदों में थोड़ा बहुत अंतर स्वभावतः आगया होगा । यों जनता संतों की वाणी में दैवी शक्ति को मान कर उनका शुद्ध पाठ रखने का प्रयत्न करती है । फिर भी, लेखन-त्रुटि और श्रवण-भ्रान्ति के कारण यहाँ-वहाँ अक्षरों और शब्दों में भेद पड़ ही जाता है । आवटे की गाथा के पदों में भी मूल की रक्षा संदिग्ध है । मुद्रण-कला के आविष्कार के बाद तो 'दोषों' की संख्या की कोई सीमा ही नहीं रह गई है । पहले तो जब ग्रंथ हाथ से लिखे जाते थे तब लिपिक की थोड़ी बहुत रुचि मूल पुस्तक की भाषा की रक्षा के प्रति जागृत रहती थी और पुस्तक का प्रायः एक ही लिपिक होने से भाषा की एकरूपता भी रक्षित रह जाती थी । परन्तु मुद्रणालय में तो एक पुस्तक को 'कम्पोज' करनेवाले अनेक व्यक्ति होते हैं जो न तो विषय का ज्ञान रखते और न भाषा पर अधिकार ही । वे 'मक्षिकास्थानेमक्षिका' रखकर अपनी मजूरी पूरी करते हैं । यदि कोई अन्वेषक ही मुद्रणालय में सावधानी से बैठ कर किसी ग्रंथ को मुद्रित कराए तो संभव है कि मूल भाषा की रक्षा हो सके । श्रीआवटे

---

१. षोड्स कलावाली नाड़ी इड़ा में चन्द्रमा का प्रकाश है ।
द्वादशवाली पिंगला में भानु का । (गोरखबानी-बड़थ्वाल) पृष्ठ ३२

२. सुन्नि मंडल में मंदुला बाजै तहाँ मेरा मन नाचै
(कबीर-वचनावली) पृष्ठ ११०
अवधू गगन मण्डल घर कीजै ।
(कबीर-वचनावली) पृष्ठ ११०

का शोधक स्वभाव भले ही रहा हो, पर वे आधुनिक ढंग के अन्वेषक नहीं रहे हैं, जो भाषा के रूप की रक्षा में अत्यधिक सावधान रहते हैं। मराठी-पदों की भाषा संभवतः थोड़ी बहुत वे ठीक रख भी सके हों, पर हिन्दी-पदों के प्रति वे भाषाधिकार के अभाव में उतनी ही सतर्कता रख सके होंगे, इसमें संदेह है। ऐसी स्थिति में हम नामदेव के पदों की सूक्ष्म वैज्ञानिक परीक्षा करने में असमर्थ हैं। हम उसके प्राप्य रूप से कतिपय स्थूल निष्कर्ष ही निकाल सकते हैं।

नामदेव की भाषा की सामान्य विशेषताएँ

वर्णमाला और वर्ण-प्रक्रिया आदि—पदों की भाषा में संस्कृत-वर्णमाला के प्रायः सभी स्वर और व्यंजन विद्यमान हैं। अपवाद हैं ऋ, लृ, ॡ, श, ष, क्ष और ज्ञ। ऋ के स्थान पर रि, श के स्थान पर स और ष के स्थान पर ख, क्ष के स्थान पर ख तथा ज्ञ के स्थान पर गिअ का प्रयोग मिलता है। यथा—

हृदय	रिदय
एकादशी	एकादसी
खुशखबरी	खुसखबरी
वर्षा	बरखा
प्रेक्षण	पेखण
ज्ञान	गिआन

कहीं-कहीं ओ के स्थान पर 'उ' और ए के स्थान पर 'इव' मिलता है। यथा—

(१) राम को नाम **जपउ** दिनराता

(२) पंच जना सिउ (से) बात बतउआ।

अ का उ में परिवर्तन—शब्दान्त की अ ध्वनि प्रायः उ में परिवर्तित पाई जाती है। यथा—

विठलु, संसारु, गोविन्दु, व्रतु, खुबु, वेदु, मुरखु, परपंचु

संस्कृत तत्सम शब्दों के दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व और ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ रूपों की प्रचुरता है। कहीं-कहीं शब्दान्त अ का इ में भी आदेश हुआ है। यथा—

खड़ी बोली शब्द	नामदेवी रूप
झिलमिल	झिलमिलि
बाहर	बाहरि

ब के स्थान पर भ का आदेश—

सब	सभ

क के स्थान पर ग का आदेश—

सकल	सगल
भक्ति	भगति

न के स्थान पर ण का आदेश और इसके विपरीत ण के स्थान पर न का आदेश—

कौन कवणु

तृष्णा त्रिस्ना

म के स्थान पर ज का आदेश—

यम जम

कतिपय वर्णों का आगम भी हुआ है। यथा—

शब्द में वर्ग के तृतीय वर्ण के बाद ओ और ना के आने पर उसके मध्य य का आगम—

जाना ज्याना

जो ज्यो

लाना ल्याना

संयुक्त स के पूर्व इ का आगम—

स्नान इस्नान

विभक्ति-वैशिष्ट्य—सप्तमी के लिए इ और ए और मो प्रत्यय पाए जाते हैं—

मनि (मन में)

आकासै (आकाश में)

द्वारै (द्वार पर)

गगन मंडल मो (गगन मंडल में)

कहीं-कहीं संबंध कारक में 'च' का प्रयोग—

तुमचे पारसु हमचे लोहा

(इस च प्रत्यय के संबंध में प्रथम अध्याय में पर्याप्त चर्चा हो चुकी है।)

क्रिया-प्रत्यय—भूतकालिक 'इल' प्रत्यय नामदेव के पदों में अधिक पाया जाता है। यथा—

आनीले, भराइले, भैला, लाइले

यह मराठी में ही नहीं पूर्वी, हिन्दी में भी प्रयुक्त होता है। सातवीं शताब्दी के सरहपाद और धर्मपाद में भी इस भूतकालिक प्रत्यय का प्रयोग मिलता है—

सरह भणह वण। उजुवट ***भइला***[1]

डाह डोम्बिघरे ***लागेलि*** आग्गी[2]

नामदेव की भाषा में किसी कृत्रिम एकरूपता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वे संत थे। उन्हें अपनी बात कहनी थी, भाषा का रूप-प्रदर्शन उनका ध्येय न था। अतएव भाषा में कबीर के समान थोड़ी विविधता भी है। जिस प्रान्त के व्यक्तियों से उनका सम्पर्क आया उसी प्रान्त के शब्द उन्होंने ग्रहण कर लिये। अतः उसमें खड़ी बोली के साथ ब्रज, पूर्वी हिन्दी और पंजाबी का भी समावेश हो गया है। उनके काल तक मुसलमानों का शासन फैल चुका था। अतः विदेशी, (अरबी-फारसी) शब्द स्वभावतः उनकी भाषा में समा गये। परन्तु एक बात विशेष रूप से दर्शनीय है कि उनके प्रत्येक पद में विदेशी

---

१. हिन्दी-काव्य-धारा, पृष्ठ ६१८।

२. वही, पृष्ठ ६१८।

शब्द नहीं आए हैं। 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित पदों में ही थोड़े बहुत अरबी-फारसी के शब्द हैं, उदाहरणार्थ, आमदकुना, खुशखबरी, यारा, आलम, मसकीन, दाना, बखसंद, बिसमिल, खुदकार कलंदर आदि। शेष पद्य इनसे सर्वथा अछूते हैं।

इस प्रकार नामदेव ने अपने सारे पदों में भाषा की विदेशी खिचड़ी नहीं पकाई है। यद्यपि नामदेव के समय में मुसलमानों का संसर्ग दक्षिणापथ में प्रारम्भ हो चुका था, तो भी उनका इतना प्रभाव नहीं बढ़ पाया था कि जनता की भाषा के परम्परागत रूप में विशेष परिवर्तन आ गया हो। उत्तरभारत में परिवर्तन की क्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी जिसकी छाया नामदेव के चार-पाँच पदों में ही दिखाई देती है। उन पदों की रचना उनके पंजाब में रहने के काल में होनी चाहिए। उनकी भाषा से खड़ी बोली के उस रूप का आभास मिलता है जो उनके समय में मध्यदेश और पंजाब में विकसित हो रही थी।

नामदेव के पदों में कविता

नामदेव में निर्गुण-भक्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है। उनमें कहीं अपने विठ्ठल के, जिसे वे 'रामु', 'माधो', 'गोविन्दु', 'हरि' आदि से सम्बोधित करते हैं, मिलन-सुख का उल्लास है, कहीं उनसे मिलने की 'तालाबेली' है। इसलिए उनके पदों में शांत, वात्सल्य और करुण रस का प्राधान्य है। उनमें उत्कट भावना की हिलोर है। अपने अनुभवों को बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंने उपमा, रूपक, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, उदाहरण और विभावना अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। उनमें शब्दाडम्बर नहीं है। अपने 'सुआमी' के प्रति उनकी प्रीति की तीव्रता किस प्रकार की है, इसे समझाने के लिए कितने सरल शब्दों में 'उदाहरण' प्रस्तुत करते हैं—

जैसे भूखे प्रीति अनाज
त्रिखावंत जल सेती काज
जैसे मूढ़ कुटुम्ब परायन
ऐसे नामें प्रीति नाराइन ॥

और भी 'जैसे पर पुरखारत नारी
लोभी नरधन का हितकारी
कामी पुरुष कामनी पिआरी
ऐसे नामें प्रीति मुरारी

सांसारिकता में काया (काइया) डूबी जा रही है। उसकी स्थिति का 'रूपक' द्वारा परिचय देते हैं—

'लोभ लहरि अति नीझरु बाजै,
काइआ डूबै केसवा।
संसारु समुंदेतारि गोबिंदे
अनिल बेड़ा हऊ
तेरा पारु न पाइआ बीठुला
तू मोकउ बाह देहि बाह दोह बीठुला ॥'

'काल' हमारे सुख का कभी भी अंत कर सकता है। मछली पानी में रहती है। समझती है कि सुरक्षित और सुखी है, परन्तु अचानक जालरूपी काल में फँस जाती है। उसका सुख तिरोहित हो जाता है। इसे **उदाहरण** से स्पष्ट करते हैं—

'जैसे मीनु पानी में ही रहे
काल जाल की सुधि नहीं लहै।'

संसार में धन आदि का संचय भी व्यर्थ है। इसका लौकिक व्यवहार में दिखाई देनेवाली घटनाओं का **उदाहरण** देकर समझाते हैं—

'जिउ मधुमाखी संचै अपार
मधु लीनो मुखि दीनी छारु।'
'गऊ वाछकऊ संचै खीरु
गला बांधि दुहि लेहि अहीरु।'

मधुमक्खी मधु का संचय करती है, क्या वह उसका उपभोग ले पाती है?

गाय अपने बछड़े के लिए क्षीर (दूध) का संचय करती है—चुरा लेती है, पर क्या वह उसके बच्चे को मिल पाता है? अहीर गला बाँध कर उसे दूह लेता है। इसीलिए 'नामा' कहते हैं कि अपने या अपने कुटुम्बियों के लिए धन-संचय करने में क्यों अपने जीवन को गँवाते हो? निर्भय होकर भगवान् का भजन करो। कितने अनुभूत और सूझभरे उदाहरण हैं! प्रत्यक्ष जीवन से उन्होंने उदाहरण लिए हैं—मारवाड़ी को जैसे पानी प्यारा है, उसी तरह मुझे मेरा बिट्ठल प्यारा है।

इड़ा और पिंगला नाड़ियों के लिए योग-ग्रंथों में उल्लिखित 'चंदु' और 'सूरज' शब्दों का प्रयोग किया गया है। ब्राह्मण और शूद्र भगवान् के ही बनाए हुए हैं, उनमें भेद नहीं है। इसे समझाने के लिए उन्होंने कितना स्वाभाविक 'उदाहरण' दिया है—

'नाना वर्ण गवा (गाय) उनका एक वर्ण दूध।'

गगन-मंडल (मस्तक) के सहस्राधार में, प्राणों के पहुँचने पर अनहत-नाद का और अमृत के झरने का कैसा अनुभव होता है, इसे विभावना द्वारा समझाते हैं—

'अडमडिया मंदलु बाजै
बिनु सावन वनरस गाजै
बादल बिनु बरखा होई।'

विना मढ़ा मृदंग बजता है, विना सावन के, विना बादल के वर्षा होती है। सचमुच नामदेव के अलंकार अनुभूति को रूप देने के लिए हैं—हृदयंगम कराने के लिए हैं। इनमें कहीं चमत्कारिकता नहीं है। कबीर के समान नामदेव में कहीं उलटबासियाँ नहीं हैं। उन्हें जनता पर आतंक जमाना अभीष्ट नहीं था। वे तो उन्हें अपने हृदय में न समा सकनेवाले भक्ति-भाव-प्रेम-रस से सराबोर करने को आतुर थे।

नामदेव के पदों की कविता के सम्बन्ध में स्वर्गीय प्रोफेसर वासुदेव बलवन्त पटवर्धन ने बम्बई-विश्वविद्यालय की विल्सन फिलालॉजिकल व्याख्यानमाला में ये उद्गार प्रकट किये थे—

"Here we have the Romance of a light that never was on sea or land, of a dream that never settled on the world of clay, of love that never stirred the passion of sex. Here is the Romance of the piety ; of faith and devotion, of surrender of human soul in the love, the light and the life of the ultimate being. It is a Romance of Bhakti or spiritual love that we have here. It is the heart's song to the heart. It is the outburst of the contents of the heart under excitement when the heart is touched or stirred, or thrilled or roused into passionate life.."[1]

(भावार्थ—नामदेव की कविता में हमें उस प्रकाश के रोमांच का अनुभव होता है जो समुद्र या धरती पर कभी नहीं उतरा, उस स्वप्न के दर्शन होते हैं जो इस मिट्टी की धरती पर कभी नहीं झलका। उस प्रेम की प्रतीति होती है जिसने कभी वासना को उत्तेजित नहीं किया। उसमें तो करुणा, विश्वास और भक्ति का 'रोमांच' है तथा मानव-आत्मा का प्रेम तथा परमात्म-शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण है। उसमें हम भक्ति अथवा आध्यात्मिक प्रेम का रोमांच, हृदय का हृदय के प्रति संगीतमय निवेदन, और उद्वेलित भावातुर हृदय के उद्गार पाते हैं।)

उनके समकालीन प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर महाराज ने भी उनकी कविता के संबंध में कहा है—'नामा में कथन मात्र नहीं, कवित्व है—उसका रस अद्भुत और निरुपम है।'[2]

तात्पर्य यह कि नामदेव अपने काल के लोकप्रिय संत थे। उनके मराठी अभंगों और हिन्दी-पदों में जनता के हृदय को स्पर्श करने का गुण है।

नामदेव और कबीर

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि नामदेव और कबीर की विचारधारा एक ही भूमि पर प्रवाहित हो रही है। नामदेव चूँकि कबीर के पूर्व हुए हैं, इसलिए कबीर की वे निश्चय ही प्रेरक शक्ति रहे हैं। इतना होने पर भी हिन्दी के प्रसिद्ध विवेचक नामदेव को निर्गुण मत का प्रवर्तक नहीं मानते। स्वर्गीय डा० बड़थ्वाल लिखते हैं, '(निर्गुण) पंथ को प्रारंभ करने का श्रेय कबीर को ही देना होगा।'[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, 'जहाँ तक पता चलता है निर्गुण-मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे।'[2] नामदेव कबीर से

---

१. श्री नामदेव चरित्र (माधवराव आप्पाजी मुले ; सन १६५२ संस्करण) प्रस्तावना, पृष्ठ ८४—८५।

२. 'परी नामयाचें बोलणें नव्हे हें कवित्व। हा रस अद्भुत निरोपमु।'—वही, पृष्ठ ८६।

३. देखिए हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय (बड़थ्वाल) पृष्ठ ३१

४. देखिए हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७०

पूर्व हुए, उन्होंने निर्गुण भक्ति का उत्तर में वर्षों प्रचार किया। फिर भी उन्हें उस पंथ का प्रवर्तक मानने में विद्वानों को क्यों झिझक होती है?

इस प्रश्न का उत्तर क्या पं० परशुराम चतुर्वेदी के इस कथन में ढूँढा जा सकता है कि 'नामदेव में उत्तरी भारत के संत मत की सारी विशेषताएँ नहीं मिलतीं?' क्या इसीलिए 'वे अपने क्षेत्र तक सीमित रह जाते हैं।'[1] चतुर्वेदी जी यह भी लिखते हैं कि नामदेव के पद में 'माइया मोहिया' शब्दों से यह ध्वनि निकलती है कि संत नामदेव को अपने गार्हस्थ्य जीवन के प्रति कदाचित् पूर्ण विरक्ति नहीं रही।[2] क्या इसीलिए उन्हें उच्च पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया गया? हमारा निवेदन है कि चतुर्वेदी जी के निष्कर्षों में संशोधन की आवश्यकता है। वे तथ्य को ठीक ठीक प्रस्तुत नहीं करते। पहले हम उनके प्रथम मत पर विचार करते हैं। वे कहते हैं कि 'उत्तरी भारत' के संतमत की विशेषताएँ नामदेव में नहीं मिलतीं।

उत्तर भारत के संतमत की विशेषताएँ उन्हीं के ग्रंथ में निर्दिष्ट हैं। वे हैं—

(१) प्रत्यक्ष अनुभव से सत्यान्वेषण
(२) सद्गुरु-महत्व-प्रतिपादन।
(३) 'सुमिरन' या नाम-स्मरण का आग्रह
(४) बाह्याडंबर की व्यर्थता।

अब हम सिद्ध करेंगे कि नामदेव के पदों में उत्तरी भारत के संत-मत की उपर्युक्त विशेषताएँ विद्यमान हैं।

(१) नामदेव इस जगत में सत्य का अन्वेषण करते हैं—
'कहत नामदेउ हरि की रचना **देखेउ रिदै बिचारी**
घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी। (पद-संख्या २)

नामदेव 'रिदै' (हृदय) में विचारने पर जोर देते हैं। आत्मानुभव की ओर संकेत करते हैं:—

(२) सदगुरु के विना सत्य का अनुभव भी कैसे हो सकता है?
वे कहते हैं—
'सफल जनमु मोकउ गुरु कीना,
गिआन अंजनु मोकउ गुरु दीना।'

(३) नाम-स्मरण पर भी नामदेव का आग्रह है। पहला ही पद है—
'देवा, पाहन तारिअले।'
राम कहत जन कस न तरे (पंजाबातील नामदेव, पद-संख्या १)

और भी—

'भगति करउ हरि के गुन गावउ
आठ पहर अपना खसमु धिआवउ।

---

१. **देखिए उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृष्ठ १०**
२. **देखिए वही, पृष्ठ ११८**

(४) बाह्याडंबर, वेद-पाठ आदि की अनावश्यकता भी प्रतिपादित करते हैं—

(१) 'पंडित होइकै वेदु बखानै। मूरखु नामदेव नामहि जाने'

(२) 'अन्तरबाहरि काज बिरुधी चितुसु बारिक राखीअले।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि नामदेव में उत्तरी भारत के संत-मत की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसीलिए हम उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति-मत का प्रथम प्रचारक और प्रवर्तक तथा कबीर आदि संतों का पथ-प्रदर्शक मानते हैं। यह सत्य है कि कबीर के पूर्व सिद्धों और नाथों ने इसी दिशा में कार्य किया है पर नामदेव और सिद्धों-नाथों के निर्गुण मत-प्रचार में यह अन्तर है कि सिद्धों और नाथों में जहाँ शुष्क 'ज्ञान' और 'योग' है वहाँ नामदेव में ज्ञान और योग के साथ भक्ति का सरस मेल भी है। वारकरी-मत में भागवत-मत का समावेश होने से उसमें प्रवृत्ति-भाव आ गया है। नामदेव वारकरी-मत के प्रमुख संत हैं। अतएव उनमें ज्ञान और भक्ति का मणि-कांचनसंयोग सध गया है।

अब चतुर्वेदीजी के दूसरे मत पर विचार किया जायगा जिसमें वे नामदेव को अंत तक 'माइया मोहिया' में फँसा हुआ बतलाते हैं। इस मत का आधार संभवतः नामदेव के पदों में 'झूठी माइया देखिके भूला रे मना'[१] जैसे उद्गार हैं।

परन्तु पदों में 'माइया मोहिया' आने से ही उनका 'मायावश' होना सिद्ध नहीं होता। तुलसी, सूर आदि प्रसिद्ध भक्तों की वाणियों में 'माइया मोहिया' के भाव-व्यंजक शब्दों की क्या कमी है? संत तो माया-मोह से निर्लिप्त रहने के लिए बार-बार अपने हृदय को टटोला करते हैं और उसमें अहंकार उत्पन्न न होने देने के लिए बार-बार कहा करते हैं 'मो सम कौन कुटिल खल कामी?' और आर्तनाद करते हैं 'माया नटी लकुटी कर ली है, कैसे तव गुन गावै?' हिन्दी के अधिकांश सन्तों के उद्गारों में इस प्रकार के भावों की व्यञ्जना मिलती है। इनसे भक्त या संत के जीवन के धागे-डोरे नहीं पकड़े जाते। इनमें तो भक्ति की दैन्य-भावना की चरम सीमा ही देखी जा सकती है। नामदेव के हृदय में अपने 'विठ्ठल' के प्रति जब 'तालाबेली' जाग उठी है तब उसे गृहस्थी की माया कैसे खींच सकती है? वह तो यही गा सकता है....'मनु पंछीया मत पड़ पिंजरे, संसार माया जालु रे।'[२] इसके अतिरिक्त नामदेव के प्रकाशित जीवन-चरित्रों में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि वे अंत तक 'माया-मोह' में फँसे रहे। सत्य तो यह है कि वे सांसारिकता से सदा उदासीन रहे। उनका मन घर-द्वार के कामों में रमा ही नहीं। मराठी में रचित नामदेव की माता 'गोणाई नामदेव यांचा संवाद' नामक अभंग में कहा गया है—

> "गोणाई म्हणे नाम्यांवचन माझे ऐक।
> पोटीचें बालक म्हणोती सांगे ॥१॥

---

१. पंजाबातील नामदेव, पद-संख्या ६।

२. परिशिष्ट में संगृहीत अतिरिक्त पद-संख्या ५।

३. श्री नामदेवरायांची सार्थगाथा (भाग तिसरा, सुबंध), पृष्ठ ८६।

महीमेचा संसार सांगेनी आपुला।
संग त्वां धरिला निःसंगाचा ॥२॥
या काय मागसी तो काय देईल।
शीहर ची नेईल बैकुंठासी ॥३॥
सवित्या की लेंकुरें वर्ततातीं कैसीं।
तूं मज झाला सी कुल क्षय ॥४॥
धनधान्य पुत्र कलत्रे नांदती।
तुज अभाग्याचे चित्तीं पांडुरंग ॥५॥
शिवणया टिपणया घातलें से पाणी।
न पाहासी परतोनी घराकडे ॥६॥
कैसी तुजी भक्ती लौकिका वेगलो।
संसाराची होली कयाली नाम्या ॥७॥"

(भावार्थ—गोणाई कहती है कि नामदेव तू मेरे पेट से उत्पन्न पुत्र है, इसीलिए तुझसे कहती हूँ कि तूने संसार त्यागकर निःसंग का साथ किया है। तू उससे क्या माँगता है और वह तुझे देगा भी क्या? वह तुझे शीघ्र ही वैकुंठ ले जायगा। देख, पड़ोसियों के लड़के अपने गृहस्थ-जीवन का किस प्रकार निर्वाह करते हैं और तू कुल का नाश करनेवाला पैदा हुआ है? तुझ अभागे का चित्त पांडुरंग में लगा हुआ है। तूने सीने-पिरोने का काम त्याग दिया है और घर की ओर देखता ही नहीं! यह तेरी कैसी भक्ति है? घर-गृहस्थी को तूने आग में झोंक दिया है!)

ऐसे और भी अभंग हैं जिनमें नामदेव की घर-गृहस्थी के प्रति विरक्ति प्रकट की गई है।

निष्कर्ष यह कि नामदेव के पदों में 'माइया मोहिया' का प्रयोग उनके जीवन-चरित्र का प्रकाशन नहीं, उनकी दैन्य-भक्ति का निदर्शक है। यह सत्य है कि कबीर के समान नामदेव की हिन्दी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में नहीं मिलती, परन्तु जो कुछ प्राप्य हैं उनमें उत्तरभारत की संत-परम्परा का पूर्व आभास मिलता है और उनके परवर्ती संतों पर निश्चय ही उनका प्रभाव पड़ा है जिसे उन्होंने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। ऐसी दशा में उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्त्तक मानने में हमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। संभवतः हिन्दी-जगत् तक उनके संबंध में पर्याप्त जानकारी न पहुँच सकने के कारण उन्हें वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जिसके वे अधिकारी हैं।

नामदेव की साहित्यिक और सांस्कृतिक सेवा

नामदेव का व्यक्तित्व सचमुच महान् था। उन्होंने उत्तर भारत में प्रवेश कर जनता को बहुदेवोपासना, कृत्रिम आचार-विचार, जाति-भेद आदि के प्रति सजग किया। क्योंकि भारत में जो विदेशी संस्कृति का प्रवेश हो गया था, वह उसके इन्हीं 'दोषों' से लाभान्वित हो अपना विस्तार कर सकती थी। अतः उन्होंने अपने उपदेशों से, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कबीर और अन्य परवर्ती संतों का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

नामदेव ने जहाँ उत्तर भारत में युगानुरूप विचारों से क्रांति की चिनगारी प्रज्ज्वलित की वहाँ हिन्दी साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियों की पद-शैली भी प्रदान की। संक्षेप में नामदेव हिन्दी के अपने समय के (१) निर्गुण भक्ति के प्रथम प्रचारक और (२) हिन्दी में गीत-शैली के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं। नामदेव की लोकप्रियता का प्रमाण इसी से मिल जाता है कि निम्न परवर्ती संत कवियों ने श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण किया है—

गुरु परसादी जैदेव, नामा। भगति के प्रेम इन्हहि है जाना।[1]
(कबीर)

नामा, कबीर सुकौन थे कुन राँकाबाँका
भगति समानी सब धरनि तजि कुल कानाका।[2]
(रज्जबजी)

जैसे *नाम* कबीरजी यौं साधु कहाया
आदि अंत लौ आइकैं राम राम समाया॥[3]
(स्वामी सुन्दरदास)

नामदेव—कबीर जुलाहों जन रैदास तिरै
दादू वेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै॥[4]
(दादू दयाल)

ध्रू, पहलाद, कबीर, *नामदेव*, पाषंड कोई न राख्या॥
बैठि इकंत नांव निज लीया वेद भागोत यूं भाख्या॥[5]
(वषनाजी)

नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना सैनु तरै
कहि रविदास सुनहु रे संतो, हरि जीउ ते सभै सरै॥[6]
(रैदास)

इसमें संदेह नहीं, नामदेव की वाणी ने हिंदी-भक्ति-साहित्य में एक अपूर्व मिठास भर दी है।

---

१. **कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ३२८**
२. **संतसुधासार, पृष्ठ ५२०**
३. **वही, पृष्ठ ५६०**
४. **वही, पृष्ठ ४४१**
५. **वही, पृष्ठ ५४३**
६. **वही, पृष्ठ १८३**

गोंदा महाराज

गोंदा महाराज का समय लगभग शके १२७२ (ईसवी सन् १३५१) के मध्य है। ये नामदेव के पुत्र हैं। इनकी भी कुछ रचनाएँ मराठी और हिन्दी में मिलती हैं। महाराष्ट्र सारस्वतकार का यह कथन ठीक है कि इनके अभंगों में पिता के प्रतिभा-चिह्न दृष्टिगोचर हों, ऐसी बात नहीं है। कवित्व तो बिल्कुल ही नहीं है। उदाहरणार्थ—

गजानन गौरी खूब लाल अंग पर अमूल ।
तरे मुरख वचनामृत उस जमदूत भागत है ।।
बिभा भई तन्दुल पेट उसपर साप की लपेट ।
विघन करत है चपेट पकड़ फेंट कालि की ।।

यह है गोंदा महाराज का गजानन-वर्णन ! मराठी का अभंग छंद इन्होंने हिन्दी में प्रयुक्त किया है, यही इनकी विशेषता कही जा सकती है। संगृहीत अभंगों में इन्होंने अपने पिता नामदेव के जीवन की कुछ झलक दी है।

सेनानाई

सिक्खों के 'आदि ग्रंथ' में सेनानाई का एक पद है जिससे सिद्ध होता है कि 'सेना' की संतों में ख्याति रही है। प्रश्न यह है कि 'सेना' कहाँ का रहनेवाला था और उसकी जीवन-लीला कहाँ समाप्त हुई ?

स्वामी रामानंद के शिष्यों में सेनानाई का उल्लेख है। सिक्खों के 'आदि ग्रंथ' में सेना के संकलित पद में 'रामानंद' नाम आया है। पद इस प्रकार हैं—

'धूप दीप घ्रित साजि आरती, वारने जाऊ कमलापती
मंगला हरि मंगला नित मंगलु, राजा राम राई को
उत्तम दीअरा निरमल बाती, तू ही निरंजन कमलापती
रामा भगति रामानंद जानै, पूरन परमानंद बखाने
मदन मूरति मैं तारि गोबिंदे, सैनु भणै भजु परमानंदे ।'

सेना के मत से 'राम भगति' रामानंद ही जानते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि सेना रामानंद के पश्चात् या उन्हीं के काल में हुआ है। डा० रानडे सेना का समय शके १३६६ (सन् १४४८) निश्चित करते हैं।[२] उनके मत से वह बिदर के बादशाह के यहाँ नौकर था। महिपति बोवा ने 'भक्ति विजय' में 'सेना न्हावी' की कथा दी है[३] और उसे एक यवनराजा के यहाँ होना बतलाया है। अधींच राजा अविंध दुर्जन

१. देखिए महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ १७६
२. Mysticism in Maharashtra, पृष्ठ
३. देखिए भक्तविजय कथामृत, पृष्ठ १४०

(पहले ही राजा यवन और दुर्जन था) । दूसरा मत यह है कि वह बांधवगढ़ के राजा के यहाँ नौकर था। इसके अतिरिक्त उसे महाराष्ट्रयेतर मानने का भी आग्रह है। इसका कारण यह दिया जाता है कि सेना का पंथ उत्तर भारत में प्रचलित है। यह मत श्री जोशी ने अपने 'पंजाबातील नामदेव' में पुरस्सर किया है।[1] उन्होंने संभवतः 'इन्साइक्लोपीड़िया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स' के आधार पर सेन-पंथ को उत्तर में प्रचलित माना होगा पर हाल ही में प्रकाशित 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, 'सेन-पंथ के अनुयायियों अथवा उनके मत का कोई पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है।' (पृष्ठ २३३)

हमारे मत से सेनानाई उत्तर भारत का नहीं है। उसने नामदेव के समान उत्तर भारत में यात्रा की होगी। सेन-पंथ का उत्तर भारत में प्रचार नहीं है। उसका पंथ कभी चला भी हो तो नामदेव के उत्तर भारत में प्रचलित पंथ के समान ही हो सकता है। अतः उत्तर में सेना-पंथ के चलन से भी वह उसी प्रकार उत्तर भारतीय सिद्ध नहीं होता, जिस प्रकार पंजाब में नामदेव-पंथ के चलनमात्र से नामदेव का उत्तर भारतीय होना सिद्ध नहीं होता। दूसरी बात यह है कि उसका यवन राजा के यहाँ नौकर होने का उल्लेख है बांधवगढ़ के राजा 'यवन' नहीं थे। अतः वह बिदर के मुसलमान बादशाह के यहाँ ही सेवक रहा होगा। महिपति की 'भक्त विजय' की कथा से भी यही अनुमान निकलता है। उसमें लिखा है कि एकदिन सेना जब पूजा में लीन था तब बादशाह के दूत ने उसे शीघ्र आने का संदेशा दिया। उसने कहा, पूजा के पश्चात् आ रहा हूँ। इस पर यवनराज क्रुद्ध हो गया। उसने उसे बाँध कर नदी में फेंक देने का आदेश दिया। आज्ञा पाते स्वयं सेना के रूप में बादशाह के पास गए और उसकी सेवा की। (भक्तविजय पृष्ठ ४६-५१)। सेना को रामानंद का शिष्य कहा जाता है, पर यह संभव नहीं जान पड़ता। रामानंद का समय विक्रम-संवत् १४२५ से १४५६ कहा जाता है।[2] और प्रो० रानडे के अनुसार सेना का समय विक्रम सं० १५०५ है। हो सकता है, कोई दूसरा सेनानाई रामानंद का शिष्य रहा हो। भीतरी साक्ष्य से भी उसका महाराष्ट्रीय होना अधिक संभव जान पड़ता है। उसके मराठी अभंगों की भाषा और भाव से उसका महाराष्ट्रीय जीवन से अत्यधिक परिचय सिद्ध होता है। उसके लगभग १५० अभंग मराठी में उपलब्ध हैं।

अतएव निष्कर्ष यही निकलता है कि सेनानाई महाराष्ट्रीय था। सेना की मराठी रचनाएँ ही अधिक उपलब्ध हैं। उनमें उसकी 'गौलण' शीर्षक रचनाएँ अत्यन्त सरस बन पड़ी हैं। सेना के ग्रंथ साहिब में उद्धृत पद से ज्ञात होता है कि उसपर नामदेव की भाषा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है और उसने उत्तर भारत की यात्रा की थी।

---

१. देखिए पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ २५

२. देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ १०२

सेना का एक पद हम श्रीसमर्थ वाग्देवता मंदिर की एक जीर्ण पाण्डुलिपि में और प्राप्त हुआ है जिसे हम परिशिष्ट में दे रहे हैं। उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

(धनासरी राग)

"वेदहि झूटा, शास्त्रहि झूटा,
भक्त कहां से पछानी
ज्या, ज्या, ब्रह्मा तू ही झूटा,
झूटी साके न मानी।
गरुड़ चढे जब विष्णू आया,
सांच भक्त मेरे दोही,
धन्य कबीरा, धन्य रोहिदास,
गावे सेना न्हावी ॥"

महाराष्ट्र में सेना के मराठी पद अधिक प्रचलित रहे हैं। अतः उसके हिन्दी-पदों को संकलित करने की ओर विशेष ध्यान नहीं गया। उत्तर भारत में सेना का एक ही पद मिला है। यदि वहाँ उसका पंथ ठीक तरह से चला होता तो पंथानुगामी उसके हिन्दी पदों को संचित करने की अवश्य चिंता करते।

भानुदास महाराज

एकनाथ महाराज ने अपनी पितृ-परम्परा भानुदास से प्रारंभ की है। एकनाथ का जन्म शके १४७० है। उसके लगभग सौ वर्ष पूर्व भानुदास का जन्म-शके निश्चित होता है। महाराष्ट्र में भानुदास अपनी विठ्ठल-भक्ति के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि जब मुसलमानों के भय से विजयनगर के राजा कृष्णराज ने पंढरपुर से विठ्ठल की मूर्ति अपने राज्य में मँगा ली थी तब भानुदास के कारण ही वह पुनः पंढरपुर लौटा दी गई। हो सकता है, भानुदास जैसे विश्रुत भक्त की प्रार्थना भक्त राजा से न टाली गई हो। यह घटना सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि विजयनगर में आज भी श्रीविजय विठ्ठल का मंदिर तो है पर उसमें विठ्ठल की मूर्ति नहीं है। महिपति लिखते हैं कि 'भानुदास के वंश में विठ्ठल-भक्ति पुरातन काल से चली आ रही थी।' इस पर आलोचना करते हुए महाराष्ट्र सारस्वतकार लिखते हैं कि, 'एकनाथ लिहितो कि आपले कुलांत कृष्ण भक्ति पूर्वी पासून चालत होती।'[1] (एक नाथ लिखता है कि हमारे कुल में कृष्ण भक्ति पूर्वसे ही जारी थी।) हमारा कहना है कि महिपति और एकनाथ दोनों के कथनों में विरोध नहीं है। विठ्ठल कृष्ण का ही तो नाम है। एकनाथ का समर्थन भानुदास के प्राप्त हिन्दी-

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ २१२

पदों से भी हो जाता है। दोनों श्रीकृष्ण पर ही हैं। प्रातः यशोदा कृष्ण को प्रभाती गाकर जगा रही हैं—

'उठो तात मात भये प्रात रजनी सो तीमीर गई
मीलत बाल सकल गुवाल सुंदर कन्हाई ॥१॥
जागो गोपाल लाल जागो गोविन्द लाल जननी बलि जाई ॥२॥
संगी सब फिरत बिमन तुम बीन नहीं छुटत दयन।
त्यजो शयन कमल नयन सुंदर सुखदाई ॥३॥
मुखते पट दूर कीजौ, जननी कु दर्प दीजो।
दधी खीर मांग लीजो, खीर खांड मिठाई ॥४॥
जपत-जपत शाम राम सुंदर मुख सदा राम
थाटी की छुट कछु भानुदास पायी।

(२)

जमुना के तट धेनु चरावत
राखत है गैयां, मोहन मेरो सैंयां
मोर पत्र सिर छत्र सुहाये, गोपी धरत बहिंयां
भानुदास प्रभु भगत को बत्सल, करत छत्र छइयां।

एकनाथ के सौ वर्ष पूर्व होनेवाले भानुदास की हिन्दी भाषा में कितनी स्वच्छता है! छन्द में कितना प्रवाह है! प्रतीत होता है, व्रजभाषा में भानुदास की अच्छी गति रही है। संभव है, कृष्ण-भक्त होने के नाते उन्होंने मथुरा- वृन्दावन की यात्रा भी की हो और वहाँ कुछ समय व्यतीत किया हो। तभी भाषा में इतनी प्रौढ़ता है।

संत एकनाथ

'सज्जन मन सुमेरु गुणनिधि एकनाथ।
परम पुरुख परम भागवत अवतरे ॥'

—संत अमृतराय

मराठी में जनाबाई ने अपने एक अभंग में महाराष्ट्र में भागवत धर्म का एक 'प्रासाद' खड़ा किया है। ज्ञानदेव को उसकी 'नींव' और एकनाथ को उसका 'स्तम्भ' कहा है। ज्ञानेश्वर और एकनाथ में लगभग तीन सौ वर्ष का अन्तर था, पर 'एकनाथ' ने ज्ञानेश्वर की कृतियों का इतना गहन अध्ययन किया था कि उनकी और ज्ञानेश्वर की अन्तरात्मा एकाकार हो गई थी। तभी जनता उन्हें ज्ञानेश्वर का अवतार मानती है। यह सत्य है कि जिस कार्य का श्रीगणेश ज्ञानेश्वर ने किया था, उसी को अग्रसर करने में उन्होंने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था।[१] इस दुःखपूर्ण जग को 'आनन्दवन भुवन' किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसका मंत्र उन्होंने जनता को प्रदान किया।

---

१. एकनाथ ने कई स्थलों पर स्वीकार किया है कि ज्ञानेश्वर उन्हें स्वप्नों में आकर कार्य का निर्देश करते थे। एक स्वप्न का उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट वर्णन किया है—'श्री ज्ञानदेवें ये सुनि स्वप्नांत, मांगितली मात मनलागी।'

जिस समय एकनाथ का प्रादुर्भाव हो रहा था, महाराष्ट्र का स्वातंत्र्य-सूर्य अस्त हो चुका था—जनता अज्ञान के अंधकार में भटक रही थी—किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही थी। विदेशी सत्ताधारियों के अत्याचारों से त्रस्त हो रही थी। समाज की वर्ण-व्यवस्था के 'मुख' और 'बाहु' बिक चुके थे—उनसे दासता का स्वर निकलता था, दासता की रक्षा हो रही थी। धार्मिक क्षेत्र में लफंगों का दौर-दौरा था—तपी, तीर्थों, जती, मलंगों, जोगियों का आडम्बर फैल रहा था। 'धर्म की ग्लानि' हो रही थी। ऐसे संकट-काल में जनता के निराश हृदयों में आशा की ज्योति जगाने के लिए मानों 'एकनाथ' का जन्म हुआ।

एकनाथ का जन्म और समाधि-काल

एकनाथ ने किस शके में जन्म धारण किया और कब समाधि ली, इस संबंध में मतैक्य नहीं है। सहस्रबुद्धे-जन्म-शके १४७० और भावे शके १४५५ मानते हैं तथा समाधि-शके के संबंध में कोई १५२१[1] और कोई १५३१ प्रतिपादित करते हैं। हम डा० रानडे के अनुसार उनका काल शके १४५६ से शके १५२१ अथवा ईसा सन् १५३३ से सन् १५९९ के मध्य मान लेते हैं। आधुनिक संत-साहित्य-शोध-कर्त्ता श्री तुलपुले भी यही काल निश्चित करते हैं।[2]

एकनाथ का जन्म पैठण में हुआ था और ऐसे प्रदेश में हुआ था जो भगवद्भक्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है। उनके पूर्वज भक्त भानुदास की यह ख्याति है कि उन्होंने अपनी भक्ति के बल से पंढरपुर के विट्ठल की मूर्ति को, जिसकी विजयनगर के राजाने अपने नगर के मंदिर में प्रस्थापना की थी, पुनः पंढरपुर में लाकर आसीन कर दिया था। एकनाथ की पितृ-परम्परा इस प्रकार है—

एकनाथ की माता का नाम रुक्मिणि था। जिस प्रकार तुलसीदास मूल नक्षत्र में होने के कारण माता-पिता के लिए 'संकट' बन गए थे, उसी प्रकार एकनाथ ने भी उसी नक्षत्र

एक तेजपूंज मदनाचा पुतला, परब्रह्म केवल बोलत से।
अजात वृक्षाची मुळी कंठासी लागली, येऊन आलंदी काढीं वेगीं॥"
(ज्ञानदेव ने मुझे स्वप्न में कहा कि आलंदी में मेरी समाधि को अजानवृक्ष की जड़ घेरे हुए है। उसे जाकर शीघ्र निकाल डाल।)

१. पांगारकर यही शके मानते हैं। देखिए मराठी वाङ्मय या इतिहास (दुसरे खंड) पृष्ठ २३७।

२. देखिए Mysticism In Maharashtra-Page—215 और पांचसंत कवि, पृ० ११३।

में जन्म ग्रहण किया और वे बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गए। अतएव उनका लालन-पालन उनके आजा चक्रपाणि ने किया। बचपन से ही उनकी रुझान भगवान् की भक्ति की ओर थी। अतः वे बाहर से किसी भी पत्थर को उठा लाते, उसे 'देवता' कह कर घर में कहीं प्रतिष्ठित कर देते और उसके सम्मुख बैठ कर संतों का चरित्र और पुराणों का पाठ करते। यह उनका दैनिक खेल था। सामाजिक प्रथा के अनुसार उनके आजा ने उनका छठे वर्ष में यज्ञोपवीत-संस्कार कर दिया। इसी समय से उनका नियमित विद्याध्ययन प्रारम्भ हो गया। जब वे बारह वर्ष के थे तभी एक दिन ऐसा भासित हुआ कि उन्हें देवगढ़ के संत जनार्दन से दीक्षा लेनी चाहिए क्योंकि 'गुरु बिन होइ न ज्ञान', यह प्राचीन संतों का पिष्टपेषित कथन है। एकनाथ ने प्राचीन संत-वाणियों का कई बार पारायण किया था। अतः आत्मिक प्रेरणा के अनुसार वे देवगढ़ गए जहाँ उन्हें अपने गुरु से 'अनुग्रह' प्राप्त हुआ। उन्हीं के चरणों में बैठ कर उन्होंने ज्ञानदेव की 'ज्ञानेश्वरी' और 'अमृतानुव' का सविधि अध्ययन किया। ज्ञानेश्वर की कृतियों का विशेषकर ज्ञानेश्वरी का एकनाथ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। ६ वर्ष तक गुरु की सेवा में रहने के पश्चात् उन्होंने उन्हीं के आदेश से तीर्थ-यात्राएँ कीं। वे काशी में भी काफी समय तक रहे। यहीं उन्होंने हिन्दी सीखी और फारसी में अच्छी गति प्राप्त की। मराठी के प्रति तो उनकी अगाध ममता थी ही।

तीर्थ-यात्रा से लौटनेपर गुरु के आदेश से उन्होंने पैठण में जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और आध्यात्मिक जीवन-क्रम को पूर्ववत् जारी रखा। प्रवृत्ति और निवृत्ति का ऐसा सुन्दर समन्वय शायद ही किसी सन्त से साधित हुआ हो। नामदेव और तुकाराम भी गृहस्थ थे पर उनका मन कभी गृहस्थी में नहीं रमा। वे सदा उचटे-उचटे रहे। उनका झुकाव सर्वथा परमानंद की ओर रहा। पर एकनाथ ने गृहस्थाश्रम को अपने आध्यात्मिक पंथ का कंटक कभी अनुभव नहीं किया।

एकनाथ का दैनिक जीवन-क्रम अत्यन्त आदर्श कहा जाता है। वे नित्य ब्राह्म मुहूर्त में उठते, कुछ समय भगवान् के ध्यान में बिताते, फिर नदी में स्नान करने जाते, लौटने पर भागवत और गीता पढ़ते, फिर अतिथियों के साथ बैठकर दोपहर का भोजन करते। अपराह्न में भागवत और ज्ञानेश्वरी पर प्रवचन करते और रात को कीर्तन करते-करते सो जाते। यह उनके जीवन का अखंडित नियम रहा है। कहा जाता है कि गोदावरी में समाधि ग्रहण करने के पूर्व भी उन्होंने कीर्तन किया था।[१]

संतों के जीवन से जिस प्रकार चमत्कारिक घटनाएँ संबद्ध रहती हैं, उसी प्रकार एकनाथ के जीवन में भी उनका होना बतलाया जाता है :—

'श्री एकनाथ सदनीं माधवजी सर्वकाम करितो।
स्वकरें चंदन घासी, गंगेचे पाणी कावडीं भरितों।'

भगवान् एकनाथ के घर में 'काँवड़' से गंगा का पानी भरते, चंदन घिसते और सब

१. Mysticism In Maharashtra (Ranade), पृष्ठ २१६।

काम करते थे। कहा जाता है, समाधि-अवस्था में साँप फन उठाकर उनके मस्तक पर छाया करता था।

ग्रन्थ-रचना

एकनाथ के समय में संस्कृत भाषा का महत्त्व था। लोग उसे 'देववाणी' कहकर पूजते थे। पर एकनाथ को अपनी मातृभाषा से अखंड प्रेम था। वे अपनी एकनाथी भागवत में लिखते हैं—

'संस्कृत वाणी देवे केली।
प्राकृत काय चोरा पासोनि जाली ?'

(संस्कृत तो देवताओं ने निर्मित की, पर क्या प्राकृत (लोकभाषा मराठी) चोरों ने बनाई है ?) अतः संस्कृत में पाण्डित्य प्राप्त करने पर भी उन्होंने प्राकृत में अर्थात् मराठी में ग्रन्थ-रचना की। उनके प्रमुख ग्रन्थ हैं—

(१) चतुःश्लोकी भागवत, (२) श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध पर टीका, (३) भावार्थ रामायण और (४) रुक्मिणि स्वयंवर। इनके अतिरिक्त उन्होंने हस्तामलक, स्वात्मसुख, शुकाष्टक, आनन्दलहरी, चिरंजीवपद और असंख्य अभंगों, भारुड़ों तथा पदों की रचना की। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके पूर्व जहाँ मराठी वाङ्मय में एकाङ्गीपन छाया हुआ था, शांत और भक्तिरस की शीतल फुहार और लोकातीत के गहन गंभीर उद्गार मात्र थे, वहाँ एकनाथ ने भक्ति के साथ शृंगार, रौद्र, वात्सल्य, करुण, वीर आदि रसों की भी अवतारणा की। उनके भारुड़ों में तो व्यंग्य की बड़ी सुन्दर व्यंजना मिलती है। पथभ्रष्ट जनता को उसी की भाषा में, जीवन से गृहीत रूपकों द्वारा चेतावनी देने की कला उन्हें खूब सध गई थी। एकनाथ वास्तव में संत थे और लोकाभिमुख कवि भी थे। वे असामान्य बात को सामान्य ढंग से सामान्य जनता तक पहुँचाना जानते थे। यह उनका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य कहा जा सकता है। उनकी प्रमुख कृतियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

(१) चतुःश्लोकी भागवत

यह उनका प्रथम ग्रन्थ है जिसमें १०३६ ओवियाँ हैं[१]। इसकी कथा इस प्रकार है, 'एक बार जब ब्रह्मा को सृष्टि-निर्माण की चिंता हुई तब क्षीरसागर से वाणी सुन पड़ी कि 'तू तप कर—तेरी चिंता दूर होगी।' ब्रह्मा का संदेह तब भी दूर नहीं हुआ। अतः एक तेजधारी चतुर्भुज मूर्ति के उन्हें दर्शन हुए और उसने उन्हें ब्रह्मज्ञान बता दिया। यह ज्ञान ब्रह्मा से नारद मुनि और नारद मुनि से व्यास महाराज को प्राप्त हुआ। व्यास ने उसे शुक्राचार्य को प्रदान किया। शुक्राचार्य ने अपने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के द्वितीय स्कन्ध में यह ज्ञान चार श्लोकों में एकत्र कर जगत् को अर्पित कर दिया। एकनाथ ने इसी ज्ञान

---

१. **ओवी लक्षण के लिए देखिए 'महाराष्ट्र में प्रचलित छन्द और काव्यप्रकार' शीर्षक अध्याय।**

को मराठी-भाषी जनता के लिए सुलभ कर दिया। इस प्रथम कृति से एकनाथ को सन्तोष हुआ। उन्होंने इसे 'संतों की कृपा' कहकर हर्ष व्यक्त किया।

(२) श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध पर टीका

इसका प्रारम्भ प्रतिष्ठान (पैठण) में हुआ तथा इसकी समाप्ति पवित्र क्षेत्र काशी के मणिकर्णिका घाट पर हुई। कवि ने समाप्ति का समय दिया है—

'शालिवाहन शक वैभव। संख्या चौदाशे पंचाणव
श्रीमुख संवत्सराचें नांव।' (विक्रम-संवत् १६३०)

संस्कृत में रचित श्रीमद्भागवत के रस को जनसामान्य करने का श्रेय एकनाथ को ही है। दक्षिणापथ का दण्डकारण्य एकनाथ के कारण ही 'आनन्दभुवन' बन गया। श्रीकृष्ण की वाणी के आधार पर उन्होंने अपनी 'टीका' को सुबोध और सरल बनाने का प्रयत्न किया है। महाराष्ट्र में एकनाथी भागवत की बड़ी प्रतिष्ठा है, बड़ी कीर्ति है। कहा जाता है, अप्रत्यक्ष रूप से यह ज्ञानेश्वरी पर ही विस्तृत भाष्य बन गई है।

(३) रुक्मिणी स्वयंवर

यह 'नाथ' की तृतीय कृति है जिसमें अठारह अध्याय हैं और उनमें ओवियों की संख्या दो हजार है। यह पौराणिक कथा-काव्य कवि की कीर्ति के अनुरूप है। इसमें भी ब्रह्मज्ञान का रस भर रहा है। मराठी में इतना व्यापक रूपक दुर्लभ है।

(४) प्रह्लाद-चरित्र

इसमें १७६ ओवियों में प्रह्लाद का चरित्र वर्णित है।

(५) शुकाष्टक

इसमें १४४ ओवियाँ हैं।

(६) स्वात्मसुख

यह अद्वैत पर महत्त्वपूर्ण रचना है।

(७) रामायण

एकनाथ की अन्तिम अपूर्ण रचना 'रामायण' है। यह भी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह 'भावार्थ रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम पाँच काण्ड और छठे के ४४ अध्याय ही पूर्ण हो सके हैं।

इसमें राम-कथा की ओट में एकनाथ ने अपने काल की दुर्दशा का बड़ा सजीव चित्र अंकित किया है।

एकनाथ ने अपने आदर्श संत ज्ञानेश्वर की समाधि का ही नहीं, उनकी ज्ञानेश्वरी का भी जीर्णोद्धार किया। मराठी साहित्य के वे प्रथम ग्रंथ-संपादक कहे जा सकते हैं। अपने समय में प्रचलित अनेक प्रतियों का संकलन कर उनका परस्पर मिलान करने के

उपरान्त जो 'पाठ' उन्हें ज्ञानेश्वर की प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल जँचता, उसे वे स्वीकार कर निर्धारित करते थे। उन्होंने इस संबंध में लिखा है—

'ग्रन्थ पूर्वीच अतिशुद्ध
परि पाठान्तरीं शुद्धावद्ध।'

यह कार्य शके १५०६ में सम्पन्न हुआ। एकनाथ महाराज ने अनेक अभंगों में जहाँ भक्ति और नीति का अमृतपान कराया है वहाँ भारुड़ों के द्वारा समाज के पाखंडियों पर बड़ी चुभती हुई चुटकियाँ ली हैं—जो हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं में गुम्फित हैं।

आध्यात्मिक साधना के संकेत

एकनाथ ने अपने मराठी अभंगों और भागवत में आध्यात्मिक साधना के कई व्यावहारिक संकेत दिए हैं। यद्यपि एकनाथ गृहस्थ थे तो भी उन्होंने साधकों को स्त्री से दूर रहने का उपदेश दिया है। वे कहते हैं, न जाने कब कामना रूपी घृत स्त्री रूपी अग्नि के स्पर्श से पिघल जाय और साधक मार्ग ही में रह जाय (एकनाथी भागवत २७, २४१, २४४)। ज्ञानमार्ग के पथिक को भोग-वस्तुओं से विरक्त रहना चाहिए। त्याग ही श्रेयस्कर है (एकनाथी भागवत २०, ७४, ७६)। परमात्मा के प्रेम का नाम ही भक्ति है। जब साधक का मन दिन-रात भगवान् के लिए व्याकुल दिखाई दे तब समझो कि उसमें भक्ति जाग्रत हुई। जो बाहर पूजा-पाठ करता है और भीतर उसके फल पाने की कामना रखता है, वह भक्त नहीं है। जिसके हृदय में 'उसके' प्रति अगाध प्रेम है, वह दैनिक कर्म न भी करे तब भी कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि ऐसा साधक तो कर्म के परे हो जाता है। ज्ञानी से आशय वेद-पुराण के अध्येता से नहीं है, परन्तु उससे है जिसने 'ब्रह्म' का साक्षात्कार कर लिया है (एकनाथी भागवत २८, २२१, २२४)। यद्यपि सगुण-निर्गुण में एकनाथ भेद नहीं मानते तो भी तुलसी के समान वे भी निर्गुण की अपेक्षा सगुण को सहज साध्य समझते हैं। क्योंकि दृष्टिगोचर वस्तु पर मन आसानी से केन्द्रित हो सकता है। इसलिए प्रारम्भिक अवस्था में मूर्ति-पूजा उपयोगी है। जब साधक ब्रह्म की सत्ता को सब जगह देखने लगता है तब मूर्ति-पूजा की आवश्यकता नहीं रह जाती। क्रमशः साधक ऊँची भूमिका में प्रविष्ट हो जाता है (एकनाथी भागवत २७, २५१, २५२, ३७१)।

जो कनक और कांता में चित्त नहीं देता, वही परमार्थी है 'नाथ' ने काव्य या साहित्य पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं, सत्य की वाचा जहाँ फूटती है वहीं साहित्य है, कविता है। कितनी आधुनिक व्याख्या है!

सच्ची समाधि शरीर को कड़ा कर स्थिर होने में नहीं, सांसारिक कर्मों के मध्य सतत ब्रह्म की सर्वव्यापकता की अनुभूति में है (एकनाथी भागवत २, ४२३, ४३२)। इन विचारों में 'नाथ' अपने युग के प्रगतिशील विचारक के रूप में प्रकट होते हैं।

एक हिन्दी पद में कहते हैं—

'दील को हमने पछाना बे,
काय कु सोंग बताना बे।
जीदर उदर देखो भरीयो सब घटा
अल्ला अल्ला कर कर खावन मांगे मीठा।
एका जनार्दन[1] पग धरत है कहो वीठल वीठल अल्ला।'

(हमने दिल को पहचान लिया, परमात्मा यहाँ-वहाँ सर्वत्र घट-घट में समाया हुआ है। विट्ठल-विट्ठल और अल्ला-अल्ला कहने ही में सार है और ढोंग करने से क्या लाभ ?)

तात्पर्य यह कि साधक को नाम-कीर्तन के द्वारा ब्रह्म की सर्वव्यापकता का अनुभव प्राप्त करना चाहिए। यही साधना का चरम लक्ष्य है।

एकनाथ के हिन्दी-पद

अन्य मराठी सन्तों के समान एकनाथ ने भी हिन्दी में रचनाएँ की हैं जो स्फुट हैं। दक्षिण में जब उत्तर के तीर्थयात्री आते रहे होंगे तब वे स्वभावतः प्रसिद्ध संतों के दर्शनों को जाते रहे होंगे और उन्हें संतोष देने के लिए मराठी-सन्त हिन्दी में भी उपदेश देते होंगे। इसी प्रकार मराठी संतों को उत्तर-भारत की तीर्थयात्रा करते समय जनता को उपदेश देने के लिए हिन्दी में पद-रचना करनी पड़ती होगी। 'एकनाथ' तो तीन वर्ष तक मणिकर्णिका घाट पर निवास कर चुके थे। अतएव उनका हिन्दी में पद-रचना करना आश्चर्य की बात नहीं है। हिन्दी में उनकी 'गौलण', 'मुंडा', 'नानक', 'भारुड़' आदि नामक पदों की संख्या पर्याप्त है। उनकी भाषा संतों की 'अटपटी बानी'-रूप है। उसमें एकरूपता भी नहीं है। उसमें मराठी के साथ-साथ गुजराती की भी छटा है। फिर भी सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण के संत हिन्दी में उपदेश देने की परम्परा जारी रखे हुए थे, यह तथ्य तो इनके पदों से स्पष्ट हो ही जाता है। पदों में छन्द की शुद्धता की खोज भी व्यर्थ है। वे संगीत की राग-रागिनियों में बँधकर शब्दों के अशुद्ध ह्रस्व-दीर्घ-रूपों के बावजूद भी गा लिये जाते हैं। संतों को यही अभीष्ट रहा है। एक 'गौलण' की पंक्ति है—

'मैं दधी बेचन चली मथुरा,
तुम कैंव थारे नंदजी के छोरा।'

इसमें दधि के स्थान पर दधी, चली के स्थान पर 'चलि', क्यों के स्थान पर कैंव, ठाढ़े के स्थान पर थारे रूप मिलते हैं। इस प्रकार 'तुकबन्दी' का भी गठित रूप प्रायः नहीं मिलता—

'अहंकार का मोरा गरगा फोरा,
व्हाको गोरस सब ही गीरा।'

---

१. **एकनाथ अपने नाम के साथ अपने गुरु जनार्दन का नाम भी जोड़ते हैं।**

'फोरा' के साथ 'गीरा' की तुक बेतुकी-सी लगकर खटक उठती है। उनके हिन्दी पदों में ऐसी अनेक तुकें हैं। संभवतः सत्रहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में नरसी मेहता के पदों का व्यापक चलन होने से एकनाथ के हिन्दी-पदों में गुजरातीपन अधिक आ गया है। यथा—

'देखे देखे गे जशोदा माय छे।
तोरे छोरिया ने मुजे गारी देव छे।
जमुना के पानीया में ज्याव छे।
बीच भक्ति के घरीया फोड छे।'

कहीं तो 'छे' गुजराती के समान 'है' का अर्थ देता है। यथा—

'देखे देखे मोरी घागरिया लाल छे'

और कहीं 'से' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा—

'मैं कहूंगी तोरे मात छे,
माखन चुरावत अपने हाथ छे।'

यदा कदा 'छे' मराठी 'चे' के परिवर्तित रूप में भी आ गया है। यथा—

'चरण पकरु मो तुम छे।' (तुमचे)

मराठी के कई संतों ने अधिकरण 'में' के अर्थ में 'मो' का प्रयोग किया है, पर एकनाथ ने प्रथम पुरुष सर्वनाम 'में' के अर्थ में भी उसे प्रयुक्त किया है। व्रजभाषा का संबंधकारक एक वचन 'मोरे' का खूब प्रयोग है—

'तू खोरी मत कर मोरे लाल छे।'

कर्म और सम्प्रदान में 'कू' का प्रयोग सर्वत्र है—

'मेरे यह राम दाता कू शरण जा।'

(१) 'झ' का 'ज' (२) 'थ' का 'त' (३) 'ड' का 'ढ' (४) 'प' का 'फ' (५) 'भ' का 'ब' (६) 'ठ' का 'ट' (७) 'छ' का 'च' और कहीं कहीं (८) 'न' का 'ण' में परिवर्तन 'नाथ' की भाषा में सामान्य रुप से लक्षित होता है। यथा—

(१) 'मुजेगारी देव छे,'
(२) 'ज्याके (जाकर) हातेपकर छे।'
(३) 'झूटमूट चिपीच लढे।'
(४) 'संसार मो तो **फत्तर** है।' (नानक)
(५) 'बो ***बी*** लकडा ***झूटा*** है।' (नानक)
(६) 'रोहिदास चमार सब **कुच** जाणे।'

समाज के निम्न स्तर में भीख माँगने और विविध मनोरंजन करनेवाले फकीर, भाँड़, मुंडों और भारुड़ी पर एकनाथ ने खूब प्रहार किया है—

मुंडा से वे कहते हैं—

'गुरुका मुंडा बड़ा गुंडा,
चीपकी[1] कहे बात ।
सुननेवाले बेहरे
बात दिनकी करै रात ।'

मुंडों के गुंडेपन और उनकी लफ्फाजी पर कैसा प्रहार है ! 'अलख निरंजनों' पर उनकी तीखी दृष्टि गई है । वे कहते हैं—

'नाथपंथ को मुद्रा डाली, जग में सिंगी बजावत हैं,
सिंगीनाद कू औरत भूला, बो बी लडका भूटा है ।'

साधु-संन्यासियों की जिह्वा-लोलुपता पर उनका कथन है—

'सन्यास लिया आशा बढ़ाया, मीठा खाना मंगता है ।
भूल गया अल्ला का नाम यारो, ज्यम का सोटा बजता है ।'

महाराष्ट्र में महानुभावों को जनता सन्देह और उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी । उसकी झलक भी एकनाथ के पदों में है—

'मानभाव बनके माला पैने, छान कर पानी पीता है ।
आत्मज्ञान कू चोर लूटत है, बो बी सच्चा गद्धा है ।'

एकनाथ के हिन्दी-पदों में मुख्यतः गोपी-प्रसंग, परमार्थ-चेतावनी और मुंडा, फकीर आदि स्वांगधारियों पर व्यंग्योक्तियाँ और नीति-उपदेश हैं। ये व्यंग्योक्तियाँ भारुड़ (बहु रूढ़) कहलाती हैं । 'नाथ' गोपी-प्रसंग में भी आध्यात्मिक रूपक बाँधने का यत्न करते हैं । यथा—

'मैं दधि बेचन चली मथुरा, तु केंव थारे नंदजी के छोरा ।
भक्ति का आचला पकड़ा हरी, मत खेचो मोरी फाटी चुनरी ।
अहंकार का मोरा गगरा फोरा, व्हाको गोरस सब ही गोरा ।
द्वैतन की मोरी अंगिया फारी, क्या कहूं मैं नंगी नार उघारी ।'

ग्वालन जमुना में 'पानिया' भरने को जाती हैं । बीच में कृष्ण मिल जाते हैं और गागरी फोड़ देते हैं । वह उनका हाथ पकड़ती है । यहाँ तक तो लौकिक राग-रंग दिखाई देता है, पर अंत में जब 'एका जनार्दन' यह निष्कर्ष निकालते हैं कि गोपी यहाँ 'फेर जनम नहीं आवछे ।' तब सारा भाव ही परिवर्तित हो जाता है । गोपिकाएँ यशोधरा से उसके पुत्र की ऊधम की, नटखटपने की शिकायत करती हैं । बस, इससे अधिक गोपी-प्रसंग का स्पर्श एकनाथ ने नहीं किया । वे जनता से आदि पुरुष निर्गुण निराकारी 'परवर दिगार' की याद करने को कहते हैं, सन्त महन्त की याद करने को कहते हैं—श्री भगवंत की याद करने को कहते हैं । साथ ही 'वीट' (ईट) पर खड़े बिठोवा का भी स्मरण करने को कहते हैं । इस प्रकार एकनाथ में निर्गुणबोध और सगुण प्रेम का सुन्दर समन्वय दिखलाई देता है । 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा' को उन्होंने खूब

1. छिपकर

अनुभव किया है और नाम-संकीर्तन के साथ सत्संग का माहात्म्य भी उन्होंने वर्णित किया है। संत को वे गंगाजल के समान शांत और करुणा की साक्षात् मूर्ति मानते हैं। 'गुरु' के प्रति उनकी अटूट भक्ति है। वे गुरु को 'देव' मानते हैं—

'गुरु हाच माझा देव।' (गुरु ही मेरा देव है)—(एकनाथी गाथा १७१७, १२२१, २४६४, ७०)।

'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए' की प्रतिध्वनि एकनाथ की इन पंक्तियों में सुन पड़ती है —

'अल्ला रखेगा वैसा भी रहना।
मौला रखेगा वैसा भी रहना।'

क्योंकि समय एक सा नहीं जाता। जीवन में कभी सुख की छाया रहती है, कभी दुःख की धूप। नियति का ही तो यह खेल है कि :—

'कोई दिन सीर पर छता उडावै
कोई दिन सीर पर घड़ा चढ़ावै,
कोई दिन तुरंग ऊपर चढ़ावै,
कोई दिन पांव में खासा चलावे,
कोई दिन राजा बड़ा अधिकारी,
एक दिन होवे कंगाल भिकारी।'

संसार में माया का विचित्र खेल चलता रहता है। इससे छुटकारा तभी हो सकता है, जब हम 'भगवान् की याद' करें—उसकी शरण में जायें। एकनाथ के हिन्दी-पदों में काव्य की साज-सज्जा नहीं है, उपदेशों की ऊबड़-खाबड़ बहार है। कभी-कभी उपदेश देते समय वे अधिक उग्र भी हो जाते हैं। भाषा सामाजिक मर्यादा को लाँघ जाती है। वे माया और मायाग्रस्त जन पर फूहड़-अश्लील-गाली की बौछार करने में तनिक भी नहीं झिझकते। चूँकि एकनाथ फारसी के ज्ञाता थे, इसलिए उनकी हिन्दी-रचनाओं में विदेशी शब्दों की प्रचुरता है। उनके समय में महाराष्ट्र मुस्लिम सत्ता के आधिपत्य से ग्रस्त था। इसलिए बहुत से अरबी-फारसी शब्द जनता की भाषा में आ रहे थे। मराठी भाषा पर उनका प्रभाव पड़ रहा था।

एकनाथ और तुलसीदास

दोनों के जीवन में घटनाओं की प्रायः समानता हम देख चुके हैं। उनके भावों में भी समानता पाई जाती है। एकनाथ 'रामायण' में तुलसी की रामचरितमानस के साम्य भाव के उदाहरण मिलते हैं। इसका कारण यह नहीं कि एकनाथ ने मानस का पारायण किया था, वरन् यह है कि दोनों के स्रोत प्रायः एक हैं। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, योगवासिष्ठ आदि संस्कृत कृतियों से दोनों ने लाभ उठाया है। एकनाथ

और तुलसीदास के भावों में कहीं और किस रूप में साम्य है, इसके उदाहरण श्री जगमोहन लाल चतुर्वेदी ने अपनी 'एकनाथ व तुलसीदास' नामक पुस्तक में संकलित किए हैं।[१]

जिस प्रकार तुलसी ने लोक-कल्याण की भावना से लोक भाषा का आश्रय लिया, उसी प्रकार एकनाथ ने भी लोक भाषा को 'माझी मराठी भाषा चोखड़ी' कहकर गौरवान्वित किया। उनकी दृष्टि अँगरेजी-कवि की 'स्काईलार्क' के समान सर्वथा गगनोन्मुख न होकर 'वर्ड्स्वर्थ' की 'स्काईलार्क' के समान गगन और भूमंडल दोनों पर रहती थी। इसलिए उनके समाधिस्थ होने में चार सौ वर्ष बाद भी उनकी कृतियाँ जनता के हृदय को 'आनन्द-वनभुवन'[२] बनाए हुए है।

अनन्त महाराज

इनके काल के विषय में निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। इनके अप्रकाशित पद हमें औरंगाबाद से श्री भालचंद्रराव तेलंग से प्राप्त हुए हैं। हमने जब उनसे उनके जीवन के संबंध में जानकारी चाही तो उन्होंने अपने ता० २०-११-५४ के पत्र में यही लिखा कि 'अनन्त महाराज अहमदनगर के रहनेवाले थे। बाद में पैठण में आकर रहे और वहीं उन्होंने ये कविताएँ की हैं। पैठण के एकनाथ-मंदिर में उन्होंने सुंदर चित्र भी बनाए हैं। उनके जन्म-संवत् के विषय में कुछ प्राप्त नहीं हुआ। इतना ही कहा जाता है कि 'वे (संभवतः) अबसे १०० वर्ष पूर्व हुए हैं। अधिक परिचय नहीं मिलता।'

हमने जब अनन्त महाराज के हिन्दी-पदों को ध्यानपूर्वक देखना प्रारंभ किया तो हमें दो तीन स्थलों पर उनके गुरु का नामोल्लेख मिला। वे पद नीचे दिए जाते हैं—

(१) आली रिजे नहिं सांवरो जिस मेरा (मन) आज भयो बावरो
भयि मति वयरागी अनुतापें सदाचारी भेद तु रयो
सेवकारो भव भावेरी अभीमान घनी त्यजि भाव प्रेम संग तिजो
लोक लाज आंच तु रयो नेह बावरो
अनन्त मती नित्य मान ***एका जनार्दनी*** ज्यान
स्वातम सुखारथ मानि गुरु पियारो।'

(२) अघोर निज मो सोह मोह बिसारी आगमचारी
काम कु भाव नहीं निज गति आत्मनाथ जनार्दन एकाएक सही
अनंतबानी निरमल पानी शांती ठौर यही।

इस भीतरी साक्ष्य का समर्थन महाराष्ट्र सारस्वत की पुरवणी से भी हो जाता है। तुका विप्र नामक एक कवि शके १७ वीं शताब्दी में हो गए हैं। उनका जन्म-समय अर्वाचीन

---

१. देखिए एकनाथ संशोधन मंडल, पैठण-प्रकाशन

२. मराठी में इस शब्द के जन्मदाता स्वयं एकनाथ हैं।

कोशकार के अनुसार शके १६६२ है और डा० हर्षे के अनुसार शके १६५१ है। तुका विप्र का संबंध एकनाथ से जुड़ता है। नीचे उनका मातृवंश दिया जाता है—

मूल पुरुष { (१) भानुदास के पिता, (२) भानुदास, (३) चक्रपाणि, (४) सूर्य, (५) एकनाथ, (१) श्रीपति, (२) केशव, (३) गोविंद, (४) माधव, (५) यादव, (६) गोविंद, (७) अनन्त (एकनाथ के साम्प्रदायिक वारिस), (८) विट्ठल, (६) विप्रनाथ, (१०) चिमणी, (११) तुका विप्र।

इससे सिद्ध होता है कि एकनाथ के भागवत सम्प्रदायी उत्तराधिकारी उनके चचेरे घराने के भतीजे के पुत्र अनन्त बुआ थे। उन्हीं के वंश में तुका विप्र हुए हैं।[१] पैठण के एकनाथ-मंदिर में अनन्त महाराज का एकनाथ का चित्र बनाना भी उनकी एकनाथ के प्रति भक्ति प्रकट करता है।

अतएव अनन्त बुआ अथवा अनन्त महाराज का एकनाथ से 'अनुग्रह' प्राप्त होना बहुत संभव जान पड़ता है। एकनाथ का समय शके १४७० और शके १५२१ के मध्य है। अतएव अनन्त महाराज का समय एकनाथ के पश्चात् शके सोलहवीं शताब्दी माना जा सकता है।

अनन्त महाराज की विचारधारा और हिन्दी-कविता

इनकी विचारधारा ज्ञानमार्गी संतों के समान है, परन्तु उसमें भक्ति का भी पुट मिला हुआ है। ये सोते-जागते अपने 'प्रीतम' को देखते रहते हैं। फिर भी उसके विरह को अनुभव करते हैं—

है मन मोहन मन सों न्यारो भाव भगति को प्यारो
भावत है पर नजर न आवै अजर अमर गम निरधारो।
अन्दर बाहिर प्रीतम प्यारा जागत सोवत होत न न्यारा
अनन्त लागि लय निज नैनी नैन को नैन सुहावत बैनी॥

जो मनमोहन व्यापक है, वह मेरे मन में भी समाया हुआ है। मुझे अब वही भाता है। संसार की प्रीति मैं तोड़ चुका हूँ (लेखक की हस्तलिखित प्रति में पद-संख्या २४) सगुणियों की तरह ये भी गाते हैं—

मो घर मो मोहन पावना,[२] आया भाव संभावना
अब मैं हरि बिन नहीं न्यारी हूँ नहीं दुविधा भावना।

इनके मन में भी अपने श्याम से मिलने की तालाबेली जाग उठी है। कहते हैं—

मेरा मन तुम बिन सूख नहीं भावै।[३]
पूरन काम सरन धाम। (परिशिष्ट में संकलित पद-संख्या ३६)।

---

१. देखिए—महाराष्ट्र सारस्वत पुरवणी, पृष्ठ १७२।
२. पावना = पाहुना।
३. तुम्हारे बिन मेरे मन को सुख नहीं भाता।

अन्य संतों की तरह ये भी सद्‌गुरु का महत्त्व अनुभव करते हैं—

सद्‌गुरु घर का भयो गुलाम
तब से नेह सलाम।

जब से मैंने सद्‌गुरु के चरणों की सेवा स्वीकार की है तब से मैंने संसार के नेह को सलाम कर लिया है और संसार के येलम (इल्म) को भी कलम कर डाला है; क्योंकि सद्‌गुरु की कृपा हो जाने पर फिर और किसी ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

संतों के प्रति भी इनका श्रद्धाभाव है—'सातीं (साथी) संतन अन्त हटो, माया पंथ कटो।' संतों का साथ हो जाने पर माया-पंथ कट जाता है और हृदय को सान्त्वना मिलती है। ये संतों को लक्ष्य करके कहते हैं—

सुन सुन संतों बैन तुम्हारा
धन जग मो मन होत हमारा
बोध तुम्हारो अजरामर को
भावत मोको सुखकर नीको।

अनंत महाराज निवृत्ति की ओर अधिक झुके हुए प्रतीत होते हैं। कई पदों में उन्होंने इसी भाव को दोहराया है।[1] यद्यपि उन्होंने राम, गोपाल, मोहन, माधव आदि शब्दों का प्रयोग किया है तथापि ये सब अजर, अमर, निर्गुण, निरंजन के ही प्रतीक हैं। इनकी भक्ति में तालाबेली की कौंध भले ही झलक उठे, पर नामदेव या तुकाराम के समान हृदय में उथल-पुथल मचा देनेवाली बेचैनी नहीं। नामदेव और कबीर के समान इन्होंने भी आत्मा के साथ प्रियतम और प्रेयसी का कान्ताभाव व्यक्त किया है। आत्मा प्रेयसी है और परमात्मा प्रीतम है।

इनकी भाषा अपने समसामयिक संतों की अपेक्षा कुछ अधिक स्वच्छ है, जिसमें यत्र-तत्र मराठी की महक भी पाई जाती है। कहीं-कहीं शब्द-योजना भी अनुप्रास लिये हुए है—कर्णमधुर है, पर छन्दभंग पद-पद पर पाया जाता है। यथा—

बोध तुमारो अजरामर को भावत मोको सुखकर नीको।
भगति गावत प्रेम लगावत मन समुझावत आवत जावत।

और भी—

अलख निरंजन दिन जनरंजन, भव सुख भंजन विचार भंजन
अपने मन मो मो मिलवाया अनंत माया निशि बिलमाया।

(परिशिष्ट-पद-संख्या २०)

और भी—

अविनासी की प्रेम बिनासी हूँ अभिलासी नित दासी
होत न बासी प्रीत मनासी।[2]

---

१. (क) जनम मरन कुछ डर न मोर। नेह न मोरो इह जगत मो। (परिशिष्ट-पद संख्या २०)
(ख) सुध नइ पिय बुध माही न
भव मो नही रुचि प्रीति साही मों! (परिशिष्ट-पद-संख्या १४)

२. मनासी (मराठी) = मनसे

अलंकारों में अनुप्रास, यमक और विरोधाभास की अच्छी योजना है। अनुप्रास और यमक के दो उदाहरण लीजिए—

(१) नहि जन मन मो मन मोहन मन मो,
धामन मोहन है जिह तन मो। (परिशिष्ट-पद-संख्या १२)

(२) सुध बुध सबही हरि हरि मोरी,
तन धन जन की प्रीती तोरी
व्यापक सायीं सब ठोर सोही
सो मन मोहन मों मन मोही। (परिशिष्ट-पद-संख्या २७)

विरोधाभास

न्यारी न होके न्यारी मैं हूँ, न्यारी न्यारी भव न्यारी हूँ। (परिशिष्ट-पद-संख्या २१)

अनन्त महाराज ने गेय पदों के अतिरिक्त चौपाई छंद का भी प्रयोग किया है। संभवतः इस छन्द का प्रयोग करनेवाले ये प्रथम मराठी संत-कवि हैं।

श्यामसुंदर

इनका समय ठीक निश्चित नहीं हो पाया। अनुमान है कि शके १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ये रहे होंगे। इनके फुटकल मराठी में अभंग, पदादि उपलब्ध हैं। हिन्दी का भी एक पद मिला है जो नीचे दिया जाता है। पद की भाषा ब्रज और खड़ी बोल का मिश्रित रूप है। पद गेय होने से छंद की बंदिश से मुक्त है।

रामचंद्र महाराज जय जय रामचंद्र महाराज (ध्रुव पद)
द्रुपद सुताकू चीर बढ़ायो कियो भक्तन के काज,
राजा बभीखन लंका पाये बड़े गरीब नवाज।
जय जय रामचंद्र महाराज।
दैत्य कू मारके मान राखियौ, गजेन्द्र पशु की लाज
गणिका पतित उधारे, किये भक्तन के काज
जय जय रामचन्द्र महाराज।
सुदामाजी ने चुडवे दीये वाकू किये सिरताज,
नाम तुम्हारो यहि एक जानो, ताल विना पखवाज।
जय जय रामचन्द्र महाराज।
श्याम सुंदर कू तुम बिन कोउ नहीं और रघुराज।
दो कर जोरे बिनति करत हूँ,राखो मेरी लाज।
जय जय रामचन्द्र महाराज।

संत जन जसवंत

ये महाराष्ट्रीय संत रामचरितमानसकार तुलसीदास के शिष्य कहे जाते हैं। इनके संबंध में बहुत कम शोध-कार्य हुआ है। मैंने धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर में इनके हिन्दी पद तथा जीवन-संबंधी कुछ सामग्री जीर्ण-शीर्ण स्थिति में देखी है। मराठी के 'प्रसाद' मासिक-पत्र में, इन्हीं के एक सम्बन्धी ने, एक लेख प्रकाशित किया था। मैंने संतजनजसवंत के एक रिश्तेदार से जो 'शास्त्री' कहलाते हैं, भेंट भी की है। उनका कहना है कि उनके घर में नित्य तुलसी की आरती परम्परा से गाई जाती है। प्राचीन संत चरित्र-ग्रंथ, भक्त विजय और भक्तलीलामृत में इस संत के संबंध में अल्प परिचय दिया गया है। अनेक स्रोतों से जो सामग्री मुझे प्राप्त हुई है, उसीके आधार पर इनका परिचय यहाँ दिया जाता है। शिवाजी के उदय के पूर्व शके १५३० के लगभग नाशिक जिले में बागलाण प्रदेश में प्रतापशहा नामक राजपूत राजा शासनारुढ़ था। वर्तमान खानदेश, बुरहानपुर, बागलाण आदि भाग उसके अधीन थे। राजा की राजधानी मुल्हेर के पहाड़ी किले पर थी। देशस्थ शुक्ल यजुर्वेदी ब्राह्मण जनार्दन पंत इस राजा के पुरोहित थे। ये राजा को राजनैतिक मामलों में परामर्श भी देते रहते थे। जसवंत इन्हीं का पुत्र था। जसवंत का बाल्यकाल किस प्रकार व्यतीत हुआ, इसकी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। दस वर्ष के होने पर इनका विवाह कर दिया गया था। कहा जाता है कि ये प्रारंभ में कुछ समय तक तुलसीदास के समान विषयान्ध बने रहे। फिर एक घटना घटी, जिससे इनके नेत्र खुल गये। एक बार मुल्हेर के निकटवर्ती गणपतिधुर नामक गाँव में दो योगी आये। जसवंत उनकी ओर आकर्षित हुए। अपनी पत्नी से तैयार कराकर दही-भात लेकर नित्य प्रातः उनके पास जाने लगे और दोपहर का बहुत-सा समय उन्हीं की सेवा में बिताने लगे। यह क्रम वर्षों तक अखंडित रूप से चलता रहा। एक दिन जब ये नित्य क्रम के अनुसार दही-भात लेकर गणपतिधुर जा रहे थे, तब मार्ग में दो वटुक शिला पर बैठे दिखलाई दिये। उन्होंने इनसे कहा कि हम बहुत भूखे हैं, हमें यह दही-भात दे दो। जसवंत ने कहा, 'यह भात मैं साधुओं को देकर आता हूँ और घर जाकर तुम्हारे लिए ताजा भात तैयार कराकर लाता हूँ। तब तक तुम यहाँ से मत हिलना।' जब जसवंत भात लेकर साधुओं के मठ में गये तब इन्हें वहाँ साधु नहीं दिखलाई दिये। जसवंत ने उनकी बड़ी खोज की; पर उन्हें नहीं पा सके। अंत में निराश होकर अपने घर लौट पड़े। मार्ग में ये बटुकों को दही-भात देने का विचार करते जाते थे; पर जब उनके स्थान पर पहुँचे तो वे भी वहाँ से अदृश्य थे। यह दृश्य देखकर जसवंत व्याकुल हो गये। इन्हें ऐसा भासित हुआ कि वटुक के रूप में राम-लक्ष्मण ने ही दर्शन दिये थे। यह कल्पना मन में आते ही ये राम-लक्ष्मण के दर्शनों के लिए पागल हो गये। इनकी भूख-प्यास जाती रही। घर छोड़कर ये वन में चले गये और राम की खोज करने लगे। छह दिन तक इन्होंने एक गुफा में बैठकर राम की प्रार्थना की। सातवें दिन इन्हें उन्हीं वटुकों का पुनः साक्षात्कार हुआ। उन्होंने कहा कि 'पंचवटी में जाकर एकांत में पुरश्चरण करो। वहाँ रामचन्द्र के दर्शन होंगे।' जसवंत पंचवटी में जाकर रहने लगे। वहीं हरि-कीर्तन करने लगे।

वहाँ एक गुफा में जप, ध्यान आदि साधना करने लगे। जब पुरश्चरण समाप्त हुआ तब इन्हें राम के दर्शन हुए। राम ने इनसे जब वर माँगने को कहा तब इन्होंने ये पंक्तियाँ कहीं—

शेष से सुरेश से तुमेरे देखे दीन है
काबीर कनोद कर्नाटक दच्छन
चारों देश के राने मेरे लेखे तृण है ।
बैकुण्ठ तो बलाय जाय, स्वर्ग की तो पतवार नाय ।
और जब सुख छिन्न है ।
कछु कहावे न भावे न मनमो आवे ।
श्री जानकी-जीवन जल और जसवंत मीन है ।

भक्त के उपर्युक्त उद्‌गार सुनकर, कहा जाता है कि भगवान ने इन्हें यह उपदेश दिया कि 'ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और गुरु के विना ज्ञान नहीं होता। अतएव तू उत्तर में जाकर गोस्वामी तुलसीदास को अपना गुरु बना और उनसे ज्ञान प्राप्त कर।' भगवान की यह आज्ञा मानकर जसवंत मुल्हेरी लौट गये और वहीं से सकुटुम्ब काशी की ओर रवाना हो गये। मार्ग में स्थान-स्थान पर हजारों स्त्री-पुरुष जसवंत के दर्शन के लिए आते और जसवंत हिन्दी भाषा में कीर्तन कर सबको प्रसन्न करते। काशी पहुँचने पर इन्होंने विश्वनाथ-मंदिर के दर्शन और गंगास्नान करने के पश्चात् तुलसीदास से भेंट करने की तैयारी की। उस समय तुलसीदास किसी गुफा में एकांत-वास कर रहे थे और आत्म-चिंतन में अपना समय व्यतीत कर रहे थे। लोगों से विशेष नहीं मिलते थे। जसवंत के आने की बात उन्हें स्वप्न में भगवान की प्रेरणा से विदित हो गई थी। अतः जसवंत के पहुँचते ही उन्होंने इन्हें गुरु-मंत्र दिया। जसवंत ने अपने परिवार को विदा कर दिया और गुरु की सेवा में अकेले रहने लगे। कहा जाता है कि अपने गुरु तुलसीदास के साथ इन्होंने मथुरा की यात्रा की। मार्ग में दोनों गुरु-शिष्य भजन-कीर्तन करते जाते थे। मथुरा पहुँचकर जब जसवंत ने तुलसीदास से श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रार्थना की, तब तुलसीदास ने यह कहा—

मेरो नेम सुनो जसवंता
मेरो मन और नञ्रि लुभंता
राम बिना दर्सू नहिं कोई, राम बिना पर्सू नहिं कोई
फोरु नयन ओर जो दर्सू, काटूं कर ओर जो स्पर्सू।

इसपर जसवंत ने मराठी में उत्तर दिया—

'जो राम तो कृष्ण असे, यांत कांही संशय नसे।
(जो राम है वही कृष्ण है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।)
मैं आपको श्रीकृष्ण के मंदिर में ही राम के दर्शन कराऊँगा।'

ऐसा कहकर जसवंत तुलसीदास को कृष्ण-मंदिर में ले गये, जहाँ जाकर जसवंत ने यह प्रार्थना की—

मोर मुकुट नीचे धरो, (और) किरिट मुकुट धरो शीस।
धनुक बाण करमो धरो, (गुरु) तुलसी नमावत शीस॥

जसवंत की प्रार्थना स्वीकार हुई और श्रीकृष्ण और राधा ने क्रमशः श्रीराम और सीता का रूप धर कर तुलसीदासजी को दर्शन दिये। इसके पश्चात् गोकुल, वृंदावन, जगन्नाथपुरी आदि स्थानों के दर्शन कर गुरु और शिष्य अयोध्या पहुँचे जहाँ चार महीने रहकर पुनः काशी लौट गये। कुछ समय बीतने पर तुलसीदास ने इन्हें अपने घर लौट जाने की आज्ञा दी और अपने गले की माला तथा हनुमान की एक पंचधातु की बनी हुई मूर्ति भेंट की।[1] गुरु-प्रसाद लेकर जसवंत अपने घर लौट आये। मार्ग में अनेक चामत्कारिक घटनाएँ भी घटीं। जब ये मुल्हेर लौटे तो जनता ने उत्साह के साथ इनका स्वागत किया और वहाँ इनके अनेक शिष्य बन गये।

एक बार मुल्हेर के राजा प्रतापशहा ने इन्हें अपने दरबार में बुलाकर इनसे अपनी स्तुति में जब कुछ सुनना चाहा तब इन्होंने स्पष्ट कह दिया—

'नर गुण गाई खर मुख होई,
तू भूपति जैसो करे तैसो होई।'

और—

'मी तो केला राम धनी
त्या बिन वर्णी न कोणासी।'

(मैंने तो राम को अपना स्वामी बनाया है। उसके अतिरिक्त मैं किसी का वर्णन नहीं करता।)

राजा ने क्रुद्ध होकर इन्हें नजरबन्द कर दिया। थोड़े दिन के पश्चात् इन्होंने अपना जन्म-स्थान त्याग दिया और पश्चिम खानदेश में ताप्ती नदी के किनारे बोरठे नामक गाँव में जाकर बस गये। वहाँ के गूजरों ने एक राममंदिर भी बनवा दिया। वहीं संवत् १६७४ (शके १५३९) के फाल्गुन महीने की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को समाधि ले ली। इस संबंध में वहाँ निम्नलिखित दोहा प्रचलित है—

'संवत् सोलसो चौओतरा रवितनया के तीर।
फाल्गुन शुद्ध अष्टमी जसवंत त्यजे शरीर॥'

× × ×

धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता-मंदिर में जन जसवंत-संबंध सनदें हैं, उनकी नकल नीचे दी जाती है—

(१) श्री वालेर माहावीखम दूरंग महाराज अध्यराज महाराणा श्रीदूरंगबाजी बिजराज आदेशा मोजे आकलकुवो गाम दादाजी जसवंतजी ने राजे कृष्णार्पण कीधू छे जालगेवाले रनु राज रहे अम्हारा वंश महे गाम लो पोतेनीया उफेरे गधडो जाय छे।

संवत् १६५६ ज्येष्ठ शुद १३ खेड (रविवार)

(यह सनद गुजराती में है। इसमें उल्लिखित वालेर राज्य कुछ समय पूर्व बुधावल राज्य के नाम से पहिचाना जाता था। शके १७४० में यह राज्य चंद्रसिंह के आधिपत्य

---

१. यह मूर्ति अभी भी 'कुकुरमुंडी' ग्राम में जन जसवंत के वंशजों के पास है।

में था। इस सनद के द्वारा सन्त जसवंत को आकलकुवाँ ग्राम दान में दिया गया है। यह ग्राम कुकुरमुंड़ी ग्राम के पश्चिम की ओर तीन कोस के अंतर पर है। यह सनद श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर धूलिया में संग्रहित हस्तलिखित पोथी क्रमसंख्या १४४० में है।)

(२) ॥ श्रीराज आदेशा + खपशी

श्रीमाजोग्य + + वष्णुदासजी ने पूये गाम आपूछे जेगाम कोड थारो छे माटे आज पूठि हे गाम कोडनपुर पूत य बाब जे होये + नलिया जे अबाब शर्त साथे आपूछे माटे हे गाम तफत पाटन फरणीका ॥

वदे १० सं १६७६ ली

(यह सनद उपर्युक्त मंदिर की हस्तलिखित पोथी क्रम-संख्या १८४० में नत्थी है। इसमें भी संत जसवंत के पुत्र विष्णुदास को एक ग्राम दान में देने का उल्लेख है)

(३) श्री दीवान महाराजा धीरराज महाराणा श्री दुरंगबाजी पटे ऐनायत वीस्णदास तम्होने चर्ण खाल स्वस्ती वचन कारी मौ पाणीवास आपुछे चंद्रार्क लगे तुम्हे खावु देखील कुल बाब दीघु छे।

कार्तीक सुद १ सं १६७८ मु—बेज

(कुकुरमुंड़ी के तीन कोस के अंतर पर पाणीकारू नामक ग्राम है और उसीके पास बेज नामक ग्राम है। यह सनद सन्त जन जसवंत के पुत्र विष्णुदास के नाम पर है। शासक ने पाणीबारू नामक ग्राम उन्हें दान में दिया है। यह भी गुजराती भाषा में लिखी गई है।)

तीन सनदें मराठी भाषा में लिखी हुई प्राप्त हुई हैं, जो नीचे दी जाती हैं।

॥ श्री ॥

(१) वेदमूर्ति राजश्री राजभट बीन यदुपति भट हली वस्ति किले मजकूर स्वामीचे सेवेसी सेवक बालाजीराम सुभदार तालुके कुकरमुढ़े नमस्कार सु ॥ इसने आशेरमया तैनं व अलफ तुमचे संवस्थान निझरेस होते दग्यामुले किले मजकुरीं येऊन राहिला त्यांस साल गुदस्तां सरकारांतून दिल्हे देवाचे पूजा साहित्य व नैवद व तुमचा कालक्षेप चालला पाहिजे यांज करितां मौजे कोंठरज येशील जमीन सेन गोसावीवाले परतने ५ पाच धर्मार्थ सरकारातून दिल्हे आहे त्यांस कीर्द करोन उपभोगकरीत जावा सदरहू पांच परतन जमीन

+ + + +

(इस सनद में जन जसवंत के वंशज यदुपति के पुत्र रामबाबा अथवा रामभट को सूबेदार बालाजी राम द्वारा मौजा कोठरज की जमीन देवालय की व्यवस्था और पूजा-अर्चा के लिए दान में दी गई।)

(२) श्रीरामभक्त परायण राजमान्य राजश्री जन जसवन्त बालकृष्ण राम बाबा वस्ति कुकुर मुढ़े यासी उमेद लक्ष्मण पाडवी मां। कांठी मुकाम कुकुरमुढ़े परे सुलतानपुर। सु ॥

सन १२५६ फसली कारणे इनाम पत्र लिहून दिल्हे ऐसी जे तुम्हास पेशजी पासून गाव दिले होते परंतु आमचे वहिरीस आज परियंत न्होते। हाली आपणास आमचे स्व संतोषाने श्रीराम व मारूतीये आर्चन पूजन करूण आपण गाव मौजे बोरी आकलकुवा हे देवा प्रित्यर्थ धर्म केले आहे जल त्रुण झाड़ जमीन सर्व उत्पन्न कपाली सुधा तुम्हीं घेत जावी। वौष परंपरा उपभोगघेत जावा आपचे वौषांत कोन्ही या गावाबदल दावा करणार नाही तुम्ही आमचे अभिष्टचिंतन करून गाव सदरहू पुर्वि प्रमाणे जमीन असेल व गावाची सीमा असेल त्याची उत्पन्न घेत रावी (जावी) आमचे कडून वावगा उपसर्ग लागणार नाहीं हे इनामपत्र लिहून दिल्हे सही दस्तुर—पांडुरंग बलाल मु० कुकुरमुढ़े सके १७७१ सौम्यनाम संवछरे माहे पौष वा १ संवत १९०६ साल दीपावली

साद	सही
(१) मल्हार रामचंद्र गुमास्ते	सही उमदे लक्षमन
जमीदार पो। मार मु	पडवी सा कठी
कुकुरमुढे दस्तुर खुद	दसतुर खुद

(इस सनद में जन जसवंत के वंशज बालकृष्ण रामबाबा को—जिनके विषय में कहा जाता है कि ये कुकुरमुढ़ा ग्राम में बस गये थे—शके १७७१ में कांठी रियासत के उमेद लक्ष्मण पाडवी ने मंदिर की पूजा के लिए बोरीगांव का दान-पत्र लिख दिया है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि बोरठे ग्राम में जहाँ जनजसवंत रहते थे, आज भीलों की दसबीस झोपड़ियाँ ही शेष रह गई हैं। रामबाबा के समय से ही यह ग्राम उजड़ चला होगा। तभी वे कुकुरमुंडा या कुकुरमुढा आ गये होंगे। रामबाबा के पुत्र अन्याबुवा ही श्रीशंकर श्रीकृष्णदेव के अनुसार बालकृष्णबाबा कहलाते थे।)

(३) इनामपत्र श्रीरामचंद्र भक्त परायण राजमान्य राजश्री बालकृष्ण बाबा देवस्थान कुकुरमुढ़ेकर श्रीरामचंद्र शेवेसी तापर राणा भगवानसिंगजी सा। बुधावलगड वाल्हेर सु ॥ सन १२४६ कारणे धरमपत्र लिहून दिल्ही ऐसीजे श्रीरामचंद्र उछव चैत्र शु ॥९ स होतो बदल टके १८ वर्षांत संवस्थान मारीहून पावत होते ते मधे बंदजाले होते त्याजवरून हाली मौजे सामोवल ता। बुधावल येथली जमीन परतन १॥ दीड तुम्ही आपले वौष परां घेत जावी आणि राज्यास अभिष्ट चिंतन करीत जावी आमचे वंषांत कोन्ही याजविसी हरकत करणार नाही ठिके परतन १॥ खुण कमान खेडुवाल्या ने दिल्हे असे जाणिजे ६-७ माहे रवि लाखर उर्फ आषाढ़ प्रमाण शु ॥९ दुरमुख नाम संवछर मोर्तब सुद दस्तुर पांडुरंग दलाल कारकून नि ॥ राणाजी सदर—सेताची चतुःसीमा पुर्वेस लवण दक्षणेस मछपाभटचा इनाम पश्चमेस सरकारी सेत उतरेस गाव।

(अन्याबुवा को जो रामबाबा के पुत्र हैं और जो बालकृष्णबाबा कहलाते थे। राणा भगवानसिंगजी ने रामनवमीके उत्सव के निमित्त सामोअल ग्राम की डेढ़ एकड़ जमीन दान में दी थी। यह उसीका दानपत्र है।)

उपर्युक्त हस्तलिखित पोथी में जन जसवंत का वंशवृक्ष भी अंकित है, जो इस प्रकार है—
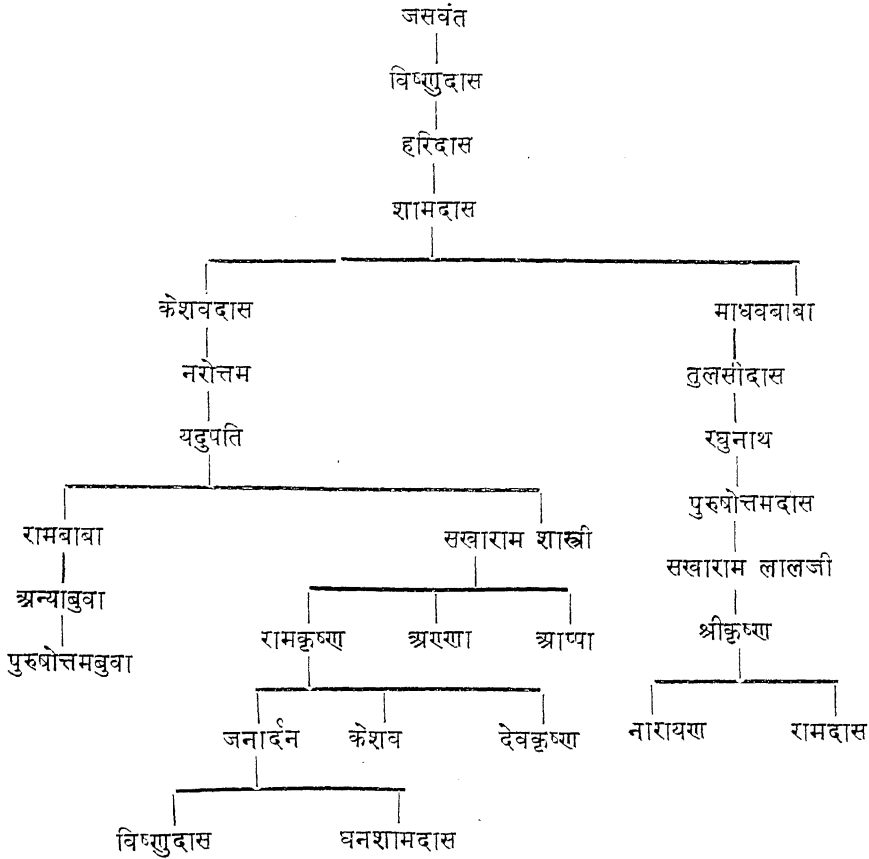
वंश-वृक्ष से यह भी सिद्ध होता है कि जन जसवंत अपने गुरु तुलसीदास के समान अपने पुत्र-पौत्रों के नाम के आगे 'दास' लगाने में गौरव अनुभव करते थे। वंश में एक का नाम 'तुलसीदास' भी रक्खा गया था।

जसवंत की हिन्दी-रचनाएँ नमूने के तौर पर नीचे दी जाती हैं—

(१)

कोई बन्दो कोई निन्दो कोई कैसो कहो रे।
रघुनाथ साथे प्रीत बाँधी होय जैसो होय रे॥ धृ०॥
कमलम्याने मोट बांधी नीर था भरपूर रे।
रामचंद्र ने कूर्म होकर राखलीनी पीठ रे॥१॥
चंद्र सूर्य जीनी जोत स्तम्भ बिन आकाश रे।
जलउ पर पाषाण तारे क्यूं न तारे दास रे॥२॥
जपत शिव सनकादि मुनिजन, नारदादिक संत रे।
जन्म जन्म के स्वामि रघुपति दास जनजसवंत रे॥३॥

(२)

साचा उपदेश देत भली भली मति देत
समता सम बुद्धि देत कुमती को हरत है।
मार्ग को दिखाव देत भाव देत भक्ति देत।
प्रेम की प्रतीत देत आभार भर भरत है॥
गुमान देत ध्यान देत, आत्म को विचार देत
ब्रह्म को बताय देत, ब्रह्ममय करत है।
मूढ़मति कहे जसवंत नहि जन कछु देत।
श्रीगुरु निशिदिनि देत की देवो ही करत है॥

(३)

धन धन धन आज को दिन। प्रकट भये स्वामी।
पूर्ण ब्रह्म प्रगट भये। सकल अंतरज्ञानी॥१॥
चैत्र मास शुद्ध नवमी। शुभग पेहर दोउ।
प्रकट भये ताही समें। रामचंद्र दोऊ॥२॥
सुवर्णश्रृंगी रोप्यखुरी अनेक धेनु आनी।
विप्र को बुलाय दिनीं। हेमतुलसी पानी॥३॥
नाम धरयो श्याम राम। शुभ निशाण बाजे।
जनजसवंत भाग्य बड़ो, बंदीजन गाजे॥४॥

राम जन्म सुनी नाचत मुनीजन। नाचत गणगंधर्व किन्नर।
नाचत धरणी नाचत शेष। नाचत उमया सहित महेश॥१॥
नाचत मघवा पुष्पहि बरखत। नाचत भानु मगमो हरखत।
नाचत विधि और नाचत ईश। नाचत अमर सहित तेतीस॥२॥
नाचे तरु बंशी दंडक बनमो। नाचत जसवंत प्रफुलित मनमो॥३॥

(४)

परम भगत हनुमान मेरो। परम भगत हनुमान॥ ध०॥
प्रतिमणि तीन्हों लोकका मोल। मानते तृणसमान॥१॥
कुटि कुटि मणि भीतर देखे। ताहां नहीं रामनिधान॥२॥
कोप कर प्रभु कपि प्रति बोले। तेरे तनमें काहां भगवान॥३॥
काढी खाली नखसुं दिखलाने। ताहां प्रगट रामनिधान॥४॥
रघुनाथ सेवक स्तुति बखाने जनजसवंत को प्राण॥५॥

जसवंत के पद खानदेश में ही नहीं, महाराष्ट्र के अन्य स्थानों में भी जनता द्वारा गाये जाते हैं। इनकी हिन्दी-रचनाएँ नीति और भक्ति-पूर्ण हैं। तुलसीदास के समान रामभक्त होने पर भी इनमें साम्प्रदायिक असहिष्णुता लेशमात्र भी नहीं है। तुलसीदास के जीवन का अध्ययन करनेवाले शोधकों ने उनके इस महाराष्ट्रीय शिष्य का कहीं उल्लेख नहीं किया। इनकी मराठी रचनाएँ कम होने के कारण मराठी के प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ महाराष्ट्र सारस्वत में भी इनका उल्लेख नहीं है। तुलसी-जीवन और साहित्य के अन्वेषण-कर्त्ताओं को इस उपेक्षित महाराष्ट्रीय संत कवि की ओर ध्यान देना चाहिए।

चौथा अध्याय

तृतीय खंड

मुसलमान-वर्चस्व के ह्रासोपरान्त (शिवाजी कालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी

तुकाराम

वारकरी संतों में ज्ञानेश्वर, नामदेव और एकनाथ के पश्चात् कालक्रम से तुकाराम की प्रतिष्ठा है। पर तुकाराम ने अपने अभंगों की अजस्र धारा से कालक्रम की रेखाओं को बहा दिया है। आज वे महाराष्ट्र के प्रत्येक गृह में अपने तीखे, परमार्थ और व्यवहार-परक अभंगों से मूर्धन्य बने हुए हैं। डा० तुलपुले ने एकनाथ को 'लोकोन्मुख कवि' कहा है[1] पर हम तुकाराम की लोकाभिमुखता को एकनाथ से भी अधिक व्यापक मानते हैं। एकनाथ में ब्राह्मणत्व की तेजस्विता और प्रखरता है; तुकाराम में सामान्य जन की नम्रता और शालीनता है। एकनाथ में संस्कृत का पाण्डित्य है। तुकाराम में प्राकृत-मराठी का भोलापन है। जनता के हृदय में अपनी सहज उक्तियों से जो स्थान तुकाराम ने प्राप्त किया है, वह कदाचित् ही किसी महाराष्ट्र-संत को प्राप्त हुआ हो। जनाबाई ने उन्हें वारकरी-मत-मन्दिर का 'कलश' कहा है और उचित ही कहा है।

जन्म और समाधि-तिथि

अत्यधिक लोकप्रियता के बावजूद भी इनकी जन्म-समाधि और दीक्षा-तिथि के संबंध में निश्चित रूप से कहना कठिन है। जन्म-स्थान देहू के संबंध में कोई मतभेद नहीं है; परन्तु जन्मकाल के संबंध में निम्नलिखित विभिन्न मत तथा उल्लेख मिलते हैं :—

(१) जनार्दन के अनुसार वे शके १५१० (ई० स० १५२८) में पैदा हुए।

(२) देहू और पंढरपुर में प्राप्त तुकोबा की वंशावली में उनका जन्म-समय शके १५२० माघ सुदी ५ गुरुवार अंकित है।

---

१. देखिए—तुकाराम (तुलपुले) पृष्ठ —१।

(३) प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाड़े ने प्राचीन वंशावली के आधार पर शके १५६० को जन्मकाल माना है।

(४) संत-चरित्रकार महिपति बोवा ने तुकोबा के प्रथम इक्कीस वर्ष की आयु का जीवनक्रम दिया है और अन्त में लिखा है कि 'पूर्वार्ध संपले एचे रीती' (इस प्रकार यहाँ पूर्वार्ध समाप्त हुआ)। महिपति ने तुकोबा की प्रयाण-तिथि शके १५७१ दी है। इस प्रकार शके १५७१ में ४२ वर्ष घटा देने पर जन्म-शके १५२६-१५३० आता है।

उपर्युक्त मतों पर विचार

१. जनार्दन ने शके १५१० को जन्म-समय निर्धारित करते हुए अपने निष्कर्ष का कोई आधार नहीं दिया। अतएव इसपर विचार करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

२. तुकाराम के जन्मस्थान देहू और पंढरपुर में प्राप्त वंशावलियों की पाण्डुलिपियों में जन्म शके १५२० अंकित है। श्री पांगारकर ने इन बहियों का परीक्षण किया है। इनके मत से ये बहियाँ ५०-७५ वर्ष से पुरानी नहीं हैं। इनमें जन्म-शके १५२० माघ सुदी ५ गुरुवार लिखा है। परंतु शके १५२० की माघ सुदी पंचमी के गुरुवार नहीं, रविवार पड़ता है और माघ बदी ५ को भी गुरुवार नहीं, सोमवार पड़ता है। अतः बहियों की तिथि निराधार है।

३. शके १५६० को राजवाड़े ने तुकाराम का जन्म-समय माना है। उनका आधार वाई के करजखोण से प्राप्त वंशावली में दिया हुआ शके है। इससे तुकोबा की आयु ८० वर्ष की होती है। पांगारकर ने इस मत का खंडन किया है और उन्होंने महिपति बोआ के चरित्र को मान्यता दी है; जिसके अनुसार तुकोबा की आयु बयालीस वर्ष की निर्धारित होती है। कहा जाता है कि तुकोबा की समाधि के समय उनकी पत्नी जीजाई गर्भवती थीं। पांगारकर कहते हैं[1] कि राजवाड़े के मतानुसार यदि तुकोबा अस्सी वर्ष के थे तो जीजाई ७५-७६ वर्ष की अवश्य रही होंगी। इतनी बड़ी आयु में स्त्री पुत्रोत्पत्ति के योग्य नहीं रह जाती। महिपति ने 'भक्त लीलामृत' के अध्याय अठारहवें में तुकोबा की इक्कीस वर्ष की आयु में पड़नेवाले अकाल का वर्णन किया है। महाराष्ट्र में इतना भयंकर अकाल कभी नहीं पड़ा। यह ऐतिहासिक घटना है। अब्दुल हमीद लाहौरी ने जो तुकोबा का समकालीन था, शाहजहाँ के प्रथम बीस वर्ष के कार्यकाल का इतिहास लिखा है। उसमें उसने सन् १६३० में दक्षिण प्रान्त और गुजरात के भीषण अकाल का हृदयद्रावक वर्णन किया है। पूना गजेटियर भाग ३ पृष्ठ ४०३ में भी इसका उल्लेख है। इसी अकाल में तुकोबा की एक पत्नी 'अन्न, अन्न' चिल्लाती हुई परलोकगामिनी हुई।[2] इससे महिपति

१. **देखिए—श्री तुकाराम चरित (पृष्ठ ३४)।**

२. **'दुकाळे आटिलें द्रव्य, नेला मान, स्त्री एकी अन्न अन्न करितां मेली।' तुकाराम का एक अभंग**

चरित्र और तुकोबा की आत्मकथा की कड़ी जुड़ जाती है। महिपति ने तुकोबा के शिष्य होने के नाते अपने गुरु की जीवन-गाथा को सावधानी से ही लिखा होगा।

तुकोबा के गुरु और उनके उपदेश-ग्रहण का समय

तुकोबा की शिष्या बहिणाबाई ने अपने गुरु की परम्परा इस प्रकार दी है—

आदिनाथ—मच्छेंद्रनाथ—गोरखनाथ—गहिनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञानेश्वरनाथ—सच्चिदानंदबाबा—विश्वेश्वर—राघवचैतन्य—केशवचैतन्य—बाबाजी—तुकोबा—बहिणाबाई

पांगारकर ने शिउर से प्राप्त कागजों से नीलोबा की गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—

महाविष्णु—हंस—नारद—व्यास—राघव—चैतन्य – केशव चैतन्य—तुकोबा—नीलोबा।

नीलोबा और बहिणाबाई दोनों तुकोबा के शिष्य हैं। दोनों एक ही गाँव में रहते थे। परंतु दोनों ने अपनी गुरु-परम्परा में भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। बहिणाबाई की परम्परा नाथ गुरुओं से प्रारम्भ होती है और नीलोबा की चैतन्य सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा को लेकर चलती है। फिर भी राघव और केशव चैतन्य दोनों में समान हैं। बहिणाबाई ने तुकोबा के गुरु का नाम 'बाबा' बतलाया है। इसमें संदेह नहीं कि तुकोबा के गुरु बाबाजी चैतन्य हैं और इन्होंने स्वप्न में 'राम कृष्ण हरी' का उन्हें मंत्र दिया। संत अहंकार से बचने के लिए गुरु को स्वीकारते हैं। कबीर ने रामानंद को उनके जाने विना ही 'गुरु' मान लिया था। इसी प्रकार तुकोबा ने स्वप्न में ही बाबा चैतन्य से मंत्र की दीक्षा ले ली। ये 'बाबा' कौन थे? इस संबंध में 'चैतन्य-कथा-कल्पतरु' नामक ओवीबद्ध ग्रन्थ में लिखा गया है। इसके रचयिता कोई निरंजन बुवा कहे जाते हैं। शके १७०६ में इसकी रचना बतलाई जाती है; पर इसे बहुत प्रामाणिक नहीं माना गया।[1]

'बाबा चैतन्य' और 'बाबा' दो व्यक्ति हैं अथवा एक, इस सम्बन्ध में भी विवाद है। तुकोबा का एक मराठी अभंग है :—

> "सद्गुरुरायें कृपा मज केली।
> राघव चैतन्य केशव। सांगीतली खूण मालिकेंची।
> बाबाजी आपुले सांगितले नाम।
> मंत्र दिला रामकृष्ण हरी।"[2]

इस अभंग से गुरु का नाम 'बाबाजी' जाना जा सकता है और बाबाजी को केशव चैतन्य से भी जोड़ा जा सकता है। निरंजन रघुनाथकृत 'चैतन्य विजय' के अध्याय ३ ओवी ११४ में लिखा है........

> "सर्व जण म्हणती केशव चैतन्य
> भाविक म्हणती बाबा चैतन्य, दोन्हीं नामें एकची जाण।"

---

१. देखिए—शं० गो० तुलपुले कृत 'पांच संत कवि', पृष्ठ—३०३।

२. सदगुरु ने मुझपर कृपा की और उन्होंने गुरुवंश-परंपरा राघव चैतन्य केशव द्वारा अभिज्ञेय बताई। अपना नाम बाबाजी बतलाया तथा 'राम कृष्ण हरी' मंत्र दिया।

(सब लोग केशव चैतन्य बोलते हैं, भावुक कहते हैं बाबा चैतन्य। दोनों एक ही के नाम जानो।)

रामकृष्ण गणेश हर्षे लिखते हैं, "केशव चैतन्य के पूर्वाश्रम का नाम विश्वनाथ बाबा राजर्षि था और सब उन्हें बाबाजी कहते थे। 'राजर्षि'-परिवार से जो लेख सामग्री मिली है, उसमें यह बात उल्लिखित है। अतः इस विवाद को समाप्त समझना चाहिए।"[1]

सारांश यह कि तुकोबा के अभंग में 'बाबाजी' से आशय केशव चैतन्य से जान पड़ता है। भावुक होने के नाते उन्होंने अपने गुरु को 'बाबाजी' से ही संबोधित किया होगा। ऐसा अनुमान है कि तुकोबा ने माघ सुदी १० शके १५५४ को गुरु से उपदेशग्रहण किया।

प्रयाण-तिथि

इस संबंध में भी निम्नलिखित मत हैं—

(१) शके १५७२ फाल्गुन बदी २ दिन सोमवार को तुकोबा ने सदेह बैकुंठ प्रयाण किया। यह लेख तुकोबा के अभंग-लेखक संताजी जगनाड़े के पुत्र बालाजी जगनाड़े के हाथ से अंकित है जो तलेगाँव में आज भी विद्यमान है।

(२) शके १५७१ फाल्गुन बदी सोमवार का प्रयाण-समय देहू में देहूकर की पूजा की, एक बही में लिखा है।

(३) भक्तलीलामृत में महिपति ने यही समय अर्थात् १५७१ फाल्गुन बदी २ सोमवार दिया है। (इसी समय को बहुमान्यता प्राप्त है।)

(४) इतिहासकार राजवाड़े ने शके १५७०, फाल्गुन बदी द्वितीया सोमवार को प्रयाण-काल माना है।

निष्कर्ष

फाल्गुन बदी द्वितीया सभी लेखों में समान है। बारकरी-सम्प्रदाय में इसी तिथि को तुकोबा की प्रयाण-तिथि का उत्सव मनाया जाता है। अतः फाल्गुन बदी द्वितीया एक प्रकार से निर्णायक तिथि है। पर यह फाल्गुन बदी द्वितीया किस शके की है?

शके के संबंध में तीन मत हैं। (१) १५७०, (२) १५७१ और (३) १५७२।

आश्चर्य यह है कि इसमें से किसी भी वर्ष की फाल्गुन बदी द्वितीया को सोमवार नहीं पड़ता। पांगारकर ने १५७१ फाल्गुन बदी २ शनिवार प्रातःकाल को तुकोबा का प्रयाण-दिन माना है और इसे ही बहुमान्यता प्राप्त है।

तुकोबा की जीवन-घटनाएँ

तुकोबा ने एक अभंग में अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कर दिया है। अतएव उनपर विवाद उठने का कोई कारण नहीं रह जाता। वे कहते हैं—"मेरा जन्म

---

१. तुकाराम, पृष्ठ ३४-३६।

शूद्रवंश में हुआ। मैंने वंश-परम्परा से चले आये हुए व्यवसाय को ग्रहण किया। संसार में मैंने बहुत दुःख झेला। माता पिता का देहान्त हो गया, अकाल पड़ा, पास का पैसा चला गया, पत्नी अन्न-अन्न चिल्लाकर मृत्यु को प्राप्त हुई। दैन्यावस्था से मुझे लज्जित होना पड़ा। व्यापार में घाटा ही होता था। देहू ग्राम का मंदिर जीर्ण हो गया था, उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए था। पहले अध्ययन की ओर मेरी रुचि नहीं होती थी। बाद में एकादशी उपवास और कीर्तन करने लगा। श्रद्धा-विश्वास से संतों की रचनाएँ पढ़ने लगा। कहीं कोई कीर्तनकार जब खड़े होकर गाने लगता था तब मैं उसका साथ देने को तत्पर हो जाता। सब लाज शर्म छोड़कर मैं संतों के चरणों का 'तीर्थ' लेने लगा। कष्ट उठाकर मुझसे जितना परोपकार हो सकता था, करने लगा। संबंधियों की बातों पर मैंने ध्यान नहीं दिया। सत्य और असत्य का निर्णय अन्तःकरण की प्रवृत्ति से करने लगा। बहुमत को मैंने बहुत मान नहीं दिया। स्वप्न में गुरु ने जो मंत्र दिया, उसीका दृढ़ विश्वास से 'स्मरण' करता रहा। पांडुरंग के चरणों में मन के जम जाने पर मैंने कुछ काव्य-रचना भी की। मैं शूद्र हूँ। अतएव संस्कृत का ज्ञान प्राकृत (मराठी) में कहता हूँ। इसलिए कुछ लोगों ने मेरा विरोध भी किया। इससे मुझे उदासीनता ने आ घेरा। लोगों ने मेरी कविताओं की बहियाँ (पोथियाँ) इन्द्रायणी नदी में फेंक दीं। मैं नदी के किनारे बैठा रहा। पांडुरंग ने उन बहियों का रक्षण कर मेरा 'समाधान' किया और भी बहुत सी बातें हैं। यदि मैं उन्हें विस्तार से कहने लगूँ, तो विलम्ब हो जायगा। बस, आज की स्थिति ऐसी है। कल क्या होगा, यह देव (भगवान) जानें। नारायण अपने भक्त की उपेक्षा नहीं करता। वह कृपालु है। इस संबंध में मेरा विश्वास हो चुका है।"
(मराठी अभंग का रूपांतर)[1]

उपर्युक्त अभंग में जीवन-धारा का स्पष्ट संकेत है ; पर विस्तार नहीं है। तुकोबा की वंश-परम्परा इस प्रकार है—
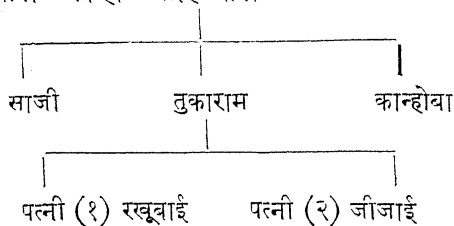
उनके परिवार में धार्मिक भावना प्रारम्भ से रही है। जब उनके बड़े और छोटे भाई तीर्थाटन पर चले गये, तब गृह-कार्य-भार उन्हीं पर आ पड़ा। चार वर्ष तक कार्य ठीक तरह चलता रहा। फिर धन-जन-हानि का ताँता सा बँध गया। प्रथम पत्नी की मृत्यु, पुत्र की मृत्यु, दूसरी पत्नी का कर्कश स्वभाव, इन सबने तुकोबा को विरक्त कर दिया।

---

१. देखिए—संतश्रेष्ठ तुकाराम (आजगांवकर) पृष्ठ १ और २।

उन्होंने 'घर गिरस्ती' का कार्य कान्होबा पर छोड़ अपना समय विट्ठल-कीर्तन में बिताना आरम्भ कर दिया और एकादशी व्रत, कथा-कीर्तन, सत्संग, परोपकार—ये चार आधारसूत्र ग्रहण कर लिये। तुकोबा के अभंग-गान से ग्राम के भट्ट रामेश्वर झुँझला उठे। उन्होंने उन्हें देहू छोड़ देने को कहा और अभंग गाने को भी मना कर दिया। 'तुका' ने ब्राह्मण देवता को प्रसन्न करने के लिए अपने अभंग इन्द्रायणी नदी में बहा दिये। तुकोबा बिठोबा के मंदिर में १३ दिन और १३ रात भूखे पड़े रहे। भगवान ने बालरूप में दर्शन दे उन्हें अभंग गाने का आदेश दिया। रामेश्वर भट्ट का शरीर जलने लगा। ज्ञानेश्वर ने उसे स्वप्न देकर कहा कि तुम तुकोबा से क्षमा माँगो। उसने यही किया। यही ब्राह्मण शूद्र संत तुकोबा का पहला शिष्य बना। तुकोबा के शिष्यों में संताजी तेली, गबर सेठ, शिवबा कसार, रामेश्वर शाक्त, बहिणाबाई आदि विविध जाति और मत के व्यक्ति थे। कहा जाता है कि तुकोबा के कीर्तन सुनने के लिए शिवाजी भी आया करते थे। किंवदन्ती है कि शिवाजी पर तुकोबा के अभंगों का इतना प्रभाव पड़ा कि वे 'स्वराज्य'-कार्य से विरक्त से रहने लगे। राजमाता जिजाबाई ने तुकोबा से जब यह बात कही तब उन्होंने एक कीर्तन में शिवाजी को वर्णाश्रम-धर्मपालन का उपदेश दिया। इससे शिवाजी को कर्तव्य-बोध हुआ। इस आख्यायिका में सत्यांश कितना है, यह जानना कठिन है। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, पर अनुमान है कि श्रद्धालु शिवाजी जहाँ रामदास जैसे संत की पूजा करते थे, वहाँ अपने निकट रहनेवाले प्रसिद्ध भक्त तुकोबा के दर्शन न करें, यह संभव नहीं है। रामदास और तुकोबा की भेंट पंढरपुर में १५६६ और १५७१ के बीच में कभी हुई होगी, ऐसा अनुमान है।[1]

तुकाराम की रचनाएँ

तुकाराम विशेष पढ़े-लिखे न थे; पर उन्होंने ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवत का खूब पाठ किया था। पुराणों की आख्यायिकाएँ भी संभवतः हरि-कीर्तनों में सुनी होंगी। उत्तर और दक्षिण बीजापुर में मुसलमानी राज्य होने के कारण तत्कालीन हिन्दुई अथवा हिन्दी भाषा से भी उनका परिचय था। ये सारे तथ्य उनके अभंगों और पदों से ज्ञात होते हैं।

अनुमान है कि तुकोबा को शके १५४६ के लगभग काव्यस्फूर्ति हुई होगी और तबसे पच्चीस वर्ष तक उनके मुख से अभंगों का अखंड स्रोत झरता रहा है। कहा जाता है, लगभग पाँच हजार अभंग उन्होंने रचे होंगे। उनके एक अभंग में यह आया है कि नामदेव ने उन्हें स्वप्न में उनके सात करोड़ अभंगों के संकल्पों को पूरा करने का उपदेश दिया।[2] विष्णु चिपलूणकर तुकोबा के अभंगों की संख्या ४०१,३४००० बतलाते हैं। उनका आधार यह अभंग है—

> "चार कोटि एक लक्षाचा शेवट। चौतीस सहस्र स्पष्ट सांगितले।
> सांगितले तुका कथोनिया, गेला बारह अभंग सोडू नका॥"

---

१. देखिए—तुकाराम (हर्षे) पृष्ठ ११ से ११।

२. ,, वही ,, ,,

पर आज जो अभंग प्राप्त हैं, उनकी संख्या लगभग पाँच हजार हैं। काशीनाथ मराठे और नेल्सन फ्रेजर ने तीन भागों में तुकोबा के अभंग प्रकाशित किये हैं।

इस समय तुकोबा की तीन गाथाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं। पहली गाथा सरकारी सहायता से शंकर पांडुरंग पंडित ने तैयार की है जो 'इंदु प्रकाश' संस्करण के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरी गाथा बारकरी-संप्रदाय के आचार्य विष्णु बोवा ने ई० स० १६०६ में सम्पादित की। तीसरी गाथा वि० ल० भावे ने ई० स० १६२० में 'तुकारामाची अस्सल गाथा' के नाम से प्रकाशित की। यह तुकोबाजी के शिष्य संताजी जगनाड़े के हाथ की लिखी 'बहियों' के आधार पर है। इसकी मराठी भी शिवकालीन है और उसमें ग्राम-भाषा का पुट भी है। प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाड़े ने इस संस्करण को प्रामाणिक माना है।

कई अभंगों में 'तुकाह्मणे' पद आये हैं। तो क्या ये सब पद तुकोबा के ही हैं? 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' 'मीरा कहे' आदि टेक के कई हिन्दी-पद और साखी प्रचलित हैं; पर वे सभी कबीर और मीरा के नहीं हैं। इसी तरह 'तुकाह्मणे' सहित कई अभंग भी क्षेपक हो सकते हैं।

तुका के अभंगों का क्रम निश्चित करना भी कठिन है। पर विशेषज्ञों का अनुमान है कि बिठोबा के बालक्रीड़ा संबंधी अभंग उनकी प्रथम रचनाएँ हो सकती हैं। ये रचनाएँ आरती, अभंग, पद, ओवी, और श्लोक में हैं। पर उनके अभंग ही प्रधान है। तुका के अभंगों में बारकरी सम्प्रदाय की छाप होने पर भी उनमें कवित्व की कमी नहीं है। वे आत्म-परक हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—

'तुका म्हणे मनासी संवाद
आपुलाचि वाद आपणास।'

(तुका तो अपने मन से बातें करता है। उसके अभंगों में स्वयं से किया गया स्वयं ही का वाद है।) उनकी वाणी में बड़ा लोच है, वह प्रसंगानुसार कोमल और परुष बन जाती है। सूत्र-रूप में जो उपदेश पिरोये जाते हैं, वे बड़े प्रभावोत्पादक होते हैं।

तुकोबा के रूपक भी प्रसिद्ध हैं—'आपुलें मरण पाहिले म्यां डोला' (मैंने अपनी आँखों ही अपनी मृत्यु देखी।) नामक अभंग महाराष्ट्र भर में प्रसिद्ध है। कितना भाव-व्यंजक है!

मैंने अपने सांसारिक जीवन को समाप्त कर दिया है, इसे विशेषोक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है। हरिदासों के कीर्तन तुकोबा के अभंगों के विना पूरे होते ही नहीं। तुकोबा के

---

१. किंवदन्ती है कि नामदेव ने सौ करोड़ अभंग लिखने की प्रतिज्ञा की थी। वे अपने जीवनकाल में ९६ करोड़ अभंग ही रच सके। शेष चार करोड़ नामदेव के अवतार कहे जानेवाले तुकोबा ने पूरे किये। लोग संतों के चरित्रों को अतिशयोक्ति से रंजित कर देते हैं। हो सकता है कि नामदेव और तुकाराम ने प्राप्त अभंगों की अपेक्षा अधिक अभंग भी रचे हों; पर काल के कठोर आघात से वे नष्ट हो गये हों।

अभंगों की भाषा घरेलू है—देहाती है। अभंगों का विषयवार इस प्रकार विभाजन किया गया है—(१) आत्मचरित्रात्मक-आत्मपरीक्षक, (२) आत्म निवेदनात्मक, (३) उपदेशात्मक, (४) संतचरित्रवर्णनात्मक, (५) पौराणिक कथात्मक, (६) पांडुरंग स्तुतिपरक, (७) पंढरपुर स्तुतिपरक और (८) विविध।

तुकोबा के उपदेश

तुकोबा के उपदेशों में कहीं-कहीं विरोधी कथन मिलते हैं। कहीं मूर्तिपूजा का निषेध है, कहीं समर्थन। वर्ण-व्यवस्था के प्रति उनमें द्वेष नहीं है। अभक्त ब्राह्मण का वे मुँह अवश्य जलाना चाहते हैं; पर ब्राह्मण जाति के प्रति उनका मन आदर से भरा हुआ था। वे जग को 'विष्णुमय' समझकर भेदाभेद को 'अमंगल' मानते थे। ढोंगी कथाकार, मलंग, फकीर, नकली संत और कवियों पर उन्होंने गहरा कटाक्ष किया है। साथ ही कबीर, और तुलसी के समान शाक्तों पर उनकी भी वक्र दृष्टि पड़ी है। भक्तिविहीन पांडित्य उन्हें दंभ जान पड़ता था। (वह ज्ञान, वह चतुराई जल जाय जो विठ्ठल के चरणों में अनुराग नहीं पैदा करती।)[1]

तुकोबा के वचनों में तीखापन—जो कभी-कभी गाली की सीमा पर पहुँच जाता था—अधिक है। इस संबंध में उनकी उक्ति है—

'तुम्हारा हित हो, इसलिए मैं तीखे वचन बोलता हूँ। कड़वे काढे से ही ज्वर उतरता है।'

तुकोबा भी भाग्यवादी है। तुलसी के समान वे भी कहते हैं—

> 'ठेविले अनंते तैसेहि रहावें।
> चित्तीं असों द्यावें समाधान।'[2]

(अनंत (भगवान) जैसे रखे, वैसे ही रहो। चित्त में इसी तरह संतोष रखना चाहिए।) उन्होंने संसार त्यागने का कहीं उपदेश नहीं दिया। वे कहते हैं, काल सर पर सवार है। नाशवान देह नष्ट होनेवाली है। इसका प्रतिपल विचार करो और परमार्थ करते रहो। संसार को बाहर से नहीं, भीतर से त्यागो।

तुकोबा ने एक बात मज़े की कही है। उन्होंने सत्संग करने को तो कहा है; पर संतों के साथ अधिक सहवास में रहने का निषेध किया है। क्योंकि ज्यादा साथ रहने से उनका कोई-न-कोई दोष साथ लग जायगा। दोष से छुटकारा पाना कठिन हो जायगा। अतः संतों को दूर से नमस्कार करना चाहिए। वे 'नाम'-स्मरण को मोक्ष से भी श्रेष्ठ मानते हैं। कीर्त्तन को लोकोद्धार का साधन मानते हैं; क्योंकि उसमें देवता, भक्त और नाम तीनों का 'त्रिवेणी-संगम' होता है।

---

१. **जळो ते जाणीव जळो ते शहाणी**
राहो मात्र भाव विठ्ठल पायीं ॥—तुकाराम

२. **जाहि बिधि राखे राम ताहि बिधि रहिए ॥—तुलसी**

तुकोबा के हिन्दी-पद

सारांश यह कि वारकरी सम्प्रदाय के सिद्धांतों के अनुरूप ही तुकोबा ने उपदेश दिये हैं। ज्ञानेश्वर, एकनाथ और तुकोबा के उपदेशों में समानता है। क्योंकि तुकोबा के उपदेश, ज्ञानेश्वर और एकनाथ के ग्रंथों के ही सूत्ररूप हैं ; पर उनमें तुकोबा का व्यक्तित्व पृथक् से चमक उठा है। तुकोबा की विचार-धारा पर उत्तर भारतीय संतों की भी छाप है। कबीर का प्रभाव तो बहुत ही स्पष्ट है। तुकोबा के युग में महाराष्ट्र में कबीर के दोहा-साखी बहुत प्रचलित हो गये थे।

महाराष्ट्रीय अन्य संतों की भाँति तुकोबा ने हिन्दी में भी रचनाएँ की हैं। ये रचनाएँ विषय की दृष्टि से निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं—

(१) गोपी-प्रेम, (२) पाखंड-उद्घाटन, (३) नीति और भक्ति-उपदेश।

गोपी-प्रेम के अन्तर्गत उनकी वे रचनाएँ आती हैं जो मराठी काव्य में 'गौलण' के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया जाता है। यथा—

'हरि बिन रहिया न जाए जिहिरा
कब की थाडी देखे राहा।
क्या मेरे लाल कवन चुकी भई
क्या मोहि पासिती बेर लगाई।
कोई सखी हरि जावे बुलवान,
बारहि डारूँ उस पर ये तन।
तुका प्रभु कब देख पाऊँ
पासी आऊँ फेर न जाऊँ।

गोपियाँ गोरस बेचने 'हाट' में जाती हैं। मनमोहन आँखों में झलक जाते हैं। बेचारी, सब कुछ 'बिसर' जाती हैं। जहाँ पग रखती हैं, जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं मूरत खड़ी दिखाई देती है। वे चकित हो जाती हैं; परन्तु 'मन का धोका' भाग जाता है। 'तुका' की 'गौलण' का यही सात्विक प्रेमभाव है। उनमें वृन्दावन की कुंज गलियों के लता—वितानों में श्लथ विहार की कहीं भी झलक नहीं है।

समाज में 'दरवेश', मलंग आदि फकीर और भगवाधारी साधु भोली जनता को ठगते थे और आज भी ठगते हैं। उन्हें लक्ष्य कर जो पद कहे गये हैं, वे 'पाखंड उद्घाटन' के अन्तर्गत आते हैं। जब तक मन में भगवान नहीं आ पाये हैं, तबतक 'भगवा' धारण करने से क्या लाभ ?[1]

---

१. **'तुका बस्तर (वस्त्र) बीचारा क्या करे,**
ज्या को चीत भगवान होय।'

(अस्सल गाथा, पृष्ठ—१५१)

'सच्चा' 'दरवेश' वही है जो नर को बूझे ।[१] अर्थात् जो मानव को पहचाने । यहाँ मानववाद की कितनी सहज अभिव्यक्ति है ! इसी प्रकार जबतक 'ईछा' (इच्छा) नहीं मरी, 'लड़के, जोरू, कुटुम्ब' छोड़कर सिर मुड़ाने से क्या लाभ है ?[२]

बाज़ारों में शरीर को कष्ट देनेवाले 'सिरफोड़' फकीर और साधुओं पर भी 'तुका' ने व्यंग्य वर्षा की है—

तू तन भंजाता है, शरीर को कष्ट देता है, सिर काटता है, मूड़ कूटता है, तेरे ऐसे कृत्यों से लोग डरते हैं । पर क्या तूने एक बार भी हृदय से 'अल्ला' कहा है ?[३] आँख खोलकर विश्व को देखा है ? उसे पहचाना है ? अल्ला को एक बार 'हाक' (पुकार) दे ।[४]

तृतीय श्रेणी में तुका के वे पद आते हैं जो नीतिपरक और भक्तिपरक हैं । वे कामनाओं को नष्ट करने का उपदेश देते हैं—

'तुका ईछा मिट गई तो काहा करे जट षाक'

(यदि कामनाएँ मिट गई हैं तो फिर जटा बढ़ाने और शरीर पर भस्म रमाने की क्या आवश्यकता है ?) जिसमें मन से मन मिलता है वही 'भला' है ।

ऊपर-ऊपर (का मिलना) तो माटी (शरीर) का घर्षण ही हुआ । उसमें स्नेह की क्या बड़ाई है ?—

'तुका मीलना तो भला मन सु मन मील जाये,
उपर-उपर माटी घषणी नेह की कौन बराई ।'[५]

तुकाराम संग उन्हीं का करना चाहते हैं जिनसे सुख दूना होता है—

'तुका संग तीन्हसुं करीये जीनथे सुष दुनाये ।'
दुर्जन तेरा सुष काला थीता प्रेम घटाय ।'[६]

'तुका' सन्तों के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हैं । वे कहते हैं—

ज्याका चीत लागा मेर राम को नाम ।
कहे तुका मेरा चीत लागा त्याके पांउ ।

---

१. 'जिकिर करो अल्ला की बाबा, सबत्यां अंदर भेस,
कहे तुका जो नर बुझे, सोहि भया दरवेस ।' (संत तुकाराम पृ० ११६) ।

२. 'तुका कुटुम्ब छोरे लड़के जोरु सीर मुड़ाये'
जब ये ईछा नहीं मुई, तब तु कीया काये । (अ. गा. पृ० १५२) ।

३. संत तुकाराम पृ० २२० ।

४. अस्सल गाथा पृ० १५२ ।

५. वही पृ० १५३ ।

६. वही पृष्ठ १५३ ।

७. वही पृष्ठ १५३ ।

(जिनका चित्त मेरे राम के नाम के साथ लगा हुआ है, उन्हीं के चरणों में मेरा चित्त लगा है।) वे इसी भाव को दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हैं—

'मेरे राम को नाम ज्यो लेवे वारंवार।
त्याके पाउं मौ तन के पैज्यार।'[१]

वे मनुष्य के 'तन' की जात-पाँत की परवा नहीं करते। वह चाहे 'धेड़ चंभार' कोई भी हो, यदि राम-भक्त है तो वंदनीय है।[२]

संसार में परोपकार ही करना चाहिए। जो व्यक्ति केवल आत्मसाधनारत है, उसके प्रति 'तुका' की सहानुभूति है। वे कहते हैं, प्रकृति भी परोपकार में रत रहती है। भूमि 'भार' क्यों ढोती है ? दुधारू गाय अपना दूध कभी चखती है ? मेघ बरसता है, वृक्ष फलता है। चाँद सूरज क्यों 'फेरे' देते हैं ? वे क्षणभर भी विश्राम नहीं लेते। पारस स्पर्श देकर धातु को कंचन क्यों बनाता है ? यह सब परोपकार के लिए ही न ?[३]

तुका तो अपनी मृत्यु को अपनी आँखों से देखनेवाले साधक हैं। जिससे संसार डरता है, वही उन्हें मीठी लगती है ; क्योंकि उसी के द्वार से वे अपने 'जीवनप्यारे ठाकुर' के चरणों में पहुँचने की आशा रखते हैं—

'कब मरूँ पाउं चरन तुम्हारे,
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे।
जेग डरे ज्याकु सो मोही मीठा,
मणि उर अनंद माही पैठा।' (अ. गा. पृष्ठ १५१)

तुका के चित्त में राम ने किस प्रकार घर कर लिया है, उसका अनुभव लीजिए—

'लोभी के चीत धन बैठा,
कामीन के चीत काम।
माता के चीत पुत बैठा,
तुका के चीत राम।'[४]

उसीसे वे और किसी से 'काज' न रख 'राम-राम' ही कहना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि एक बार 'उससे' अन्तर में मिलन हो जाता है तब दुनियादारी के घर में कोई भी पीछे लौट नहीं सकता।[५]

---

१. अस्सलगाथा पृष्ठ १५३।
२. वही पृष्ठ १५३।
३. आप तरे त्याकी कोण बराई, आउरण कुं भलो नाव धराही।
काहे भूमि येतना भार राखे, दुभत धेनु नहीं दुध चाखे॥
बरसत मेघ फलत है बीरख, कोण काम आपणी उम्होती रीखा॥
काहे चंदा सुरीज पावे फेरा, बीन येक बैठ नहीं-नहीं पावत छोरा।
(अ. गा. पृष्ठ १५३)
४. वही पृष्ठ १५५।
५. वही पृष्ठ १५४।

संसार में कोई किसी का नहीं है, सब मायाजाल है—

'कवण की काया, कवण की माया'
येक राम बीन, सब ही जाया।'

यद्यपि मराठी अभंगों में 'तुका' के हृदय की 'तलमल' (व्याकुलता) अधिक हृदयस्पर्शी है तो भी हिन्दी-पद उससे सर्वथा रिक्त नहीं है। 'साखी' और 'दोहरों' में उन्होंने अपने सारे आध्यात्मिक और नैतिक विश्वास भर दिये हैं। 'साषी और दोहरों' में कबीर का अनुकरण लक्षित होता है; परन्तु उनमें उनकी अनुभूति का अंश भी कम नहीं है। उनमें छन्दोभंग जो पल-पल पर दिखाई देता है—इसका कारण यह है कि तुकोबा को मराठी अभंगों के रचने का अभ्यास अधिक रहा है और अभंगों में मात्रा की क्रम-रक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे स्वच्छंद छन्द हैं। इसी कारण हिन्दी में उपदेश देते समय वे छन्द-रक्षा का स्मरण नहीं रख सके। सच बात तो वे स्वयं कहते हैं—

'गीरीधरलाल तो भाव का भुका।
राग कला नहीं जानत तुका।'

अतः संतों की वाणी को किसी शास्त्रीय कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। उनका लक्ष्य 'कला-शृंगार' न होकर ज्ञान-संचार होता है, आत्मनिवेदन होता है। फिर भी तुकोबा की रचना में रूपक, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण अलंकारों का अनायास प्रवेश हो गया है। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

'तुका रामसुं चीत बाँध राखु तैसा आपणी हात,[१]
धेनु बछरा छीर ज्याव प्रेम न छुटे सात।'[२]

अर्थान्तरन्यास—

'चीत मीले तो सब मीले नहीं तो फोकट संग,
पाणी पत्थर येक ही ठोर को रण भीजे अंग।'

रूपक—

'प्रेम रसड़ी बाँधीगले, ऐंच च्यले उधर।'[३]

हिन्दी-पदों में एक विशेष बात यह द्रष्टव्य है कि तुकोबा ने अपने साम्प्रदायिक आराध्यदेव 'विठोबा' का उनमें कहीं भी उल्लेख नहीं किया। उन्होंने गोपाल (१५२), (१५४, १५५), रघुराज (१५३), गोविन्द (१५४), हरी (१५४), का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है।[४] इसका कारण यह जान पड़ता है कि हिन्दी-पद उन्होंने हिन्दी भाषी जनता को लक्ष्य कर गाये हैं जो 'विठ्ठल' नाम से बहुत कम परिचित रही है।

१. हाथ
२. साथ
३. ऐंच (खींच)
४. नामों के आगे 'अस्सल गाथा' के पृष्ठों की संख्या दी गई है।

तुकाराम बुआ की 'अस्सल गाथा' की हिन्दी-भाषा

तुकोबा ने मराठी में धारावाहिक गति से अभंगों की रचना की है पर कभी-कभी लहर आ जाने पर उन्होंने तत्कालीन बोल-चाल की हिन्दी में भी अभंग और दोहरे कहे हैं। सौभाग्य से श्री विनायक लक्ष्मण भावे ने 'तुकाराम बुवांची अस्सल गाथा' प्रकाशित की है। उसमें 'महाराजा के टालकरी व लेखक संताजी तेली जगनाड़े' की वहियों की हू-ब-हू नकल है। संताजी ने तुकोबा के मुख से निःसृत वाणी को उसी समय उसी रूप में लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया है, ऐसा भावे का विश्वास है। इसी से वे इस गाथा को 'निर्मल (अमिश्रित) प्रसाद' कहते हैं। अन्य अनेक गाथाओं में सम्पादकों ने इस प्रकार की वैज्ञानिक सम्पादन-दृष्टि नहीं रखी।[१] जो हिन्दी के पद इस 'गाथा'[२] में संकलित किये गये हैं, उनमें शब्द-रूपों की एकता कदाचित ही कहीं भंग हुई हो। इसलिए इससे महाराष्ट्र क्षेत्र में सत्रहवीं शताब्दी में दूसरी भाषा के रूप में बोली जानेवाली हिन्दी के अध्ययन की सहज सुविधा प्राप्त हो गई है। भाषा का रूप सहसा परिवर्तित नहीं होता। अतएव तुकोबा की भाषा की प्रवृत्तियाँ उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती बहुत से महाराष्ट्रीय संतों की हिन्दी-भाषा में भी देखी जा सकती हैं। इस दृष्टि से भी 'गाथा' की भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

ध्वनि-प्रणाली

'गाथा' के हिन्दी पदों में निम्न ध्वनियाँ पाई जाती हैं—(१) स्वर—अ, आ, ई, उ, ए (ये), ऐ, (यै), ओ, (ॐ), औ (यौ) अं।

ह्रस्व इ और दीर्घ ऊ ध्वनि-चिह्न नहीं मिलते। ह्रस्व इ और दीर्घ ऊ का काम क्रमशः दीर्घ ई और ह्रस्व उ से लिया गया है। इ के संबंध में केवल एक अपवाद है।

यथा—

चित→चीत (गाथा पृष्ठ १५२)

बापू→बापु

अपवाद—कहे तुका सो हि मुंढा

ए, ऐ को ये, यै लिखा गया है। उदाहरणार्थ—येक, यैसा।

---

१. तुकाराम के अभंगों की ग्यारह गाथाएँ (भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा सम्पादित) प्रकाशित हुई हैं। पर भावे की अस्सल गाथा को छोड़कर किसी ने भी मूल भाषा की रक्षा का ध्यान नहीं रखा। बहुतों ने तो उसे शुद्ध कर अशुद्ध ही कर दिया है। शिवकालीन भाषा और लिपि में तथा आज की भाषा और लिपि में थोड़ा-बहुत अंतर अवश्यंभावी है।

२. देखिए—'तुकाराम बुवांची अस्सल गाथा' भाग १—२। (विनायम लक्ष्मण भावे शके १८४१ का 'आर्यभूषण प्रेस' संस्करण।)

ओ को एक स्थान पर उ के समान लिखा गया है। गोरखनाथ के मराठी 'अमरनाथ संवाद' में भी ओ को उँ के समान लिखा गया है। यह ग्यारहवीं शताब्दी का लेखन-प्रकार माना जाता है।[1]

लाल कवली उढे पेनाये।

उढे में ओ का उच्चारण उ और ओ के बीच की ध्वनि-सा हुआ है। अवरण (औरण) कुं भलो नाव धराई (अस्सल गाथा-पद ८०२)। बोलचाल की खड़ी बोली हिन्दी में भी आज्ञार्थक क्रिया के अन्त में ओ का व के समान उच्चारण होता है। क्योंकि बलाघात उसके पूर्व वर्ण पर होता है।

उदाहरणार्थ—जाव, खाव, लाव,

तुलना—मराठी में—धाव।

कहीं-कहीं औ का उच्चारण ओ के समान भी मिलता है। खड़ी बोली हिन्दी कौन→कोन; तुलना मराठी—कोण।

अपभ्रंश में भी और के स्थान पर ओ का उच्चारण मिलता है। बात यह है कि बोलचाल की हिन्दी में कौन को कऊन न बोलकर कोन और कौन, के बीच की ध्वनि उच्चारित की जाती है। 'औ' संयुक्त स्वर-ध्वनि मध्य भारतीय आर्य-काल में विलुप्त हो गई थी, उसके स्थान पर 'ओ' स्वर-ध्वनि आ गई थी। अपभ्रंश-ग्रंथों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। उदाहरणार्थ—यौवन→जोबन। ('ऐ' ध्वनि भी इसी प्रकार ह्रस्व हो गई है)। मालवी, बुंदेली में आज भी औ का उच्चारण प्रायः ओ के समान होता है। उदाहरणार्थ—खड़ी बोली हिन्दी सौ—मालवी सो। 'गाथा' में 'औ' को 'यौ' के रूप में भी लिखा मिलता है। उदाहरणार्थ—और→यौर। कहीं-कहीं शब्दारंभ की अ ध्वनि ए के समान उच्चरित हुई है।

यथा—

चरन—चेरन (पृष्ठ १५१)

जग—जेग (पृष्ठ १५१)

कहीं-कहीं ए का उच्चारण ई के सदृश हुआ है। यथा:—

ले जावे—ली ज्यावे (पृष्ठ १५१)

व्यंजन :—

(१) क, ख, ग, घ — क वर्ग

च, छ, ज, झ — च वर्ग

ट, ठ, ड, ढ — ट वर्ग

त, थ, द, ध — त वर्ग

प, फ, ब, भ — प वर्ग

य, र, ल, ळ, व, स, ह

(२) *अनुनासिक:*

ण, न, न्ह, म, म्ह,

---

1. **देखिए—भारतीय इतिहास संशोधन मंडल, पुणे, अहवाल ११ पृष्ठ ३८ और महाराष्ट्र-सारस्वत, पृष्ठ ४४।**

क—वर्ग का द्वितीय वर्ण वर्तमान नागरी-लिपि में 'ख' 'चिह्न' से लिखा जाता है। परन्तु प्राचीन पाण्डुलिपियों में महाराष्ट्र में ही नहीं, उत्तर भारत में भी 'ख' के स्थान पर ष ही मिलता है।

मराठी में ख वर्ण का ष से चिह्नित होना शिवकालीन लिपि-प्रणाली कही जाती है। उदाहरण—षाते सोवते षाट (अस्सल गाथा पृष्ठ १५३)।

'गाथा' में ड़ ध्वनि-चिह्न नहीं है।

अनुनासिक न के अतिरिक्त न्ह, म्ह, म चिह्न भी मिलते हैं।

मराठी में ल संबंधी दो ध्वनियाँ वर्तमान हैं। उदाहरण बालक की ल ध्वनि और *तळमळ* की ल और ड़ के बीच की ळ ध्वनि[1]।

संताजी की बही में 'ल' ध्वनि को 'ल' के समान और ळ को ळ चिह्न से अंकित किया गया है।

अस्सल गाथा में ड़ ध्वनि का काम ड से लिया गया है। यथा—पड़े = पडे (पृष्ठ १५४)

श, ष, स, इन तीनों ऊष्म-ध्वनियों का काम स से लिया गया है[2]। पालि, शौरसेनी और महाराष्ट्री में श का स्थान स ने ले लिया। बोलचाल की हिन्दी में ष तो लुप्त ही हो गया है, 'श' भी साहित्यिकों और पोथी-पुराण-पंडितों तक सीमित रह गया है।

'गाथा' में च्ह ध्वनि भी नहीं है। ष चिह्न ख और च्ह दोनों ध्वनियों को प्रकट करता है।

'गाथा' में ह्रस्व इ के दीर्घीकरण के असंख्य उदाहरण मिलते हैं; क्योंकि गाथा की लिपि में जैसा कि कहा जा चुका है, ह्रस्व इ है ही नहीं। उदाहरण :—

इच्छा—ईछा
मिलना—मीलना
हरि—हरी (पृष्ठ १५४)

---

१. मराठी में मूर्धन्य ळ ध्वनि कहाँ से आई है, इस संबंध में मतभेद हैं। वैदिक ळ और मराठी ळ का संबंध नहीं है। मैक्समूलर के मत को मानते हुए डा० तुलपुळे (यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ ३१ में) कहते हैं "वैदिक ऋग्वेद ब्राह्मणों के पाठ में जो 'ळ' है, उसका उद्गम ड से है। ऋक्, प्रातिशाख्य में ड और ढ की ळ ळह प्रक्रिया कही गई है। ळ ध्वनि द्राविडी भाषाओं से आई जान पड़ती है।" ज्ञानेश्वरीकाल में 'ळ' ध्वनि मिलती है। अतएव प्रतीत होता है कि १४ वीं शताब्दी में मराठी में ळ ध्वनि प्रचलित हो गई थी। यह ध्वनि पंजाबी, गुजराती, उड़िया और कुछ हिमालय की पहाड़ी बोलियों में भी पाई जाती है।

२. अस्सल गाथा में लिपिकार द्वारा श के प्रयोग का एक ही उदाहरण मिला है। इसे हम उसकी या प्रेस की असावधानी कह सकते हैं।

चित्त—चीत
सम्पत्ति—संपती (पृष्ठ १५४)
कठिन—कठीण
शिर—सीर (पृष्ठ १५५)

दीर्घ ऊ के ह्रस्वीकरण के अनेक उदाहरण मिलते हैं; क्योंकि लिपिकार ने दीर्घ ऊ को अपनी वर्णमाला में स्थान ही नहीं दिया।

उदाहरण—खड़ी बोली हिन्दी	ऊपर— गाथा हिंदी	उपर
,,	भूल ,, ,,	भुल
,,	हिन्दू ,, ,,	हींदु
,,	छूटे ,, ,,	सुटे

ह्रस्व उ के पश्चात् संयुक्त स ध्वनि आने पर उ का व में परिवर्तन पाया जाता है—

उस्ताद→वस्ताद

निम्नांकित महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण ध्वनियों में परिवर्तन पाया जाता है—

(१) झ के स्थान पर ज

उदाहरण— मुझे→मुजे
तुझे→तुजे
समझ→समज

प्रो० दिवेटिया और प्रो० कुलकर्णी का कहना है कि संस्कृत य वर्ण से गुजराती और मराठी में 'ज' और 'झ' वर्ण आये हैं। डा० तुलपुले ने इस नियम के समर्थन में जो मराठी उदाहरण दिये हैं, वे हिन्दी में भी लागू होते हैं। यथा—

कार्य→काज,
वंध्या→बाँझ
द्यूतकार→जुआरी[1]

मराठी में इनका संस्कृत तालव्य उच्चारण भले ही न रहा हो; पर हिन्दी में वह विद्यमान है।

(२) ख के स्थान पर क का आगम। यथा—

भूख→भुक
(संस्कृत बुभुक्षा से मराठी भूक)

(३) ठ के स्थान पर ट का आगम। यथा—

झूठ→झुट

(४) फ के स्थान पर प का आगम। यथा—

सफेद→सोपेत

---

१. देखिए—यादवकालीन मराठी, पृष्ठ २८।

(५) थ के स्थान पर त का आगम। यथा—

हाथ—हात

(संस्कृत हस्त→प्रा० हत्त→मराठी हात)

(६) ध के स्थान पर द का आगम। यथा—

उधर→उदर

(७) छ के स्थान पर च का आगम। यथा—

बिच्छू→बिच्चु तुलना—मराठी—विंचू

कहीं-कहीं ग के स्थान में क का आदेश मिलता है। उदाहरण—

हिन्दी लोग→लोक; संस्कृत लोक→मराठी—लोक

(मराठी में कई तत्सम शब्दों के अन्त्य व्यंजन-रूप सुरक्षित रह गये हैं।)

जब शब्द के अन्त में द आता है तब द का त में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

पसंद→पसंत

शब्दान्त और कहीं-कहीं मध्य न का ण में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

कौन→कोण (तुलना—मराठी—कोण)

पानी→पाणी

अपना→अपणा

खाना→षाणा

कठिन→कठीण

(तुलना—मराठी—कठीण)

जानत→जाणत

शब्द में जब द्वितीय वर्ण ह आता है, तब प्रथम वर्ण एकारान्त हो जाता है और प्रायः ह का लोप भी हो जाता है। यथा—

पहनना→पेनना

दक्खिनी हिन्दी में भी मालवी के समान यही प्रवृत्ति पाई जाती है। यथा—

कहना के स्थान पर केना, रहना के स्थान पर रेना, महना के स्थान पर मेना आदि बोला जाता है।

कहीं-कहीं ह का भ में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

दुहत→दुभत

साहित्यिक हिन्दी में जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्धन्य ध्वनियाँ निकट-निकट आ जाती हैं, वहाँ 'गाथा' की हिन्दी में प्रथम ध्वनि दन्त्य हो गई है—

साहित्यिक	हिन्दी	टूटे	गाथा—	हिन्दी	तूटे
,,	,,	ठंडी	,,	,,	थंडी
,,	,,	ढेड़	,,	,,	धेड़

'गाथा' में ड़ के स्थान पर र ध्वनि मिलती है यथा—

झोपड़ी→झोपरी

बछड़ा—बछरा

छोड़—छोर

चमड़ी—चमरी

कहीं-कहीं र के स्थान पर ड भी मिलता है। यथा—

रसरी—रसड़ी (पृष्ठ १५२)

छ के स्थान पर स ध्वनि-रूप मिलता है। यथा—

छूटे—सुटे

पूछत—पुसत

विधि-क्रिया में श द के ज और य के मध्य य ध्वनि का आगम पाया जाता है। यथा—

जाये—ज्याये

जाओ—ज्याव

बजाय—बज्याये

अनुनासिक व्यंजन-ध्वनियों के निकटवर्ती स्वर अनुनासिक हो गये हैं। यथा—

खड़ी	बोली	हिन्दी	काम—गाथा	हिन्दी	कांम
,,	,,	,,	राम— ,,	,,	रांम
,,	,,	,,	जिनसे—,,	,,	जीन्हसु
,,	,,	,,	तुम्हारे—,,	,,	तुम्हांरे
,,	,,	,,	नहीं— ,,	,,	नंही

संयुक्त र के पूर्ण वर्ण होने के उदाहरण मिलते हैं। यथा—

व्रत—वरत

वस्त्र—वस्तर

गर्व—गरब

शर्म—सरम

य का ज में परिवर्तन मिलता है। यह प्रवृत्ति अन्य प्रदेशों में भी पाई जाती है। यथा—

अन्तर्यामी—अंतरज्यामी (पृष्ठ १५३)

व का ब में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

विदेश—बीदेस

एकाध स्थल पर द का ड में परिवर्तन पाया जाता है।

खड़ी बोली हिन्दी दाग—डाग (पृष्ठ १५५)

(तुलना—मराठी—डाग)

संज्ञा-रूप की कतिपय विशेषताएँ—

संज्ञा में खड़ी बोली के समान ही एकवचन और बहुवचन पाये जाते हैं।

बहुवचन प्रायः ए प्रत्यय लगाकर बने हैं; पर कहीं न और ओ प्रत्ययों से भी बनाये गये हैं। यथा—

एक प्रत्यय से बने हुए बहुवचन संज्ञा-शब्द—

छोरा—छोरे
लरका—लरके
गोता—गोते
राजा—राजे

न प्रत्यय के बहुवचन रूप—

संत—संतन[1]
कामी—कामीन[2]

ओ प्रत्यय से बना बहुवचन रूप—

जग—जगो

कहीं-कहीं सब जोड़कर भी बहुवचन बनाया गया है—सब लोक

व्यंजनान्त पुंलिंग-संज्ञा का एकवचन और बहुवचन-रूप प्रायः समान पाया जाता है—

एकवचन		बहुवचन
लोक	—	लोक

यथा—पढ़ीया लोक रिसाये

कर्तृवाच्य संज्ञा

कर्तृवाच्य संज्ञा का एक रूप मिलता है—

कहे तुका सब चलन्हारा

बोलचाल में ह्रस्व न का उच्चारण हलन्त न् सुना जाता है—

क्या गांउ कोण सुननवाला

छोटा भाव दिखाने के लिए अकारान्त संज्ञा-शब्द में डी प्रत्यय लगा मिलता है—

नाव—नावडी

---

१. *संतन* पन्हंयां ले षडा रहुग ....द्वार—अस्सल गाथा पृ० १५५।
२. लोभी के चित धन बैठा *कामीन* के चीत काम—वही पृ० ,, ।

कारक (परसर्ग-चिह्न)

कर्ता—कोई चिह्न नहीं मिलता
कर्म—कुं—उदाहरण—असंतन कुं संत न माने
करण—सुं, थें

उदा० -सुरा सोही लडे हमसुं, छोडे तन की आस (पृष्ठ १५४)।
मोसु हरी थें कैसे बनाये (पृष्ठ १५४)

सम्प्रदान—कुं
अपादान—सुं
संबंध—का, के, की

उदा०—कवण का मंदीर (पृष्ठ १५४)
माता के चीत (पृष्ठ १५५)
कवण की माया (पृष्ठ १५४)

अधिकरण—मे, माही

उदा०—मनमे एक ही भाव (पृष्ठ १५१)
अनंदमाहीं पैठ।

सम्बोधन—रे, हो

उदा०—तुकाराम बहुत मीठा रे भर राखु शेरीर। (पृष्ठ १५५)

सर्वनाम

पुरुषवाचक	एकवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष कर्त्ता—	मैं, हूँ	हम
कारण—	मुज से मोसुं	—
सम्प्रदान—	मुजे, मेरे को	—
मध्यम पुरुष कर्त्ता	तु, तुं	तुम्ह
सम्प्रदान	तुम्हें	
अन्यपुरुष	सो (पृष्ठ १५४)	

मैं—खड़ी बोली हिंदी—मैं, संस्कृत मया—प्राकृत मइ, मए—अपभ्रंश—मइँ—मराठी—मी।

बंगला—मइ, उड़िया—मुं

उदा०—कहे तुका *मैं* ताको दास

हूँ—संस्कृत अहं—शौरसेनी अहमं, अहकं—अपभ्रंश—हमुं, हउं, व्रज—हौं—निमाड़ी—हउं, हूँ, गुजराती—हुँ

उदा०—चेलते पीछे हुं फीरूं फीरूं रज उड़ते लेउ सरीर।

मुजे—खड़ी बोली हिंदी—मुझे, महाराष्ट्री प्राकृत—मज्झ

हम की उत्पत्ति—प्राकृत अम्हे, म्हे (ह और म के स्थान परिवर्तन से हम)।

तु, तूं की उत्पत्ति—संस्कृत त्वया अथवा त्वम्—प्राकृत तुम, तुऊं—अपभ्रंश—तुहं, खड़ी बोली हिंदी—तू, मराठी—तूं, उड़िया—तुं।

उदा०—अल्ला येक तु नबी येक तुं।

तुम्ह, तुम्हें—संस्कृत तुभ्यं—प्रा० तुम्हें—अपभ्रंश तुम्हइं—खड़ी बोली हिन्दी में तुम्हें। 'गाथा' में एक जगह तुम्हें सम्प्रदान के रूप में नहीं, कर्ता एकवचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है—

उदा०—काहे सखी तुम्हें करती सोर।

(सखी तुम क्यों शोर करती हो ?)

निर्देशवाचक सर्वनाम—वो, सो, ओ

सो—संस्कृत—सः—प्राकृत—सो

उदा०—सुरा सोही लडे हमसुं छोडे तन की आस।

निजवाचक—अपणा, आपणा

प्राकृत—अप्पाणो—अपभ्रंश—अप्पाणु—खड़ी बोली हिन्दी—अपना

प्रश्नवाचक—कोण, कवन, किया (क्या)

संबंध—काहेका, क्यों, किउ, काहे।

संस्कृत—कः पुनः—प्राकृत कवन, कवण, कोउण—ख. बो. हिं. कौन (मराठी—कोण)।

संबंधवाचक—जो, जिस, जिन (को); जो संस्कृत यः→प्राकृत यो, जो; जिसः सं० यस्य→प्राकृत जस्स—हिन्दी—जिस।

सर्व-बोधवाचक सर्वनाम—सब, सबही सबः, संस्कृत सर्व→प्रा०—सब्ब

निश्चयवाचक—(१) निकटवर्ती—ये, उत्पत्ति संस्कृत—एते

(२) दूरवर्ती—उस, संस्कृत अमुष्य—प्राकृत—अउस्स

अनिश्चयवाचक—कुच—सं० कश्चित् किछु, संस्कृत किंचिद् प्रा० किछि ख. बो. हिंदी—कुछ।

गुणवाचक सर्वनाम विशेषण—ऐसा, तैसा, कैसा, कइसा।

"गुणवाचक विशेषण रूपों का संबंध सं० यादृश, तादृश आदि रूपों से जोड़ा जाता है। जैसे संस्कृत—कीदृश—केरिसा—ख. बो. हिं—कैसा।"[1]

संख्यावाचक शब्द—'गाथा' में ख. बो. हिन्दी के समान बहुत से संख्यावाचक शब्द हैं; पर वर्तमान मराठी में प्रचलित कुछ शब्द भी मिलते हैं—

खड़ी बोली हिन्दी—दो के लिए दोन—मराठी दोन

" " " —पच्चीस के लिए पंचीस—मराठी पंचवीस

" " " —तैंतीस के लिए तेहतीस—मराठी तेहतीस

---

१. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ २८७।

क्रिया-संबंधी विशेषताएँ

वर्तमान काल—	एकवचन	बहुवचन
	१. हुं, (उं और उ प्रत्यय)	हे (ए प्रत्यय)
	२. हे, (ए ,,)	हो, ओ ,,
	३. हे, (ए, अत ,,)	है, ऐ ,,

उदाहरण (१) रहुं—(मैं रहता हूँ)
खेलुं—(मैं खेलता हूँ)
लेउ—(मैं लेता हूँ)
जानता—जानत—जानता है।
(२) फोरे—(वह) फोड़ता है।

भूतकाल—या प्रत्यय उदाहरण दीया
ई प्रत्यय ,, मुई
भविष्य—ए प्रत्यय ,, मीले
आज्ञार्थक—उ प्रत्यय ,, चाषु
तुलना—अवधी में भी यही प्रत्यय लगता है।

'गाथा' की भाषा में विदेशी शब्द

तुकोबा सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं और इस समय महाराष्ट्र में मुसलमानी सत्ता छाई हुई थी। अतएव अरबी-फारसी शब्दों का प्रचलन क्रमशः जनता में हो रहा था। 'तुकोबा' के पदों में उनका प्रवेश स्वाभाविक तो है, पर अधिक नहीं है। 'अस्सल गाथा' में निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग मिलता है—

जीकिर (ज़िक्र—अरबी)
दीदार (फारसी) नफा (अरबी) काफर (काफिर अरबी)
दुनियां (दुनिया अरबी) आला (अरबी) कमतरीन (अरबी)
हजुर (हुज़ूर अरबी) अवल (अव्वल अरबी)
बाज्यार (बाज़ार फारसी)

कान्होबा

ये तुकाराम महाराज के छोटे भाई और परमार्थ-मार्गी शिष्य हैं। जिस समय तुकोबा ने बैकुंठवास लिया, उस समय इनके मुख से जो अभंग निःसृत हुए, उनमें करुणा की अत्यधिक आर्द्रता है। वारकरी-सम्प्रदाय में कान्होबा के अभंगों की प्रतिष्ठा है। श्रीरामचन्द्र भालेराव ने उनकी एक हिन्दी-रचना प्रकाशित की है। वह इस प्रकार है—

'चुरा-चुराकर माखन खाया ग्वालिन का नंदकुमार कन्हैया
काहे बड़ाई दिखावत मोही
जानत हू प्रभु मन तेरो सबही

औरे बात सुन ऊखल सो गला बांध लिया तूने अपना गोपाला
फिरता बन-बन गाय चरावत कहे तुकया बंधु लकरी ले-ले हाथ ।
(कोशोत्सव स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ ६७)

समर्थ रामदास

समर्थ का समय ईसा की सत्रहवीं शताब्दी था। उस समय राजनीतिक क्षेत्र में मुसलमानों का आतंक छाया हुआ था। महाराष्ट्र दो टुकड़ों में—आदिलशाही और मुगलाई में बँट चुका था। पुणे का भाग स्वतंत्र था। अतएव उसके आसपास की जनता सुख की साँस ले रही थी। परन्तु उत्तर भारत से मुगलों की सेनाओं के आक्रमणों के कारण शेष जनता सशंक रहती और समय-समय पर उनके अत्याचारों का शिकार होती रहती। इतना होने पर भी मुसलमानों के साथ तीन शताब्दी तक रहते-रहते हिन्दू जनता भी क्रमशः उनके साथ सामाजिक संबंध बढ़ाने लगी थी।

धर्म के क्षेत्र में वारकरी संतों ने 'भेदाभेद भ्रम-अमंगल' की भावना प्रचारित कर मानवता की प्रतिष्ठा कर दी थी। वे सभी मतों के प्रति उदार थे। इसका परिणाम यह हुआ कि 'मुसलमान फकीरों की यात्रा में हिन्दू जनता जाती थी और मुसलमान भी हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों का विरोध नहीं करते थे। इतना ही नहीं, अब अनेक मुसलमान भी वारकरी संतों के भागवत्-सम्प्रदाय के अनुगामी बन रहे थे।....शेख सल्ला साधु पूना में थे। स्वयं धर्मान्तरित मुसलमान होते हुए भी उन्होंने अनेक हिन्दुओं को मुसलमान होने से बचाया। शेख मुहम्मद भागवत-सम्प्रदाय में शामिल हो गया।....हिन्दू भी मुसलमान स्त्रियों के साथ व्यवहार करने लगे थे।....हिन्दू-मुसलमानों में ही नहीं, हिन्दुओं की भिन्न-भिन्न जातियों में भी वैवाहिक संबंध सहानुभूति के साथ बढ़ रहे थे।....धार्मिक दृष्टि से धर्म-व्यवस्था नहीं रह गई थी।'[1] ब्राह्मणों का पतन हो चुका था। शाहजी की जागीर में भले ही हिन्दू सुखी रहे हों, पर महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ऐसी परिस्थिति में रामदास और उनके शिष्य शिवाजी का प्रादुर्भाव हुआ।

समर्थ की जीवनी

समर्थ रामदास ने, जिनका मूल नाम नारायण था, जाम्भ ग्राम में चैत्र शुक्ल नवमी शक-संवतसर १५३० को जन्म धारण किया। उनके पिता सूर्याजी पन्त अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के पुरुष थे। सूर्योपासक थे। कहा जाता है कि वे प्रतिदिन सूर्य-नमस्कार और गायत्री का जप किया करते थे। सूर्यनारायण की कृपा से संतति होने के कारण उसका नाम 'नारायण' रखा गया था। नारायण के एक ज्येष्ठ बन्धु और थे जिनका नाम गंगाधर था। 'रामदास' के जीवन-वृत्त को जानने के लिए, उनके समाधि-ग्रहण के चार दिन पश्चात् उनके निकटतम शिष्य दिवाकर गोसावी द्वारा लिखाये गये 'वाके निशी प्रकरण', उसके कुछ वर्ष पश्चात् गिरिधरकृत' 'समर्थ प्रताप' और रंगो लक्ष्मण मेंढे की शक सं० १७१५ में

---

१. **मराठी संतों का सामाजिक कार्य (डा० कोलते), पृष्ट ११३-११६ ।**

लिखित तथा १७४० में परिवर्धित 'हनुमंत स्वामीची बखर' मुख्य साधन हैं। 'वाकेनिशी प्रकरण' सबसे प्राचीन और लगभग समर्थकालीन होने से अधिक प्रामाणिक है। उसी के आधार पर उनके जीवन की मुख्य घटनाओं को प्रस्तुत किया जाता है।

जब रामदास सात वर्ष के थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। पर पिता के समय में ही उनकी प्रतिभा का चमत्कार प्रकट होने लगा था। चार वर्ष की अवस्था में वे दिये हुए किसी भी पाठ को कंठस्थ कर लेते थे। शक संवतसर १५४२ में जब उनकी माता ने उनका विवाह करना चाहा और मंडप में ज्यों ही लग्न के समय 'सावधान' सुना, वे सचमुच सावधान हो गये और भाग गये। भटकते-भटकते नाशिक के निकट टाकळी पहुँच गये जहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक गोदावरी नदी के मध्य एक पाँव पर खड़े होकर गायत्री के कई पुरश्चरण किये और तेरह करोड़ 'श्रीराम जय राम जय-जय राम' का जप किया। इसी अवधि में कहा जाता है, उनका भगवान राम से साक्षात्कार हुआ और वे उन्हीं के द्वारा दीक्षित हुए। बारह वर्ष तक तपस्या करने के उपरान्त बारह वर्ष उन्होंने देश-भर के तीर्थ-क्षेत्रों की यात्राएँ कीं। इससे उन्हें अपने देश की स्थिति का अच्छा ज्ञान हो गया और उन्हें धर्म-स्थापना की स्फूर्ति प्राप्त हुई। शक सं० १५७० में चाफळ में उन्होंने राम की मूर्ति स्थापित की। शक १५७१ में शिवाजी और स्वामी रामदास की प्रथम ऐतिहासिक भेंट होने का उल्लेख 'वाकेनिशी' में मिलता है। इस तिथि के संबंध में महाराष्ट्र के विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। श्री राजवाडे और देव 'वाकेनिशी' की तिथि को मान्यता देते हैं और श्री भाटे तथा चांदोरकर इसका विरोध कर शक सं० १५६४ में इस भेंट का होना प्रतिपादित करते हैं। दोनों लेखक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भाटे और चांदोरकर अपने पक्ष-समर्थन में दो पत्रों का उल्लेख करते हैं। पहला पत्र केशव गोसावी का है जो दिवाकर गोसावी के नाम है। उसमें लिखा है कि 'शिवाजी भोंसले रामदास से मिलने आ रहे हैं, राजा प्रथम बार वहाँ आ रहे हैं।' दूसरा पत्र भास्कर गोसावी का है जिसपर 'शके १५८०' अंकित है। यह भी दिवाकर के ही नाम पर है जिसमें लिखा है कि 'मैं जब शिवाजी के पास गया तब उन्होंने मुझसे मेरे बारे में पूछा और यह भी पूछा कि कहाँ से आये हो? जब मैंने कहा कि मैं रामदासी हूँ तब उन्होंने पुनः पूछा कि रामदास कहाँ रहते हैं....वे मूलतः कहाँ के रहनेवाले हैं?'

प्रथम पत्र में उल्लेख है कि शिवाजी प्रथम बार रामदास के यहाँ जा रहे हैं। दूसरे पत्र से ज्ञात होता है कि 'शके १५८०' तक शिवाजी को रामदास के संबंध में यह भी ज्ञात नहीं था कि वे कहाँ रहते हैं। इन्हीं आधारों पर श्री भाटे और चांदोरकर का निष्कर्ष है कि शके १५७१ में शिवाजी और रामदास की भेंट नहीं हो सकती। इस संबंध में श्री राजवाडे और देव का कहना है कि उपर्युक्त दोनों पत्र जाली प्रतीत होते हैं। वे मूल नहीं हैं। उन्हें मूल की नकल कहा गया है। उनमें जो तारीखें दी गई हैं, उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि वे जाली न भी हों, तब भी उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि शिवाजी और समर्थ में उन तिथियों के पूर्व भेंट ही नहीं हुई। हो सकता है, राजा ने आर्थिक सहायता देने के पूर्व व्यक्ति की परीक्षा लेना ठीक समझा हो कि वास्तव में वह

'समर्थ' के आश्रम का प्रतिनिधि है अथवा ठग है। समर्थ और शिवाजी की भेंट की प्रथम तिथि ही मान्य होनी चाहिए। तभी हम शिवाजी के पीछे रामदास की प्रेरक शक्ति की कल्पना कर सकेंगे।

रामदास और राजनीति

क्या रामदास केवल संत थे या शिवाजी के माध्यम से समय की राजनीति में भी हाथ बँटाते थे? यह प्रश्न भी विवादास्पद है। उन्होंने जो शहापुर, मसूर, चाफळ, उम्ब्रज, माज़गांव, बाहे, मनपाँडले, पारगांव शिरदले, और शिगणवाड़ी में हनुमान की स्थापना की, उसमें भी उनकी राजनीतिक दृष्टि बतलाई जाती है। उस समय ये प्रमुख स्थान समझे जाते थे। सामान्य धारणा तो यही है कि शिवाजी को स्वराज्य स्थापना के लिए प्रेरित करनेवाले रामदास ही हैं। इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि 'रामदास का शिवाजी की राजनीति से कोई संबंध नहीं रहा। यदि रामदास न भी होते तब भी शिवाजी का 'स्वराज्य-स्थापन' आन्दोलन चलता। रामदास केवल संत थे। इस मत के पुरस्कर्त्ताओं में प्राध्यापक माटे भी हैं।

समर्थ ने प्रत्यक्ष राजनीति में भाग भले ही न लिया हो, पर वे अपने युग के उत्पीड़न से सर्वथा तटस्थ नहीं रहे, उनके 'साधन चतुष्टय' का दूसरा अङ्ग 'राजकारय' (राजनीति) हैं।[1] उन्होंने 'दासबोध' में स्पष्ट संकेत किया है कि चलवल (आन्दोलन) में ही सामर्थ्य है। परन्तु आन्दोलन ऐसा चाहिए जिसमें 'भगवन्त का अनुष्ठान' हो। स्वराज्य का आन्दोलन जिसमें असंख्य जनता का सुख निहित है, क्या भगवन्त के अधिष्ठान से रहित है? अतएव रामदास ने लोक-कल्याण की दृष्टि से यदि शिवाजी में स्वराज्य की प्रेरणा भरी हो तो इससे उनका संतत्व घटा नहीं, प्रत्युत बढ़ा ही है।

तुकाराम और समर्थ रामदास

तुकाराम समर्थ रामदास के समसामयिक सन्त रहे हैं। अतः दोनों की पंढरपुर की यात्रा के समय कभी भेंट हुई होगी। महाराष्ट्र में इन दोनों संतों के गुरु-शिष्य सम्बन्ध होने की चर्चा भी चली थी। तुकोबा के शिष्यों (रामेश्वर भट्ट, निलोबा आदि) ने कहीं भी यह नहीं लिखा कि तुकोबा ने समर्थ से गुरुमंत्र प्राप्त किया। परन्तु समर्थ के शिष्यों और भक्तों ने यह प्रतिपादित किया है कि (१) समर्थ ने तुकोबा को तारक मंत्र का उपदेश दिया और (२) उनका 'तुका' 'तुकाप्पा' नाम बदल कर 'तुकाराम' नाम रखा'।[2]

इस सम्बन्ध में प्रथम ध्यान देने योग्य बात यह है कि तुकोबा ने 'बाबाजी' को अपना

---

1. साधन चतुष्टय—"मुख्य हरिकथा-निरूपण। दुसरें तें राजकारण तिसरें सावधानपण। सर्व विषई। चौथा अत्यन्त सापेक्ष।" (दास बोध) ११, ५, ४,
2. देखिए—'रामदास आणि रामदासी' भाग १०, पृष्ठ ३७०।

गुरु कहा है ।[1] उन्होंने कहीं भी समर्थ रामदास के तारक मंत्र का उल्लेख नहीं किया। प्रोफेसर दांडेकर का यह कथन उचित है कि तुकोबा और समर्थ-शिष्यों की परमार्थ कल्पना में भेद है। तुकोबा भगवान के किसी भी नाम और मंत्र को 'तारक' मानते हैं, परन्तु समर्थ शिष्यों का विश्वास है कि 'तारक मंत्र' के विना कैवल्यपद की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त समर्थ शिष्यों की धारणा है कि मुमुक्षु को जहाँ तक संभव हो, 'ब्राह्मण को गुरु बनाना चाहिए।' यह वृत्ति तुकोबा की नहीं रही। वे स्वयं अब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणों के गुरु थे।[2] इस प्रकार भीतरी प्रमाण से तुकोबा और समर्थ का गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। वाह्य साक्ष्य से भी तुकोबा और समर्थ का गुरु-शिष्य सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। तुकोबा का काल शके १५२९-३० से शके १५७२ और समर्थ का जन्म शके १५३० है। बारह वर्ष की आयु में समर्थ घर से निकल गये। बारह वर्ष तक उन्होंने तपस्या की, बारह वर्ष तक तीर्थाटन किया। शके १५६६ में वे लौटकर अपनी माता से मिले। अतः तुकोबा ने जब शके १५७२ में समाधि ली, तब छः वर्ष के भीतर उन्होंने समर्थ को गुरु बनाया हो, यह संभव नहीं प्रतीत होता। यदि ऐसा होता तो समाधि के पूर्व तुकोबा अपने किसी अभंग में इस क्रांतिकारी घटना का उल्लेख अवश्य करते। गुरु का महत्त्व प्रतिपादित करने में सन्तों ने कभी झिझक प्रदर्शित नहीं की। अतः निष्कर्ष यह है कि रामदास और तुकोबा में कभी भेंट हुई होगी; पर उनमें कभी गुरु शिष्य-सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ।

समर्थ की कृतियाँ

समर्थ की रचनाओं की संख्या अधिक है। परन्तु उनमें (१) दासबोध (२) मनाचें श्लोक (३) करुणाष्टक और (४) विभिन्न मराठी छोटे-बड़े ग्रंथ तथा स्फुट अभंग और हिन्दी पद उल्लेखनीय हैं। दासबोध की रचना शके १५८१ में हुई है। इसमें अध्यात्म-उपदेश के अतिरिक्त अपने समय की स्थिति का अत्यन्त सजीव वर्णन किया गया है। इसका हिन्दी रूपान्तर स्व० माधवराव सप्रे ने किया है। 'मनाचें श्लोक' में मन को प्रबुद्ध करनेवाले २०५ श्लोक हैं। इसमें अद्वैत तत्त्वज्ञान का सार भरा हुआ है। इसका हिन्दी में पद्यबद्ध रूपान्तर डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने किया है। करुणाष्टक में रामदास के हृदय की भगवान के प्रति मिलन-उत्कंठा की भावनाएँ व्यंजित हैं। इस आत्मपरक काव्य में भावना की सूक्ष्मता और उत्कटता दर्शनीय है। समर्थ के नाम पर लघु और दीर्घ रामायणें भी प्रसिद्ध हैं। लघु रामायण में सुन्दरकाण्ड तथा दीर्घ रामायण में सुन्दर और युद्धकाण्ड हैं। उनके नाम पर एक 'किष्किन्धाकाण्ड' भी मुद्रित है। पर उसे मराठी के शोधक विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते।

एकनाथ के अनुकरण पर उन्होंने मराठी में 'भारूड़' भी लिखे हैं।

---

१. देखिए—रामदास आणि रामदासी, पृष्ठ ३७१—'बाबाजी सद्‌गुरूदास तुका' 'बाबाजी आपुले सांगीतलें नाम।'

२. वही, पृष्ठ ३७१।

समर्थ के हिन्दी-पद

'समर्थ-गाथा' तथा धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर की जीर्ण पांडुलिपियों तथा अन्य स्रोतों से जो रामदास के हिन्दी-पद प्राप्त हुए हैं, वे राग रागिनियों में भी गाये जा सकते हैं। (परिशिष्ट में मैंने समर्थ के कई अप्रकाशित हिन्दी-पद विभिन्न हस्तलिखित पोथियों के पाठान्तर के साथ दे दिये हैं।) उनमें मराठी संतों का 'परमात्मा की सर्व व्यापकता का भाव' ध्वनित हुआ है। समर्थ राम के भक्त थे। अतएव प्रत्येक स्थल पर अपने आराध्य को देखते थे। वे अपने 'राम' को 'मोहन नागर', 'साँई' आदि नामों से भी अभिहित करते हैं। वे कहते हैं—

जित देखो उत राम हि रामा।
जित देखो उत पूरण कामा
तृण तरुवर सातो सागर
जित देखो उत मोहन नागर।
जल थल काष्ठ पषाण-अकासा।
चंद्र सुरज नच तेज प्रकासा।
मोरे मन मानस राम भजो रे।
रामदास प्रभु ऐसा करो रे।

यदि मन में राम नहीं समाया है तो धन-दौलत, राज्य-लाभ, तीर्थव्रत, स्नान, योग-साधन से क्या होगा?

राम न जाने नर तो क्या जी।
धन दौलत सब माल खजीना
और मुलुख[१] सर किया तो क्या जी
गंगा गोमति रेवा तापी
और वनारस न्हाया[२] तो क्या जी।

हिन्दू और मुसलमान नाम से दो 'मजहब' भले ही चले हों; पर दोनों का सर्जनहारा तो एक ही है, वही सृष्टि को चलाता है—

'हिन्दू मुसलमान मज़हब चले सरजनहारा
साहेब अलम कुं चलावे सो अलम थी[३] न्यारा।'
घट घट साहियां रे अजब अला मियां रे।
ये हिन्दू मुसलमाना दोनों चलावें पछाने सो भावे।

जिसकी 'परमार्थ' के प्रति लगन है, वह 'अल्ला मियां' को प्यारा है। संसार में सभी वस्तुएँ क्षण-भंगुर हैं, परन्तु 'गैबी' (परमार्थ-साधक) नहीं—

'देहरा तुटेगा मशीदी तुटेगा
तुटेगा सब हम सों
तुटत नहीं फुटत नहीं गैबी सो कैसी रे भाई।

१. मुल्क २. नहाया ३. थी (गुजराती) = से।

वह अलख-निरंजन कैसा है[1] कहा नहीं जा सकता—वर्णनातीत है। वह सभी का भला करता है, वह सब की भलाई-बुराई देखता है। अतएव सबको 'भलाई' करनी चाहिए। इस भाव की लगभग ८४० पंक्तियाँ हमें धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर की हस्तलिखित पोथी क्रमांक ६६८ में प्राप्त हुई हैं। यह पोथी लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन है। उसकी भाषा तत्कालीन जन-भाषा प्रतीत होती है जो खड़ीबोली का दक्षिण में व्यवहृत बाजारू रूप है। उसकी कतिपय पंक्तियाँ[1] नीचे दी जाती हैं—

"हरा ना पिला रंग काला नहि रे
सिफेदी नहीं क्या कहु में इसे रे।
सबे रंग से वो नियारा खुदा हि।
मु से हि कहे सा नाहि वो ईलाहि ॥"

(उसका रंग न हरा, न पीला और न काला है। वह न सफेद ही है। (अत:) मैं क्या कहूँ? वह खुदा सभी रंगों से न्यारा है। वह इलाही मुँह से कहने योग्य नहीं है अर्थात् मुख से उसका वर्णन नहीं हो सकता।)

पवन पर च्यले चंद तारा हमेशा
सुरिज्बी चले वो बड़ा हे तमाशा
गगन्मो च्यले मह्नु वो हि पवन सो
पवन बी नहि रे कहे रामदासो ॥

(पवन पर चंद्रमा और तारे हमेशा चलते हैं, सूरज भी चलता है। बड़ा तमाशा है। गगन में मेह उसी पवन से चलते हैं; पर रामदास कहता है, वह पवन भी नहीं है)

गले मोहि कफ्नि हातो म्यान तस्बि
खुदा क्या हि बातां मुं से वोहि गैबि
कहे बात वैसा राहा से च्यले सो
ईनो कि ही कफ्नि कहे रामदासो ॥

(गले में न कफनी है और न हाथ में तसबीह (माला) है। जिसके मुँह से केवल खुदा की बात निकलती है, वही गैबी (परमार्थ-साधक) है। जो जैसी बात कहता है, उसी प्रकार (उसी तरह चलता है) आचरण करता है, उसीका वास्तव में कफनी धारण करना सार्थक है।

उपरिनिर्दिष्ट पाण्डुलिपि में लगभग २४० पंक्तियाँ रामदास के नाम से अंकित हैं परन्तु उसी संस्था में संगृहीत अन्य हस्तलिखित पोथी क्रमांक १८४० में वही रचना कतिपय पाठान्तर के साथ 'देवदास' के नाम पर लिखी मिलती है। यह पाण्डुलिपि सन् १९२७ में दादा सा० करन्दीकर को पुणे के पुराने बाज़ार में प्राप्त हुई थी। इसकी नकल सन् १९३२ में की गई। लिपिकारों ने, प्रतीत होता है, यत्र-तत्र भाषा-शुद्धि की है। 'नहिं' के 'हिं' को प्रत्येक स्थल पर दीर्घ 'हीं' कर दिया गया है। अन्य स्थलों पर भी खड़ी बोली का शुद्ध रूप मिलता है। अब प्रश्न यह है कि उपर्युक्त रचना वास्तव में किसकी मानी जाय—समर्थ रामदास की या देवदास की? देवदास नाम के दो संतकवि

१. **पूरी रचना परिशिष्ट में देखिए।**

महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं। एक समर्थ-शिष्य है और दूसरा चैतन्य-शिष्य है।[1] समर्थ शिष्य देवदास की रचनाओं में तेजी है और मुसलमानों की भर्त्सना भी। उदाहरणार्थ—

अहा रे अहा तूं मुसलमान बेडा
मसीदींत जाबून का हाक फोड़ा[2]

(अरे तू पागल मुसलमान! मस्जिद में जाकर क्यों चिल्लाता है?)

हिन्दी की विवाद्य रचना में देवदास की तेजी और छन्दगति तो है; पर मुसलमानों के प्रति भर्त्सना का भाव कहीं नहीं है। प्रत्युत हिन्दुओं की पत्थर-पूजा की भी निन्दा है—

आज्य बसा महज्यब हिन्दु दिवाना
फतर्कि पुज्या क्या कहुँ कोन माना
फतर्कि मूरत तुहि ने बनाई
बना कर्तुहि ने वाहाँ नेत ल्हाई ॥
सबो से हि यारि करो सव्दुन्या में
× × ×
जिन्हों से तिन्हों से भलाई ज्यनों में
ईसि मोहि रे भला फायदा हि
भला हे भला हे कहेगा सबो हि

देवदास की जो अन्य रचनाएँ मिली हैं, उनमें व्यंग्य और प्रहार अधिक है। वह दार्शनिक गहनता या भक्ति का तादात्म्य नहीं है जो रामदास की उपर्युक्त रचना में पाया जाता है।

एक देवदासी 'गारूड़ी' की झलक देखिए :—

अवल याद करू वस्ताद की
पीर पैगम्बर नबी की
साधु संत महंतों की
जीने ये मंडान पैदा किया।
और मैं देवदास गारोडी
खेलने की बाजी करूं खडी
इसमें आडी तीडी उस लंडी का काम नहीं ॥

देवदास की रचनाओं के उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि (१) उनमें रामदास के समान उदार भाव नहीं हैं। (२) उनमें आध्यात्मिक चिन्तन की गहनता नहीं है और जो पंक्तियाँ पाण्डुलिपि क्रमांक ६६८ में रामदास के नाम पर हैं, उनमें रामदास की आध्यात्मिक साधना और उदार दृष्टि की स्पष्ट छाया है और वे दो सौ वर्ष प्राचीन हस्त-लिखित पोथी में पाई गई हैं। अतः उनका उन्हीं के द्वारा रचा जाना अधिक संभव है। पांडुलिपि क्रमांक १८४० की रचना में 'देवदास' नाम जाली जान पड़ता है।

---

१. देखिए—महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ २०३-२०४।

२. वही पृष्ठ २०३।

रामदास के कतिपय हिन्दी-पद 'दास फकीरा' के नाम से भी मिले हैं। उपर्युक्त संस्था की पाण्डुलिपि, क्रम-संख्या १८८८ में, एक पद यह है—

सबघट भाई रे खुदाई।
खाली जागा नई रे खुदा बिना ज्यानत नाई रे
झुट कहे सो झुट दिवाने खबर न पाई रे
दास फकिरा—कहे इतनाहि अंतर भाई रे

समर्थ के समय में मुसलमानों का महाराष्ट्र जीवन से सम्पर्क बढ़ गया था। अतएव समर्थ का उर्दू मिश्रित हिन्दी से परिचित होना स्वाभाविक है। उन्होंने भारतवर्ष की तीर्थ-यात्राएँ भी की थीं। इस कारण भी उनका उत्तर की भाषा से सहज परिचय हो गया था। तुकाराम की हिन्दी भाषा में उच्चारण और वर्ण-प्रक्रिया की जो विशेषताएँ पाई जाती हैं, वे रामदास की भाषा में भी विद्यमान हैं; क्योंकि दोनों एक ही समय में हुए हैं। रामदास के हिन्दी-पदों में संतोचित काव्य-रस है। यह हिन्दी के लिए क्या कम गौरव की बात नहीं है कि महाराष्ट्र में अपूर्व क्रान्ति का संचार करनेवाले कर्मयोगी संत ने उसे राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर उसमें उपदेश दिये ?

रंगनाथ

रामदास पंचायतन में श्री रंगनाथ स्वामी का नाम आता है। पंचायतन के अन्य चार संत जयराम स्वामी, आनंदमूर्ति, ब्रह्मालंकार, केशव स्वामी भागानगरकर और स्वयं समर्थ स्वामी रामदास की गणना होती है। रंगनाथ स्वामी आनंद सम्प्रदायी कहे जाते हैं। स्व० विनायक लक्ष्मण भावे ने इस सम्प्रदाय की परम्परा इस प्रकार दी है:—

विष्णु — विधि — अत्रि — दत्त—सदानंद—रामानंद—अमलानंद—गभीरानंद—ब्रह्मानंद—सहजानंद—पूर्णानंद।

पूर्णानंद के दत्तानंद, निजानंद, चिदानंद और सदानंद नामक चार शिष्य हुए। दत्तानंद के ब्रह्मानंद और ब्रह्मानंद के श्रीधर शिष्य हुए। निजानंद के शिष्य रंगनाथ स्वामी हैं। इनका जन्म शक सं० १५३४ मार्गशीर्ष शुक्ल को हुआ था। अपनी चौदह वर्ष की अवस्था में ये घर से निकलकर बद्रिकाश्रम पहुँच गये और वहाँ कुछ समय ज्ञान सम्पादन कर लौट आये। यहाँ आने पर इन्होंने अपने पिता निजानंद से ही गुरु-दीक्षा ली। इनके संबंध में एक रोचक घटना 'महाराष्ट्र सारस्वत' में वर्णित है।[1] एक बार एक स्त्री इनसे एकांत में मिलने आई और इनसे प्रेयसी-भाव से मिलन-कामना का हठ करने लगी। स्वामी जी ने अनेक प्रकार से समझाया; पर उसे इनकी कोई भी बात समझ में नहीं आई। अन्त में स्वामीजी ने उससे कहा कि मैं तुझसे अमुक समय में मिलूँगा। ज्यों-ज्यों समय बीतता

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत (आवृत्ति चौथी) पृष्ठ ४४०

जाता, वह व्याकुल होती जाती। व्याकुलता में वह इतनी तन्मय हो गई कि उसे भान ही न रहा कि कब रंगनाथ बुआ आकर उसके पास बैठ गये। जब उसकी दृष्टि महाराज पर पड़ी, तब उसका सारा विकार चला गया और वह स्वस्थ हो गई। रंगनाथ स्वामी ने उसे अपनी शिष्या बना लिया। इनका एक हिन्दी-पद मिला है—

देखा नाथ गोपाला जग मो (ध्रुवपद)
कुलयुग स्थाने ले अवतार, आप रूप अविनाशी
चारो मुक्ती सेवा करती, होकर उनकी दासी
घट पर घट मों आप रमे हैं, आप गुरु आप चेला
जोग जुगत में हमेसा खेले, झूठे घर में झूले
छह अठरा का विचार लेकर, पंडत होकर भूले ?
सब संतन मों नाथ रंगेली।
रंगनाथ जन गुरु बन ले, आप दुजा नहि कोई
अंदर बाहिर भज ले भाई, रूप रेखा नाहीं।
गुरु नाम का धोंसा बाजे, निरगुन खेल खेला जग मों ॥

वामन पंडित (रामदासी)

इनके जन्मकाल के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं। वाई के निकट भोगाँव में इनकी समाधि बनी हुई है, जिसपर जन्म शके और समाधि-शके अंकित हैं।

जनमशके १५····१ (स्पष्ट नहीं)
समाधि शके १६१० ,,

ये रामदास महाराज के समकालीन थे। रामदासी परम्परा के लेखकों ने इनका कई जगह उल्लेख किया है। रामदासी सम्प्रदाय के विश्वकोष (श्रीदास विश्राम धाम) में भी इनका उल्लेख है। यह अच्छे हरि-कीर्तनकार थे। इनकी एक हिन्दी-रचना दी जाती है।

तो मैं हरिका भगत कहावूँ (ध्रुवपद)
हरिका रूप सब जग देखूँ। और न कोई को जावूँ।
गीतोयो सब भगत बराई। हरि भगत को सुनावूँ।
वामन कहे दुजा देव न मानूं। सब देव हरि रूप भाउँ।

समर्थ शिष्य कल्याण

समर्थ के शिष्यों में कल्याण का स्थान बहुत ऊँचा है। इनका जन्म बायुल या भोगूर नामक स्थान में हुआ। इनके पिता संन्यासी हो गये थे। वे (कृष्णाजी पंत) भोगूर के कुलकर्णी (पटवारी) थे। विवाह के उपरान्त उन्हें एक पुत्रलाभ हुआ।

उसके बाद पत्नीऋण से मुक्त हो वे संसार से निवृत्त हो गये और तीर्थयात्रा को निकल गये। उत्तर की यात्रा समाप्त कर जब ये दक्षिण में कोल्हापुर में जगदम्बा के मंदिर में ठहरे हुए थे, उसी समय पारगाँव के बरवाजी पंत भी वहाँ व्यापार के लिए आये हुए थे। वे मंदिर में दर्शनार्थ गये। कृष्णाजी का भजन हो रहा था। दोनों ने परस्पर को पहचान लिया। बरवाजी कृष्णाजी को अपने घर ले आये। उनकी एक बहिन थी। वह अविवाहिता थी। उन्हें स्वप्न हुआ कि उसका विवाह कृष्णाजी से कर देना चाहिए। कृष्णाजी को भी उसी रात यह स्वप्न हुआ कि यदि तू बावाजी की बहिन से विवाह नहीं करेगा तो तुझे उसी के लिए पुनः जन्म लेना होगा। सवेरे जब कृष्णाजी तुलसी वृंदावन के ओटले पर बैठे भजन कर रहे थे तब बरवाजी ने उनके पास जाकर उन्हें अपना स्वप्न कह सुनाया। कृष्णाजी ने भी अपना स्वप्न (दृष्टान्त) बतलाया। कृष्णाजी विवाह के लिए राज़ी हो गये। धूमधाम से विवाह हुआ। बरवाजी की बहिन का नाम रखमाबाई रखा गया। वे धार्मिक वृत्ति की थीं। पुत्र के लिए उन्होंने अम्बा की मानता मानी कि मुझे 'विजयवंत, शहाणा (चतुर) पुरुषार्थी, उभयकुलतारक, गुरुभक्त, सुकृती पुत्र प्राप्त हो।" अतः जब प्रथम पुत्र प्राप्त हुआ तब उसका नाम अम्बाजी—अम्बादास—रखा गया। दूसरा पुत्र दत्तात्रय की मानता से हुआ। अतः उसका नाम दत्तात्रय रखा गया। दो भाइयों के बीच एक बहिन भी थी। कृष्णाजी पंत पुनः विरक्त हो गये और संन्यास ग्रहण कर काशी-यात्रा के लिए निकल गये। उनकी पत्नी रखमाबाई संतति सहित अपने भाई के पास चली गई। अम्बाजी बाद में कल्याण के नाम से पुकारे जाने लगे।

कल्याण की जन्मतिथि और जन्मस्थल दोनों अनिश्चित हैं। पर समर्थ ने उन्हें शक संवत् १५६७ में दीक्षा दी, यह निश्चित है। 'हनुमंत-स्वामी की बखर' से यही ज्ञात होता है। उनकी प्रयाणतिथि शकसंवत् १६३६ अधिक आषाढ़ शुक्ल १३ है। अतः उन्होंने ९६ वर्ष की पूर्ण आयु भोगी।

उद्धव-सुत ने 'रामदास चरित्र' में अम्बाजी पंत को व्यापारी कहा है। गणेश शंकर देव कल्याण के दीक्षा-समय की आयु २६ या २७ वर्ष मानते हैं और जन्म शक १५४०।[1]

कल्याण की गुरु-सेवा अटल थी। वे समर्थ के साथ सतत रहते थे। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र थी और हस्ताक्षर सुन्दर थे। समर्थ बोलते जाते और कल्याण द्रुतगति से लिपिबद्ध करते जाते। इस प्रकार समर्थ के सभी ग्रंथ कल्याण की लेखनी से अवतरित हुए। कल्याण ने स्वयं भी मराठी और हिन्दी में रचनाएँ की हैं। अष्टपदी, भूपाल, आरती, स्फुटश्लोक, विभिन्न पद आदि मिलाकर उनकी पद-रचनाओं की संख्या १४४८ है। उनकी हिन्दी रचनाएँ कम प्राप्त हुई हैं। एक पद है—

> आलख जागे गुरु गोरख जागे ॥धृ॥
> आलखनिरंजन भाव न भावे। सब घट व्यापक आलख जागे ॥
> जो कोऊ राखे गोइ हीयाकू। सो ही गोरख आलख जागे ॥
> मन की जोगिणी समजत बूझे। नाथ निरंजन कल्याण जागे ॥

---

1. देखिए—समर्थ शिष्य-कल्याण—पृष्ठ २१६।

कल्याण ने 'रूक्मिणी-स्वयंवर' नामक एक कथा-काव्य भी लिखा है जो १५० वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि में (धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर में) सुरक्षित है। उसी 'मंदिर' में प्राप्त पाण्डुलिपि संख्या ५४६ में यह आख्यान तीन संतों के नाम पर मिलता है—(१) मुकुन्दराज (२) मुकुन्ददास (३) कल्याणस्वामी। मराठी प्राचीन वाङ्मय-इतिहास में तीन मुकुन्दराजों का उल्लेख मिलता है। एक मुकुन्दराज शके १३५० के लगभग विद्यमान बतलाये जाते हैं। 'स्वयंवर' की भाषा में अरबी, फारसी के शब्दों की प्रचुरता है। इसलिए यह मुकुन्दराज की रचना नहीं हो सकती। दूसरे मुकुन्दराज मराठी के आदि कवि बारहवीं शताब्दी में हुए हैं। तीसरे भीम स्वामी के शिष्य गोविंदबाबा के भतीजे भी मुकुन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये रामदासी हैं। पर इनका ठीक काल ज्ञात नहीं है और न इनके नाम पर कोई अन्य रचना ही मिली है। साथ ही मुकुन्ददास नामक किसी सन्त का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। हो सकता है कि मुकुन्ददास और मुकुन्दराज एक ही हों। अतः 'रुक्मिणी-स्वयंवर' को अन्य प्रमाणों के अभाव में कल्याणकृत ही मानना चाहिए। उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

बैदर्भ येक मुलुख। वहा कौंडण्यपुर देख
दरी भीम भूप नेक।
सखि जोर जबर सारा।
दरिम्या ने महताब। जीतो सुरत की आब
हुई पैदा खुब बाब। उसकू रुक्मण प्यारा॥

× + ×

हुई रुक्मिण बेजार। तपें तपती गुलनार
तुटे मोतेन के हार। छपर-पलंग लेहटती॥

पद्य की भाषा तत्कालीन महाराष्ट्र में प्रचलित और उच्चरित लोक-भाषा है।

मानसिंग

इनके संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है; परन्तु भारत इतिहास-संशोधन मंडल (पुणे) ने उनका एक पद प्रकाशित किया है जो इस प्रकार है :—

राग व्याहाग (बिहाग)

बिगरी कौन सुधारे नाथ। बिगरी कौन सुधारे (ध्रु०)
बनि बने का सब कुइ साथी। दीनानाथ गुंसाई रे।
भरी सभा में लज्या राखी, दीनानाथ गुंसाई रे।
करु बेल की करु तुमरिया, सब तीरथ फिर आई रे।
गंगा न्हाई जमुना न्हाई तो बिन गई कड़वाई रे।
दया धरम का ज्याल बनाया, समुद्र बीच तिर आया रे।
कर्मी धर्मी पार उतर गये। पाप सो नाव डुबाई रे।

भली बुरी ये दोनों बहिना। परापरी सो आई रे।
नाथ जलंदर मुद्रावाले मानसींग जस गाई रे।[1]

उपर्युक्त पद की भाषा में महाराष्ट्रीय हिन्दी-रूप है। ओ के स्थान पर उ (कोई—कुइ) औ के स्थान पर ओ (कौन—कोन) ड के स्थान पर र (विगरी) भ के स्थान पर ब (तोबि) की वर्ण-प्रक्रिया तथा अकारान्त संज्ञा का बहुवचन आकारान्त (बहिन—बहिना) आदि इसके उदाहरण हैं।[2] फिर भी उसमें गति है। कवि का अपने 'नाथ' में अटल विश्वास है; क्योंकि वही 'बिगरी' सुधार सकता है। मानव प्रकृति तीर्थ-यात्राओं से उसी प्रकार परिवर्तित नहीं होती जिस प्रकार कड़वी बेल की कड़वी तुमड़ी कई तीर्थों का जल भर कर भी अपनी कड़वाहट नहीं त्याग पाती। ये सब सन्त-परम्परा के अनुरूप अभिव्यक्तियाँ हैं। ये जलन्धरनाथ का यश गाते हैं। इसलिए इनका नाथ पंथी होना सिद्ध होता है। यद्यपि इनकी अपने मत के प्रति निष्ठा है तथापि इनमें कोरा मत प्रतिपादन नहीं है, काव्य-प्रतिभा भी है। दुर्भाग्य से इनका एक ही पद मिला है। ये शिव-कालीन जान पड़ते हैं।

बहिणाबाई

ये महाराष्ट्र की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। तुकाराम की शिष्या हैं। इनके पति का नाम रत्नाकर पाठक था। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका सौभाग्य बहुत समय तक नहीं रह पाया। वैधव्यावस्था में इनकी वृत्ति आध्यात्म की ओर हो गई और इन्होंने तुकाराम को अपना गुरु मान लिया। महाराष्ट्र साहित्यकारों में बहुत समय तक विवाद चलता रहा कि ये तुकाराम की शिष्या हैं या समर्थ रामदास की। क्योंकि इन्होंने तुकाराम की समाधि के पश्चात् कुछ समय रामदास महाराज के सहवास में भी व्यतीत किया था। अतः इनकी गणना रामदास की शिष्य-मंडली में भी होती है। डा० तुलपुले ने महाराष्ट्र सारस्वत की पुरवणी में लिखा है कि अब इस शंका के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है कि बहिणाबाई वारकरी थीं या रामदासी। क्योंकि स्व० पांगारकर ने शिऊर की पोथियों को स्वयं देखकर यह निर्णय दे दिया है कि बहिणाबाई नाम की महाराष्ट्र में एक ही संत कवयित्री हुई है और वह तुकाराम की शिष्या है।[3]

बहिणाबाई की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

आदिनाथ शंकर—मत्स्येन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गहिनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञानेश्वर—सच्चिदानंद बावा—विश्वंभर—राघव—चेतन—केशव चैतन्य—बावाजी चैतन्य—तुकाराम—बहिणाबाई।

---

१. देखिए—भारत इतिहास संशोधन मंडल (पुणे) शके १८३६, अहवाल पृ० ७६।

२. महाराष्ट्र में सतरहवीं शताब्दी में हिन्दी-भाषा के रूप को विस्तार से समझने के लिए देखिए इसी पुस्तक का 'तुकाराम की भाषा'-प्रकरण—पृष्ठ १६८।

३. देखिए—महाराष्ट्र सारस्वत (चतुर्थ आवृत्ति) पृष्ठ १७७।

हिन्दी-रचना

इनकी कृष्ण-संबंधी रचनाएँ अधिक प्राप्त हैं, जो 'गौलण' शीर्षक के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। 'गौलण' (गोपी) का मन कृष्ण से मिलने के लिए आतुर होता है। वह सब कुछ भूलकर संकेत-स्थल पर दौड़ना चाहती है और अपने आराध्य प्रियतम कृष्ण के साथ एक प्रकार हो जाना चाहती है। उदाहरण के लिए एक 'गौलण' नीचे दी जाती है—

जमुना के तिर धेनु चरावत है गोपाल री।
गीत प्रबंध हास्य विनोद नाचत है श्री हरी।
धर कानों में कुंडल लाल, सिर पर मोरपिखा नंदलाल
अबीर गुलाल सबके माला, हार सुवास पिन्हाये।
जाइ जुई चम्पक कोमल चंदन चोवा लाए
छंद धीमा धीमा सुनावत है हरि, बंध गयो मेरो प्रान
बहिणी कह सो भूल गए मेरा हरि से लगा है मन।

इनके एक पद में अद्‌भुत रस का भी समावेश है। वह कुछ कबीर की 'उलटबासी' के समान प्रतीत होता है—

अजब बात सुनाई भाई।
गरुड़ पंख हिरावे कागा लक्ष्मी चरन चुराई
ये सूरज की थींव अंधारे सोवे चंबरकू भाग जलावे
राहु के गिरहो भोगी कहा रे अमृत ले भर जावे
कुबेर सोवे धनके आस हनुमान नीर मँगावे
वैसे सबहि झुठा है निंदा की बात सुनावे।
समींदर तान्हो चीरत कैसों साधु माँगत दान
बहिणी कहे जन निंदक है रे बाको साँच न मान॥

बहिणाबाई के अन्य पदों की भाषा में भी व्यवस्था नहीं है। उसमें बंदा, हजूर, साहेब, फिकीर, अल्ला, जिकिर, पीर, हुसीयार आदि विदेशी शब्द दिखलाई देते हैं। इन शब्दों का रामदास और तुकाराम के समय में महाराष्ट्र में काफी संचार हो गया था। तुकाराम के पूर्ववर्ती संत एकनाथ की रचनाओं में भी अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता है।

बयाबाई

महाराष्ट्र में बयाबाई और बाइयाबाई नामक दो स्त्री-संतों का उल्लेख मिलता है। आजगांवकर दोनों को एक मानते हैं; परन्तु 'महाराष्ट्र सारस्वतकार' भावे दोनों को भिन्न मानते हैं। बयाबाई के मठ की उत्तराधिकारिणी संभवतः बाइयाबाई थीं, और बयाबाई रामदास की शिष्या थीं। 'समर्थ प्रताप' के रचयिता गिरिधर बाइयाबाई के शिष्य थे और उन्होंने अपने ग्रंथ में उनका उल्लेख किया है। बयाबाई का २४ वर्ष तक जीवन-लीला-क्रम चलता

रहा। इस अवधि में उन्होंने न जाने कितने जीवों का उद्धार किया।[1] परन्तु बयाबाई तो रामदास को ही अपना गुरु कहती हैं—

'रामदास गुरु उन की दासी।
दास बचन फिरे देस बिदेसी।'[2]

(मैं रामदास गुरु की दासी हूँ, रामदास के वचनों को देश-विदेश में फिर कर फैलाती रहती हूँ।)

अतएव बयाबाई और बाइयाबाई दो भिन्न स्त्री संत हैं। बयाबाई के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। वे रामदास स्वामी की शिष्या थीं, इसे वे स्वयं स्वीकारती हैं। अतएव उनके समय में वे निश्चित रूप से रही हैं और 'देश-विदेश' की उन्होंने यात्रा भी की है।

रचना

बयाबाई की जो थोड़ी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, वे हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं में हैं। उनकी रचनाओं में आत्म-विभोरता और प्रासादिकता है। गुरु के प्रति कितनी स्निग्ध आस्था है—

'क्या कहूँ रे गुरुनाथ की बात में (मैं)।
मस्त भया है दिल मेरा रंग में
लाल रंग में सफेद खुला है।
कोइ नहि जाने आप भुला है।
जब सद्गुरु के पग लीन होना
रामदास गुरु पथ की दासी।
दास बया फिरे देस विदेसी।'

एक गीत में अरबी-फारसी का खूब रंग चढ़ा हुआ है—

'अल्ला हे बेफिकीर मे कहाँ जावो रे।
जाहाता वोहि खडा येहि मेरें नैनोरे।
नजर के सदर मे खल्के हजर होरे।
रात दिन जाहा नही सोहि खुदा पायोरे।
जी लिया जान लिया मेरा मुजाका नही
जब तो बेयान हुवा आज कुछ सुनता नहि रे।
पल पल के खेल न्यारे जिसके हजारो हुवे,
रंगातीत मेरा सांईदास बया को मिला रे।'

---

१. कित्येक जीव उद्धारिले जाण।
चारमासी वर्षं परमार्थं केला॥ [समर्थ प्रताप ११ वाँ, समाज]

२. महाराष्ट्र कवयित्री—पृष्ठ २०६।

दिल में ही यह जग समाया हुआ है। वहीं अन्तर्मुख होकर 'झूले में झूलो; जनम मरण से छुटकारा मिल जायगा—

'जायो (जाओ) सखीरी जहा गुरु बैठा
जिसके दिल में येहि जग बैठा ।। ध्रुवपद ।।
बाग रंगेला मेहेल बना है।
इस झुलने पर झुलो रे भाई।
जनम मरन की भूल न आई।

'दासबया' कहती है—

'दास बया कहे गुरु भैया ने
मुझ कू सुलाया सोहि झूलने।'

गुरु के अनुग्रह से वह हृदय के हिंडोले पर झूल कर विभोर हो सकी है। बयाबाई गुरु के उपकार बखान करते-करते तनिक भी नहीं थकतीं—

ध्याइये गुरुपग अघमोचन। सुखदायक भवाब्धितम ।।ध्रु।।
चिद् गगन में आसन खूला। जापर सद्गुरु राज रमीला ।।
सूर्यचंद वो दिवटि जलत हैं,
जब देखा तब डूब गई तन ।।
जाकी सत्ता जगमों भरि है जां देखो तहाँ ढाड रही है,
सो सद्गुरु किरिपा सो मिलती, सब छांड के पग जा सरन।

विद्वत्ता साथ नहीं देती, गुरु ही साथ देता है—

लिखा पढ़ा कछु संग नहि आवे,
अंतकाल में सबही जाये।
जोरु लडके महल मजालस
यहां रहती फेरे आपत्ति जाना।
दिल का मेहर मिल गया दिल को,
तारनहारा गुरु है सब को।
दास बया कहे कछु नहि देखा
जब देखा तब उलटा नयन।

स्वर्गीय राजवाड़े ने उचित ही कहा है कि बयाबाई की रामदास पर अपरम्पार भक्ति थी—इतनी अधिक कि किसी पतिव्रता स्त्री की अपने पति पर भी न होगी। संभवतः इसी कारण लोगों को फबतियाँ कसने का भी अवसर मिला हो। वह प्रेम में इतनी भूली-भूली दीख पड़ती है कि अपने गुरु को 'भाई' तक से संबोधित कर बैठती है। मराठी अभंगों में भी उसने इसी प्रकार की बेसुधी दिखलाई है।

बया की हिन्दी में बहुत कुछ स्वच्छता है। मुस्लिम प्रभाव से जनता में अरबी फारसी का प्रचलन हो गया था। कवि भी उन्हें अपनी रचनाओं में प्रयुक्त करने लगे थे। इसके अतिरिक्त बयाबाई ने उत्तर भारत के नगरों की यात्रा की थी, जहाँ विदेशी शब्दों का चलन लोकभाषा में महाराष्ट्र की अपेक्षा अधिक था। अतः बया की भाषा में इनका मिश्रण स्वाभाविक ही है।

बयाबाई की देहलीला कब समाप्त हुई, इस संबंध में साहित्य के इतिहास मौन हैं। इस क्षेत्र में शोध की आवश्यकता है।

हरिहर

ये संत कवि शक सं० १६६१ (ईसवी सन् १६४०) के पूर्व हो गये हैं। ये कहाँ हुए हैं, यह ज्ञात नहीं है। इन्होंने हिन्दी, कन्नड़ और मराठी तीनों भाषाओं में रचना की है। इनका हिन्दी में लिखा हुआ निम्नांकित पद मिलता है, जो संभवतः शक सं० १६४० में रचा गया है—

साहेब मन्न प्यारा आपे आप हुवा सारा
सबसे भरपुर होकर आंखर सब सु समझय न्यारा।
मुझमें मध्य कु बेचुन[1] कर करु कुपट दिलका भारा।
उठत बैठत सोवत जागत, हरिहर पद मो थारा।

इस पद के 'सु' और 'थारा' में गुजराती और गुजराती मिश्रित निमाड़ी हिन्दी की छाया है।

केशव स्वामी

शक संवत् १६०० के लगभग केशव कवि, जो बाद में केशव स्वामी कहलाये, पैठण के आसपास कहीं हुए हैं। शिवाजी महाराज के सम-सामयिक हैं। हैदराबाद में इनकी समाधि है। इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा 'सिद्धेश्वर→नारायण→केशव' दी है। इनके हिन्दी में पर्याप्त पद मिलते हैं, कुछ प्रकाशित हैं और बहुत से अप्रकाशित हैं। हैदराबाद की मराठवाड़ा साहित्य-परिषद् इनके पदों का संग्रह कर रही है। इनके पदों में कृष्ण की भक्ति उमड़ी पड़ती है; पर ये महाराष्ट्रीय संतों की भाँति ही निर्गुण भक्त हैं। इनका 'माधव' सगुण होकर भी 'निर्गुण' है। जब-जब ये भीतर झाँकते हैं, 'परमसुन्दर कृपामयी मूरती' दिखलाई देती है।[2] वह मूर्ति 'चंदन चर्चित है, उसके भालपर कस्तूरी का लेप है और मस्तक पर मुकुट है। वह पीत पटधारी है और गोकुल में विहार करती है। पर उसी मूर्ति में राम भी झलकते हैं। इनका एक पद है—

'लागी हो गोविन्दा से पिरती[3]
हृदय कमल में जब-जब देखूं। परम सुन्दर परी श्याम की मूरती।[4]

---

१. बेचैन
२. देखिए परिशिष्ट, पदसंख्या-८
३. प्रीति
४. मूर्ति

धन सुत संपति कछु नहि आवत,
निशिदिन सुखरुप हरीगुण गावत,
आदि पुरुष हरिनंद का सुत,
निरखत नयरो[1] डरे जमदुत ।[2]
आनन्द घन मन मोहन श्याम,
रहत केशव मोकुं[3] मिलाया राम ।'

ये अपने अभागी मन से कहते हैं—

'राम सुमीरण करीय अभागी,
त्रिभुवन नाथ सीतापति राघव हृदय कमल में धरीय अभागी ।'

मोहन के गुण गाकर भी ये कहते है, 'मैं राम जपत हूँ माईरी ।'

इस प्रकार इनकी केशव-भक्ति व्यापक है । भक्ति के लिए किसी भी 'प्रतीक' के साथ तन्मय हो जाते हैं । जब मन में 'राम' भर जाता है तो भक्ति-रस भीतर समा नहीं पाता, बाहर अनुभावों के रूप में छलक ही पड़ता है :—

'आज राम मेरो मन में भरो रे ।'
देह विदेह की सुध बिसरी रे, लोक लाज को काम सरोरे ।
शाम सुंदर की रती मंकु[4] लागी, औरै कछु समजत नहीं रे ।
आसन बासन सबही भुलगई, रुपनिरखि के चकित रही रे ।
प्रेम नीर अंखियां झरती, रोम फरकते बुंद ठरे रे ।
मैं तो पिया के दर्श मगन भई, मनमहि कोउ कैसे रहो रे ।
केशव प्रभु सुं निकट दिल रही, जेल (जल) माही जैसे लवन गिरोरे ।'

पानी में नमक के गिरने से क्या दशा होती है, वही दशा उनकी हो गई । अर्थात् वे आराध्य में घुलमिल गये । कितनी तन्मयता है इनमें ! संतों की चाकरी में इन्हें आनंद आता है । ये कहते हैं—

'संतन की भई बेटी हो बाबा ।
भजन दाल, ज्ञान घृत सुं खावती आनंद रोटी हो बाबा ।
प्रेम निजामृत पीवती पीवती, बहुत पड़ी हम लाठी हो बाबा ।' (परिशिष्ट पद-संख्या ३३)

भजन, ज्ञान और आनन्द का उपयोग उन्हीं के सानिध्य से प्राप्त होता है । संसार तो जंजाल है । उसे छोड़ दीजिए ।

---

१. निकट
२. यमदूत
३. मुझे
४. मुझे

फिर तो बड़ी मस्ती और विश्वास के साथ आप घोषित कर सकेंगे—

'लाल बड़ा बे, गोपाल बड़ा बे
हर वक्त हरदम मेरे दिल में खड़ा बे।' (परिशिष्ट पद-संख्या ३४)

और 'हम तो ब्रह्म भुवन के राजे—
बोध दमामा जब तब बाजे।' (परिशिष्ट पद-संख्या २४)

केशव स्वामी की अभिव्यक्ति में बहुत स्पष्टता है और फक्कड़पन भी। अपने गुरु के संबंध में वे कहते हैं—

'अपने नजिक मुझे आजि बुलाया।
संसार बैरि मेरा मार चलाया।
हुशार दिवान मेरा नाम रखाया।
महबुब मेरा (मुझे) मुझ में बताया॥'

गुरु ने ही '*उस महबूब*' का पता दिया कि वह कहीं बाहर नहीं है, अपने भीतर ही है।

इसीलिए कहते हैं—'खबर धरो याद करो वस्ताद[1] के पाव[2]।'

क्योंकि वह 'साईं' को मिलाता है। इसलिए वह शिर पर चरण धर कर भी चले तब भी स्वीकार है।

बड़ी सरल चलती भाषा में हृदय की विभोरक स्थिति अंकित करते हैं—

'कमल नयन निरखि बिसर गइ धंदा
देह थे[3] विदेह भई पाइय स्वानंदा।' (परिशिष्ट में—अतिरिक्त पद सं० ४)

शिवकालीन होने से इनकी भाषा में अरबी फारसी का अधिक मिश्रण है। शब्दों की वर्तनी में महाराष्ट्र के संतों ने उनके ह्रस्व-दीर्घ रूप की चिंता नहीं की। वे तो पद गाते थे। अतएव गाने में आवश्यकतानुसार उनके उच्चारण-काल को कम-अधिक कर खींच लेते थे। इनके अप्रकाशित पद 'अतिरिक्त पद' शीर्षक के अंतर्गत रखे गये हैं, जो मुझे हैदराबाद के मराठवाड़ा साहित्य-परिषद के हस्तलिखित ग्रंथागार से प्राप्त हुए हैं।

गोपालनाथ

ये औरंगाबाद के निकट सलाबतपुर के रहनेवाले हैं। इनकी जन्मतिथि अज्ञात है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने शक सं० १६८८ में श्रावण बदी अमावस्या को त्रिपुरी में जीवित समाधि ग्रहण की। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—नृसिंह सरस्वती—जनार्दन स्वामी—एकनाथ—नित्यानंद—कृष्णनाथ—विश्वम्भरनाथ—मुरारनाथ—रंगनाथ—गोपालनाथ।

---

१. उस्ताद
२. चरण
३. से

इनके मराठी में ओवीबद्ध 'सिरोमणि' और 'समाधि बोझ' नामक ग्रंथ तथा अभंग एवं पद हैं।

इनका निम्नलिखित हिन्दी पद है—

कर विचार मन रे, तू क्या करे गुमान।
दो दिन के मेजवान, आखिर जायगा नादान।
क्या साथ लाया ले जायगा नहीं।
आया अकेला जब जायगा तुही।
भाइ बहिन लड़के तुज[1] काम न आवेंगे।
बांधमारे जम के दूत तुजको[2] न छुडावेंगे।
कर सवदा[3] सुकृत का तुज काम आवेगा।
जब बिच आत्माराम बिहरि है कृपाल।
साधु संग बुझले भरपूर है गोपाल।

पद में निवृत्तिभाव और नैराश्य है। राम-नाम का संबल ग्रहण करने का संतोपदेश है।

---

१. तेरे
२. तुझको
३. सौदा

चौथा अध्याय

पेशवाकालीन और पेशवाओं के पश्चात्

मध्व मुनीश्वर

हैदराबाद राज्यान्तर्गत पैठण और औरंगाबाद में मध्वमुनि की मधुस्रावी रचनाएँ अधिक संख्या में प्राप्य हैं। इनका जन्म कब हुआ, यह कहना कठिन है पर श्री राजाराम प्रासादी के अनुसार नीरा नदी के तट पर 'कलबोली ग्राम उत्तम नगरी' इनका जन्म स्थान है[1] और मूल नाम महादेव है। कवि-काव्य-सूचीकार ने जन्म-शक १६११ दिया है।[2] 'मध्वमुनीश्वराची कविता' के संग्राहक ने इनका मूल नाम त्र्यंबक और इन्हें नाशिक का रहनेवाला बतलाया है। पिता नारायणाचार्य देशस्थ, ऋग्वेदी और माध्व सम्प्रदायी वैष्णव थे। त्र्यंबकेश्वर की कृपा से पुत्र होने के कारण पिता ने इनका नाम त्र्यंबक रखा। महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे इनका मूल नाम त्र्यंबक होने की संभावना मानते हैं। किंवदन्ती के अनुसार इन्हें स्वयं शुक्राचार्य ने उपदेश दिया और भेदाभेदातीत बना दिया। मध्वाचार्य ने इनका नाम मध्व मुनीश्वर रख दिया। तीर्थ-यात्रा करते करते ये औरंगाबाद पहुँचे और वहाँ किसी 'निपट निरंजन' से इनकी भेंट हो गई। वहां से ये सेंदुरवाड़ा गये जहाँ इनका अधिक काल व्यतीत हुआ। वहीं शक १६५३ मार्गशीर्ष शुद्ध पूर्णिमा को जिस समय सूर्य अस्त होने ही वाला था और अमृतराय कीर्तन कर रहे थे, इनकी देह-लीला समाप्त हो गई। इनके संबंध में डा० पोतदार लिखते हैं—"तुकाराम और रामदास की अन्तर्भेदी वाणी स्तब्ध हो गई और वांङ्मय में कंकण की रुणत्कार तथा नूपुर की झणत्कार सुनाई देने लगी। ऐसे समय में मध्व-मुनीश्वर और अमृतराय आदि ने अपना वाग्विलास किया।......ये उत्तम कीर्तनकार रहे होंगे। इनके कितने ही पद्य मधु के समान मधुर-रस-पूरित हैं।"[3]

---

1. महाराष्ट्र सारस्वत पृष्ठ ६०१।
2. वही-पृष्ठ १०२८।
3. वही-पृष्ठ १०२९।

मध्वमुनीश्वर ने मराठी में धनेश्वराची गोष्ट, चोलराजा ची कथा, धन-लोभ्याची गोष्ट और संभवतः प्रल्हाद चरित्र[1] नामक कथा-काव्य लिखे हैं। साथ ही स्फुट मराठी अभंग तथा संस्कृत एवं हिन्दी में रचनाएं की हैं। औरंगाबाद में रहने से इनकी भाषा में 'मुसलमानियत' अधिक है अर्थात अरबी-फारसी शब्दों की बहार है। इनकी रचनाओं में संतों के मुख्य मत मिलते हैं। यह भी घट-घट में एक ही 'रब' अनुभव करते हैं और उसे सुन्दर उदाहरण से समझाते भी हैं—

सब घटपूरन एक हि रब है,
जौ तसबी बीच तागा।

जिस प्रकार 'माला' के मणियों के बीच तागा रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक घट रूपी मणि के बीच परमात्मा है।

'उससे' मिलने की तालावली भी कितनी तीखी है! सूफियों के समान परमात्माको माशूक कहकर पुकारते हैं। (यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि हैद्राबाद-राज्य में मध्यकाल में सूफियों का अधिक संचार था। उनके कई हिन्दी-प्रबन्ध-काव्य फारसी लिपि में पाये जाते हैं।

माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव।
कपट का घुंघट खोल सिताबी इष्क मिठाई चखाव ॥
आशक का तेरा जियडा चातक, कर मेहर बरखाव।
दिल कागज पर सूरत तेरी, गुरु के हात लिखाव।
मध्वमुनीश्वर साई तेरा अस्सल नाम सिखावं ॥

दिल के कागज पर तस्वीर अंकित करने की कल्पना अभिनव है!

लोग माया के गुलाम बन जाते हैं। इसीलिए 'साई कु सलाम' नहीं करते। अतः ये चेतावनी देते हैं —

'यारो समजोरे दो दिन की जिनगी यारो।
नंगे आना नंगे जाना काका बाबा भाई,
काकी अंमा नानी दादी कालुच देखि लुगाई।
कहाँ की संपत ऊँच हवेली कहां का खेल कबीला।
कहां की नौबद हाथी घोड़ा जहां का वहीं तबीला ॥

'वंध्या के सुत के समान' सारा प्रपंच (संसार) इंद्रजाल है—झूठा है। इसलिए कहते हैं कि, 'जिन्ने तुज कू पैदा किया है, उसका सन्देशा कर', कबतक सोया रहेगा? 'इस देह कू देख तो उसमें काल कहर' की आग लगी हुई है।

अन्य संतों की नाई आत्म-शुद्धि पर भी मध्वमुनीश्वर का आग्रह है—

'जब कर दिल दिवाने पाक,
झूठी माया झूठी काया, आखर सारी खाक ॥'
फजर नीकी बंदगी करना, अकल से होना च्याख,

---

१. यह त्र्यंबक के नाम से लिखा गया है।

कहत माधोनाथ गुसाई अपना *पानी राख*।

(प्रातः भगवान की बंदगी करो और अपने तेज की रक्षा करो। यही सार है।)

ये साधक को अपने साथ ले चलने को तैयार हैं, संसाररूपी 'पानी' में कमल पत्र के समान रहने का उपदेश देते हैं—

अब चल भाई हमारे सात;
जो कुच होना होयगा सो परमेसर हात
अपने महल को अकल से जाना, घोर अंधारी रात
इस पानी में वैसा रेना, जैसा कमल का पात।'

ग्रंथपाठ और साधनाहीन साधुवेश पर भी व्यंगोक्तियाँ हैं—

बम्हन पढ़ा है बेद कू
समजा नहीं उसीके भेद कू
पूजे फत्तर के देव कू पंडित हुवा तो क्या हुवा ?
अंदर नहीं दिल पाक रे
सेवा जिकिर[1] कू च्याख रे
ऊपर लगावे खाक रे। जोगी हुवा तो क्या हुवा ?
माला लिई हे हात में
जपता रहे दिनरात में
दिल नहीं उस बात में। भजनी हुवा तो क्या हुवा।
फजर किताबां खोलता
मु से[2] नसीहत बोलता
अपने अमल नहिं डोलता[3]। काजी हुवा तो क्या हुवा।

शरीर का 'बंगला' से रूपक बाँधा है—

'बंगला जोर बनाया वे, वा मो नारायण डोले
मट्टी ऊपर पानी वा मो लगाए बत्ती
सात साल का महल बनाया खूब बसाई बस्ती
चार देहे का मठ बनाया, पचीस लगाए फत्तर
पांच तखत पर पांच बगीचे नहर चलाये अंतर।'

संतों में 'उदाहरण' सहज साधित होते हैं। फकीर रमता ही है, एक जगह नहीं ठहरता, इसे समझाकर वे कहते हैं—

रुखा पीपल पात है
जैसा पवन से जात है
वैसी फकीर की जात है।
रमता नवखंड में।

---

१. नामस्मरण। २. मुँह से। ३. स्वयं आचरण नहीं करता।

कहीं-कहीं रूप-चित्रण भी सुन्दर बन पड़े हैं। 'मोहनलाल' की 'मूरत' का एक लुभावना चित्र देखिए—

'भज मन साहेब मोहनलाल
कानन कुण्डल मुगुट बिराजे, गलबीच मोतन माल
मृगमद आधो तिलक लगायो, सौंधे भीने बाल
पति लगोरी दामिनि चमके ऊपर बोढी साल
कुंज गलन में बंसि बजावे गावे माधव ख्याल।'

'सौंधे भीने बाल' की व्यंजना कितनी मधुर है!

अपने चारों ओर के व्यावहारिक जीवन से भी वे उदासीन नहीं हैं। होली का उल्लास मनाने को तो वे कहते हैं, पर संयम के साथ—

'रंग बिरंगी होकर जावो दो दिन की दुनिया में
अपने मू से फजियत होते इसमें क्या सुघराई।

मध्व-मुनीश्वर की भाषा में 'दक्खिनीपन' होते हुए भी कवित्व है, जो उनके कतिपय रूपकों, उपमाओं और उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। इनके कुछ हिन्दी-पदों में अमीर खुसरो की तरह दो भाषाओं का मिश्रण भी है। एक पंक्ति हिन्दी में और दूसरी मराठी में है। उदाहरणार्थ—

जिन्ने तुजकू पैदा किया कर उसका संदेशा रे,
इंद्रजाल तब प्रपंच सारा सुत वंध्येचा जैसा रे,
तन जोबन आशक हुवा क्या पाया आराम रे
इंद्रियजन्य सुखातें भावुनी नेणसी आत्मा समरे।
क्यों गफलत में गाफल हुवा किस लालच पर प्यारे
किरण न जाणुनी भ्रमती हरणें जातीं उदका मासा रे।
किआस नहीं किये कुफर से क्यों करहि हुवा दिवाना रे
आत्मा तूं अविनाश हौऊनी मानिसी जन्मा मरणारे।

इस प्रकार की मिश्र रचनाओं को द्रविड़ भाषाओं के साहित्य में 'मणिप्रवाल' शैली कहा जाता है।

शिवदिन केसरी

शिवदिन केसरी महाराष्ट्र की नाथ-परम्परा के प्रसिद्ध संत माने जाते हैं क्योंकि वे अपनी गुरु-परम्परा आदिनाथ से प्रारम्भ करते हैं।[1] ज्ञानमार्गी होते हुए भी उनमें ज्ञाननाथ के समान भक्तिरस का स्रोत झरता है। पैठण में 'गंगा' के किनारे शिवदिन का वह मठ आज भी विद्यमान है, जहाँ उनके कीर्तन भजन होते रहते थे। उनका जन्म

1. गुरु परम्परा—आदिनाथ—मच्छेन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गैनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञाननाथ (उर्फ ज्ञानेश्वर)—सत्यामलनाथ—गैबीनाथ—गुप्तनाथ—उद्बोधनाथ—केसरीनाथ—शिवदिननाथ।

शक सम्वत १६२० है और समाधिकाल माघ बदी १३ शिवरात्री शक १६९६ है। उनके गुरु केसरीनाथ राशिन में सरकारी नौकर थे, उद्बोधनाथ के ज्ञानेश्वरी के प्रवचन से प्रेरित होकर वे संसार से विरक्त हो गये और नौकरी छोड़ कर ईश्वर-भक्ति में निमग्न रहने लगे। उनके मल्हारीनाथ और शिवदिननाथ दो प्रसिद्ध शिष्य हुए, जिन्होंने राशिन और पैठण में अपने पृथक् मठ स्थापित किये। शिवदिननाथ, जो बाद में शिवदिन केसरी के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपने समय के बड़े प्रभावशाली संत थे। वे यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम कृष्णाजी पंत था। शिवदिन केसरी ने शक १६२८ में गुरु-मंत्र की दीक्षा ली।

उन्होंने 'विवेकदर्पण' और 'ज्ञान-प्रदीप' के अतिरिक्त अन्य फुटकर रचनाएँ भी की हैं। हिन्दी के जो पद प्राप्त हैं, उनमें उनके कवित्व की अच्छी झलक मिलती है। संसार की असारता और क्षणभंगुरता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, नर में नारायण का वास, आडम्बर का विरोध, ये परम्परागत संत-विषय हैं, जिनपर शिवदिन केसरी ने लेखनी चलाई है।

संसार में कोई किसी का साथी नहीं है। उसमें मनुष्य अकेला आता है और अकेला ही जाता है। 'हुजुर' की पाती आई कि डेरा उठा। इसलिए मनुष्य को तन, मन, धन का गर्व नहीं करना चाहिए। वे कहते हैं—

"किसका कोन संघाती बाबा ॥ ध्रुवपद ॥
अकेला आवे अकेला जावे, हात हुजुर की पाती
तन मन धन जो गर्वहि मत कर, कहत पुरान की पोथी।
मति तात जोरू लरका घर होय मसान की माती
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब देख दिल भर साथी ॥[1] "

हमारा साईं सब घट में है, इसलिए सबसे प्रेम-प्रीति से रहना चाहिए।[2]

वे कहते हैं, उसका स्मरण करने के लिए माला फेरने की क्या आवश्यकता है! जब मन में वह समा जाता है, तब अजपाजप होने लगता है—

"अजपाजप करता है, कर बिन मन मनका फिरता है।"

मन बिना हाथ के ही मनके फेरता है और इस तरह अखंड जाप जारी रहता है।

'उसे' यहाँ-वहाँ देखने के लिए भटकने की क्या आवश्यकता है?

"नैन आरसा देख दिवाने कर साहिब सो मेहेरा।"[3]

यहाँ उर्दू शायर की "दिल के आइने में है तस्वीरे यार
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥"

का स्मरण हो आता है।

---

१. देखिए परिशिष्ट पद-संख्या २।
२. देखिए परिशिष्ट पद-संख्या २।
३. परिशिष्ट पद-संख्या ११।

'केसरी' संसार से कुछ नहीं चाहते, केवल प्रेम चाहते हैं, सत्याचरण चाहते हैं। वे कहते हैं—

"हम फकीर जनम के उदासी निरंजनवासी
सत की भिच्छा दे मेरी माई मन का आटा भरपूर
बार बार हम नहिं आनेके हरदम हार खुसी।
हम फकीर .... निरंजनवासी ॥
सोना रूपा धेला पैसा ओ कुच[1] हम ना चाहें
प्रेम कि भिच्छा ला मेरी माई, हम पंची[2] परदेसी।
हम फकीर जनम के उदासी निरंजनवासी ॥"

'परदेसी निरंजनवासी' के हृदय में प्रेम की कितनी गहरी पीर है—

वह झोली लेकर उसकी घर घर भीख माँगता है। इन सरल शब्दों में भावों की कितनी कोमल व्यंजना है! योगियों की नाईं वे भी 'समाधि' लगाते 'अनहत सिंगी बाजा' सुनते और 'उन्मनि' अवस्था में पहुँच कर रीझ जाते हैं।

"उलट पलट मो दर्शन गाढा
रूप रेख बिन पुरुख ठाडा।
चंद, सुरज बिन तेज उघाड़ा
कर्म शूल का मूल उखाडा।
समाधी लागी सहजी सहजा।
अनुहत सिंगी बाजत बाजा।
उन्मनि संगे सोमन रीझया
जाला ताहा नाहि आप विन दुजा।
चतुर्दल षडदल दशदल उलटा।
दवादशादल षोडस दल फाटा।
द्विदल पर किया चपेटा।
तब सहसदल भौरा पैठा।
अजरामर पद केसरि गुरु का।
पाया शिवदिन आदि अंत का।
अमृत पीया अर्धचंद का।
धोका नहि अब जनम मरन का ॥"

इसमें कबीर के समान कुडलिनी योग-साधना का विवरण है।

'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' (भूखा कौन सा पाप नहीं करता!) इस उक्ति की सार्थकता केसरी ने अनुभव की है। वे कहते हैं—

"देख सन्यासी देख फकीरा घर घर माँगे टूका
ईस पेट से चार (चोर) छिनाला ईस पेट से पैदा

---

१. कुच=कुछ। २. पंची=पंछी।

ईस पेट से ढोंग धतूरा किया पेट ने पैदा
ईस पेट से रख शिपाई राजा परजा मरते।
ईस पेट से अमीर उमराव मुलुक पर फिरते।"

'केसरी' केवल उन्मनी अवस्था में अमृत-रस ही नहीं पीते रहते थे, वे अपने समाज की स्थिति का भी निरीक्षण करते थे। अमीर-उमराव की लोकवृत्ति पर भी उनकी दृष्टि थी।

कबीर की भाँति 'केसरी' ने अपने 'अलख' का कान्ताभाव से स्मरण किया है—

"किन बइरी ने बैर कियो री
साजन को बहिराय दियो री।"

पर इस प्रतीक का अन्त तक निर्वाह नहीं हो पाया। वह 'ध्रुवपद' की 'स्थायी' पंक्तियों में ही रह गया। क्योंकि उसीके बाद 'साजन' की 'बहुरिया' का रूप बदल गया है। बहुरिया के स्थान पर 'योगी' सन्मुख हो जाता है—

"पेहरी मुद्रा भस्म चढ़ाया।
कान मो कुन्डल अलख जगाया।
खांदे पखारी हात मो झोली
गल बिच निर्गुण माला, सैली।"

और तब उसे 'अलख' खलक में ज्योतित दीख पड़ता है।[1]

हिन्दी-पदों में 'केसरी' का ज्ञानमार्गी संतरूप ही अधिक प्रकाशित हुआ है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि इस संत में काव्य-प्रतिभा है। उपमा, रूपक, विभावना आदि अलंकारों की अच्छी योजना सध गई है। यथा—

उपमा—सुपना सी जिंदगानी जानी (पद-संख्या ५)
विभावना—(अ) चंद सुरजबिन तेज उघाडा (पद-संख्या ८)
(आ) रूपरेख बिन पुरुख टाडा (वही)
(इ) कर विन मन मनका फिरता है (पद-संख्या १२)

केसरी की भाषा में मुसलमान-राज्य में बसने के कारण स्वभावतः दक्खिनी हिंदी की छटा है; पर उसमें ऐसे अरबी-फारसी शब्द नहीं हैं जो दुरूह हों, जनता की जिह्वा पर न चढ़ सकें।

अमृतराय

इनका कार्यक्षेत्र भी औरंगाबाद रहा है। ये मध्वमुनीश्वर के शिष्य कहे जाते हैं; परन्तु इन्होंने स्वयं 'अम्बिका सरस्वती' को अपना गुरु लिखा है। अपने एक ग्रंथ में इन्होंने माधव सरस्वती—विठ्ठल सरस्वती—अम्बिका सरस्वती—इस प्रकार गुरु-परम्परा दी है। इन्हीं के एक शिष्य सिद्धेश्वर ने अपनी गुरु-परम्परा 'पूर्णानंद—ज्ञाननंद—अमृतराय

1. देखिए परिशिष्ट पद-संख्या १।

दी है। अतः यह कहना कठिन है कि इन्होंने किससे दीक्षा ली। महाराष्ट्र सारस्वतकार का यह अनुमान ठीक है कि इन्होंने चार बार चार गुरुओं से उपदेश लिया होगा।[१] ये विदर्भ में बुलढ़ाना जिले के फत्तेखेड़ा गाँव के रहनेवाले थे। बाद में औरंगाबाद में जाकर बस गये। इनके संबंध में औरंगाबाद गजेटियर में लिखा है कि अमृतराय औरंगाबाद शहर के रहनेवाले, शक १६२० (सन् १६६८) में पैदा हुए और शक १६७५ (सन १७५३) में मृत्यु को प्राप्त हुए। ये ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे और सरदप्तर या मैनेजर की हैसियत से मुगल सूबेदार के यहाँ नौकर थे।" (पृष्ठ ३८३) ये प्रभावशाली कीर्तनकार भी थे। नानासाहब पेशवा इनके कीर्तन के ढंग से बड़े प्रसन्न होते थे। इनके वंशजों को उनके राज्य से जागीर बँधी हुई थी।

अमृतराय की साहित्य-सेवा—अमृतराय की मराठी के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी में भी अच्छी गति थी। इन्होंने मराठी और हिन्दी में प्रथम बार 'कटाव' नामक नए छंद को जन्म दिया। इसमें सानुप्रासिक चरण होते हैं जिनकी शब्द-योजना से ही अर्थ झंकृत हो उठता है। एक 'कटाव' की कुछ पंक्तियों का 'नाद' सुनिए—

"श्री वृंदावन मो व्रजराज विराजत है।
सत्य लोक ते ब्रह्मदेव जब गोप भेख धर देखन आये।
गोवन के लघु रच्छपाल कर पुच्छ धरत,
सिरमोर पच्छ गर गुंजगुच्छ बिछ लच्छ
श्री वच्छ चिह्न प्रभुतुच्छ गन्योबल परिच्छिबे को
बच्छा बाल सखा सकल चुराए।
ग्रह-ग्रह की बछिया नइ-नइ अछिया,
धोरी, धुमरी, कारी, पियरी, हरी विचित्रा, कपिला बरनी,
प्रतच्छ हरनी।
रंग, चाल, खुर सिंध भाल, गोपाल बाल
सब विष्णु अवतरे॥"

इस प्रकार अमृतराय ने कविता के क्षेत्र में 'कटाव' छंद का नूतन प्रयोग कर काव्य-रसिकों को मुग्ध किया। इनके मराठी कटावों का इनके परवर्ती कवियों द्वारा अनुकरण भी हुआ; पर जो रस अमृतराय के कटावों में है वह उनमें नहीं आ पाया।

इन्होंने शुक चरित्र, सुदामा चरित्र, द्रौपदी-वस्त्र-हरण, जीवदशा, दुर्वासयात्रा, रामचन्द्र-वर्णन, गणपति वर्णन आदि लम्बी वर्णनात्मक रचनाएँ की हैं। इनके शिष्यों में सिद्धेश्वर महाराज और माधव कवि का नाम प्रसिद्ध है।

सिद्धेश्वर महाराज

ये अमृतराय की शिष्य-परम्परा में आते हैं। इन्होंने स्वयं अपनी गुरु-परम्परा में पूर्णानंद और ज्ञानानंद के पश्चात् अमृतराय का नामोल्लेख किया है। इनकी कुछ

१. देखिए पृष्ठ १०१।

हिन्दी-रचनाएँ हमें हैदराबाद मरठवाड़ा साहित्य-परिषद के हस्तलिखित ग्रंथागार से प्राप्त हुई हैं। उनका एक पद है, जिसमें शरीर रूपी 'बंगले' का योग-परम्परागत वर्णन है—

"बंगला खूब बनाया वे
उसमो माधव सोया वे ॥ ध्रुव पद ॥
पंच तत्व की भीत बनाई तीन गुनन का गारा
राम नाम की छान छबाइ चानेहारा न्यहारा।
उस बंगले कु नव दरवाजे बीच पवन का खंभा।
आवे जावे सब कोई देखे, यही वड़ा अचंभा।
आशा दुराशा माया नाचे मन मो ताल बजावे
सुरत निरत मिरदंग बजावे, राग छतीसा गावे
बंगला खूब बनाया बे
उसमो माधव सोया बे ॥"

भाषा में उच्चारण और वर्ण-प्रक्रिया के जो चिह्न तुकाराम की भाषा की विवेचना के समय हम देख चुके हैं, प्रायः वे ही इनकी भाषा में भी लक्षित होते हैं। एक दो विशेषताएँ ये हैं—

ब के स्थान पर प यथा—खूब—खूप।

छ के स्थान पर च यथा—छानेहारा—चानेहारा।

सुदूर दक्षिण में बोली जानेवाली 'दक्खिनी हिन्दी' में भी छ का च उच्चारण पाया जाता है। इनकी खड़ी बोली में प्रांजलता और छंद में प्रवाह है।

माधव

अमृतराय के तीन शिष्यों में 'माधव' का उल्लेख मिलता है। ये भी अपने गुरु के समान 'कटाव' लिखने में पटु थे। इनके दो हिन्दी-पद प्राप्त हुए हैं। एक में 'रामधनी' को भजने का प्रबोधन है और दूसरे में रघुवीर की जयजयकार है। दूसरा पद मधुर 'प्रभाती' में गेय है ; पुष्ट ब्रजभाषा में है। उसकी कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"प्रात समय रघुवीर जगावे कौशल्या महारानी।
उठो लालजी भोर भयो है संतन को हितकारी।
बंदीजन गंधर्व गुण गावे नाचे थै थै[1] तारी।
शैल सुता शिव मारे ठाडे होत कोलाहल भारी।
सुन प्रियवचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख[2] उघारी।
चितवन अभय देत भक्तन को मुक्त भये नरनारी।
कर अस्नान दान नृप दीन्हे गो गज कंचन थारी।
जय जयकार करत धन्य माधव रघुकुल जस बिस्तारी।"

(पद-संख्या २)

---

१. दै दै।

२ पलक।

नरहरिनाथ

ये पैठणवासी प्रसिद्ध संत कवि शिवदिन केसरी के पुत्र तथा शिष्य हैं। शक संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ये हुए हैं। इनके अनेक मराठी पद मिलते हैं। इन्होंने अपने पुत्र को भी 'दीक्षा' दी। इनका एक हिन्दी-पद दिया जाता है, जिसे पढ़ने पर इनकी मस्तवृत्ति का सहज ही बोध हो जाता है। ये नाथपंथी रहस्यवादी प्रतीत होते हैं और उन्मनी अवस्था में पहुँचकर अमृत प्याला पीते और 'नाद' सुनते रहते हैं। पद इस प्रकार है—

"क्या बे किसी से काम, हम तो गुलाम गुरु घर के।
बेपरवाह मन मौजी राजा, हम अपने दिल के ॥१॥
नहीं किसी से दरकार, टुकड़ा मांगकर खाते हैं।
गुरू ज्ञान के अमल नशे में, हमेशा झूलते हैं ॥२॥
गगन मंडल में दस नादों का, अवाज सुनते हैं।
तीनों ऊपर धुनी लगाकर, बैठे रहते हैं ॥३॥
चाँद सूरज मशाल लेकर, आगे चलते हैं।
अर्धचन्द्र का अमृत प्याला, भर-भर पीते हैं ॥४॥
उलटी तुरिया होगई उन्मनि, मिल गई जाकर के।
पलख में रहना अलख जगाना, कलख जलाकरके ॥५॥
हुआ दिवाना फकीर भोला, भटकत फिरता है।
झूठी माया प्रीति लगाकर, गोते खाता है ॥६॥
नाहीं रहना काम करो कुछ, डेरा गिरता है।
नरहरि मौला जल्दी आकर, हुशार[1] करता है ॥७॥"

पद में 'महाराष्ट्रीय हिन्दी' का लचीलापन देखने योग्य है। पहली दो पंक्तियों में कवि की बेफिक्री और मनमौजीपन कितनी सरलता से व्यक्त हुआ है। 'क्या बे किसी से काम' और 'बेपरवाह बन मौजी राजा हम अपने दिल के' में कितनी अकृत्रिमता और बेतकल्लुफी झलकती है।

महीपति

ये भी शिवदिन केसरी की शिष्य-परम्परा में हैं। इनके गुरु का नाम नरहरि है जो शिवदिन केसरी के पुत्र तथा शिष्य हैं। महीपति ने मध्य भारत की यात्रा की और उज्जैन में अपना अधिक समय बिताया। ग्वालियर, उज्जैन, बड़ौदा आदि नगरों में भ्रमण करते रहे। वास्तव में ये पैठण के जनार्दन स्वामी के वंशज हैं। इन्होंने शक १४४४ को ग्वालियर में समाधि ली। इनके बहुत से अभंग, कटाव, लावनियाँ, पद आदि प्राप्त हैं। हिन्दी में भी इन्होंने रचनाएँ की हैं। जो पद नीचे दिया जाता है, उसमें भी नाथों के समान

---

१. होशियार।

कुण्डली का वर्णन है। इन्हें 'उन्मनी' में 'अलख ब्रह्म' के दर्शन हो गये, जिससे इनका सारा भ्रम दूर हो गया। इन्होंने समाधि-अवस्था का बड़ा सजीव वर्णन किया है—

साईं अलख[1] पलख[2] में झलके, लहलहाट बिजली चमक ॥
मन गरक[3] हुआ, मन गरक,
गुरु साईनाथ आज पाया, मुझ पकड़ दस्त[4] बैठाया,
दो अच्छर बीज पढ़ाया, मेरे सिर पर हाथ चढ़ाया ॥
अब तू बच्चा गुरु का बच्चा, देख परीच्छा
छइ बदन जुगुत रे जखड़[5]
मत डर जोर से पकड़,
जो आवे उसे दे छकड़,
आगे पीछे मोर की पांखे, लहलहाट बिजली चमके ॥१॥

नीचे धरनि ऊपर असमाना, दोऊ छोड़ बीच में जाना,
चल सरक, आगे चल सरक,
प्यारे उलट पुलट से चलना, साहब से जुगत से मिलना,
भुकुटी ऊपर, त्रिकुटी शीखर, ध्यान लगाकर,
खूब देख नजर से अभी,
रज सोना बिखरा सभी,
मूल माया की जो छबी,
छोड़ माया स्वरूप परजख, लहलहाट बिजली चमके ॥२॥

मोतियन का मेह बरसता, सो ब्रह्मा ज्ञान विधाता,
खूब घटा, बनी खूब छटा,
तारा सो बिसन रूप सजता, पालनवाला भरमता,
गोल गुण्डाला, चकर उजाला, शिव मतवाला,
मही रूप तीनों का हुआ,
चल आगे और कुछ हुआ,
बड़ी लहर बहर बेनवा,
मन उन्मन होके गरके, लहलहाट बिजली चमके ॥३॥

---

१. अदृष्ट परमात्मा।
२. पलक।
३. गर्क।
४. हाथ।
५. जकड़।

नरहरि नाथ गुरू मेरा, मैं महिपत गुलाम तेरा,
क्या कहूँ, अब क्या कहूं,
जाको वेद न जाने डेरा, वो मैंने नयनन सों हेरा,
सच्चा साई, गुरु गोसाई, राह बताई,
जिससे सकल भरमना मिटी,
डोरी जनम मरन की टूटी,
कोठडी करम की फूटी,
लागी लगन मगन दिल हरखे, लहलहाट बिजली चमके ॥४॥"

कृष्णदास

इस नाम के महाराष्ट्र में बहुत से संत हो गये हैं। इनके संबंध में कहा जाता है कि ये जयराम स्वामी बड़गाँवकर के गुरु थे। भक्त लीलामृत अध्याय ५० में लिखा है कि भूल से इनका विवाह नाई की लड़की से हो गया था ; पर इन्होंने उसके साथ अंत तक 'निर्वाह' किया। परन्तु कवि जयराम स्वामी बड़गाँवकर के गुरु का नाम 'कृष्णाप्पा स्वामी' है और वे रामदास-कालीन हैं। कृष्णदास पेशवाई के अंतिम प्रहर के कवि प्रतीत होते हैं। श्री भावे के अनुसार हम उन्हें 'बाजिराव महाराज' के समय का ही मानते हैं। ये वारकरी पंथ के अनुयायी हैं[1]। इनकी एक विनोदी मराठी रचना है—

"बाजिराव महाराज अर्जि ऐकतो बायकाची
चल गडे, जाउं पुण्याशी हौस मोठी माझ्या मनाची।"

(सुनते हैं, बाजीराव महाराज स्त्रियों की 'अर्जी' सुनते हैं। चल सखी, पुणे चलें, मेरे मन में वहाँ जाने की बड़ी हौंस है।)

इनका एक हिन्दी-पद प्राप्त है जो 'ध्रुवपद' में है—

"जसोमत सुत नंदलाला, ब्रज की गैल डोले।
पीतांबर कछनी कस गव्वन के संग जात,
फेट मुरली मुकुट शीस बैस बैन बोले।
जसोमत सुत नंदलाला ब्रज की गैल डोले ॥१॥
ग्वाल बाल संग लिये अंग अंग जोरे
हात लकुटि दूध मटकि सखियन सो जोरे ॥२॥ जसोमत ॥
वृन्दावन कुंज जात गावत हरि कृष्णदास,
या छबि न कही जात रसनामृत थोरे ॥"

इसमें कृष्ण की वृन्दावन-लीला का बड़ा सरल चित्रण है। प्रतीत होता है कि ब्रजभाषा में इनकी गति रही है, तभी वह पर्याप्त परिमार्जित है।

---

१. देखिए महाराष्ट्र सारस्वत—पृष्ठ ८१०।

देवनाथ महाराज

ये विदर्भ के रहनेवाले थे। इनका जन्म शक-संवत् १६७६ (ई० सन् १७५४) और प्रयाणकाल ईसवी सन् १८२१ निर्धारित होता है। बचपन में इन्होंने अपने ग्राम सुर्जी में अखाड़ा खोलकर कुश्ती, व्यायाम आदि के प्रति बालकों की रुचि जाग्रत की। बड़े होने पर ये 'मल्ल विद्या' के उस्ताद बन गये। पर, मन भीतर-ही-भीतर भगवान की भक्ति में पगा रहता। इन्होंने बल-शौर्य के प्रतीक 'हनुमान' को अपना आराध्य बनाया। कहते हैं, एक बार हनुमान ने इन्हें दर्शन भी दिये। तब से बराबर इनकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो गई। इनमें पूर्ण वैराग्य छा गया। नाथ-पंथी भागवत-सम्प्रदायी गोविन्दनाथ को जब यह ज्ञात हुआ कि सुर्जी में देवनाथ-नामक कोई साधक निवृत्तिमार्गी हो गया है, तब वे स्वयं वहाँ गये। उस समय देवनाथ हनुमान के मंदिर में ध्यानस्थ बैठे हुए थे। जब गोविंदनाथ ने इनसे कहा कि मुझे तुम्हें दीक्षा देने की प्रेरणा हुई है, तब ये बोले कि 'मेरे तो गुरु ये हनुमान हैं।' यह सुनकर गोविन्दनाथ चले गये और वहीं नदी के किनारे ठहर गये। किंवदंती है कि गोविन्दनाथ के जाने पर हनुमान ने देवनाथ से कहा कि 'तू गोविन्दनाथ के ही पास जा और उससे दीक्षा ले। यह मेरा आदेश है।' यह सुनकर देवनाथ गोविन्दनाथ के पास गये और उनसे 'दीक्षा' ली। इसके बाद ये ग्रामों में घूमते और जनता को अध्यात्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते। कहा जाता है कि हनुमान ने इन्हें वरदान दिया था कि ये जो कुछ मुख से बोलेंगे, वह काव्य बन जायगा। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर ये पुणे, सातारा, नागपुर, ग्वालियर, काशी, रामेश्वर, द्वारका आदि स्थानों में गये। जिस समय ये पुणे पहुँचे, सवाई माधवराव पेशवा राज्य कर रहे थे। जब पेशवा की माता ने इन्हें अपने प्रासाद में निमंत्रित किया तब इन्होंने कहा, 'श्रीमानों के दर्शन करने की मेरी इच्छा नहीं है।' पर 'माताजी' ने जब बार-बार आग्रह किया कि मैं मंत्र-ग्रहण करने को आमंत्रित कर रही हूँ तब ये प्रासाद में गये। तीन-चार दिन वहीं भजन-कीर्तन करते रहे। जब स्वगृह लौटने की इच्छा प्रकट की तब पेशवा ने पालकी में बैठालकर इन्हें घर पहुँचाया। सुर्जी में इन्होंने अपना एक मठ स्थापित किया और एक सम्प्रदाय भी चलाया जो अब भी विद्यमान है। इस सम्प्रदाय के साधक प्रति शनिवार को भजन करते हुए भिक्षा माँगते हैं।

किंवदन्ती है कि देवनाथ के जीवन में कई चामत्कारिक घटनाएँ घटी थीं। हनुमान से संभाषण का उल्लेख ऊपर हो चुका है। कहा जाता है कि जब ये काशी में थे तब एक दिन एक स्त्री अपने मृत पुत्र को लेकर इनके निकट आई और आर्तनाद कर रोने लगी। देवनाथ ने भगवान से प्रार्थना की और बालक में प्राण संचरित हो गये। ग्वालियर में जिस मंडप में देवनाथ कीर्तन कर रहे थे—उसमें आग लग जाने से इनकी वहीं देहलीला समाप्त हो गई।

देवनाथ की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

आदिनाथ—विधि (ब्रह्मदेव)—अत्रिनाथ—दत्तात्रेय—जनार्दन—एकनाथ—नित्या

नंद—कृष्णानंद—विसोबानंद—मुरहारनाथ—रंगनाथ—गोपालनाथ—गोविन्दनाथ—देवनाथ। यह गुरु-परम्परा देवनाथ के प्रिय शिष्य सखे गोपाल के शिष्य माधव द्वारा रचित 'आरती' से ज्ञात हुई है।[1]

काव्य-रचना

इन्होंने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी काव्य-रचना की है। अभी तक इनकी सारी रचनाओं का यथावत् संकलन नहीं हो पाया है। स्व० वामन दाजी ओक ने कतिपय रचनाएँ 'कविता-संग्रह' नाम से प्रकाशित की हैं जिसमें हिन्दी-रचनाएँ भी हैं। ये पद कटिबन्ध आदि प्रकारों में हैं और ध्रुपद ताल में गाये जा सकते हैं। इनकी रचनाओं में भी कृष्ण-भक्ति का सरस रूप दिखलाई देता है। ये कृष्ण के प्रति अधिक आकृष्ट जान पड़ते हैं। एक पद है—

'जमुना तट पे निकट बजावे मधुर धुर्ना मुरली की
सुनत कानहू भई बावरी सूध न तन-मन की ॥
आधि रैन सुख चैन सखीरी मैं पिया संग सोई।
सुनत नाद मदमस्त धौर के विंदरावन आई ॥
कह री बजाई बंसी कान्ह ने मधुर लहर बाकी।
सुनत डार घर बार निकसी मैं बुद्ध सखी बहकी ॥
गरज-गरज के बरसे मेह बुंद बरी रखके।
आधि रात अंधियारी परी री बीच दामिन चमके ॥
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन नंदलाल कान्हा।
देख लपट रही पगसों सखी री निरख रूप नैना ॥

जब कान्ह की वंशी की ध्वनि सुन पड़ती है तब लोक-लाज बिसर जाती है और उसी ओर दौड़ पड़ने की व्यग्रता जाग्रत हो जाती है। इसी संबन्ध का एक पद है—

कैसी मोहन बंसी बजाई।
सुनत धुन मोहे सुधि नहि पाई।
भादों मासो मेघ गड़ागड़ टपके बुंदरि[2] खासी।
रुनझुम रुनझुम झुरमुर झरिया बरखत है घन रासी।
ओढि खुशाल दुशाल पिया संग रमिहि भोग विलासी।
बिजली सी बंसी आई, परि मोहि मदन कुमार भगाई।
कैसी मोहन बंसी बजाई ॥

'बंसी की ध्वनि' को बिजली की उपमा देना कितना भाव-व्यंजक है। जिस तरह बिजली कौंधती है, उसी तरह गोपी का हृदय कौंध उठता है, चिलक उठता है। इस प्रकार प्रत्येक मास में कृष्ण की 'बंसी' बजती है और इनकी आत्मारूपी गोपी का मन विकल

---

१. देखिए, कविता-संग्रह (वामन दाजी ओक) पृष्ठ २१-२६।
२. बुंदरि = बुन्दें।

होता है। इनके श्रृंगार का पर्यवसान भक्ति में होता है—'फागण' मास की स्थिति का वर्णन सुनिए—

फागण मास माहे खेलत फाग री
सब मिलिया व्रिजनारी
ग्यान गुलाल और धान अबिर की, हाथ लिई भर जोरी
भक्ती को रंग सुरंग बनायो री, प्रेम करी पिचकारी
ऐसी भई मतवारी सखि सब कान्ह को देखन आई
कैसी मोहन बंसी बजाई० ॥

इस बारामासी की अंतिम कड़ियाँ सुनिए—

आई आषाढ़ मों आस पुरी मन पूर्णानन्द भयो री
या तन कुञ्ज मो श्री गुरु गोविंद आत्माराम न्यहारी।[2]
समरस रम रह्यो मानस मो[3] वृत्ति भई अविकारी
देवनाथ प्रभु अन्तर बाहिर छाय रह्यो सब माही ॥

देवनाथ के पदों में आध्यात्मिक होली खेलने के कई उदाहरण हैं। मराठी संतों की कृष्णलीलापरक वाणी में देवनाथ ने राधा का संभवतः प्रथम बार उल्लेख किया है—

बंसी बजावनहारे, कब करौ दया मो पर।
नंद के नंदन कंस निकंदन गौवन के रखवारे।
श्री जगजीवन व्यापक जग में, वेद कहे ललकारे।
या मनमोहन दीनोद्धारण श्यामसुत घनकारे।
वेग करोजी, देरु न लगावो, राधाजू के प्राणप्यारे।
देवनाथ प्रभु ऐसो कीजै, नयनन रूप न्यहारे ॥[4]

कृष्ण की चर्चा करने पर भी राम-भजन में इनकी लगन लगी रहती है। ये कहते हैं—

राम बिना मोही चैन परे नहिं, झूठी दिखावे धन सुत ध्यान।
झूठो भाई बंद लुगाई, अवसर कोऊ आवै न काम ॥

जगत में सबके दिन एकसे नहीं जाते। जीवन में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। इस संबंध में इनका यह पद है—

रमते नाथ फकीर। कोई दिन याद करोगे।
कोई दिन बैठे पालखि घोड़ा। कोई दिन शिरपे अबदागीर।
कोई दिन वोढे[5] शाल दुशाला। कोई दिन भगवे चीर।
कोई दिन धोती और लंगोटी। कोई दिन नंगे पीर।
कोई दिन खासा पलंग बिछोना। कोई दिन जमिन पे शीर ॥[6]

---

१. देखकर २. न्यारी ३. मानस में ४. निहारे ५. ओढे ६. शिर।

भगवान जल, स्थल, वृक्ष, पाषाण—सब जगह समाया हुआ है। ये कहते हैं—

या जगमो कोई और न जानिये। पूरन भरयो भगवान हो।
जल थल ब्रिख[1] पासान बीच मो। रूप भरयो सब जान हो।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन। सब घट मान समान हो।

इनके पदों में संत-परम्परा के अनुसार गुरु-महिमा का भी बखान है। कहते हैं—

देख सुरत[2] टक लागि नैनसों नैन भेद कर दिया।
गुरू ने जोगन मुझकू किया।

इन्होंने 'अनहत-नाद' का अनुभव किया है और अन्य संतों के समान ही इस अनुभव का चित्रण भी किया है—

नैनन हरबिच छूटे फवारे दीन[3] रयन सब गई
सुरजबिन चाँद उजाला सही।
लख लख तारे झमके सारे तुर्या उन्मनि भई
अंखियाँ जर्द गर्द हो रही।
खुली समाधि हरदम जोगी घट घट मो निज साई।
सच्चा गोविन्द है तुही।

इसी प्रकार दुनिया को स्वप्नवत् समझने की कल्पना भी संत-मत-सम्मत है।

या जग भरया तो क्या करना जी।
भाऊ[4] बंद औ पूत लुगाई। अंत न कोऊ अपना।
रैन बसे दिन उठे चले बे। दुनयाँ सब सपना।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन। निरखत पग धरना।

आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति में कितनी निर्द्वन्द्वता है, कितना फक्कड़पन है—

गुरू कृपे[5] का अंजन पाया, मेरा मैं जानूं।
आज रूप नयनों में छाया मेरा मैं जानूं।
उलट मार्ग की रहा बताई, मेरा मैं जानूं।
बुरे करम की रेख मिटाई, मेरा मैं जानूं।
चाँद सूरज बिन परा उजाला, मेरा मैं जानूं।
पिलाया अजरामर का प्याला, मेरा मैं जानूं।
जहाँ तहाँ मैं आप अकेला, मेरा मैं जानूं।
आपहि गुरु औ आपहि चेला, मेरा मैं जानूं।
गोविन्दनाथ ने यही बताया, मेरा मैं जानूं।
देवनाथ सपने में मिलाया, मेरा मैं जानूं।

---

१. वृक्ष २. सूरत ३. दिन ४. भाई ५. कृपा।

भाषा

देवनाथ ने अपने समय की प्रवृत्ति के अनुसार उर्दू और फारसी का ज्ञान प्राप्त किया था। इसलिए उनकी भाषा में अपने पूर्ववर्ती संतों की अपेक्षा अधिक सफाई और छंद में अधिक प्रवाह है; परन्तु मराठी में जिसे 'निर्मल' (सर्वथा शुद्ध भाषा) कहते हैं, वह नहीं है। उसमें ब्रज, खड़ी बोली, मराठी और अरबी-फारसी का संगम है। संत संगम-स्नान के पक्षपाती होते ही हैं। अतः भाषा के किसी एक रूप को न पाकर भी हम उनमें हिन्दी की मधुर भाव-व्यंजना पाकर मुग्ध हो जाते हैं। सत्य बात तो यह है कि भारतीय इतिहास के मध्ययुग में ब्रजभाषा को ही काव्य-भाषा का स्थान प्राप्त होता रहा है। इसलिए प्राचीन रचनाओं में उसका अनायास समावेश होना स्वाभाविक है। देवनाथ की भाषा में वर्ण-प्रक्रिया के वे ही रूप लक्षित होते हैं जिन्हें हम पिछले संतों की काव्य-भाषा-विवेचना के समय प्रस्तुत कर चुके हैं।

देवनाथ के पदों में अनुप्रास, उपमा और रूपक अधिक पाये जाते हैं। कई स्थलों पर आनुप्रासिक पद-योजना का नाद अर्थानुगामी होने से आह्लादकारी है। वर्षा की रिमझिम का वर्णन कितना ऋतु-अनुरूप है—

भादों मासमो मेघ गडाडत टपकत बुंदरी खासी।
रुमझुम रुमझुम झरझर झरिया बरसत है घनरासी॥

रूपक के एक-दो उदाहरण लीजिए—

(१) आत्मग्यान की यह तन क्यारी बीज नहीं बोया
(२) ज्यानी के जंगल मों सुसरी फनकी नाहक के घर माया
माया अंधारी रात परी भरपूर निंदभर सोया।

अलंकारों में कोई अभिनवता नहीं है, पर वे संतों की प्रतीक-भाषा के अनुरूप हैं।

दयालनाथ

ये देवनाथ के शिष्य थे। देवनाथ के देहावसान के पश्चात् सुरजी अंजनगाँव के देवनाथी मठ के यही अधिष्ठाता बने थे। इनका जन्म ईसवी सन् १७८८ और निर्वाण ईसवी सन् १८३६ में हुआ। हैदराबाद में ये समाधिस्थ हुए। इनके पिता मूर्तिजापुर (विदर्भ) के रहनेवाले थे। अल्पायु में ही अनेक संतति खो चुकने के उपरान्त इन्होंने हरि नामक पुत्र को देवनाथ के चरणों में लाकर डाल दिया। देवनाथ के गुरु गोविन्दनाथ हरि को 'दयाल्या' कहकर पुकारने लगे। बड़े होने पर उसका नाम 'दयालनाथ' रख दिया गया। गुरु ने इनका विवाह कराया और इनको संस्कृत, उर्दू आदि भाषाओं से परिचित कराया। दयालनाथ ने अपने गुरु की छत्रच्छाया में महाराष्ट्र भर में भ्रमण कर कीर्ति अर्जित की। इनमें वक्तृत्व-कला थी और कंठ में माधुर्य था। अतः ये सहज लोकप्रिय हो गये। ये प्रत्युत्पन्नमति भी थे। एक बार कीर्तन के समय 'नंदाच्या नंदना नंदनीरदतनु, कोमलगात्रा, दानवकुल नंदना' पद गा रहे थे। एक शास्त्रीजी ने प्रश्न

किया, संस्कृत पदों का संबोधन अकारान्त ही होना चाहिए। तुमने 'दानवकुलनंदना' कैसे कहा?' दयालनाथ ने तुरंत उत्तर दिया, 'ईश्वर को वैकुंठ से बुलाना है न? इसलिए ज़ोर से पुकारने के लिए आकारान्त प्रयोग करना पड़ा।' शास्त्रीजी ने पुनः प्रश्न किया, 'भगवान क्या 'नाथ' से दूर था जो ज़ोर से पुकारने की आवश्यकता पड़ी?' दयालनाथ ने उसी प्रकार अविलम्ब उत्तर दिया, 'निर्गुण भगवान को सगुण बनाकर लाना था न, इसीलिए मैंने इतने आक्रोशपूर्वक हाँक मारी है।' शास्त्रीजी मुग्ध हो गये और उन्होंने दयालनाथ को भुजपाश में बाँध लिया। दयालनाथ की गुरु-परम्परा देवनाथ की गुरु-परम्परा के समान ही है। इनकी गुरुभक्ति बड़ी गहरी थी। गुरु इनकी परीक्षा लेने के लिए इन्हें बारबार अपमानित करते, पर इनका भाव कभी क्षीण न पड़ता।

दयालनाथ की काव्य-रचना

नाथ-मत में दीक्षित होने पर भी इन्होंने हिन्दूधर्म में मान्य सभी देवताओं पर रचनाएँ की हैं। इनकी मराठी में आख्यान-कविताएँ अधिक परिमाण में हैं। हिन्दी में फुटकल पद हैं। कृष्णपरक पदों में व्रजकाव्य की छटा देखिए—

तुम देख्यो भय्या। मुरली को बजवय्या।
मोर मुकुट की लटपट न्यारी। गरे सो लपटी राधा प्यारी
कुंडल सोहवे[1] बनवारी। देखे गोपी कन्हया।
गरे मो सोहत है बनमाला। पीताम्बर प्रभु नूपुरवाला।
रास रचे नाथे अलबेला। पकरत गोपिन की बहिया।
झटपट खेलत चुंबत कान्हा। छतिया छुवावत गावत ताना।
जमुना तट मो श्री भगवान। क्रीडत ब्रिज को बसय्या।
दयालु देवनाथ अलबेला। साथे ब्रिजनारी का मेला।
कुंजनबन मो करत किलोला। मुनि जन गावत जगसंय्या।

इसमें शृंगार का वही रूप है जो ब्रजभाषा के अधिकांश कृष्णकाव्य में दीख पड़ता है। दयालनाथ के पदों में भ्रमरगीत-परम्परा की भी बानगी मिल जाती है। इनके 'उद्धव-गोपी-संवाद' शीर्षक पद की कतिपय पंक्तियाँ पढ़िए—

ल्यावो बनवारी उधो, ल्यावो बनवारी।
प्रेम कट्यारी तूं काहेकु मारी, कहियो बात हमारी।
जसोमति नंदन ममता छोड़ी प्रीति सभी वाकू कुबरी रे।
घायल घूमे धाम मो करे न चित मन बोध।
लहु नयना टपकते विसर गई सब सुद[2]।
रूपहीन कुल जात की प्रीत करे नंदलाल।
गोपिन मोहरे डार के चाल चलावत ब्रिजपाल।

---

१ सोहे २ सुध।

करत करि बिसरत बुरि येहि देही येहि रीत।
किन सुख पायो ये सखि परदेसन की प्रीत।
उधो कहो व्हां जायके मरगई ग्वालण।
एक बार तुम छलियो अमृत जसोमतिपाल।
वा कुबरी ने चंदन चर्चो जादू ही कर-डारी।
देवनाथ प्रभुनाथ दयालु बिन सारे हमें मारी ॥

दयालनाथ की गोपियों में उपालम्भ की सबसे अधिक तीव्रता है। एक अन्य पद में कुब्जा पर गोपियाँ बुरी तरह टूटकर कहती हैं—

वह कुबरी ने चंदन चर्चो, श्याम मूरत वहा लटकी।
च्याम के दाम चलावे सौकन, गोपन मोह हरे खटकी ॥

गोपिकाएँ जब यमुना में जल भरने जाती हैं तब कृष्ण बीच में मिल जाते हैं और उनसे बरजोरी करने लगते हैं। इस पद में भी गगरिया का फूटना, चुनरी का भींजना, सास-ननद की गालों का भय आदि सभी कृष्ण-काव्य के ब्रजभाषा-कवियों के समान ही कथन है। गोपिकाएँ कृष्ण को बाँसुरी नहीं बजाने देना चाहतीं, क्योंकि वह 'ज्यालम' (ज़ालिम) है। अतएव उन सबने मिलकर कृष्ण से छीना-झपटी प्रारंभ कर दी। कृष्ण को चरणों पर झुकाने का कितना सरस और सजीव चित्रण है—

यक मुरली कर की ले भागी। एक मोतनमाला तोरी।
पीताम्बर यक सखी ले गई। आसपास सब दे दे तारी।
सरस बनी है नंद की लरकी। कहत खिजावत सब नारी।
राधाजू के चरण कमल पर। सीस नमायो कर जोरी।
तब छोरू देवनाथ दयालू। कहो तुम जीते हम हारी।

इनके कृष्ण पर रचे हुए पद सरस हैं और हिन्दी-कृष्ण-काव्य-परम्परा के अनुरूप हैं। इनके अतिरिक्त अनेक पद स्तुतिमूलक भी हैं।

गणपति, शंकर, विठोबा आदि देवताओं के साथ-साथ गुरु-स्तुति के भी दो पद हैं। संतों की तरह नाम-स्मरण और बोध देनेवाले पद भी मिलते हैं। इन पदों में अन्य संत-कवियों के समान ही भाव व्यक्त हुए हैं।

इनकी भाषा अपने गुरु देवनाथ के समान ही अपने समय की उर्दू मिश्रित महाराष्ट्रीय हिन्दी है।

विष्णुदास कवि

इस कवि का सतारा में (शक सं० १७६६ अर्थात् सन् १८४४) में जन्म हुआ। इनका परिवार भगवद्भक्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है। इनके पूर्वज अहमदनगर ज़िले के रहनेवाले थे, पर बाद में सतारा में आकर बस गये थे। सन् १७४३ में परिवार के प्रमुख पुरुष चिन्तामणि का

१. बुरी। २. सौत के लिये सौकन शब्द ठेठ दक्खिनी है।

जन्म हुआ। वे गणपति और दत्तात्रय के उपासक थे। सन् १७४५ में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र शिवरामजी दत्तोपासक थे। सतारा के राजघराने से इनकी जीविका चलती थी। इनके दो पुत्र हुए, एक रावजी और दूसरे भालचंद्र। दोनों भाई वंश-परंपरा के अनुसार भगवान के भक्त थे। पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर रावजी के राज्य-पुस्तकालय की कई पोथियाँ सुवाच्य लिपि में अंकित कीं। जब सन् १८४२ में सतारा राज्य अंग्रेजों के हाथ में चला गया तब दोनों भाई राज्याश्रय से वंचित हो गये। रावजी के पुत्र कृष्णजी 'विष्णुदास' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हें बचपन से ही कृष्ण भगवान के दर्शन की पीर जाग्रत् हो गई। शिक्षा-दीक्षा के समाप्त होते ही ये गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो गये; पर, इनका मन 'गृह' में कभी नहीं रमा। ये एक दिन भाग खड़े हुए, पर 'काका' इन्हें पुनः घर लौटा लाये। पत्नी अत्यंत सुशीला थी। वह अपने पति को शंकर-रूप मान कर पूजती थी। एक दिन पुनः इनका मन उचट गया और ये तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। दक्षिण में बहुत समय साधना में बिताकर मातापुर गये जहाँ दत्त शिखर पर इन्हें 'दत्त' के दर्शन हुए। वहाँ मधुकरी माँग कर जीवन-यापन करते थे। माहूर क्षेत्र में इनकी साधना पूरी हुई। कहा जाता है, वहाँ इन्हें भगवान का साक्षात्कार हुआ, और, तभी से ये आशुकवि हो गये। महाराष्ट्री संतों के स्वभाव के अनुसार इन्होंने हिन्दी में भी पद रचे हैं। इनके दो पद प्राप्त हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि इनमें व्यंग्य की मात्रा अधिक रही है। इनमें काव्य-प्रतिभा भी लक्षित होती है। लावनी में शृंगार तो भरा ही है, हास्य की भी छटा छिटकी हुई है। अमीर खुसरो ने जिस प्रकार फारसी और हिन्दी-मिश्रित कुछ रचनाएँ की थीं, उसी प्रकार इनकी लावनी भी हिन्दी और मराठी मिश्रित है। इनकी दोनों रचनाएँ नीचे दी जाती हैं—

(चाल—जप का अजब तड़ाखा बे)

गुरूजी लिया मंत्र तेरा,
दिल तो भटक रहा मेरा ॥ध्रु०॥

अहं सोहं अजपा जप का बाजा बजत है कानन मो।
नहीं उखाड़ी पर नारी की सुरत गडी जो मन मो।
गुरुजी......मेरा।

बैठा शिर पर जटा बढ़ा कर पीले गाँजा घोटा।
चेले जमाये जमा जमा कर अंदर सट्टा बट्टा।
गुरुजी......मेरा।

दुनिया खातर झूटा ढोंगी बन गये जोगी बच्चा।
आत्म ग्यान जब लग नहि पावे तब लग चेला कच्चा।
गुरुजी......मेरा।

विष्णुदास कहे वोही सच्चा पूरा मुरशद[1] कहेना।
मेरा मुजकू रूप बताये आगे पकड़कर आयना[2]।
गुरुजी......मेरा।

---

१. मुरशिद=गुरु २. दर्पण

बनावटी ठग-साधुओं पर उपर्युक्त पद में कितना कठोर प्रहार है। नीचे की लावनी में शृंगार ओत-प्रोत है। इसे महाराष्ट्र में पेशवा-युग की देन कहना चाहिए।

(चाल—एक दिन जाना रे भाई)

भला भला मोरिजान। खुसी से यंव[1] करना दोस्ती
येथ कुणाची नाहिं कुणावर पहा जबरदस्ती[2] ॥
क्या कहूं तारिफ तेरे बदन की अजब तरहा प्यारी।
जसि कमलाची कली टवटवित दिसे भर दुपारी[3]
तेरे, प्रेम के खातिर आया मैं तो बेपारी
दे तबकामधि पान तमाखू चिकणी सुपारी
ये रस्ते पर क्या खड़े रहना, आगे गस्ती ॥ येथ कुणाची०........॥
मत कर मेरे तरफ दीवाने, तेरि नजर पापी।
नाहि लागला डाग मला पर घरचा अद्यापि[4]।
छोड़ जाने दे, अब मेरे पे इतनी माफी
नको मला तूं समजूं उष्टया गांजाची साफी[5]
जान गई तो नहीं चढ़ने की मैं तेरे दस्ती[6]। येथ कुणाची० ॥
खुपसुरतन की चटक लगी है मेरे दो नैना
शेज मंचकावर घटकाभर मला झोंप ये ना[7]
चंद्र वदन मृग नयन विराजे सुन्ने का गहिना
तुजविण सजणे पहा घटकाभर जीव कुठें राहिना[8]।
हात पकड़कर चल बंगलेपर मत करना सुस्ती।
बदनामी से डरकर दुनिया में है रहिवासी।
हात जोड़नी तुला सांगते मी सासुरवासीं[9]
बुरी बात ये हो जायेगी मालूम लोकासी[10]
फुकट माझा विपर येइल घरच्या लोकासी
जा इस वास्ते अब मत करना बे दंगामस्ती ॥
दो दिन की खुशी करना धरना क्यंब[11] हिम्मत कच्ची
नथ मोत्याची तुलजा देवून साडी भरगची ।[12]
झूट बात ये नहीं होने की तेरि कसम सची
कसें ही कर पण, हो म्हण गोष्ट तुझ्या हातची ।[13]

---

१. यौं, २. देखो, यहाँ किसी की किसी पर जबरदस्ती नहीं है। ३. जिस तरह कमल की कली भरी दोपहरी में खिलने लगती है। ४. मुझे पर-घर का अभी तक दाग नहीं लगा है। ५. मुझे तू जूठी गाँजे की साफी (चिलम का रूमाल) मत समझ। ६. हाथ में। ७. मुझे बिस्तर पर पलभर भी नींद नहीं आती। ८. सजनि, तेरे बिना प्राण पल भर भी नहीं रहते। ९. मैं तुझसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि मैं ससुराल में रहती हूँ। १०. लोगों को, ११. क्यों? १२. तुझे मोतियों का नथ और जरी की साड़ी दूँगा। १३. कुछ भी कर, पर हाँ कह; यह तेरे हाथ की बात है।

दिल राजी तो क्या करती है स्टेशन की बस्ती ।
आखिर दिल की दिलकू पटगई दो घड़ि में अर्जी
खुष रंगाला रंग मिळाला, झाली खुष मर्जी
नावर तुंदर तयार दानी चली इष्कबाजी
धिमिकिट् धिमिकिट् धिलांग धागत वाजे पखवाजी
विष्णु कवि कहे, हो गई लेना बहु शक्कर सस्ती । येथ कुणाची० ॥

गुलाबराव महाराज

मध्यप्रदेश के अन्तर्गत विदर्भ जिले के माधान नामक ग्राम में शक संवत् १८०२ (सन् १८८०) में इनका जन्म हुआ। जब ये ६ महीने के थे तभी नेत्ररोग के कारण इनकी वाह्य दृष्टि चली गई थी, परन्तु इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। अल्पायु में ही इन्होंने सांख्ययोग और वेदान्त जैसे गहन विषय आत्मसात कर लिये थे। इनकी इस अलौकिक प्रतिभा और साधु-आचरण के कारण ही ये अपने समय में ही संत रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। कहा जाता है कि स्वप्न में ज्ञानेश्वर के द्वारा मंत्र प्राप्त होने के कारण ये उन्हीं को अपनी जननी मानने लगे थे और कृष्ण को अपना पति मानकर शरीर पर मंगलसूत्र, कुंकुम आदि स्त्री-सौभाग्य-चिह्न धारण करने लगे थे। इनकी मराठी के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी में भी अच्छी गति थी। इन्होंने समस्त भारत की यात्रा कर विविध ज्ञान सम्पादन किया था। इनके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें सम्प्रदाय सुरतरु, भागवत् रहस्य, व्यवहारधर्म बोध, सूक्ति रत्नावलि, पदांची गाथा आदि ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध हैं। ये मधुराद्वैत दर्शन के आचार्य कहलाते हैं। इन्होंने दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त आदि छंदों तथा विभिन्न राग रागिनियों में गेय पदों में प्रचुर हिन्दी काव्य रचना की है।

अपने गुरु के प्रति भक्ति-भावना-व्यक्त करनेवाला उनका एक काव्य-पूरित कवित्त नीचे दिया जाता है।

छांडि लोक लाज राज साज चलो आज
देखिबे को कैसे सखि नैन ललचाए है
कोऊ ठाडे छतर धारे कोऊ आये व्यजनवारे
पालकी में बैठ मेरे ज्ञानराज आए है
कमलिनि लजाय रहि, कनक श्री जाय रहि
रसाहर खाय रही रसली मिलाई है
पानी के प्रवाल की और मनि में के लालकी
अस कामिनी के गाल की सब शोभा की भुलाई है
बीजुरी के सरि सूरज धुर धारी से
करिके सवारी छबि सारि हरि लाई है
क्या राधिका तिलक आंकी ? नाही नाही सुनारी सखि,
मेरे ज्ञान राय की पाय की ललाई है ॥

१. देखिए—सूक्ति रत्नावलि, एकादश यष्टि, पृष्ठ—२ ।

इनका विरह-वर्णन कुछ आधुनिकता लिये हुए है। ये कहते हैं—

प्यारे मेरे नाहि मिले सब रात
डारा न मुझे कभि अकेला जबसे लाइ बरात।
मेरे बिन वो प्रभू अकेले किस्से करेंगे बात
रहा देखते भवर[1] भयी है दहा करे[2] शित वात[3]
दिन भर तो कचरी में रहेंगे बैठे है नंद तात
ज्ञानेश्वर जामात[4] बिना मम अंखिया लगत न पात॥

ये भी कान्हा से मुरली बजाने का निषेध करते हैं; क्योंकि उसको सुनकर शरीर की 'सुध-बुध' चली जाती है और लोक-मर्यादा भी नहीं रह पाती। इन्हें भी श्याम के विना गोकुल प्रेत-सा जान पड़ता है। यशोदा का विलाप है—

मोरे कित गये दोउ लाल।
देख्यो न उन्हें जगत पसाप्यो। आठ बरस के बाल।
नहि पहनाई मोतन लरिया। खुषि में ले बनमाल।
ज्ञानेश्वर तुम्हरे बेटिन के। अंसुवन भीगत गाल॥

यशोदा को वह समय स्मरण हो आता है जब वे प्रातःकाल कृष्ण को पद गाकर जगाया करती थीं—

जागो लाला भवर भई।
उठि ग्वालन सीस घगरिया धरीं। पनघट सबहि गयी।
सुतिलक करिके सेवन करिये। सक्कर दूध दही।
अलकावलि पति चरण सरोरुह। सत्ता सकल सही॥

कृष्ण-भक्त होते हुए भी इन्होंने रामचरित संबंधी पद गाये हैं। हनुमान जब लंका में अशोक-वाटिका में चितातुर सीता के निकट सहसा खड़े हो जाते हैं और अपनेको राम-भक्त घोषित करते हैं तब सीता पूछती है—

सुत तैं कहाँ देखे प्रभु राम
लछमन को मैं नहि सो बोली भरमाई कृति बाम।
रघुवीर वर नर तू तो बानर कइस करेगा काम
जाकर कह रघुनायक चरना मो कु लिजाओ[5] धाम।
मारुति बोले सुनि जननि तु, सुमिर अनुदिन नाम

---

१. भोर
२. दहाकरे—दग्ध करता है।
३. शितवात—शीत पवन
४. ज्ञानेश्वर जामात—गुलाब महाराज ज्ञानेश्वर को अपनी माँ और कृष्ण को पति मानते थे, इसलिए ज्ञानेश्वर जामात का अर्थ कृष्ण हुआ।
५. ले जाओ।

एक विरह-पद और उद्धृत किया जाता है—

कौन गली सखि श्याम ।
उनको मिलन बिने नहि मोरे, पल दिल मो आराम ।
छिन छिन नयन नीर आवहि, सूझत नहि बेकाम ।
श्याम मिलन सदुपाय करित हु, ले ज्ञानेश्वर नाम ।

इन महाराज के कुछ पद तो भाव और काव्य की दृष्टि से बड़े उत्कृष्ट बन पड़े हैं। भाषा महाराष्ट्रीय संतों की नाईं मिश्रित है । अद्वैतवादी ज्ञानेश्वर के अनुयायी होने पर भी कृष्ण-भक्ति की इनमें प्रधानता है । विदर्भ-नागपुर के क्षेत्र में इनके अनुयायियों की पर्याप्त संख्या है । फिर भी इनकी भक्ति-भावना की गहनता की बानगी हमें कुछ ही पदों में मिल जाती है ।

गंगाधर

इनका परिचय प्राप्त नहीं हो सका; परन्तु इनकी कतिपय हिन्दी पंक्तियाँ मिली हैं। पंक्तियों की भाषा से इनका समय १८ वीं और १६ वीं शताब्दी के मध्य जान पडता है । ये आत्मा में ही परमात्मा को खोजने की बात कहते हैं । इससे जान पड़ता है कि ये सिद्धान्त से नाथ-सम्प्रदायी और व्यवहार से भागवत मत के अनुयायी जान पड़ते हैं । इनका एक पद यहाँ दिया जाता है—

रसना क्यों भूली हरि नाम ॥ध्रु०॥
षड्‌रस भोजन स्वाद बतायो, कूर[1] कपट की खान
या नर देह को गर्व न कीजे, ज्यो बादर को घाम ।
गंगाधर के अन्तर्यामी खोजो आत्माराम ।

नरदेह को बादल के घाम की उपमा सचमुच अभिनव कल्पना है । भाषा में सफाई और पद में गति है ।

गुडा केशव

ये विदर्भ के प्रसिद्ध संत हैं। इनकी जन्म-तिथि और प्रयाण-तिथि के संबंध में निश्चित जानकारी नहीं है। ये शक संवत् १७५२ (हिजरी सन् १२५०) फसली में जीवित थे। इसका प्रमाण इन्हें दिये गये एक मुसलमान अफसर के उस पत्र से मिलता है जो उसने इन्हें वार्षिक 'बलोता' देने के संबंध में अपने किसी अधीनस्थ कर्मचारी हेरवाजी नायक को लिखा था । उस पत्र में उपर्युक्त वर्ष लिखा हुआ है । यह पत्र डा० देशमुख (नागपुर-महाविद्यालय) के पास सुरक्षित है । ये यवतमाल ज़िले के बिट्ठल नामक ग्राम के रहनेवाले थे । यह गाँव माहूर परगने में है । वहीं इनकी समाधि भी बनी हुई है । इनके समय में विट्ठल के पास उमरखेड़ (पूसद तहसील) संतों का केन्द्र था । ये अपने पदों के साथ गुंडा केशो और गुडाकेश लगाते हैं । यह इनका कल्पित नाम जान पड़ता है । इन्होंने फुटकल

---

1. क्रूर ।

पद ख्याल आदि लिखे हैं। मुझे डाक्टर देशमुख से इनकी कृतियों की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं जो अत्यंत जीर्णावस्था में हैं। कई पृष्ठ खंडित हैं। उनमें बीच-बीच में मराठी के भी पद दिये हुए हैं।

गुडाकेश के गुरु के संबंध में ज्ञान नहीं है; परन्तु उनकी हस्तलिखित प्रतियों में मुझे उनके बाह्मण होने तथा नाथपंथी होने के स्पष्ट संकेत मिले हैं—

"प्रभुजी तुम मेरो ज्यजमान,
अदणा ब्राह्मण तोरो चिकारि
तोकु····अभिमान।

एक पद है—'हम तो दास गुरु के ***नाथ*** उपासी
ली जग ***को आदिनाथ सो सांई***, हर घट हिरदे विलासी।"

नाथ—सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा आदिनाथ से प्रारम्भ होती है। गुडाकेशव उक्त पद में अपनी यही परम्परा बतलाते हैं।

बाहरी साक्ष्य (किंवदन्तियों) से भी यही समर्थित होता है कि ये यजुर्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे। इनके वंशज अभी भी 'बिठ्ठल' में हैं; पर वे अपने पूर्वज के संबंध में विशेष जानकारी नहीं रखते। यह कहा जाता है कि ये खूब भ्रमण करते थे और निर्द्वन्द्व-जीवन व्यतीत करते थे।

हिन्दी पद

ये अपने हिन्दी पदों को 'दिल्ल बुज्ज्य दोहरे' (मन को चेतावनी देनेवाले दोहे) पद, बैरागण, आरति और काल शीर्षक के अन्तर्गत बाँटते हैं। पर दिल्ल बुज्ज दोहरों में दोहा-छंद के लक्षण नहीं मिलते। इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने 'दोहरे' नाम उपदेश परक द्विपदियों को ही प्रदान किया है। वैरागण भी कोई छन्द का नाम नहीं है। इसके अन्तर्गत आत्मा का परमात्मा के प्रति मिलन—उत्कण्ठा और मिलन-अनुभव—वर्णित है। आरती में निर्गुण ब्रह्म की, जिसे राम भी कहा गया है, स्तुति गाई गई है। ख्याल तथा पद गेय रचनाएँ हैं जिनमें विविध अध्यात्मभाव वर्णित हैं।

विचार-धारा

ज्ञानमार्गी संतों के समान ही इनकी रचनाओं में पिण्ड में ब्रह्माण्ड, ब्रह्म की सर्व व्यापकता, गुरु-महिमा, काल चेतावनी, जीवन की क्षणभंगुरता, संसार की असारता, तीर्थ, व्रत, पूजा आदि वाह्याडम्बर का विरोध, जाति-विरोध, भक्तिमूलक विरह और दैन्य के भाव व्यक्त हुए हैं। आत्मा और परमात्मा की क्रमशः प्रेयसी और प्रियतम की प्रतीक परम्परा नामदेव से प्रारम्भ होकर कबीर, दादू आदि अनेक संतों में बराबर चली आ रही है।

अब हम इनकी उपर्युक्त विचार-धारासमन्वित रचनाओं का रस ग्रहण करेंगे।

मनुष्य का जीवन क्षणिक है, फिर भी वह कितना बावला है कि उसमें भूलकर परमात्मा का स्मरण भुला देता है।[१] वह भूल जाता है कि संसार का धन-वैभव-स्वप्न के समान असत्य है। काल सिर पर नाचता रहता है। अतएव मनुष्य को सावधान रहना चाहिए।[२] मनुष्य को चाहिए कि वह उस परमात्मा को पहचाने जो सर्वत्र छाया हुआ है। 'उसी' की ज्योति से समस्त सृष्टि द्योतित है[३]।

परमात्मा को ढूँढने के लिए तीर्थ-स्नान की क्या आवश्यकता है? जो सब तीर्थों का आदि स्वामी है, उसी में लगन क्यों नहीं लगाते?[४] 'उसे प्राप्त करने के लिए गँवार हिन्दू पत्थर पूजते हैं। जिसने पत्थर को पैदा किया है, उसका स्मरण करो।[५]

हृदय में खड़े हुए 'रबूब' तक पहुँचने का मार्ग गुरु ही दिखला सकता है।[६] जो यहाँ-वहाँ भटकते फिरते हैं, उनका भ्रम गुरु के द्वारा ही निवृत्त होता है।[७] भ्रम के दूर हो जाने पर हृदय में परमात्मा की तालाबेली जाग उठती है और हृदय अस्वस्थ हो जाता है।[८] उससे मिलने की बेहाली में भी एक मस्ती है जिसे भुक्तभोगी संत ही जान सकते हैं।[९] एक बार परमात्मा के प्रति प्रेम लग जाने पर उसका स्मरण जीवन का श्वास बन जाता है। फिर तो वह अपने भक्त के प्रति सदय हो उठता है और उसका उद्धार कर देता है। परन्तु हृदय में सदा उसके प्रेम रूपी मोगरे की महक की मस्ती छाई रहनी चाहिए।[१०] गुडाकेश कहते हैं कि मेरी यह अवस्था हो गई है।

---

१. मगलत बेगलत जींदगाणि दो दिन्न की हसी को गरक याद भुला अहलल की।

२. सम्पन्न सि ये दौलत भुला है ज्याहान आखर कु दगा, ज्याग हिरदे सुभान।
बुरि मार ज्यंकी हुसीयार हिरदे। कहत्दास गुण्डे आवल काग कर्दे॥

३. भरा है ज्यमीं आसमानि ज्याहणू कहे दास गुण्डे उसकु' पछयाणू
ज्यगत का धनि येक साहेब यही है निरंज्यन निरंकार ज्योति भरी है।

४. हुआ है मनुआ सब तिरथ सपडा
सकल तिरथ को आद गुंसाई, वाकु लगन ज्यम्डा।

५. फत्तर कुं पुज्य मुरख हीदू गंव्हार।
फत्तर जीसने पैदा कीया सो विचार॥

६. गुरुजी प्रेम राहा कुं दिखायो।
ये मारग में पितम मीलियो।
मश्कुलल दिलल खुलायो।
दरवाज्या उलट कें ज्याना, येह मोकुं सिखलायो।

७ भटकत कोण फीरे दिल्ल ज्यामें, गुरुमुख भ्रम निवडा।

८. लगी है प्रेम लगन कि याद पिया बिन जीयेरो कैकर जीये खुदस्ते बुनियाद।

९. बेहाली मो मस्त सदा है, सब तन प्रेम गडा।

१०. पिरया पियारे अजीज उधारे लाल से (१) ख्याल ज्यडे हैं।
मस्त सदा झुलती ज्यों कुंज्यन महक की मोगडे हैं।

जो सृष्टि में 'उसी' को भरा हुआ अनुभव करता है, उसके लिए हिन्दू और मुसलमान में भेद कहाँ रह जाता है[१] ? सच्चा फकीर वही है जो खुदा को पहचानता है और जो पाक दिल में उसका स्मरण करता है[२]।

हठयोगियों के समान गुडाकेशव में भी कुंडलिनी योग का उल्लेख मिलता है। मीरा के समान इनके पिय की सेज भी 'गगन मंडल' में है। वहीं पहुँचकर ये उसे सजाना चाहते हैं।

हिन्दी-भाषा

गुडाकेशव की भाषा चलती हुई खड़ी बोली हिन्दी है जिसमें ब्रज की पुट और अरबी फारसीशब्दावली की भरमार है। परन्तु उन विदेशी शब्दों को जी भर कर तोड़ा-मरोड़ा गया है और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'सधुक्कड़ी' भाषा को टकसाली बनाने का यत्न किया गया है। वर्णों को द्वित्व करने का भी प्रयास किया गया है। यथा—

भगल्ल, बेगल्ल, अहिल्ल, विन्न, लगन्न, मुसल्लमान, सपन्न आदि। जहाँ शब्दों में ज या च आया है, वहाँ उसे हलन्त कर उसके बाद य का आगम हो गया है। यथा—

जमी—ज्यमीं—जहान—ज्याहाण, —सच—साच्य—चौथी—च्यवथी,—उजाला—उज्याला,—निरंजन—निरंज्यन—जहान—ज्याहान—चढ़ा—च्यढ़ा—जाको—ज्याको—जुड़ा—ज्युड़ा,—जंगम—ज्यंगम—जात—ज्यात,—जगत—ज्यगत आदि।

पर य के आगम की प्रवृत्ति इकारान्त और उकारान्त वर्णों के साथ प्रायः नहीं पाई जाती। यथा—जीदा (जिन्दा) वजूद (वजूद)

परन्तु अव्यवस्थित भाषा के भीतर भी भावों की व्यवस्था नहीं बिगड़ पाई है। अभिव्यक्ति सशक्त और प्रासादिक है।

माणिक

इस संत का कब जन्म हुआ, यह अज्ञात है; पर इनकी समाधि हुमणाबाद में सन् १९११ में हुई थी, यह ज्ञात है। इनके शिव, श्याम और राम पर मधुर पद हैं। एक पद की पंक्तियाँ हैं—

मैं तो वारि रे सय्या तोरे पर से।
सावलि सूरत रस भरी अखिया लेगि बलया दोनों कर से
माणिक प्रभु वो नन्दलाला दर्शन पर जिया तरसे।'

---

१. सुनो राम रहीमान ये की हिसाब, आकल में तहकीक गुरो मुख किताब हिन्दू और मुसल्लमान कर्तार बुझ सो ही मस्त गुंडे साहेब से रिझ।

२. खुदा कु बुझया सो ही कीदा फकीर, बुजुद पास दिल से जगन्न से जीकिर

३. च्यवथीआरती भ्यारमोहिं डारो, गगन मंडल मो सेज सम्हारो। पांचवि आरवि उन्मुन निद्रा, गुंडा केशो आव्वल मुद्रा॥

और—

सावरे कान्हा ने बांसुरी बजाई तो,
लोक परलोक में सब थकित रह गए—
नन्द कुमार सावरो कान्हा बांसुरी बजाई
शुक सनक व्यास मुनि ध्रुव प्रल्हाद नारद मुनि,
थम रहे स्थिर देह सूध विसराई
चकित भये सब ही देव ब्रह्म विष्णु महादेव
त्रिभुवन मो नारद भरे सुनत शेष शायी
स्थिर रहे जमुन निर, हुल भये विमानी सुर
माणिकदास मगन भये, हरि के गुण गाई।'

भाषा सन्तों के समान अटपटी है और छन्द में प्रवाह न होने पर भी संगीत के सहारे गा लिये जाते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

मराठी संतों-द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट छन्द और काव्य-प्रकार

मराठी सन्तों की अधिकांश हिन्दी रचनाओं को छन्द शास्त्र की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। क्योंकि उनका उपयोग कीर्तन के समय होने के कारण वे प्रायः विभिन्न राग-रागिनियों में गुम्फित हैं। फिर भी उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ ऐसे विशिष्ट छन्दों और काव्य-प्रकारों से हिन्दी-पाठकों को परिचित कराया जाता है जो महाराष्ट्र में प्रचलित हैं और मराठी-सन्त-साहित्य का वैशिष्ट्य समझे जाते हैं।

ओवी छन्द

ओवी का अर्थ होता है—गुम्फित, ग्रथित। एक ओवी में तीन चरण होते हैं। शब्द-योजना अनुप्रासयुक्त होती है और तीनों चरणों के अन्त में यमक होता है। यद्यपि उसमें चौथा चरण भी होता है ; पर उसकी स्थिति गाने की टेक के समान होती है। अतः मुख्यतः तीन पाद की पदावली एक भाव विशेष को गुम्फित कर 'ग्रंथ' कहलाती है।

कहा जाता है कि इस छन्द का जन्म कहावतों और पहेलियों से हुआ है। चालुक्य वंशीय राजा सोमेश्वर का ग्यारहवीं शताब्दी में रचित 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' अनेक ज्ञान-विज्ञान का भाण्डार है। इसमें भी ओवी का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि महाराष्ट्र-स्त्रियाँ धान्य कूटते समय ओवी गाती हैं। 'संगीतरत्नाकर' में इस छन्द की चर्चा है। उसमें कहा गया है कि ओवियाँ जन-मनोहर होती हैं और विविध छन्दों में महाराष्ट्रीय स्त्रियों द्वारा गाई जाती हैं। इसमें संदेह नहीं कि महाराष्ट्र की ग्रामवासिनी स्त्रियाँ अपने दैनिक व्यवहार के विविध प्रसंगों पर इसे गाती हैं। प्रातः चक्की पीसते समय, बच्चों की आँखों में नींद बुलाते समय, खेतों में धान्य काटते समय, खलिहानों में उसे गाहते-उड़ाते समय उनके कण्ठ से 'ओवी' झरने की तरह प्रवहमान् हो उठती है। इसमें मानव-जीवन 'कल-कल' नाद करता है। इसमें भक्ति रस बहुधा नहीं होता। तात्पर्य यह कि ओवी उनके जीवन के श्रम-परिहार का मनोहर साधन है। 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' में जब 'ओवी'

का उल्लेख है तब यह निश्चित है कि ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व से यह छन्द प्रचलित रहा होगा।

साने गुरुजी अपने 'स्त्री-जीवन' ग्रंथ (पृष्ठ २) में इसको ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी में प्रचलित बतलाते हैं। जो हो, यह महाराष्ट्र का अत्यन्त प्राचीन लोक-छन्द है, इसमें सन्देह नहीं है। यद्यपि इसमें तीन पंक्तियाँ प्रमुख होती हैं, तथापि यह बहुत लचीला छंद है। ग्रामीण नारियाँ तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पाँच पंक्तियों तक इसे खींच ले जाती हैं। वे 'अग बाई, सखे, ग' आदि जोड़ कर लय मिला लेती हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि जो ओवियाँ पुरुषों द्वारा ग्रंथों में आई हैं, उनमें लचीलापन कम है। ओवी और संस्कृत के अनुष्टुप छंद में समानता इस दृष्टि से है कि दोनों में एक भाव का गुंफन होता है और दोनों का मूल अर्थ ग्रंथ है। अभंग और ओवी में समानता इस दृष्टि से है कि दोनों के दूसरे और तीसरे चरण में 'यमक' अलंकार की चमत्कृति होती है।

अभंग छंद

यह भी सर्वथा महाराष्ट्रीय लोक-छंद है। इसकी लम्बाई की कोई सीमा नहीं होती। इसीलिए यह अभंग (अटूट) कहलाता है। दो से लेकर दो सौ 'चौक' भी एक अभंग में आ सकते हैं। अभंग की एक 'ओली' (पंक्ति-समूह) में चार चरण होते हैं और चार चरणों का एक चौक होता है। इन चरणों में अक्षर, मात्रा और गण का एक भी नियम लागू नहीं होता। उदाहरण लीजिए—

मराठी—रूप पाहतां लोचनीं। सुख जालें वो साजणी
तो हा विठ्ठल बरवा। तो हा माधव बरवा
बहुत सुकृताची जोडी। म्हणुनी विठ्ठलीं आवडी
सर्व सुखाचे आगरु। बाप रखुमा देवीवरु। (ज्ञानदेव महाराज)
(सुमन-संचय, विदर्भ-साहित्य-संघ, अमरावती—पृष्ठ ४)

हिन्दी—नाम प्यारा है भगत्, उसे जानत है जगत्
बम्मन आया धुंडत धुंडत, लगत लगत गाव मो
बम्मन कहे नामदेव, मुजे पूजना भूदेव,
इति बात मुजे देव, बहा देव गंगा मो। (गोंदा महाराज)
(सकल संत-गाथा, पृष्ठ—२६४)

भारुड़ और गारुड़

यह वह काव्यशैली है, जो जनता में बहु + रूढ़ (भारुढ़) हो चुकी है। इसमें सामाजिक पाखंडों और मक्कारों के प्रति व्यंग्य किया जाता है। श्री पांगारकर लिखते हैं—"जिसे अँग्रेजी में Folk lyric (लोकगीत) कहते हैं, उसी प्रकार का

गायन भारुड़ कहलाता है। गारुड़ चमत्कृतिजन्य अद्‌भुत काव्य होता है। समाज की रुढ़ि के ऊपर व्यंग्य भारुड़ का मुख्य ध्येय है। व्यंग्य में बोध तो रहता है; पर कटूक्ति नहीं। खेल-खेल में मनोरंजन के साथ उपदेश दिया जाता है। भारुड़ों में इतने गुण होने से वे बहुजन समाज में सहज ही रूढ़ हो गये हैं। इन भारुड़ों को महाराष्ट्र-शारदा का एक अजायबघर ही समझिए।[1] भारुड़ों का प्रयोग एकनाथ के पूर्ववर्ती संतों ने भी किया है। पर एकनाथ के भारुड़ अनूठे हैं, तीखे हैं और सीधी चोट करते हैं।

समाज में जो आडम्बरधारी जोगी, मलंग, गारुड़ी (सपेरे), फकीर आदि जनता पर आतंक जमा रहे थे और उसे सत्य आध्यात्मिक पंथ से विचलित कर रहे थे, उन्हें भी लक्ष्य कर संतों ने भारुड़ और गारुड़ की रचनाएँ की हैं। एकनाथ महाराज के 'गारुड़' की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"यारो देखो रे देखो गयबी गारुड़ी आया।
पहिला पहिला कछु नहीं देखे, निराकार निजरूपा।
अलख हात मो पलख बतावे, माया सगुन रूपा।
चल चल चल चल।
री री री री गा गा गा गा।
बा बा बा बा।"

मुंढ़ा

वास्तव में यह किसी छंद का नाम नहीं है। यह एक प्रकार का फकीर होता था जो समाज में निर्द्वन्द्व होकर चक्कर काटा करता था। झाँझ के साथ भजन गाता और भीख माँगकर मौज की ज़िन्दगी बिताता था। तुकाराम ने इस प्रकार के मुंढ़ों को फटकार सुनाई है। मुंढ़ों पर लिखी रचनाएँ स्वयं 'मुंढ़ा' कहलाने लगीं और इनकी गणना व्यंग्य-काव्य के एक प्रकार में होने लगी। तुकाराम महाराज का एक 'मुंढ़ा' सुनिए—

'सब संभाल म्याने लौंडे खड़ा केऊ गुंग।
मदिर थी मता हुआ भुली पाड़ी भंग।
आपसकु संबाल आपसकु संबाल, मुंढ़े खुब राख ताल
मुथि[2] वोहि बोल नहीं तो करूँगा मैं हाल।[3]

---

१. देखिए—मराठी वाङ्मयाचा इतिहास, पृष्ठ—४२६-४२७।
२. मुंह से।
३. दुर्दशा।

अखल का तो पीछे नहीं, मुदल बिसर जाय
फिरते नहीं लाज रंडी गधे गोते खाय ॥

इस तरह मुंढा में तीखा और सीधा आक्षेपपूर्ण व्यंग्य होता है।

गौलण

इसका अर्थ ग्वालिन होता है। महाराष्ट्र संतों ने 'गौलण' शीर्षक के अन्तर्गत गोपियों के कृष्ण-प्रेम को अभिव्यंजित किया है। तुकाराम की रचनाओं से गौलण का प्रवेश होता है। कई संतों ने मन की रागात्मिकावृत्ति का नाम 'गौलण' रखा है जो श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर उसीमें तन्मय हो जाती है। यही उसका आध्यात्मीकरण है। तुकाराम की एक 'गौलण' देखिए—

मैं भूली घर जानी बाट।
गोरस बेचन आई (?) हाट।
कान्हारे मन मोहन लाल
सबही बिसरुं देखे गोपाल
काहां पग डारुँ देख आनेरा
देखें तो सब वोहिन घेरा
हुं तो थकित मेरे तुका
भागारे सब मन का धोका।[1]

कटाव और कटिबंध

इसे डा० माधवराव पटवर्धन एक प्रकार का पद्य-प्रबन्ध कहते हैं। इनमें उद्धव द्विपदी के ध्रुव पद रहते हैं।...उसके आगे पादाकुलक में किसी एक यमक से सम्बद्ध चरण के समूह होते हैं और एक समूह से दूसरे समूह पर जाने के बीच में जो पद का अष्टमात्रक अन्तरा होता है, उससे आगे के 'समूह' का यमक साधा जाता है। कड़ी के अंत का सम्बन्ध यमक द्वारा ध्रुवपद से जुड़ा रहता है। समूह के चरणों की संख्या निश्चित नहीं रहती। गतिशील रचना का यह एक सुविधाजनक पद्य-प्रबंध है।[2] कटाव के उदाहरण में अमृतराय का एक पद दिया जाता है—

---

१. देखिए—संत तुकाराम, पृष्ठ—२११।
२. देखिए—छंदोरचना, पृष्ठ—३६२।

चली संकर की असवारी। त्रिभुवन मो बात फुकारी[1] ॥धु०॥
धवला बैल सजो है नंदी, तापर बैठे संकर छंदी।
किलकारते जिलिब मो बंदी, लेवे साथ सुखी आनंदी,
निकसो सुखरथाट, संतसाधो का मेला बाट,
सप्त कोटि गण निकसे दाट।
साथ बेताल भूतगन खूब बजावत, सिंग तुरैया,
बजते बाजे, ढोल नगारे, धिमि धिमि धिमि धिमि,
नौबद भरकत, झल्लर झल्लर तधीं तधीं कडां कडां
पखवाज बाजते, खुनु खुनु खुनु खुनु ताल बोलते,
तन तन तंबुरे गर्जते, भुं भुं भुं भुं शंख बाजते,
चुट चुट चुट चुट ताल चमकते, चवर चीर मोर पिच्छ उरते,
लगी निशाण जसबोब फरकते खूब चन्हाई[2] भंग तारसे,
नाथ भये खुश रंग, मुकुट से झुरझुर वहती गंग चले सुखकारी,
॥त्रिभुवनमो० ॥

कटिबंध के उदाहरण के लिए देवनाथ की निम्नलिखित रचना दी जाती है—

'पाई गुरुकिरपाकी छाप, भाग्यो माया परमकलाप, जित देखो तित आपहि आप, आप एक अनेक एक कछु कही न जावे, अचल अमलघट, कमल कमलमो, व्याप रह्यो है, जलमो थलमो, जमालसाई, कमाल देखा अलखखलकमो, भर्‌यो खूब भरपूर चलकसो रसिकरुप अरूपरूपमो भये दंग तद गुंग अनूहत, चंग बजत रह्यो नाद धुनाय, धुं धुं धुं धुं धुंमर छाई, जोग जुगुत की रहनी पाई, आप आपस मो रंग लपट रहे, निसंग अटल श्रीगुरुनाथ गोविन्दविंद सिर आप विराजे, देवनाथ के नैन बाग मो छाय रह्यो गुल्लाला.॥,

---

साषी और दोहरा

सामान्यतः साखी दोहा छन्द में लिखी जाती है। जिसका लक्षण यह है कि 'उसके विषम (पहले, तीसरे) पदों में १३ और सम पदों में ११ मात्राएँ होती हैं। विषम के आदि में जगण (।ऽ।) न पड़ना चाहिए और सम के अन्त में लघु पड़ना आवश्यक है'—(काव्य-प्रदीप, २६७)। परन्तु महाराष्ट्रीय संतो की साषी और दोहरों में इस नियम का प्रत्येक स्थल पर पालन नहीं दिखाई देता। दो पंक्तियों में भाव कह देना ही

---

१. पुकारी।
२. चढाई।

संभवतः उनकी साखी या दोहरे की परिभाषा है। गुंडा केशो के दील्लबुज्भ दोहरे का एक उदाहरण दिया जाता है—

भरा है ज्यमां आसमानि ज्यांहाणू
कहे दास गुंडे उसीकुं पछ्याणू ॥

और संत तुकाराम की 'साखी' का उदाहरण लीजिए—

तुकाराम सुंचीत बांध राखु,तैसा आपनी हात,
धेनु बछरा छोर ज्याव, प्रेम न सुटे सात।

ध्रुवपद (ध्रुपद)

ध्रुवपद गायन के आविष्कर्ता ग्वालियर के राजा मानसिंह माने जाते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से इसका चलन प्रारम्भ हुआ। संतों ने इसमें भक्ति रस के गीत गाये हैं। 'अनूपरत्नाकार' में ध्रुपद की इस प्रकार व्याख्या की गई है—

'गीर्वाण-मध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसम्पन्नं नर-नारीकथाश्रयम् ॥
शृङ्गाररसभावाढ्यं, रागालापंतदात्मकम्।
पादांतानुप्रासयुक्तं पादानयुगकं च वा ॥
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उदग्राहध्रुवकाभागांतरं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

'ध्रुपद में स्थायी, अन्तरा, संचारी और आयोग ऐसे चार भाग होते हैं। ध्रुपद अधिकतर चौपाल, सुलफाक, झंपा, तीव्रा, बह्मताल, रुद्रताल इत्यादि तालों में गाये जाते हैं। ध्रुपद में तालों का प्रयोग नहीं होता ; किन्तु उसमें दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग करने की छूट है।'[1]

ख्याल

संतों ने ध्रुपद के अतिरिक्त कभी-कभी ख्याल भी गाये हैं। ख्याल फारसी का शब्द है जिसका अर्थ होता है विचार अथवा कल्पना। 'राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विभिन्न आलाप तानों का विस्तार करते हुए एकताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा, चौताल इत्यादि तालों में गाते हैं। ख्यालों के गीतों में शृङ्गार रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। ख्याल गायकी में जल्दतान, गिरकरी इत्यादि का प्रयोग भी शोभा देता है और स्वरवैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिए ख्याल में तरह-तरह की तानें ली जाती हैं। ख्याल गायन में ध्रुपद जैसी गंभीरता और भक्तिरस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

---

१. संगीत-विशारद, पृष्ठ—१२६।

ख्याल दो प्रकार के होते हैं—(१) जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं (बड़े ख्याल) और (२) जो द्रुतलय में गाये जाते हैं (छोटे ख्याल)। गायक जब ख्याल गाना आरम्भ करता है तब पहिले विलम्बित लय में बड़ा ख्याल गाता है जिसे प्रायः विलम्बित एकताल, तीनताल, झूमरा, आड़ा, चौताल इत्यादि में गाता है, फिर इसके बाद ही छोटा ख्याल मध्य या द्रुतलय में आरम्भ कर देता है। उसे त्रिताल या द्रुत एकताल में गाता है। छोटे-बड़े ख्याल जब गायक एक स्थान पर एक समय में गाता है तब ये दोनों प्रायः किसी एक ही राग में होते हैं ; किन्तु बोल या कविता बड़े छोटे ख्यालों की अलग-अलग होती हैं।"[1] संत 'गुंडा केशो' का एक ख्याल नीचे दिया जाता है—

व्यातुर ज्यानत प्रेम ये मन कि
हिरे की पारख सहज दिखावे
काहें कु च्योट लगी है घनकि
बंधा मृग तो क्या जाने परिमल
भंवर ही ज्यानत प्रीत फुलन कि
गुन्डा केशो प्रभु अंतर बाहेर
सब कुछ देखत सुर्त लगन कि।

लावनी

लावनी को मराठी में लावणी कहा जाता है। प्रतीत होता है कि इसका लवण अथवा लावण्य से संबंध है। इसका मुख्य भाव श्रृंगार है। कहीं-कहीं इसे ख्याल और मराठी गायन का पर्याय भी माना जाता है। इसे ख्याल कहा जाने का कारण यह हो सकता है कि ख्याल भी श्रृंगार-प्रधान होता है। मराठी गायन इसलिए कहा जाता है कि इसका जन्म सर्वप्रथम महाराष्ट्र में हुआ। पेशवाओं के समय में महाराष्ट्र की जनता में विलासप्रियता की अभिवृद्धि होने से वह लावनियों की ओर अधिक प्रवृत्त हुई।

"काल्हि के कवि रीझि है तो कविताई है, नतरु राधिका गोविन्द सुमिरन को बहानो है।" कदाचित् यह सोचकर कुछ लावनीबाज़ों ने देवताओं को भी अपनी लावनी का विषय बनाया।

प्राचीन काल में लावनियाँ कई दलों में प्रतिस्पर्द्धा का विषय बनी हुई थीं। उत्तर-भारत और महाराष्ट्र में लावनियों के कलगी और तुर्रा-दल बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। कलगी और तुर्रा-दलों का निर्माण कैसे हुआ, इसकी भी एक रोचक कहानी है। पेशवाओं के काल में महात्मा तुकनगिरि और फकीर शाहअली किसी पेशवा की सभा में गये और वहाँ दोनों ने मधुर कंठ से लावनियाँ सुनाईं। पेशवा ने मुग्ध होकर अपने मस्तक का तुर्रा तुकनगिरि को और कलगी शाहअली को भेंट कर दी। कहा जाता है,

१. देखिए—संगीत-विशारद, पृष्ठ—११८-११९।

तभी से तुकनगिरि अनुयायी तुर्रावाले और शाहअली के अनुयायी कलगीवाले लावनी-बाज़ कहलाने लगे। कुछ वर्ष पूर्व तक शहरों में कलगी और तुर्रा-दल के लावनी बाज़ों की रात-रात भर प्रतिस्पर्धा हुआ करती थी और जनता रस-विभोर हो इनके दंगलों में जमी रहती थी।

प्रत्येक लावनी में कम-से-कम चार चरण होते हैं और उसमें दो पंक्तियों की एक टेक होती है। टेक की पंक्तियों में जितनी मात्राएँ होती हैं, प्रायः उतनी ही मात्राएँ चार चरणों में भी होती हैं। ऐसा भी होता है कि पाँचवें चरण की तुक टेक की दूसरी पंक्ति के साथ मिलाई जाती है। टेक तथा मिलन के बीच कभी-कभी दो अन्य छन्द भी आ जाते हैं। लावनी के लोकगीत होने के कारण उसके रचयिता हिन्दू और मुसलमान—दोनों होते हैं। अतः लावनी की भाषा सरल और अरबी-फ़ारसी की प्रचलित शब्दावली लिये हुए होती है। मराठी में अरबी-फ़ारसी शब्दों का हिन्दी की अपेक्षा अधिक चलन है और मराठीकरण है। मराठी संतों द्वारा रचित हिन्दी लावनियाँ भक्ति और शृंगार समन्वित हैं।

परिशिष्ट

(क)

प्रमुख महाराष्ट्र संतों का हिन्दी-वाणी-संग्रह

दामोदर पंडित के पद

(रागु—धनाश्री वा आसावरि वा रामकरि)

पढो हो पंडित गुणो हो शास्त्रं अलोढ़ो सकल पुराणा।
उसमें कर्मकु[1] (?) हा[2] धंदा उगवति गुरुमुखें खुणा[3] ॥१॥ध्रु"
सुन हो बाबा, सुन हो पंडित सुन बैरागी भाइ।
हमारी साखी बीरला सुने बूझति बीरला कोइ ॥
अनंत पुरुष हो अनंत भाषा पुकारति नाना विचार।
सबही मिलकर रहणि नेनति[4] पंथ तो अपरं पार ॥२॥
सिद्धांत सिद्धन सिद्धति सारे अवधुत के हंम राजे।
सबहि व्यापिनि जग की स्वामिनि उस पर जंजीर बाजे ॥३॥
राजाधिराज हमने नहि भाषा अमर सार सुध पाया।
नागार्जुन पुत्त[5] श्री मुख बचनी निर्मुळ का मुल खाया ॥४॥

(२)

रागु भैरव

नवनाथ कहे सो नाथपंथी जुगुत कहे सो जोगी।
विश्व बुझे सो कहि बैरागी, ग्यान बुझे सो योगी ॥१॥ध्रु
सुन हो तुम्ह सिद्धांत गरुवा सारा ग्यान पंथु हमारा।
शुन्य निरसुन्य काहांके कहिजे ब्रम्हादिक नेनेति पारा ॥१॥
ये शिव शकती समा जुगतो, कवन युक्ति तुम पाया।
ब्रम्हा विष्णु महेश चन्द्र रवि भ्रमण करत समाया ॥२॥
पुछु तोहिकें श्रोता पंडित इन्द्र केतिबार आया।
बत्तिस मुख का ब्रह्मा प्रत्यक्ख कवण जुग तुम पाया ॥३॥

---

१. पाठान्तर—कर्मकू वाडा। २. हा = यह। ३. संकेत। ४. न जानन्ति (नहीं जानते)।
५. शिष्य के अर्थ में।

पंच क्रिष्ल[1] खेल भाव हो ज्याकी, क्रिष्ल (ण) कन्हे न जणाया ।
कवण तें युग कवन तें थान, निज रूप काहां समाया ॥४॥
सारमसार बुझति हे बिरला, तत्त्व ग्यान जीन्हं पाया ।
कलयुग माहे बदंति ग्यानी सब लोकु धंदे लगाया ॥५॥
अलेख कहिजे अपरांपरु, जीव कहिजे अबिनाश ।
उत्पत्ति प्रलय नागदेव[2] कहे श्री राऊळ के दास ॥६॥

(३)

रागु—रामग्रि

गयनि[3] उतपति गयनी लोरे, आपु तो गयेनीं समु[4] ।
आभाशु का भाशु तैसा बुझो सब माया का मरमु ॥१॥धृ०॥
तैसा रे ये भव बिचार रजुकेरा भुजंगु ।
गुरु पसायें[5] बुझति जोइ, न बुझे पैहो जगु ॥
सपन को आली को साचा, जेवी प्रबंधु[6] न होइ ।
निहाळित[7] भ्रिग जळरे कदळी गरभ बुझति जोइ ॥२॥
पवणु पेलितु भुमिको रजु[8] रे, जेवि गगण चढ़ाइ ।
नाथिली उत्पति स्थिति लया रे, जाहां का ताहाँ समायि ॥३॥
सार असार निर्वाळित प्रभु आदिनाथ की वाणी ।
नागदेव म्हणे[9] हमें रंगलों, चक्र स्वामिचा[10] चरणी ॥४॥

(४)

रागु—सामग्री

एकु जागा एकु सुत्ता भया रे, खबना भगि चढ़िबो ।[11]
भंवरि देत सुता खान खाइ एर निहुल[12] वास पाहिबो[13] ॥१॥धृ॥
कट भूलिबो रे कट भूलिबो रे कापट मूठ बुझाइ
तत्व बीचार न जाणति जोइ, तो बिथ्या पंडित म्हनाई[14] ॥०॥
आगे नागा पाछे कंथा पहिरे, लोक लाज न धरे ।
अष्ट भोग भोगि मंगल गाई, तो न्हान यौं कलसीं न्हाये रे ॥२॥
सप्त दीपू अरु सप्त पताले, व-हाड़[15] भज्ञा मिळिवो ।
काळ राति मधि मारि घालिबो, तो कोण जाग सूत धरिवो ॥३॥
आदि पति माया निचिया लोइ, बखाण के पढ़ियासो ।
नागदेव म्हणे चक्र सामि बिन, तीहा जगु भइ भजे सो ॥४॥

---

१. पाठान्तर—किष्ण । २ नागार्जुन । ३. गगन (शब्द) । ४. समान । ५. प्रसाद । ६. प्रबोध (जाग्रतावस्था) । ७. पाठान्तर—निहारत । ८. धूलिकण । ९ कहता है । १०. चक्रधर स्वामी के । ११. खानेवाले को जब भाँग चढ़ी । १२. नीच । १३. देखना । १४. कहलाता है । १५. बरार (पंडित का निवास-प्रांत) ।

(५)

रागु—रायश्री

एकु अंधा एकु पंगा भाई। एकणे एक लिया खांदी।[१]
दोई पुरुष मिलिकर एकचि हुवा। तो श्रृष्टि पद्धि वेवादी रे।

शुन्य बुझे शुन्य परहि बुझो। शुन्य निरशुन्य भागे
नागदेव मुख कथन किया हो तो जीव शिव सम जोगे रे।

आया हु भाइ ब्रह्मारण्ड पिंडा। सब ही का दलवाडा[२]
दो पख जाले एक पख[३] बोले तो बुझलों तथा अगड़ा।

लवणाधुनि तेचि नागवण[४] कंचना न दिसे कहीं।
तुटले सांदी असा कैचा (कैसा) चातुर सिंधु उतरिजे बाहि।

सुख दुख किया हमेचि पाया ऐसा कोई नहीं भेदा।
नागदेव कहे श्री मुख बचनी बुझ्या न कळ वेदा ॥४॥२६॥

(६)

रागु—भूपाली

मुके नि[५] सपना दीठे अनुवाद करे कोण।
तैसा सुन रे भया (भैया) असे आतम ग्याम ॥१॥

बहुत मारग बोलति सिद्ध साधक जोइ।
आदिनाथ अनुभवें विन अनुवादु नाहीं[६] ॥०॥

अष्ट धातु विचित्र रूपा अनंत नादं।
परेशीं लागे कनक जेवि, होय निःशब्दं ॥२॥

डुरसौं (?) भेदु वादु नाहीं अम्रितपाणि।
मणासि वाचे पैसु नहिं परब्रह्म ग्यानी ॥३॥

घेतां देतां जावे अगोचर सचराचर।
नागदेवें दिठें पररूप चक्रधर ॥४॥

(७)

रागु—बीलावर वा नाट

विषये पसारें मौन कराइ, गाइ धाउ नेदाइ।
मथिना मथिना राळि घलाइ, बैरी चीतु बंधाइ ॥१॥ ध्रु०॥

---

१. कंधे पर। २. समूह। ३. पची। ४. लूट। ५. गूंगे ने। ६. पाठान्तर—न होई।

आळे जाळे वचन वीचाळे, साच न बोले कोइ।
शुद्ध सरुप आपण होइ, सो पंथ धरोरे भाइ ॥०॥

लाळी लोळी लळित वीकासी, किसु[1] न जानसि जोइ।
जाहां जाहां चितुवा दुड़ि दुड़ि जाइ,[2] ताहां ताहां पूठी न धाइ ॥२॥

कोइ कोइ नांदे रे बीरला, बहुतां सिद्धि न गाइ।
कुळटां भावि झाकी न जाइ, ताहां सिद्धि न होइ ॥३॥

किछु न कराइ सर्बचि कराइ, सो चल कर्म कराइ।
नागदेव भट सामि[3] पसायें, कहे हो पुकराई ॥४॥

(८)

रागु—तोडी वा गौडी

नगर मध्यें पैसौ बाबा, आवड़त षडुरस गगण हमारा धवळार रे।
नवखंड हमारा देश ॥१॥ ध्रु०॥
सटो सटो रे दंभ करण, याथे निब्रित नावे।
जेता जेता दंभ करेगा, तेता बंधन पावे ॥२॥
चिथड़ा फाटा तुटा पेहरो उपरी चोर न आवे।
येहि रहनि जे चालती , ते जंगल मध्ये सोवे ॥२॥
सटि बा झुटा बोले मिठा आशा मनसा दुइ धांधा।
काम क्रोध जीन्हें भांजे नहीं, ते काल फाड़ फाड़ खाधा ॥३॥
ऐसे हो तुम ग्यान बैरागी, खरग धार चलाइ।
अहंकार जीन्हें भांज्यो नहिं, पर सिद्ध कैसे पाइ ॥४॥
कहे नागार्जुन तजो अभिमान, किसकी करें हम निंदा।
पुहुपमये सेज जीस भावे, काल फाड़ फाड़ खादा ॥५॥

"सके १५७१ विरोधनाम संवत्सरेः श्रावण मासे सुधे नवमी : वार सोमवार : तद्दीने पुस्तकसंपूर्ण (लाड़नाम तुक राजा के शिष्य अनन्त मुनि के हस्ताक्षर।" ई० स० १६४६ शिव-काल में उपर्युक्त पदवाली पांडु लिपि लिखी गई है।

स्व० नेने की कृपा से यह पांडुलिपि हमें प्राप्त हुई है। इसके एक पृष्ठ का चित्र इसी पुस्तक में दिया गया है

---

१. कछु। २. दौड़-दौड़ जाता है। ३. स्वामी।

नामदेव के हिन्दी-पद

गुरुग्रन्थ साहब तथा अन्य मुद्रित-अमुद्रित ग्रन्थों से
संकलित और सम्पादित

नामदेव के हिन्दी पद

(१)

रागु—गौडी चेती √

देवा, पाहन तारिअले[1] ॥
राम कहत जन कस न तरे ॥
तारीले गनिका बिनुरूप कुबिजा—
—बिआधि अजामलु तारिअले ।
चरणबधिक जन तेऊ मुकति भए ॥
हउ बलि बलि जिन राम कहे ॥
दासी सुत जनु-बिदरु-सुदामा—
उग्रसेन कउ राज दिए ॥
जपहीन, तपहीन, कुलहीन, क्रमहीन
नामे के सुआमी तेऊ तरे ।

---

(२)

रागु—आसावरी

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई ॥
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई ॥
सभु गोबिन्दु है, सभु गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नही कोई ॥
सूतु एकु मणि सतसहस जैसे उतिपोति प्रभु सोई ॥
जलतरंग अरु फेन बुदबुदा, जलते भिन न कोई ॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ॥
मिथिआ भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ ॥
सुक्रित मनसा गुरु उपदेसी, जागत ही मनु मानिआ ॥
कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी ॥
घटघट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी ॥

---

१. तैरा दिये ।

(३)

आनीले कुंभ भराईले ऊदक ठाकुर कऊ इसनानु करऊ ।।
बइआलीस लख जो जल महि होते बीठलु मैला काइ करऊ ।।
जत जाउ तत बीठलु भैला[१] ।। महा अनंद करे सद केला ।।
आनीले फूल परोइले माला ठाकुर की हऊ पूज करऊ ।।
पहिले बासु लई है भवरह[२] बीठल मैला काह करऊ ।।
आनीले दुधु रीधाइले खीरं ठाकुर कऊ नैवेदु करऊ ।।
पहिले दूधु बिटारिउ बछुरे बीठलु मैला काह करऊ ।।
ईभै बीठलु, ऊभै बीठलु, बीठल बिनु संसारु नहीं ।।
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिउ तूं सरब मही ।।

(४)

मन मेरे गजु जिहवा मेरी काती[३] ।।
मपि मपि काटउ जम की फासी ।।
कहा करउ जाती कह करउ पाती ।।
रामको नामु जपउ दिनराती ।।
रांगनि रागउ सीवनि सीवउ ।।
राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ ।।
भगति करउ हरिके गुन गावउ ।।
आठ पहर अपना खसमु धिआवउ ।।
सुइनेकी[४] सुई रूपे का धागा ।।
नामे का चितु हरि सउ लागा ।।

(५)

सापु कुंच[५] छोडै विखु नहि छाडै ।।
उदक माहि जैसे बगु[६] धिआन माडै ।।
काहे कउ कीजै धिआनु जपना ।।
जब ते सुधु नाही मनु अपना ।।
सिंघच भोजनु जो नरु जाने ।।
ऐसे ही ठग देउ बखाने ।।
नामे के सुआमी लाहिले झगरा ।।
राम रसाइन पिउ रे दगरा[७] ।।

---

१. विद्यमान मिला । २. भौंरा । ३. कतरनी । ४. सोने की । ५. केंचुली । ६. बगुला ।
७. दगाबाज ।

(६)

पार बहमु जे चीनसी आसा ते न भावसी ।।
रामा भगतह चेतीअले अचित मनु राखसी ।।
कैसे मन तरहिगा रे संसारु विखै को बना ।।
झूठी माइआ[1] देखि के भूला रे मना ।।
छीपे के घरि जनमु दैला गुर उपदेसु भैला ।।
संतन कै परसादि नामा हरि भेटुला ।।

(७)

रागु—गुजरी

जौ राजु देहि त कवन बडाई ।।
जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई ।
तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु ।।
बहुरि न होई तेरा आवनजानु ।।
सभ तै उपाई भरम भुलाई ।।
जिस तूं देवहि तिसहि बुझाई ।।
सतिगुरु मिलै त सहसा जाई ।।
किस हऊ[2] पूजऊ दूजा नदरि[3] न आई ।।
एकै पाथर कीजै भाऊ[4] ।।
दूजै पाथर धरिए पाऊ ।।
जै उहु देऊ त उहु भी देवा ।।
कहि नामदेऊ हम हरि की सेवा ।।

(८)

भलै न लाछै पारमलो[5] परमलीउ[6] बैठोरी आई ।।
आवत किनै न पेखिऊ कवने जाने री बाई ।।
कवणु कहै किणि बूझिऐ रमईआ आकुलु री बाई ।।
जिऊ[7] आकासै पंखिअलो खोज निरखिउ न जाई ।।
जिउ जल माझै माछलो मारगु पेखणौ न जाई ।।
जिऊ आकसे घडुअलो म्रिगत्रिसना भरिआ ।।
नामेचे सुआमी बीठलो, जिन तीनै जरिआ ।।

---

१. माया । २. किसे । ३. नजर । ४. भाव । (पूजा) । ५. परमात्मा । ६. सुगंध । ७. जैसे (ज्यों) ।

(९)

राग—सोरठी

जब देखा तब गावा ॥ तउ जन धीरजु पावा ॥
नादि समाइलो रे सतिगुर भेटिले देवा ॥
जह झिलिमिल कारु[1] दिसंता ॥
तह अनहद सबद बजंता ॥
जोती जोति समानी ॥ मैं गुर परसादी जानी ॥
रतन कमल कोठरी[2] ॥ चमकार बीजुल तही ॥
नेरे नाही दूरि ॥ निज आतमै रहिआ भरपूरि ॥
जह अनहत सूर उजयारा ॥ तह दीपक जलै घीया ॥
गुर परसादी जानिआ ॥ जनु[3] नामा सहज समानिआ ॥

(१०)

पाड पडोसणि पूछिले नामा, कापहि छानि छवाई हो ॥
तोपहि दुगणी मजूरी देहउ मोकऊ बेडी देहु बताई हो ॥
री बाई, बेडी देनु न जाई ॥
देखु बेडी रहिउ समाई ॥
हमारै बेडी प्राण अधारा ॥
बेडी प्रीति मजूरी मागै जऊ कोऊ छानि छवावै हो ॥
लोग कुटंब सभहु ते तोरै तउ आपन बेडी आवै हो ।
ऐसो बेडी बिरनि न साकउ सभ अंतर सभ ठाई हो ।
गूंगे महा अम्रितरस चाखिआ पूछे कहनु न जाई हो ॥
बेडी[4] के गुन सुनि री बाई जलधि बांधि ध्रू थापिउ हो ॥
नामेके सुआमी सीअ बहोरी लंक भभीखण आपिउ हो ॥

(११)

अणमडिआ[5] मंदलु बाजै ॥
बिनुसावन घनहरु गाजै ॥
बादल बिनु बरखा होई ॥
जउ ततु[6] बिचारे कोई ॥
मोकउ मिलिउ रामु सनेही ॥
जिह मिलिए देह सुदेही ॥
मिलि पारस कंचनु होइआ[7] ॥

---

१. आकार । २. मन । ३. जैसे । ४. बढ़ई । ५. बिना मढ़ा हुआ । ६. तत्व । ७. भया (हुआ)।

मुख मनसा रतनु परोइआ ॥
निजभाऊ भइआ भ्रमु भागा ॥
गुर पूछे मनु पतिआइआ ॥
जल भीतरि कुंभ समानिआ ॥
सभ रामु एकु करि जानिआ ॥
गुरु चेले है मन मानिआ ॥
जब नामै ततु पछानिआ ॥

(१२)

रागु—धनासरी

गहरी करिके नीब खुदाई ऊपरि मंडप छाए ॥
[1] मर्कंड ते को अधिकाई जिनि त्रिण धरि मूंड बलाए[2] ॥
हमरो करता रामु सनेही ॥
काहे रे नर गरबु करतहहु बिनसि जाई झूठी देही ॥
मेरी मेरी कैरउ करते दुरजोधन से भाई ॥
बारह जाजन छत्र चलै.था देही गिरधन[3] खाई ॥
सरब सोइन की लंका होती रावन से अधिकाई ॥
कहा भइउ दरि बांधे हाथी खिनमहि भई पराई ॥
दुरवासा सिऊ करत ठगऊरी जादव ए फल पाए ॥
क्रिपा करी जन अपने ऊपर नामदेऊ हरिगुन गाए ॥

(१३)

दस बैरागनि मोहि बसि कीनी पंचहु का मठनावऊ ॥
सतरि दोइ भरे अमृतसरी—विखुकउ मारि कढ़ावऊ ॥
पाछे बहुरि न आवनु पावऊ ॥
अंम्रित बाणी घट ते ऊचरऊ आतम कऊ समझावऊ ॥
बजर कुठारु मोहि है छीना करि मिनंति लगि पावऊ ॥
संतन के हम उलटे सेवक भगतन ते डरपावऊ ॥
ईह संसार ते तबही छूटऊ जऊ माइआ नह लपटावऊ ॥
माइआ नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसन पावऊ ॥
इतुकरि भगति करहि जो जन तिन भउ[4] सगल चुकाइए
कहत नामदेऊ बाहरि किआ भरमहु इह संजम हरि पाइए

---

१. मार्कण्डेय ऋषि की एक हजार वर्ष की आयु थी। २. बिताया । ३. गिद्ध । ४, भय ।

(१४)

मारवाडि जैसे नीरु बालहा[1] बेलि बालहा करहला[2] ॥
जिउ कुरंग निसि नादु बालहा तिउ मेरै मंनि रामईआ ॥
तेरा नामु रूडो[3], रूपु रूडो, अतिरंग रूडो मेरो रामईआ ॥
जिऊ धरणी कऊ इंद्र बालहा कुसम बासु जैसे भवरला ॥
जिऊ कोकिल कऊ अंबु बालहा तिऊ मेरे मनीं रामईआ ॥
चकवी कऊ जैसे सूरु बालहा मान सरोवर—हंसुला ॥
जिऊ तरुणी कऊ कंतु बालहा तिऊ मेरे मनीं रामईआ ॥
बारिक[4] कऊ जैसे खीरु[5] बालहा चात्रिक मुख जैसे जलधरा ॥
मछुली कऊ जैसे नीरु बालहा तिऊ मेरे मनि रामईआ ॥
साधिक-सिध सगल मुनि चाहहि बिरलो काहू डीठुला ॥
सगल भवन तेरे नामु बालहा तिऊ नामे मनि बीठुला ॥

---

(१५)

पहिल पुरिए पुंडरक बना[6] ॥
ताचे हंसा सगले जना ॥
क्रिसना ते जानऊ हरि हरि नाचंती नाचना ॥
पहिल पुरसा बिरा ॥ अथोन[7] पुरसा दमरा ॥ असगा असउसगा हरिका बागरा नाचै पिंधी महीसागरा ॥ नचंती गोपी जना ॥ नइआ ते बैरे कंना ॥ तरकु नचा ॥ भ्रमीआ चा ॥ केसवा बचउनी अइए, मइए, एक आनै जीऊ ॥ पिंधी उभकले संसारा ॥ भ्रमिभ्रमि आए तुमचे दुआरा ॥ तू कुनुरे ॥ मै जी, नामा ॥ आला . ते निवारण जम कारणा ॥

---

(१६)

पतितपावन माधऊ बिरदु तेरा ॥
धनि ते वै मुनिजन जिन धिआइउ हरि प्रभु मेरा ॥
मेरे माथै लागीलै धूरि गोबिंद चरणन की ॥
सुर नर मुनि जन तिनहु ते दूरि ॥
दीनका दइआलु माधौ गरब परिहारी ॥
चरण सरन नामा बलि तिहारी ॥

१, प्यारा । २. ऊँट । ३. सुन्दर । ४. बालक । ५. दूध । ६. कमलवन । ७. बाद में ।

(१७)

रागु—टोडी

कोई बोलै नीरवा कोई बोलै दूरि ॥ जल की माछुली चरै खजूरि ॥
कांइ रे बकबादु लाइउ ॥ जिन हरि पाइउ तिनहि छपाइउ ॥
पंडित होइकै बेदु बखानै ॥ मूरखु नामदेऊ रामहि जानै ॥

---

(१८)

रागु—टोडी

कऊन को कलंकु रहिउ रामनामु लेतही ॥
पतित पवित भए रामु कहत ही ॥
रामसंगि नामदेउ जनकऊ प्रतिथिआ [१] आई ॥
एकादशी व्रतु रहै काहे कऊ तीरथ जाई ॥
भनति नामदेऊ सुक्रित सुमति भए ॥
गुरमति रामु कहि, को को न बैकुंठि गए ॥

---

(१९)

तीनि छंदे खेलु आछै । तीनि छंदे खेलु आछै
कुंभार के घर हांडी आछै राजा के घर सांडी [२] गो [३] ॥
बामन के घर रांडी आछै रांडी सांडी हांडी गो ॥
बाणी के घर हींगु आछै [४] भैसर माथै सींगु गो ॥
देवलमधे लीगु आछै लीगु सीगु हीगु गो ॥
तेली के घर तेलु आछै जंगलमधे बेल गो ॥
माली के घर केल आछै । केल बेल तेल गो ॥
संतांमधे गोबिंदु आछै गोकलमधे सिआम गो ॥
नामेमधे रामु आछै राम सिआम गोबिंदु गो ॥

---

१. प्रतीति । २. ऊंट । ३. कहो । ४. है ।

(२०)

रागु—तिलंग

मैं अंधुले की टेक तेरा नामु खुंदकारा ॥
मैं गरीब मैं मसकीन तेरा नामु है अधारा ॥
करीमां रहीमां अलाह तू गनीं ॥
हाजरा हजीर दरि पेसि तू मनीं ॥
दरिआऊ तूं दिहंद तू बिसिआर तू धनी ॥
देहि लेहि एकु तूं दिगर को नही ॥
तूं दानी तूं बीनां मैं बीचारु कियाकरी ॥
नामेचे सुआमी बखसंद तूं हरी ॥

(२१)

हले यारां हले यारां खुसि खबरी ॥
बलि बलि जांऊ हऊ बलि बलि जाऊ ॥
नीकी तेरी बिगारी आले तेरा नाऊ ॥
कुजा आमद कुजा [१] रफती कुजा मेखी [२] ॥
द्वारिका नगरी रासि बुगोई ॥
खूबु तेरी पगरी मीठे तेरे बोल ॥
द्वारिका नगरी काहे के मगोल [३] ॥
चंदो [४] हजार आलम एकल खाणा [५] ॥
हम चिनी [६] पातिसाह सांवले बरना ॥
असपति [७] गजपति [८] नरह [९] नरिंद [१०] ॥
नामेके स्वामी मीर मुकुंदु ॥

---

(२२)

रागु—बिलावलु

सफल जनमु मोकउ गुरु कीना ॥
दुख बिसारि सुख अंतरि लीना ॥
गिआन अंजनु मोकउ गुरु दीना ॥
राम नाम बिनु जीवनु मन हीना ॥
नामदेइ सिमरनु करि जानां ॥
जगजीवन सिउ जीऊ समानां ॥

---

१. (फारसी) कहाँ। २. (फारसी) कहाँ जा रहा हूँ।
३. मुगल। ४. (फारसी) नौकर।
५. सरदार (नेता)। ६. (फारसी) चुनी।
७. सूर्य। ८. इन्द्र। ९. राजा। १०. ब्रह्म।

(२३)

राग—गोंड

असुमेध जगने, तुला पुरख[1] दाने, प्राग इस्नाने,
तऊ न पूजहि हरि कीरति नामा।
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ ॥ गइआ पिंडु भरता ॥
बनारसि असि बसता ॥ मुख बेदु चतुर पडता[2] ॥
सगल धरम अछिता[3] ॥ गुर गिआन इंद्री द्रिडता ॥
खटु करम सहित रहता ॥ सिवा-सकति[4] संबादं ॥
मन छोडि छोडि सगल भेदं ॥ सिमरि सिमरि गोविंदं ॥
भजु रामा तरसि भवसिंधं ॥

(२४)

नाद भ्रमे जैसे मिरगाए ॥
प्रान तजे वाको धिआनु न जाए ॥
ऐसे रामा ऐसे हेरऊ ॥
राम छोडि चितु अनत न फेरऊ ॥
जिऊ[5] मीना हेरै पसुआरा[6] ॥
सोना गडते हिरै सुनारा
जिऊ बिखई हेरै पर नारी ॥
कउड़ा डारत हिरै जुआरी
जह जह देखऊ तह तह रामा ॥
हरिके चरन नित धिआवै नामा ॥

(२५)

मोकऊ तारिले रामा तारिले ॥
मैं अजानु जनु तरिबे न जानऊ बाप बिठुला बाह[7] दे ॥
नर ते सुर होइ जात निमख मै सतिगुर बुधि सिखलाई ॥
नर ते उपजि सुरग कऊ जीतिउ सो अवखध[8] मैं पाई ॥
जहाँ-जहाँ धूअ[9] नारदु टेके[10] नैकु टिकावहु मोहि ॥
तेरे नाम अविलंबि बहुतु जन उधरे नामेकी निज मति एहि ॥

१. तोल के बराबर, । २. पढ़ता । ३. करता है । ४. पर्वती । ५. ज्यों । ६. मछुआ ।
७. बाँह दे । ८. ओषधि । ९. ध्रुव । १०. ठहरे ।

(२६)

मांहि लागती तालाबेली[1] ॥
बछुरै बिनु गाइ अकेली ॥
पानीआ बिनु मीनु तलफै ॥
ऐसे रामानामा बिनु बापरो नामा ॥
जैसे गाइका बाछा छूटला ॥
थन चोखता माखनु छूटला ॥
नामदेऊ नाराइणु पाइआ ॥
गुरु भेटत अलखु लखाइआ ॥
जैसे विखै हेत परनारी ॥
ऐसे नामे प्रीति मुरारी ॥
जैसे तापते निरमल घामा ॥
तैसे रामनामा बिनु बापुरो नामा

(२७)

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा ॥
हरि को नामु लेऊ तम धरमा ॥
हरि हरि करत जाति कुल हरी ॥
सो हरि अंधुले की लाकरी ॥
हरए नमस्ते हरए नमह ॥
हरि हरि करत नहीं दुख जमह
हरि हरनाखस हरे परान ॥
अजैमल कीऊ बैकुंठहि थान[2] ॥
सूआ पडावत गनिका तरी ॥
सो हरि नैनहु की पूतरी ॥
हरि हरि करत पूतना तरी ॥
बाल घातनी कपटहि भरी ॥
सिमरत द्रौपत सुता ऊधरी ॥
गऊतम सती सिला निसतरी ॥
केसी कंस मथनु जिनि कीआ
जीअ दानु काली कऊ[3] दीअ
प्रणवै नामा ऐसो हरी ॥
जासु जपत भै[4] अपदा टरी ।

१. तड़प । २. स्थान । ३. को । ४. भय ।

(२८)

राग—गोंड

भैरऊ भूत सीतला धावै ॥
खर बाहन ऊहु, छार उड़ावै ॥
हऊ[1] तऊ एक रमईआ लेहऊ ॥
आनदेव बदलावनि देहऊ ॥
सिव सिव करते जो नरु धिआवै ॥
बरद चढ़े डमरू डमकावे ॥
महामाई की पूजा करै ॥
नर सै नारि होइ अउतरै ॥
तू कहिअत ही आदि भवानी[2] ॥
मुकति की बरीआ कहा छपानी ॥
गुरमति राम नाम गहु मीता ॥
प्रणवै नामा इऊ कहे गीता ॥

---

(२९)

राग—बिलावलु गोंड

आजु नामें बीठलु देखिआ मूरख को समझाऊ रे ॥
पांडे तुमरी गाइत्री लोधेका खेतु खाती थी ॥
लैकरि ठेगा टगरी तोरी लांगत लांगत जाती थी ॥
पांडे तुमरा महादेऊ धऊले बलद चडिआ आवत देखिआ था ॥
मोदी के घर खाणा पाका वाका लडका मारिआ था ॥
पांडे तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिओ था ॥
रावन सेती सरबर[3] होइ घरकी जोइ गवाई थी ॥
हिंदू अंना[4] तुरकू काणा दोहां ते गिआनी सिआना ॥
हिंदू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत ॥
नामें सोई सेविआ जह देहुरा ना मसीत ॥

---

१. मैं। २. दुर्गा। ३. लड़ाई। ४. अंधा।

(३०)

राग—रामकली

आनीले कागदु काटीले गूडी अकासामधे भरमीअले ॥
पंचजना सिऊँ[1] बात बतउआ चीतु सु डोरी राखीअले ॥
मनु राम नामा बेधीअले ॥
जैसे कनिककला[2] चितु मांडीअले ॥
आनीले कुंभु भराइले उदक राजकुआरी पुरंदरीए[3] ॥
हसत बिनोद बिचार करति है चीतु सुगागरी राखीअले ॥
मंदरु एकु दुआर दस जाके गऊ चरावत छाडीअले ॥
पांचकोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥
कहत नामदेऊ सुनहु त्रिलोचन बालकु पालन पउढीअले ॥
अंतरि बाहरि काज बिरुधी चितु सु बारिक[4] राखीअले ॥

(३१)

राग—रामकली

बेद पुरान सासत्र आनंता गीत कबित न गावऊगो ॥
अखंड मंडल, निरंकार महि अनहद बेनु बजावऊगो ॥
बैरागी रामहि गावऊगो ॥
सबदि अतीत अनाहदि राता आकुलकै[5] घरि जाऊगो ॥
इडा पिंगुला अउरु सुखमना पऊनै बांधि रहाऊगो ॥
चंदु सूरजु दुइ समकरि राखऊ ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो ॥
तीरथ देखि न जल महि पैसऊ जीअ जंत न सतावऊगो ॥
अठसठि तीरथ गुरु दिखाए घटही भीतरि नहाउगो ॥
पंच सहाई जनकी सोभा भलै भलै न कहावऊगो ॥
नामा कहै चितु हरि सिऊ राता सुन्न समाधि समाऊगो ॥

(३२)

माइ न होती बापु न होता करमु न होती काइआ[6] ॥
हम नही होते तुम नही होते कवनु कहांते आइआ ॥
राम कोई न किसही केरा ॥
जैसे तरुवर पंखि बसेरा ॥
चंदु न होता सूरु न होता पानी पवनु मिलाइआ ॥
सासत्र[7] न होता बेदु न होता करमु कहाँ ते आइआ ॥
खेचर भूचर तुलसीमाला गुर परसादी पाइआ ॥
नामा प्रणवै परम ततु है सतिगुर होइ लखाइआ ॥

१. से। २. सुनार। ३. शहर के भीतर। ४. बालक। ५. हरि। ६. काया। ७. शास्त्र।

(३३)

बनारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै
अगनि दहै काइआ—कलपु[1] कीजै ॥
असुमेध जगु कीजै सोना गरभदानु दीजै
राम नाम सरि तऊ न पूजै ॥
छोडि छोडि रे पाखंडी मन कपटु न कीजै ॥
हरिका नामु नित नितहि लीजै ॥
गंगा जाऊ गोदावरि जाइए कुंभि ॥
जऊ केदार नाहईए गोमति सहसगऊ दानु कीजै ॥
कोटि जऊ तीरथ करै तनु जऊ हिवाले[2]
गारै, रामनाम सरि तऊ न पूजै ॥
असुदान गजदान सिहजा नारी (?)
भूमिदान ऐसो दान नित नितहि कीजै ॥
आतम जऊ निरमाइलु[3] कीजै आप ॥
बराबरि कंचनु दीजै रामनाम सरि तऊ न पूजै
मनहि न कीजै रोसु जमहि न दीजै दोसु ॥
निरमल निरबाणु पदु चीन्हि लीजै ॥
जसरथ राइ नंदु राजा मेरा रामचंदु ॥
प्रणवै नामा ततु रसु अंम्रित पीजै ॥

(३४)

राग—माली गउड

धंनि धंनिउ राम बेनु बाजै ॥ मधुर-मधुर धुनि अनहत गाजै ॥
धनि धनि मेघा रोमावली ॥ धनि धनि क्रिसन ऊढे कांबली ॥
धनि धनि तूं माता देवकी ॥ जिह ग्रिह रमईआ कवलापती[4] ॥
धनि धनि बनखंड बिंद्राबना ॥ जह खेले स्री नाराइना ॥
बेनु बजावै गोधनु चरै ॥ नामे का सुआमी आनंदु करै ॥

(३५)

मेरो बापु माधऊ तू धनु केसव सांवलीऊ विठुलाई ॥
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आए गज हसती के प्रान उधारीअले ॥
दुहसासन की सभा द्रोपती अंबर लेत उबारिअले ॥
गौतम नारि अहिलिआ तारी पावन केतक तारीअले ॥
ऐसा अधमु अजाति नामदेऊ तऊ सरनागति आइअले ॥

---

१. कायाकल्प । २. हिमालय । ३. निर्मल । ४. कमलापति (विष्णु के अवतार कृष्ण) ।

(३६)

सभै घट रामु बोलै रामा बोलै राम विना को बोलै रे।
एकल माटी कुंजर चीटी भाजन हैं बहुनाना रे ॥
असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे ॥
एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे ॥
प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरु को दासा रे ॥

---

(३७)

राग—मारू

चारि मुकति चारै सिधि मिलिकै दूलह प्रभ की सरनि परिऊ ॥
मुकति भइउ चउहुँ जुग जानिउ जसु कीरति माथै छत्र धरिऊ ॥
राजा राम जपत को को न तरिउ गुर उपदेसि साध की संगति
भगतु भगतु ताको नामु परिउ ॥
संख चक्र माला तिलकु बिराजति देखि प्रतापु जमु डरिऊ ॥
निरभऊ भए राम बल गरजित जनम मरन संताप हिरिऊ ॥
भगत हेति मारिउ हरनाखसु नरसिंघ रूप होइ देह धरिऊ ॥
नामा कहै भगति बसि केसव अजहूँ बलि के दुआर खरो ॥

---

(३८)

राग—भैरउ

रे जिहबा करऊ सतखंड ॥
जौ न ऊचरसि स्री गोविंद ॥
रंगीले जिह्वा हरि के नाइ ॥
सुरंग रंगीले हरि हरि धिआइ ॥
मिथिआ जिह्वा अवरें काम ॥
निरबाण पदु इकु हरि को नामु ॥
असंख कोटिअन पूजा करी ॥
एक न पूजसि नामै हरी ॥
प्रणवै नामदेऊ इहु करणा ॥
अनंत रूप तेरे नाराइणा ॥

---

(३९)

परधन परदारा परहरी ॥ ताके निकटि बसै नरहरी ॥
जो न भजंते नारइणा ॥ तिनका मे न करऊ दरसना ॥
जिनके भीतरि है अंतरा ॥ जैसे पसु तैसे उइ नरा ॥
प्रणवति नामदेऊ नाकहि बिना ॥ ना सोहै बतीस लखना ॥
दूधु कटोरै गडवै पानी ॥ कपल गाइ नामै दुहिआनी ॥
दूधु पीऊ गोबिंदे राइ ॥ दूधु पीऊ मेरो मनु पतिआइ ॥

(४०)

नाहीं त घर को बापु रिसाइ ॥
सोइन कटोरी अंम्रित भरी ॥
लै नामै हरि आगै धरी ॥
एकु भगतु मेरे हिरदै बसै ॥
नामे देखि नराइनु हसै ॥
दूधु पीआइ भगतु घरि गइआ[1] ॥
नामे हरिका दरसनु भइआ[2] ॥

(४१)

राग—भैरउ

मैं बऊरी मेरा रामु भतारु ॥
रचि रचि ताकऊ करऊ सिंगारू ॥
भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोगु ॥ तनु मनु राम पिआरे जोगु ॥
बादुबिबादु काहू सिऊ न कीजै ॥ रसना रामु रसाइनु पीजै ॥
अब जीअ जानि ऐसी बनि आई ॥ मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई ॥
उसतुति[3] निंदा करै नरु कोई ॥ नामे स्रीरंगु भेटल सोई ॥

(४२)

कबहू खीरि खाड घीऊ न भावै ॥
कबहू घर घर टूक मगावै ॥
कबहू कूसु [4] चनै बिनावै ॥
जिऊ रामु राखै तिऊ रहिऐ रे भाई ॥
हरि की महिमा किछु कथनु न जाई ॥

---

१. गया। २. भया (हुआ)। ३. स्तुति। ४. कूड़े।

कबहू तुरे तुरंग नचावै ॥
कबहू पाइ पनहीउ[1] न पावै ॥
कबहू खाट सुपेदी सुवावै ॥
कबहू भूमि पेआरु न पावै ॥
भनति नामदेऊ इकु नामु निसतारे ॥
जिह गुरु मिलै तिह पारि ऊतारै ॥

---

(४३)

हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ ॥
भगति करत नामा पकरि ऊठाइआ ॥
हीनडी जात मेरी जादयराइआ[2] ॥
छीपेके जनमि काहे कऊ आइआ ॥
लै कमली चलिऊ पलटाइ ॥
देहुरै[3] पाछै बैठा जाई ॥
जिऊ जिऊ नामा हरि गुण ऊचरै ॥
भगतजनां कऊ देहुरा फिरै ॥

---

(४४)

जैसी भूखे प्रीति अनाज ॥ त्रिखावंत जल सेती काज ॥
जैसी मूढ़ कुटंब पराइण ॥ ऐसी नामें प्रीति नाराइण ॥
तामें प्रीति नाराइण लागी ॥ सहज सुभाइ भइउ बैरागी ॥
जैसी पर पुरखा रत नारी ॥ लोभी नर धन का हितकारी ॥
कामी पुरख कामनी पिआरी ॥ ऐसी नामें प्रीति मुरारी ॥
साई प्रीति जि आपे लाए ॥ गुरपरसादी दुबिधा जाए ॥
कबहू न तूटसि रहिअ समाइ ॥ नामे चितु लाइअ सुचिनाइ ॥
जैसी प्रीति बारिक[4] अरु माता ॥ ऐसा हरि सेती मनु राता ॥
प्रणवै नामदेऊ लागी प्रीति ॥ गोबिंदु बसै हमारै चीति ॥

---

१. जूते भी। २. यादवराय। ३. मंदिर। ४. बालक।

(४५)

घरकी नारि तिआगै अंधा ॥ परनारी सिऊ घालै धंधा ॥
(जैसे) सिंबलु देखि सूआ बिगसाना ॥
अंतकी बार मूआ लपटाना ॥
पापी का घरु अगने माहि ॥ जलत रहै मिटवे कब नाहि ॥
हरि की भगति न देखै जाइ ॥ मारगु छोड़ि अमारगि पाइ ॥
मूलहु भूला आवै जाइ ॥ अम्रित डारि लादि बिखु खाइ ॥
जिऊ बेस्वा के परै अश्वारा[1] ॥ कापरु पहिरि करहि सींगारा ॥
पूरे ताल निहाले सास ॥ वाके गले जम का है फास ॥
जाके मसतकि लिखिउ करमा ॥ सो भजि परि है गुर की सरना ॥
कहत नामदेऊ इहु बीचारू ॥ इइ बिधि संतहु ऊतरहु पारू ॥

---

(४६)

संडामरका[2] जाइ पुकारे ॥ पढै नहीं हमही पचिहारै ॥
राम कहै करताल बजावै चटिआ सभै बिगारै ॥
रामा नाम जपिबो करै ॥ ह्रिदै हरिजीको सिंमसु धरै ।
बसुधा बसि कीनी सभ राजे बिनति करै पटरानी ॥
पूतु प्रहिलादु कहिआ नही मानै विति तऊ अऊरै ठानी ॥
दुसह सभा मिलि मंतर ऊपाइआ कर सह अऊध घनेरी ॥
गिरि तर जल जुआला भै राखिऊ राजा रामि माइआ केरी ॥
काढि खडगु काकु भै कोपिउ मोहि बताऊ जु तुहिराखै ॥
पीत पीतांबर त्रिभवण धणी थंभ माहि हरि भाखै ॥
हरनाखसु जिनि नखह बिदारिऊ सुरनर किए सनाथा ॥
कहि नामदेऊ हम नरहरि धिआवहि रामु अभैपद दाता ॥

---

(४७)

राग—भैरउ

सुलतानु पूछै सुनु बे नामा । देखऊ राम तुमारे कामा ॥
नामा सुलताने बाधिला । देखऊ तेरा हरि बीठुला ॥
बिसमिलि[3] गऊ देहु जीवाइ । ना तरु गरदनि मारऊ ठाइ ॥
बादिसाह ऐसी किऊ होइ । बिसमिलि कीआ न जीवै कोइ ॥
मेरा किआ कछू न होइ । करिहै रामु होइहै सोई ॥
बादिसाहु चढ़िउ अहंकरि । गज हसती दीनों चमकारि ॥

---

१. मुजरा । २. प्रह्लाद के गुरु का नाम । ३. मरी हुई ।

रुदनु करै नामेकी माइ। छोडि राम की न भजहि खुदाइ ॥
ना हऊ तेरा पूंतडा न तू मेरी माइ। पिंडु पडै तऊ हरिगुन गाइ ॥
करै गजिंदु सुंड की चोट। नामा ऊबरै हरि की ओट ॥
काजी मुलां करहि सलामु। इनि हिंदू मेरा मलिआ मानु ॥
बादिसाह बेनती सुनेहु। नामे सर भरि सोना लेहु ॥
मालु लेउ तऊ दोजकि परऊ। दीनु छोड़ि दुनिआ कऊभरऊ ॥
पावहु बेडी हाथहु ताल। नामा गावै गुन गोपाल ॥
गंग जमुन जऊ उलटी बहै। तऊ नामां हरि करता रहै ॥
सात घड़ी जब बीती सुणी। अजहु न आइउ त्रिभवणधणी ॥
पाखंतण बाज बजाइला। गरुड चडे गोबिंद आइला ॥
अपने भगतपरि की प्रतिपाल। गरुड़ चडे आए गोपाल ॥
कहहि त मुई गऊ देऊ जीआइ। सभु कोई देखै पतिआइ ॥
नामा प्रणवै सेल मसेल। गऊदुहाई बछरा मेलि ॥
दूधहि दुहि जब मटुकी भरी। ले बादिसाह के आगे धरि ॥
बादिसाहु महल महि जाइ। अऊघट की घट लागी आइ ॥
काजी मुलां बिनती फुरमाइ। बखसी हिंदू मै तेरी गाइ ॥
नामा कहै सुनहु बादिसाह। इहु किछु पतिआ मुझै दिखाइ ॥
इस पतिआ[1] का इहै परवानु। साचि सील चालहु सुलितान ॥
नामदेऊ सभु रहिआं समाइ। मिलि हिंदू सभ नामे पहि जाइ ॥
जऊ अबकी बार न जीवै गाइ। त नामदेव का पतीआ जाइ ॥
नामे की कीरति रही संसारि। भगति जनाले उधरिया पारि ॥
सगल कलेस निंदक भइआ खेदु। नामें नाराइनु नाहीं भेदु ॥

---

(४८)

राग—भैरउ

जऊ गुरदेऊ त मिलै मुरारि।
जऊ गुरदेऊ त ऊतरै पारि ॥
जऊ गुरूदेऊ त बैकुंठ तरै।
जऊ गुरुदेऊ त जीवत मरै ॥
सति सति सति सति सति गुरदेव।
झूठ झूठ झूठ झूठ आन सभ सेव ॥

---

१. एतबार।

जऊ गुरुदेऊ त नामु द्रिडावै ।
जऊ गुरदेऊ त दहदिस धावै ॥
जऊ गुरदेऊ पंच ते दूरि ।
जऊ गुरदेऊ त मरिबो झूरि ॥
जऊ गुरदेऊ त अम्रित बानी ।
जऊ गुरदेऊ त अकथ कहानी ॥
जऊ गुरदेऊ त अम्रित देह ।
जऊ गुरदेऊ नाम जपि लेहि ॥
जऊ गुरदेऊ भवन त्रै सूझै ।
जऊ गुरदेऊ ऊच पद बूझै ॥
जऊ गुरदेऊ त सीसु आकासि ।
जऊ गुरदेऊ सदा साबासि ॥
जउ गुरदेउ सदा बैरागी ।
जऊ गुरदेऊ पर निंदा तिआगी ॥
जऊ गुरदेऊ बुरा भला एक ।
जऊ गुरदेऊ लिलाट हि लेख ॥
जऊ गुरदेऊ कंधु नही हिरै ।
जऊ गुरदेऊ देहुरा फिरै ॥
जऊ गुरदेउ त छापरि छाई ।
जऊ गुरदेऊ सिहज निकसाई ॥
जऊ गुरदेऊ त अठसठि नाइआ ।
जऊ गुरदेऊ तनि चक्र लगाइआ ॥
जऊ गुरदेऊ त दुआदस सेवा ।
जऊ गुरदेऊ सभै बिखु मेवा ॥
जऊ गुरदेऊ त संसा टूटै ।
जऊ गुरदेऊ त जमतै छूटै ॥
जऊ गुरदेऊ भऊजल तरै ।
जऊ गुरदेऊ त जनमि न मरै ॥
जऊ गुरदेऊ अठदस बिऊहार ।
जऊ गुरदेऊ अठारह भार ॥
बिनु गुरदेऊ अवर नही जाई ।
नामदेऊ गुर की सरणाई ॥

(४९)

आऊ कलंदर केसवा । करि अबदाली भेसवा ॥
जिनि आकास कुलह [१] सिरिकीनी कउसै सपत पयाला ।
चमरपोस का मंदरु तेरा इह बिधि बने गुपाला ॥
छपन कोटि का पेहनु तेरा सोलह सहस इजारा [२] ।
भार अठारह मुदगरु तेरा सहनक [३] सभ संसारा ॥
देही महजिदि मनु मउलाना सहज निवाज गुजारै ।
बीबी कऊला सऊकाइनु तेरा निरंकार आकारै ॥
भगति करत मेरे ताल छिनाए किह पहि करऊ पुकारा ।
नामे का सुआमी अंतरजामी फिरे सगल बेदेसवा ॥

(५०)

राग—सारंग

साहिबु संकटवै सेवकु भजै । चिरंकाल न जीवै दोऊ कुल लजै ॥
तेरी भगति न छोडऊ भावै लोगु हसै । चरन कमल मेरे हीअरे बसैं ॥
जैसे अपने धनहि प्राणी परनु मांडै । तैसे संत जनां रामनामु न छाडैं ॥
गंगा गइआ गोदावरी संसार के कामा ॥ नाराइणुसुप्रसंन होइत सेवकु नामा ॥

(५१)

लोभ लहरि अति नीझर बाजै । काइआ डूबै केसवा ॥
संसारु समुंदे तारि गोबिंदे । तारिलै बाप बीठुला ॥
अनिल बेडा हऊ खेवि न साकऊ । तेरा पारु न पाइआ बीठुला ॥
होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मोकऊ पारि उतारे केसवा ॥
नामा कहै हऊ तरि भी न जानऊ ।
मोकऊ बाह देहि बाह देहि बीठुला ॥

(५२)

सहज अवलि धूडिमणी गाडी चालती ॥
पीछे तिनका लैकरि हांकती ॥
जैसे पनकत [४] थ्रूटिटि [५] हांकती ॥
सरि धोवन चाली लाडुली ॥
धोबी धोवै बिरह बिराता ॥
हरिचरन मेरा मनु राता ॥
भनति नामदेउ रहिआ ॥
अपने भगत पर करि दइआ ॥

---

१. टोपी । २. पाजामा । ३. थाली । ४. घाट । ५. आगे चलाना ।

(५३)

राग—सारंग

काएं रे मन बिखिआ बन जाई ॥
भूलौ रे ठगमूरी खाई ॥
जैसे मीनु पानी महि रहै ॥
काल जाल की सुधि नही लहै ॥
जिहबा सुआदी लीलित लोह ॥
ऐसे कनिक कामनी बाधिउ मोह ॥
जिउ मधुमाखी संचै अपार ॥
मधु लीनौ मुखि दीनी छारु ॥
गउ बाछ कऊ संचै खीरु ॥
गला बांधि दुहि लेइ अहीरु ॥
माइआ कारन स्रमु अति करै ॥
सो माइआ लै गाडै धरै ॥
अति संचै समझै नहीं मूड[1] ॥
धनु धरती तनु होइ गइउ धूडि ॥
काम क्रोध त्रिसना अति जरै ॥
साध संगति कबहु नहि करै ॥
कहत नामदेउ ताचा[2] आनि ॥
निरभै होइ भजीऐ भगवान ॥

---

(५४)

बदहु कीन[3] होड माधऊ मोसिउ[4] ।
ठाकुर ते जनु जन ते ठाकुरु खेल परिऊ है तोसिऊ ॥
आपन देउ देहुरा आपन आप लगावै पूजा ।
जल ते तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कऊ दूजा ।
आपहि गावै आपहि नाचे आप बजावै तूरा ।
कहत नामदेऊ तूं मेरे ठाकुर जनु[5] ऊरा[6] तू पूरा

---

१. मूढ़ । २. उसको । ३. क्यों नहीं बोलते । ४. मुझसे । ५. सेवक ६. अधूरा ।

(५५)

राग—सारंग

दास अनिंन मेरो निज रूप ।
दरसन निमख तापत्रई मोचन परसत मुकति करत ग्रिह कूप ॥
मेरी बांधी भगतु छडावै बांधै भगतु न छूटै मोहि ।
एक समै मोकऊ गहि बांधै तऊ पुनि मो पै जवाबु न होइ ॥
मै गुन बंध सगल की जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास ।
नामदेव जाके जीअ ऐसी तैसो ताकै प्रेमप्रगास ॥

---

(५६)

राग—मलार

सेवीले गोपाल राइ अकुल[1] निरंजन ॥ भगति दानु दीजै जाचहि संतजन ॥ जांचै घरि दिग दिसै सराइचा बैकुंठभवन चित्रसाला सपत लोक सामानि पूरिअले ॥ जाचै घरि लछिमी कुआरी ॥ चंदु सूरजु दीवडे कऊ तकु कालु बपुडा कीट सुकरासिरी ॥ सु ऐसा राजा श्रीनरहरी ॥ जाचै घरि कुलालु ब्रह्मा चतुरमुखु डांवडा जिन बिस्व संसारु राचीले ॥ जांकै घरि ईसरु बावला जगतगुरु तत सारखा गिआनु भाखिले ॥ पापु पुंनु जांचै[2] डांगीआ दुआरै चित्रगुपतु लेखीआ ॥ धरमराइ परुली प्रतिहारु ॥ सो ऐसा राजा स्री गोपालु । जांचै घरि गण गंधरब रिखी बपुडे ढाढीआ गावत आछै ॥ सरब सास्त्र बहुरुपीआ अनगरुआ अखाडा मंडलीक बोल बोलहि काछे । चऊर ढूल जांचै है पवणु ॥ चेरी सकति जीति लै भवणु ॥ अंड टूक जाचै भसमती ॥ सो ऐसा राजा त्रिभवण पती ॥ जाचै घरि कूरमा पालु सहस्त्र फणी बासकु सेज वालुआ ॥ अठारह भार बनासपती मालणी छिनवै करोडी मेघमाला पाणीहारीआ ॥ नख प्रसेव जाचै सुरसरी सपत सुसंद जाँचै घडथली ॥ एते जीअ जांचै बरतनी ॥ सो ऐसा राजा त्रिभवन धणी ॥ जांचै घरि निकट वरती अरजनु ध्रू प्रहलादु अंबरीकु नारदु नजै सिध बुध गण गंधरब बानवै हेला ॥ एते जीअ जांचै हटि घरी रबबि आपक अंतर हरी ॥

प्रणवै नामदेऊ तांची आणि ॥
सगल भगत जाचै नीसाणि ॥

---

(५७)

राग—मलार

मोकऊ तूं न बिसारि तू न बिसारि ॥
तूं न बिसारे रामईआ ॥
आलावंती इहु भ्रमु जोहै मुझ ऊपरि सभ कोपिला ॥

---

1. बिना कुल का । 2. जिसके ।

सूदुसूदु करि मारि ऊठाइउ कहा करऊ बाप बीठुला ॥
मूए हुए जऊ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला ॥
ए पंडिआ मोकऊ ढेढ कहत तेरी पैज पिछंऊडी होइला ॥
तू जू दइआलु क्रिपालु कहिअतु हैं अतिभुज भइउ अपारला ॥
फेरि दीआ देहुरा नामे कऊ पंडीअन कऊ पिछ वारला ॥

---

(५८)

राग—कानडा

ऐसो रामराइ अंतरजामी ॥ जैसे दरपन माहि बदनपरवानी ॥
बसै घटाघट लीप न छीपै ॥ बंधनमुकता जातु न दीसै ॥
पानी माहि देखु मुख जेसा ॥ नामेका सुआमी बीठुला ऐसा ॥

---

(५९)

राग—प्रभाती

मन की बिरथा[1] मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीए ॥
अंतरजामी रामु रवांई मैं उरु कैसे चहीऐ ॥
बोधिअले गोपाल गुसाई ॥ मेरा प्रभु रहिआ सरबे ठायी ॥
मानै हाटु मानै पाटु मानै है पासारी ॥
मानै बासै नाना भेदी भरमतु है संसारी ॥
गुरूकै सबदि एहु मनुराता दुबिधा सहजि समाणी ।
सभो हुकमु हुकमु है आपै निरमऊ समतु बिचारी ॥
जो जन जानि भजहि पुरखोतमु ताची अबिगतु बाणी ॥
नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिडाणी ॥

---

(६०)

राग—सारंग

आदि जुगादि जुगादि जुगो जुगु ताका अंत न जानिआ ॥
सरब निरंतरि रामु रहिआ रवि ऐसा रूपु बखानिआ ॥
गोबिंदु गाजै सबदु बाजै ॥ आनदरूपी मेरो रामइआ ॥
बावन बीखू बानै बीखे बासु ते सुख लागिला ॥
सरबे आदि परमलादि कासट चंदनु भैइला ॥
तुमचे पारसु हमचे लोहा संगे कंचनु भैइला ॥
तू दइआलु रतनु लालु नामा साचि समाइला ॥

---

1. व्यथा ।

(६१)

राग—प्रभाती

अकुल पुरुख इकु चकितु उपाइआ ॥
घटि घटि अंतरि ब्रहमु लुकाइआ ॥
जीअकी जोति न जाने कोई ॥
तै मै किआ सु मालूमु होई ॥
जिऊ प्रगासिआ माटी कुंभेऊ ॥
आपही करता बीठलु देऊ ॥
जीअका बंधनु करम बिआपै ।
जो किछु किआ सो आपै आपै ॥
प्रणवति नामदेऊ इहु जीऊ चितवै सुलहै ॥
अमरु होइ सद आकुल रहै ॥

टिप्पणी—उपर्युक्त पद श्री गुरुग्रन्थ साहब, खालसा गुरुमत प्रेस, अमृतसर (२३ सावन, संवत् १७६३) के संस्करण से गृहीत हैं ।

गुरुग्रन्थ साहिब में संकलित पदों के अतिरिक्त पद

(१)

ज्यो[1] कोई वसुधा दान दे आवे,
कोटी जाग करे करावे ।
तीरथ बरथ करे इस्नाना,
नाहीं नाहीं हरी नाम समाना ॥१॥

ज्यो कोई ज्यावे[2] हीमालये गले,
काशी करवत लेकर मरे ।
दसवे द्वारे काढे प्राण,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥२॥

काया कलप करेवर जीवे,
नाकुच खावे नाकुच पीवें ।
गगन मंडलमों जोगध्यान,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥३॥

नाहीं आगली पिछली बात बनावे,
नेम धरम मन मुद्दं पावे ।
च्यारो वेद पढ़े पुरान,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥४॥

संत गुरु की जब कृपा भई,
प्रेमभरात हीरदे धरलीई ।
कहे नामदेव भज भगवान,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥५॥

---

१. जो। २. जावे।

(२)

जाहा तुम गीरीवर[1] ताहा हम मोरा[2],
जाहा तुम चंदा ताहा मै चकोरा ॥१॥
जाहा तुम तरुवर ताहा मै पंछी,
जाहा तुम सरोवर ताहा मै मच्छी ॥धृ०॥
जाहा तुम दीवा ताहा मै बाती,
जाहा तुम पंथी ताहा मै साती ॥२॥
बेलक पाती शंकर पुजा,
नामदेव कहे भाव नहीं दुजा ॥३॥

---

(३)

दुध पीवोरे मेरे गोवींदराय ॥धृ०॥
काला बछेरा कपीला गाय, दुध दुहावन नामा जाय ॥१॥
सुन्ने काटुरा दुधने भरीया, पिवौ नारायण आगे धरीया ॥१॥
पखान की मुरत दुध नहीं पीवत, शीर पछार पछार नामा रोवत ॥३॥
ऐसा भक्त मैं कबहु न पाया ॥ नामदेव ने देव हसाया ॥४॥

---

(४)

नामा तै झुटारे रे, तेरा पंथ झुटारे रे ।
अल्ला है आलम का साइ, सोही गुप्त चेहेरा रे ॥१॥
मुसलमान साहेब जाने, नही राम सु तोली ।
पाँच बखत निजाम गुजरी, महजब नही कै बोली ॥२॥
पादशहा नही दीवाना रे, तेरा तुही दीवाना रे ॥धृ०॥
गाइत्री सो हम वि जानी, खेतनी राना खांती ।
एक पाव तो छीनलीया मैं, तीन पावपर जाती ॥३॥
नामा तुही झुटारे ।
बकरी काटी मुरगी काटी, हलाल कहता है ।
मुरगी मे से अंडा निकला, हलाल कै[3] नही होता है ॥४॥
पादशहा तुही दिवाने ।
बाबा आदम हम वी जाने, ढवळानंदी आवे ।
सीराल सेट का बेटा मारा, हराम खाना खावे ॥५॥
नामा तुही झुटारे ।
उननें मारा उननें तारा, उनने किया उधारा[4] ।
मुवा पोंगडा आप जीवावे, ऐसा राम मेरा ॥६॥

---

१. गिरिवर । २. मोर । ३. क्या । ४. उद्धार ।

पादशहा तुही दीवाने ।
दशरथ के दोनों बेटे, राम लछमण भाई ।
घर छोडके जंगल बसाया, जोरू आप गमायी ॥७॥
नामा तुही फ़ुटारे ।
जल उपर पाषाण तारे, चरन से शिला उधारी ।
रावण मारकर विभीषण थापा, लंका बकसी सारी ॥८॥
पादशहा तुही दीवाने ।
गाऊं बछवा दोनो काटे, नामा आगे डारे ।
नामदेवने हात लगाया, बछीया पीवन लागे ॥९॥
अबतों भली बनी है जी, सबका एक धनी हैजी ॥१०॥
नामा अकबर सहजी मीले, साचा झगड़ा उनका ॥
उचोनीचो करकर देखे, सोही उचानीचा ॥११॥
अब तो भली० ॥

(५)

मनु पंछीया मत्त पड पिंजरे,
संसार माया जालुरे ॥१॥
धन जोबन रूप कारण,
न कर गर्व गव्हार रे ॥२॥
एकदिन मो तिन बिरिया[1] ,
सदा झमकत कालरे ॥३॥
कुंभ काच्या निर भरिया,
बीनसत नहि बाररे ॥४॥
कहत नामदेव सुन भई साधु,
साधु संगत धरनारे ॥५॥

(६)

पंढरीनाथ विठाई बतावो, मुजे पंढरीनाथ विठाई ॥धृ०॥
माय बापके सेवा करीये, पुंडलीक भक्त सवाई ।
वैकुंठसे विष्णु लाये, खडे करकर बतलाई ॥१॥
चंद्रभागा बालबंटपर, कबिरा धुम चलाई ।
साधु संतकी हो गयी, गर्दी[2] भजन मिटाई खुब खाई ॥२॥
त्रिगुणामें रेनु वेनु बजावें, सागरका जवाई ।
दही दुधकी हंडी फुटगई, भरभर दुधया पाई ॥३॥
नामदेव देवके गुरु शिखावें खेंचरी मुद्रागाई ।
कृष्णजीकी बारबार गावे हरीनाम बढाई ॥४॥

---

१. एक दिन में तीन बार । २. भीड़ ।

(७)

हीन दीन जात मेरी पंडरीके राया,
ऐसा तुमनें नामा दरजी कायु कु बनाया ।।१।।
टाळ बिना लेके नाम । देऊल में गया,
पुजा करते ब्रह्मन उन्ने बाहेर ठकलाया ।।२।।
देऊलके पिछे नामा अल्लक पुकारे,
जीदर जीदर नामा उदर देउल ही फिरे ।।३।।
नानावर्ण गवा[1] उनका एक वर्ण दुध,
तुम कहाके ब्रह्मन हम कहाके सुद[2] ।।४।।
मन मेरी सुई तन मेरा धागा,
खेचरजीके चरणपर नामा सिंपी लागा ।।५।।

(८)

नर रामभजन विन गत न तरन की
कोटि उपाव कर रे ।।ध्रुवपद।।
होम नेम व्रत तीरथ साधो
क्या हुआ बन खंड वासा रे
चरन कमल उर मा उपजे नहिं
तो लग झूठी आसा रे।
नर........................कर रे
नर तनु पायो राम नहिं गायो
भूल्यो पशू गव्हारा रे
सिर पर काल खड़ा शर साधे
नामदेव कहे पुकारा रे।

---

१. गाय। २. शूद्र।

गोंदा महाराज के पद

(अभंग)

गजानन गौर सूत । लाल अंगपर बभूत ।
तेरे मुख बचनामृत । उसे ज्यमदुत भागत है ॥१॥
विद्याभरी दंदुल पेट । उसपर साप की लपेट ।
विघन करत है चपेट । पकड फेट कालकी ॥२॥
नामा दर्जी जालम । विठू राजा का गुलाम ।
हुआ दुनिया में बदलाम[1] । उने[2] नाम डुबाया ॥३॥
नामा प्यारा है भगत । उसे जानत है जगत ।
बम्मन आया धुंडंत धुंडंत[3] । लगत लगत गांव मो ॥४॥
बम्मन कहे नामदेव । मुजे पूजना भूदेव ।
इति[4] बात मुजे देव । वहा देव गंगामो ॥५॥
मानो विनंती महारज । चलो पतीतन के काज ।
नामा कहे बम्मनराज । न बाजे इत बातन सो ॥६॥
नामा नहीं माने बात । बम्मन बैठा दिन रात ।
हुकुम दिया दिनानाथ । तब संग चल दिया ॥७॥
चले मजल दर मजल । आया बेदर के मिसल ।
व्हां हुई सो नक्कल । वो सकल तुम सुनो ॥८॥
कोस आदे कोस पर । नामदेव का लस्कर ।
बादशहा बैठा निकलकर । नजर कर देखते ॥९॥
कहे कासी पंडत । लालझंडे बहूत ।
पायदल जावे तहत । क्या सरयत खबर लाव ॥१०॥
करी कुरान सो सलाम । भेजो फौज वो तमाम ।
कौन क्या करेगा काम । तुम बेकाम मत रहो ॥११॥
आयी फौज किया कोट । जैसा खेत का सगोट ।
कहे कहाँ के तुम भट । थाट वाध जाहो ॥१२॥

---

१. कया । २. इसने । ३. ढूढ़ते-ढूढ़ते । ४. इतनी ।

नामा कहे सुनो भाई। येतो बम्मन गदाई।
नामदेव कौन है। बेदरशाही जानते ॥१३॥
उसे कहे नामदेव। राहा छोड़ो जाने देव।
कहे हुकुम आने देव। फेर देव जाने कू ॥१४॥
अर्जी लीखी फौजदार। ले पोंचे जिलिबदार।
जाके देव दरबार। चोपदार के कहिने ॥१५॥
कासी पंडत के पास। आन पोहोंची इतलास।
नजर गुजराई ख्यास। करे ख्यास पूछके ॥१६॥
पंडत करे जिकीर[१]। सुनो हिन्दू फकीर।
हम लोकन के पीर। पंढरपुर में रहते हैं ॥१७॥
बादशहा करे गलत। होते पीर आजमत।
बुला लाव इस बख्त्। करामत देखगों ॥१८॥
पंडत करे तसलीमात। हजरत भली नहीं बात।
नामदेव कहे मात। किसन नाथ कन्हैया ॥१९॥
उसका नाम मतलेव। उसकी रहा मत् जाव्।
मेरा कहना खातर लाव। नहीं तो नाव डूवेगी ॥२०॥
उसे करोदे बदफैल। बुरी होयेगी नक्कल।
अब जावेगी अक्कल। सकल राज डूबेगा ॥२१॥
हत्ती घोडे दौलत। दख्खन मुलख बाछायत[२]।
बेदर सरीखा तख्त। इस वक्त जायेगा ॥२२॥
बादशहा करे गल्लत। सरक चल मादर वख्त।
पंडत कहे आयी मोल। गई कुवत अक्कल की ॥२३॥
कुटल सामने सेटल। जा दूर हो निकल।
भेजो दस वीस मोंगल। बम्मन सकल पकड लाव ॥२४॥
नामा लाया दरबार। सात बम्मन दोसो चार।
सारे दरवार मों पुकार। मारामार बम्मन कू ॥२५॥
अर्जी पोंचावे हुजूर। नावदेव लाया नजर।
इसके बाबे क्या मजकूर। करी अर्जी अर्ज वेगें ॥२६॥
बादशहा कहे जलदी जाव। गाई कसाई कू बुलाव।
नानदेवकुं बिठलाव। नियत पोंचावे गांव कू ॥२७॥
उसके आगे काटी गाय। बम्मन करे हाय हाय।
नामा कहे प्रभुराय। ए बलाय तुम सुनो ॥२८॥
बादशहा कहे लाव जान। नहीं तो करूँ मुसलमान।
झुटा करता है तुफान। फिर फिकर कहलावते ॥२९॥

---

१. नाव-स्मरण। २. बादशाहत।

किदर रह्या पंढरपुर। मेरा वसीला है दूर।
कोन कहेगा हुजूर। ये जरूर हकीकत ॥३०॥
येतो पापी चंडाल। इन्नें बुरा किया हाल।
मेरे अब्रू का काल। तुम गोपाल लाल, जलदी आव ॥३१॥
नामा रोवे झुरझूर। बहे अश्रून का पूर।
बिठू पसिने में चूर। पंढरपुर में डूबे हैं ॥३२॥
रुकिमण चुरती[1] पद्मपाव। घबरगये बिठूराव।
रुकिमण कहे प्रभुराव। क्या बलाय मुजे कहो ॥३३॥
देवकरे आटोप्रांत। करे घबरे घबरे बात।
नामदेव की कहत। हकीकत बुरी है ॥३४॥
रुकिमणी कहे जलदी जाव। नामदेव को मनाव।
उस पापी को जलाव। जाव जाव सिताबी ॥३५॥
नामा लड़का अजान। बहुत हुआ हयरान।
अभी छोड़ेगा जान। मुसलमान बेकदर ॥३६॥
अकस्मात् हुई बात। उठकर बैठे दिनानाथ।
चल दीया उसी वख्त। मैं दिनानाथ आया हूं ॥३७॥
बिठू कहे नामदेव। उस गाय को हाथ लगाव।
जान उसकी खुलाव। जलदी जाव गाय उठेगी ॥३८॥
उठकर खड़ी रहे गाय। हरहर बोले बम्मनराय।
नामदेव को लगाय। बिठूराय गले से ॥३९॥
नामा रोवे आलफ। उसे समझावे मा बाप।
उसके हवेली में साप। हाका हाक पड़ी है ॥४०॥
हत्ती घोडे कू काट। लिया आदमी की पीठ।
जिधर उधर न हाटा नाट। खर उपर खटारे ॥४१॥
वेदरशहा हुवा दंग। कासी पंडत करे जंग।
अब कैसा हुवा रंग। बुरे ढंग क्या हुवे ॥४२॥
बादशहा कहे जलदी जाव। काशी पंडत कू बुलाव।
मेरे जान कू बचाव। सच्चादेव उनोका ॥४३॥
काशी पंडत प्यारे लाल। मेरे जानकू संबाल।
पीर फकीर हकूलाल। बालोबाल गुन्हेगार ॥४४॥
कासी पंडत धरो पाव। बहोत तरहे से मनाव।
नामदेव भगतराव। ये बला दूर करो ॥४५॥
पंडत तुम बडा सुजान। तुम जानो उसका ग्यान।
हमने किया है तुफान। अब जान बचाव ॥४६॥

१. चापती।

काशी पंडत बहु भला। कदम कदम जा मिला।
नामदेव आन मिला। लगाया गला गलो सो ॥४७॥
बादशहा के आडे। जिधर उधर खडे।
उने हातपांव जोडे। पकडे पांव तुमारे ॥४८॥
मानो बिनंती महाराज। चलो पतीतन के काज।
नामा कहे पंडतराज। मत् बाजो इस बात सो ॥४९॥
नामदेव बड़े दयाल। हांसे किया जबाब सवाल।
पंडत जा रहो खुशाल। फिर वहां से चल दिया ॥५०॥
मेहेरबान नामदेव। बिट्ठराय जानदेव।
उसका राज्य उसकू देव। बुलालेव सापकू ॥५१॥
इतनी बात बोल कर। चला उनका लस्कर।
पंडत आये फिर कर। साप नजर न आवे ॥५२॥
उसकू कर कर सनाथ। नामदेव दीनानाथ।
ओ गाई लियी साथ। उस वक्त चल दिये ॥५३॥
बादशहा करे जीकीर। सच्चा हिन्दु फकीर।
ब्रह्म ज्ञानो मे तीर। रणधीर आये है ॥५४॥
गोंदा लड़का अजान। करे रात दिन ध्यान।
सरज होय मेहेरबान। दिया ग्यान बालक कू ॥५५॥

एकनाथ महाराज के पद

(१)

मैं दधि बेचन चलि मथुरा ।
तुम केंव[1] थारे[2] नंद जी के छोरा ॥१॥
भक्ति का अचला पकड़ा हरी ।
मत खेचो मोरी फारी चुनरी ॥२॥
अहंकार का मोरा गरगा फोरा ।
व्हाको[3] गोरस सबही गीरा ॥३॥
द्वैतन की मोरी आंगिया फारी ।
क्या कहूं मैं नंगी नार उघारी ॥४॥
एका जनार्दन ज्यासो[4] भेटा ।
लागत पगो से कबु[5] नहीं छुटा ॥५॥

(२)

मारी गावडी[6] चुकलीछै[7] भाई ।
देखत देखत त्रिभुवन आई ॥
उत शोधन लागछे भाई ।
अब कैसी गत करूछे आई ॥१॥
मथुरा लमानीन मारो नाम छे ।
गावड़ी देखत आई गाँवछे
दृष्टी देखन नहीं मन छे
कैसे भुलाय कान्हा नयानछे[8] ॥२॥
भुली भुली आई मान छे
कही मीलन मोरे ध्यान छे
एक जनार्दन से पग छे
अखंड चित्त जड़े गावड़ा छे ॥३॥

---

१. क्यों । २. ठाड़े । ३. उसका । ४. जिससे । ५. कभी । ६. गैया । ७. भटक गई है । ८. नयनों से ।

(३)

दे दे दे मारी[1] कन्हया लाल साड़ी छे
तुम भलो नंद जी नंदन लाल छे ॥१॥
मैं तो आई मथुरा हाट छे।
बिगरी तुं क्या धरे घाट छे ॥ कन्हया ॥२॥
ज्याकर बोलुंगी जशोदा नंद छे
तारी[2] खोड़ तोडुंगी[3] हात छे ॥ कन्हया ॥३॥
एका जनार्दन बिनती करत छे।
दोनों हाथ जोड़ छे ॥ कन्हया ॥४॥

(४)

भूली भटकी आई कान्हा तोर गाँव छे।
मारो नंद नंदन चित्त जड़ो तोरे पावछे ॥१॥
चली आई परपंच हाट से।
तूं केंव धरीयो मेरे वाट छेव[4] ॥२॥
आव तूं नंद नंदन लाल छे।
मैं गारी देऊँ तुज से[5] ॥३॥
एका जनार्दन नाम तोरे गाँव छे।
पीरीत बसे तारे चरण छे ॥४॥

(५)

हो भलो तुम नंद नंदन लाल छे।
मुजे गांवडी बताव छे ॥१॥
आगल पीछल ध्यान मे आवछे।
मंगल नाम तोरा मैं गाव छे ॥२॥
तारो सुंदर रूप मोरे मन छे,
प्रीत लगी कान्हा हम छे ॥३॥
एका जनार्दन तोरे नाम छे।
गावत ध्यावत हृदय मे छे ॥४॥

(६)

यहाँ की बात नही मेरी आवछे।
तोरे चरण कमल मैं ध्याव छे ॥१॥
सुंदर तु नंद नंदन लाल छे।
गलां शोभे वैजयंती माल छे ॥२॥

---

१. मेरी। २. तेरी। ३. मरम्मत करूँगी (मुहावरा)। ४. तूने मेरा मार्ग लिया ? ५. तुझे।

पीत पीतांबर घोंगरी याछे ।
गोपाल नाचती तोरे सात छे ।।३।।
एका जनार्दनीं रखत गावडी छे ।
चित्त जड़े मोरे पावड़ी छे ।।४।।

(७)

देखे देखे गो[1] जशोदा माय छे
तोरे छोरीयानें[2] मुजे गारी देव छे[3] ।।१।।
जमुना के पनीया में ज्यावछे
बीच मील के घागरीया फोड छे ।।२।।
मैंने ज्याके हात पकर छे
देखे आपही रोव छे ।।३।।
एका जनार्दन गुन गाव छे
फेर जनम नहीं आवछे ।।४।।

(८)

देवरे देवरे मोरी घागरीया लाल छे
मैं बोलुंगी जेसोदा माय छे ।।१।।
मत रहो नंद के गाम छे
तारो भीड़ नहीं मारो काम छे ।।२।।
आकर पकरीयो मोरे आँग छे
मैं लाजे न आइगे मा आव छे ।।३।।
एका जनार्दन नी तोरे पुत्र ने हम छे
फजीती ने मानली आइछे ।।४।।

(९)

मैं ज्यावगी छोरकर तोरे गांव छे
तूं खोरी मतकर मोरे लाल छे ।।१।।
मोरे घर तू आकर लाल छे
माखन चुरावत अपने हात छे ।।२।।
मैं कहुंगी तोरे मात छे
किसन ने चोरी करी मोरी घर छे ।।३।।
कहे एका जनार्दन लाल छे
चरन पकरू मी तुमछे[4] ।।४।।

---

१. री । २. छोरे ने (लड़के ने) । ३. देता है (गुजराती) । ४. तुम्हारे (यहाँ 'छे' मराठी 'चे' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

(१०)

माई मोरे घर आयो शाम छे
गावढ़ी[1] छोड़ी मोरे मन छे ॥१॥
दधि दुध माखन चुरावे हम छे
छोकरीया खिलावन देव छे ॥२॥
मारी सुसोवन लागी छे
बालन उनके पकड़ लीन छे ॥३॥
एका जनार्दन थारो छोरे छे
बेड़ लगाये माई हम छे ॥४॥

(११)

हमे आपले[2] सोवते घर छे
रात आयो धागे शाम छे ॥१॥
मारी वेनी पकड़ करी हात छे
दाड़ी बांधी गाठ छे ॥२॥
मोरी घागरीया[3] फोर छे
भागन गयो आप घर छे ॥३॥
एका जनार्दनी तोरे शाम[4] छे
मोरो संसार को नाश छे ॥४॥

(१२)

यारो देखो गयबी गारूड़ो[5] आया ॥ध्रु०॥
पहिला पहिला कछु नहीं देखे, निराकार निजरूपा।
अलख हात मो पलख बतावे, माया सगुन रूपा ॥१॥
चल चल चल चल, री री री री, गा गा गा गा, बा बा बा बा ॥२॥
सात सैली ऊपर विवेक समला शम दम छोड़ा।
ग्यान ध्यान सों बांधा कमाल समला सबही जोड़ा ॥३॥
अनुभव नगर ऊपर गाजे बिद्या बेद पुराना।
सोहं शब्द का बाज्या बाजे नाग सुरस नाना ॥४॥
एक दो ती (तीन) मिला के पांच पचीस का बाणा।
बत्तीस मिलाके तेत्तीस होके उसका खाना खाना ॥५॥
त्तन का हुन्नेर त्तन मोही लाया त्तन मो त्तन जोड़े।
ऐसा हुन्नेर कहे जनार्दन एक नाथ कु छाड़े ॥६॥

---

१. गाय। २. अपने। ३. गागरिया। ४. श्याम। ५. संपेरा।

(१३)

बाजे घर ख्याले घर ख्याले, नजर करो मा बाप ॥१॥
भाव भगत से खेल हमारा, तुम देखो सावकाश[१] ॥२॥
खेल मीठा खेल लगा है नीर धार, मीठा छोड़कर पकरा संसार ॥३॥
एका जनार्दन का बंदा, हात मो काला साप बांधा ॥४॥

(१४)

अव्वल याद करो वस्ताद की,
गुरु पीर पैगम्बर की, और याद करो करतार की
जिन्ने[२] मंडान पैदा किया है अव्वल देखो ये कथा, उसे नाम न था
नाम दरम्याने पैदा हुआ, चल चल चल,
एक सो दोन, दो सो तीन, तीन सो चार, चार सो पांच,
पांच सो पचीस, पचीस सो छतीस बनाया है
छतीस का भी एक-हया है, सो गुरु गारूड़ी की याद है।
और देखो कैसा खेल बनाया है।
चल चल चल क्रोध का बिच्छु बाहेर काढ़ा
उसका बीख शिरकु चाढ़ा, जपी तपी संन्यासी की खोड़ तोड़[३]
समज के देखो रे बिच्छु ने नांगी मारा रे
छनन न न कहने लगा, चल चल चल ये देखो बाहेर निकला
काम विषय का साप, तमाशा देखो मेरे बाप
बिनंदा तोसे काटे आपे आपे, अरे रे रे रे, काटा रे, काटा
नजर ध्यान करो रे नजर ध्यान करो
सो साप दूर करे, चल चल चल, ये देखो ममता नागन आयी रे भाई भाई
तिने लो डंख मारा रे मारा, ठ न न न न
भागो रे भाई भागो, दवड़ो रे, दवड़ो रे गुरू के चरण पर दवड़ो
तो ऐसा करूं की गुरू के पांव कबी न छोड़ो
व्हां कोई का न चले, ममता नागन का जरूर बुरा है
वो कैसी चलती है सो बड़े से बड़े लड़ते हैं।
वो न लढ़े ऐसी हिकमत बताऊं तुमकू सुनो रे भाई सुनो
गुरू पीर के हात का मोहरा, तुम्हारे हाथ चढ़े दुने दारा
तो नागन का तुटे धारा, सो कबी आवने नहीं पावे
मना मनशा साप करो, शांती पेटारे मे वुसुकु[४] डारे रे भाई डारो
बाहेरे तो विवेक शिक्का[५] मारो,

---

१. (मराठी) आराम से। २. जिसने। ३. मरम्मत की। ४. उसको। ५. सिक्का।

ईस दोनो मु बेकु, ऐसा करो के गुरु के चरन पर,
रात और दिन खेलो, जनार्दन गुरु गारुड़ी के पास
व्हां तुम करो खेल, खेलते खेलते हो जायेगा अलक्ष आछेल
एका हांडी बाग कुं दिया खेला, सो हो गया अलक्ष खेल

(१५)

आदि पुरुष निराधार की याद कर
मेरे गुरु परवरदिगार की याद कर, जिन्ने अजब बनायी
उस वस्ताद की याद कर, गैबी खजीना हामना[1] दिया,
उस साहेब की याद कर, संत महंत की याद कर
गुणी गुणवंत की याद कर, जोग, जुगत का बांधा तोड़ा
शम दम का सीरपर जमला छोड़ा, समता जोही सुहावे तुरा
गुरु गारुड़ी बीर पुरा ॥
नैन चीर के पैन्ही मुद्रा, कान फाड़के खाये निद्रा,
अनुहात ध्वनी धुमक बाजे, नाग सुर धुनक गर्जे
चल चल चल चल, निरंजन जंगल के जिवड़े,
खेलना हो तो उलट दृष्टी से खेल ॥
आबी[2] करूंगा तेरा तमाशा, पैल तेरी मुंढी[3] काटुंगा
साप सब भुले बिचु किड़े प्रपंच के कोठरी में आके पड़े;
बड़े बड़े जनावर पाले, हारे लाल सफेत
उजले काले, पिले भले बे भला, हांडी बाग
अभिमान जिवड़े, झुट मुट चिपीच लढ़े,
नहिं कहूं तो ब्रम्हांड काटने दौरे, देखो मिया हाय, हाय हाय ! डंख मारा
बे डंख मारा, सो बड़े बड़े कु नहीं उतारा
देखो मिया बाजेगिरी का खेल, हॉडी बाग बड़ा आलबेला
हात हलावे पांव हालावे भाले भोले लोक भुलावे
आवे हांडी बाग बाप बड़ा क्या बेय बड़ा
बेटे आगे बाप खड़ा, गुरु बड़ा क्या चेला बड़ा
चेले आगे गुरु खड़ा, चेला तो प्रेम महल पर चढा
धनि वड़ा क्या चाकर बड़ा, चाकर आगे धनी खड़ा

---

१. हमको । २. अभी । ३. शिर ।

(१६)

सास बड़ी क्या बहु बड़ी, बहु आगे सास खड़ी
बिबी बड़ी क्या बाँदी वड़ी, बाँदी आगे बिबी खड़ी
निराधार की लेकर छड़ी, बिबी खसम की छाती पर चढ़ी
तैं बड़ा क्या मैं बड़ा मेरे आगे तैं खड़ा
तैं नहीं मैं नहीं आलम छाया मेरे गुरु
ग्यानी कुं ग्यान लगाऊं लोभे अंबे को उड़ावु
फुंक मारु तो जा जा जा, बोध के पहाड़ पर जा
बच्या जाहां आना नहीं ताहां ज्या
मेरे सद्गुरु दाता-कुं[1] शरन ज्या
मेरे सद्गुरु दाता की इतनीसि लकरी
मूल अंतर हात मो पकरी
जीदर दौरा ऊदर दौरी, फेर[2] देखे तो मेरी मेरे सात
देख अबी करुंगा खबूतर का तमाशा
बिन पर से उड़ता है कैसा
खेल खेलते अविद्ये के खलिते में घुसा
बाहेर कैसा आवेगा
आव बे आव बाहेरे आव
जिसे नहीं हात नहीं पाव
जिसे नही गांव न ठांव
जिसे नहीं रूप रेखा गांव
भावना अभाव कछु नहीं
घिरे घिरे तेरा बी मंतर बोलूं
लिंग देव की गांठ खोलूं
एक बार ऐसा खेल खेलूं कि मेरे बड़े बड़े खेले थे
हा तो एक दो के तीन, तीन के चार, चार के पांच
पांच के पचीस, पचीस के छत्तीस
छत्तीस का एक
एक बी नहीं तो एका जनार्दन देख ।।१।।

---

१. दाता की । २. फिर ।

(१७)

चल चल चल, निरजन जंगल का आया खिलारी
लिया हात में खेल पेटारी, काली कल वाहा भी डारी
सबक मुसा साब घुसारी, हा हा हा हा हा चुप बैठ
चुप बैठ. नहीं हूँ नही, कछु नाद बिंदु कला जोती
आदी मदी अंती कछु नहीं, चुप बैट, चुप बैठ
आपने जागा चुप बैठ, कहना तो कहना मन
ही बैठे आराम, आलख मो लख लख मो आलख
तो होना एक लख लख. ए हुन्नर मेरे गुरु पखें बताया
आहां ब्रह्म मैदान छोटे में बड़ा भारी और बाजेगर खड़ा
ठो ठो ठो ठो सोहं सोहो, ढोल पीटते हैं
नाथ गारुड़ी बीरपुरा है ! ओ खेल का वो खेल करत है
और प्रेम पोगड़ा हाँडी बाग बड़ा हार्द है ।
अबे हांडी बाग तू क्या क्या बता शीको[1] है
बाबा मैंने तो खेल का खेल गट करा है ।
आरे तेरे नानी का शीर[2] काला
आरे हांडौ बाग तो आया जी तूं क्या क्या खेल सीको (शीको) है ।
और कछु खेल खेलेगा, तो आहा जी
गुरु पीर पैगम्बर की याद कर
तो[3] आहा जी, नजर कर, नजर कर नजर कर
ज्याके व्हां सबके आखेर होत है ।
उसमें सबकी पैदास है ।
चल चल चल ये देख राधा
मावशी तेरे से नचत है । क्या क्या खेल तेरे से करत है ।
ले इसे बे डारूँ, और ऐसा खेल खेलूं के
हमारे बड़े बड़े खेलते है
ये देखो हीरे की खानि निकलत है ।
अवल्ल फतरा, फेर हिरा, फेर देखो कतरा का कतरा
तीन लोक कुं बुजे नहीं, समज पड़के गत्या होत नहीं
सौंसार[4] के बाजार में बड़े बड़े डूबते हैं
ये देखो रुपया बनते हैं
आधल[5] एक, एक के दोन, दोन के तीन, तीन के चार
चार के पांच, पांच के पचीस बनाया, पांच पांच मिल गये

---

१. सीखा । २. शिर । ३. वह (मराठी) । ४. संसार । ५. पहले ।

(१८)

आईल का आकेला रह्या, चल चल चल
निरंजन से बड़ा आया, ब्रम्ह मवजी बड़ा निखारत है।
फड़ाके मजथम से घुस घुस फुस फुस करत है
ले इसे बे डारू और ऐसा खेल खेलू
ओ खेल को बड़े बड़े दाता देखतें हैं
चल चल चल चीपड़ी के पोगड़े
बड़्या बड़्या बात्यां करता है, बड़े बड़े तो आगये
तेरा ही ब्रीद छीन लेऊंगा
तेरे भूपर मारूंगा, तेरी म्हातारी रोवेगी
ये तु भेदर तो देख भला, आ ल ल ल ल
सब जगों में उज्याला, मैं आप अपने से भुला
ए कछू नहीं देख, ये हुन्नेर, ये हुन्नेर तो सबसे अच्छा है।
चल चल चल, अव्वल एक, एक के दो
दो के तीन, तीन के चार, चार के पांच
पांच के पचीस, पचीस के छत्तीस
छत्तीस के चालीस, चालीस के ऐशी[1]
ए कछू नहीं देख
एका जनार्दन के पांव पकड़ कर बैठा है।
सदो दित[2] नाम गावत है।

फकीर

(१६)

भला संतन का संग
खावे बोधन की भंग
सदा अनंद मो दंग, ऐसा मलंग फकीर ॥१॥
ग्यान के मैदान खड़े
सम दम में आन लड़े
बहोतां के तखत चढ़े ऐसा मलंग फकीर ॥२॥
किया संतन का दुमाल मेरा तुटा जंजाल
ऐसा एक नाथ कंगाल, ऐसा मलंग फकीर ॥३॥

---

१. अस्सी। २. सदैव।

(२०)

देखो रे सांई, देखो रे सांई
विट[1] पर खड़ा रहिया भाई ॥१॥
फकीर मौला सब दुनिया का नाम बिठ्ठल साचा
बड़े बड़े भगत आवे, बोल बाला बाच्या
सिद्धन साधन कोइ नहीं जाणो, जाणो विठ्ठल सांई
एका जनार्दन होरी पुकारे, थां के पायी ॥

---

(२१)

दिल मो याद करो रे
जनम को सारथक करोरे ॥१॥
सारे दीन करत पेट खातर धंदा
विठ्ठल नाम लेवत नहीं कॅवरे तू गधा ॥२॥
जम का सोटा बाजे पीठ पर,
कोइ नहीं आवे सात[2]
एका जनार्दन नाम पुकारे
करो हरी नाम बात ॥३॥

---

(२२)

हजरत मौला मौला,
सब दुनया पालन वाला ॥१॥
सब घटमो सांई बिराजे,
करत हय बोल बाला ॥२॥
गरीब नवाजे मैं गरीब तोरा
तेरे चरन कु रतवाला ॥३॥
अपना साती[3] समज के लेना
सलील वोही अल्ला ॥४॥
जीन रुप से है जगत पसारा
वोही सल्लाल अल्ला ॥५॥
एका जनार्दनी निजबद अल्ला
आसल वोही चिर पर अल्ला ॥६॥

---

१. ईंट (मराठी)। २. साथ। ३. साथी।

(२३)

पंच तत्व का शोध करीयो
मूल बंध अंकुश खोजीओ
पांच पांच के पचीस पचीयो
ग्यान ध्यान सो धीर मच्याई ॥१॥
फकीर हय भाई ॥ध्रुव॥
गले मैं सेली हात मे झोली
अनहत लंगर नाम की पोली
गुरु ग्यान मन से झोली
आशा छोड़ धीर न छाँड़ीयो ॥२॥

(२४)

दील को हमने पछाना बे,
कायकु सोंग[1] बताना बे ॥१॥
जीदर उदर देखो भरीयो सब घटा,
अल्ला अल्ला करकर खावन मागे मीठा ॥२॥
एका जनार्दन पग धरत है
कहो कहो बीठल अल्ला ॥३॥

(२५)

सफेद कलंदर फकीर
बाबा सफेद कलंदर फकीर
काम क्रोध मद मत्सर काटो
उन्मनी ज्या घर बैठो
मारो आसन बैठो
त्रिकुट पर करतार की जिकीर ॥१॥
अंदर भगवा कियो री बाबा
जोग जुगतु भरपाई
अल्ला के नाम पर लगन लगाई
चुकी कलम पर लिखीर ॥२॥
ऐशी फकीर की छोरी
बाबा जात कूल सब तारी
जनार्दन का एका कहत हैं साधो
सीताराम गुरु पीर ॥३।

---

१. स्वांग।

(२६)

हुषियार बंदे हुषियार, तेरा तन खबरदार
तुझे खिलावत एक नार, बतादेव, सतरावी, घरपाई है ॥१॥

बड़े बड़े साधू संत, उनसे करले एकांत
बतादेव सिद्धांत आदि अंत उनो का ॥२॥

बड़ी तो सबसे बड़ी, जाड़ी तो धरती से जाड़ी
एकवीस[1] खन्न[2] की माड़ी,[3] गगन बीच में खड़ी है ॥३॥

दसवे हार झरोखा, देखले दिदार उनोका
नैन दीन लगावै ॥४॥

ब्रम्हा विष्णु बड़े देव, अजब गुरुग्यानी महादेव
पाहिये उनो की ठेव,[4] बैठ के जग झुलाई है ॥५॥

अलख पुरुष को धुनी, तूर्या चेत रही उन्मनी
नहीं आदि अंत पुरानी, पन्नी महाकरण रूप है ॥६॥

अहं नाद निःशब्दों यों, सोस लगाई ये चष्म यों
चुनक है मसूर यों, झक झक झकाकात है ॥७॥

लख लखाट हिरे की खान, चकचकाट को भान
निशि दिन करत न ध्यान, ग्यान बहोत आयेगे ॥८॥

दिल रिझे तो करले धंदा
एका जनार्दन का बंदा, चुप सोने सो बताई है ॥९॥

---

(२७)

मुंडा

गुरु का मुंडा, बड़ा गुंडा चीप की कहे बात
सुननवाले बहेरे बाबा, दिन की करे रात ॥१॥

सोही एक मुन्डा जेवें आप रूप धुंडा,
और क्या कहूँ जादा करो बेद लुंडा ॥२॥

आपनी आपनी राहा चले दिलकु करे पाख
तनक मनन सटोना, मुमे[5] पड़ेगी खाक ॥३॥

खलक म्याने मरिये खुदा नई जुदा कोय
एका जनार्दन का बंदा जनन मरन खोय ॥४॥

---

१. इक्कीस। २. खंड। ३. अटारी। ४ रुख। ५. मुँह में।

(२८)

दिल की गांठ खोलो, यारो नाम बोलो ॥१॥
कुइ नहीं आव सात, मुंडे कायकु करे बात ॥२॥
जोरु लरके मा बाप, सब पसारे हात ॥३॥
हत्ति घोड़े पालख मेना, नहि आवे सात ॥४॥
दो दीन का बाजार यारो, कायकु करता बात ॥५॥
झुटी काया, झुटी माया, झुटा सब दीन रात ॥६॥
एक जनार्दन बोले भाई, कोई नही आवे सात ॥७॥

(२९)

पल खम्यानें चार जुग ज्यावे
तन की नही भाई बात
देख मुंडे देख, आपना नफा मुंडे देख ॥ध्रु०॥
कृत नेत द्वापार का कलयुग का मोठा[1]
चार जुग मुफ्त गमावे आया, मुद्दल सो तोटा[2] ॥२॥
कलयुग में राम बीना तरला[3] कोई देखो
आलख आलख सब पुकारे
आलख नहीं कुई देखो ॥३॥
जपी तपी सन्यासी पेट खातर फिरते
आसन छांड आलख पुकारे, पेट से सब मरते ॥४॥
फकीर मौला ब्रम्हन गुंसाई
सबही आलख पुकारे
आलख में लख नहीं केंव आलख पुकारे ॥५॥
एका जनार्दन साचा कहे, आलख बिठल सार
देख मुंढे अपना नफा करो नाम उच्चार ॥६॥

(३०)

बुल बुल

लखो बुल बुल है, दावोजी मुबारखो ॥ध्रु०॥
झुटा तेरा जप, भात रोटी गप
सद गुरु में छुप[4]
तुझे काल करेगा गप ॥१॥
लगो मुख लिया नाम, आदंर भरा है काम
ऐसा केव हुवा बेकाम, तुझ काहां मिलेगा राम
मोकूं आगकूं लगाया राख, दिल मो नापाक
ऐसा देखे लख, एका जनार्दनीं देख ॥३॥

१. बड़ा (मराठी)। २. मूलधन में भी हानि। ३. तरा। ४. छिप।

जोगी

(३१)

हम तो जोगी रे बाबा संजोगी । ध्रु० ॥
बहुत दीन के पुराने
बिरला बूझे कोई लाखों में, गुरु साहेब जाने ॥१॥
जपका जोगी, तप का जोगीना, जोगी जुग जुग जीवे
हात मो प्याला लिया प्रेम का भर भर पीवे ॥२॥
जोगी कु धुंडत जोगया कीएे लखे नही पाया
एका जनार्दन कृपा सो जोगी, पकर ही लाया ॥३॥

नानक

(३२)

अलख निरंजन नानक आया
नेकी करणा आछा है ॥१॥
फेक पैसा फेक यारो, फेक के पैसा फेक ॥ ध्रु० ॥
माया झोली निरगुण सैली नाम माला जपता है ॥२॥
समकी टोपी, दमकी कफनी
त्रिगुन बभूत चढ़ाई है ॥३॥
जीव शीव दोनो कुंडल पेन्हे
अन्हत टिपरी बजावत है ॥४॥
काम क्रोध की गर्दन मारी
बोध खंडा झलकत है ॥५॥
प्रेम कटारी लियो हात में
लवंडी माया डरती है ॥६॥
वैराग्य माला पड़े उजाला
संसार मो तो फत्तर है ॥७॥
तो भवन मो सौदा बेंचे
आशा मनशा धरता है ॥८॥
फेर चौया-यांशी[1] आयी यारो
भूपर जूता खाता है ॥९॥
चारो बरन मो ब्रम्हन बड़ा
घर घर कथा करता है ॥१०॥
नाम बेच कर दाम लेवे
उसकी करनी हराम है ॥११॥

---

१. चौरासी ।

(३३)

फकीर होकर फिकीर करता
उसका मूं काला है ॥१२॥

नाथ पंथ की मुद्रा डाली
जग में सिंगी बजावत है ॥१३॥

सिंगी नाद कुं औरत भूला
वोबी लवंडा झूठा है ॥१४॥

सन्यास लिया आशा बढ़ाया
मीठा खाना मंगता है ॥१५॥

भुल गया अल्ला का नाम यारो
ज्यंम[1] का सोटा बजता है ॥१६॥

शेटेसावकार[2] माल खजीना
उनमे मगन रेहेता है ॥१७॥

जोरु लड़के कोई नहीं साती
आखेर भूमे मट्टी है ॥१८॥

मानभाव बने वो काला पैने
छानकर पानी पीता है ॥१६॥

आत्म ज्ञान कूं चोर लुटत हैं
वो बी सच्चा गद्धा है ॥२०॥

शंख बजाबत जंगम आया
घर घर लेकर फिरता है ॥२१॥

पेट खातर शिव कु बेचे
वोबी लवंडा कुत्ता है ॥२२॥

गोसावी बड़ा भगवा आवे
जटा बढ़ाकर रहेता है ॥२३॥

साहा चोर कु जागा देकर
उसके फंद में फिरता है ॥२४॥

साहा फेंके सो साहु बनेगा
नहीं तो सारो गव्हार है ॥२५॥

फेक आशा फेक मनशा
निंदा फेंके सो जोगी है ॥२६॥

---

१. यम । २. सेठ-साहूकार ।

(३४)

परधन फेंक दुजी औरत फेंक
न फेंके सो चांडाल है ॥२७॥
दंभमान फेंक मोपन फेंक
न फेंके सो नकटा आंधा है ॥२८॥
साही[1] शास्त्र अठरा पुराण
चारों बेद पढ़ता है ॥२९॥
मां बाप तो कासी तीरथ
उसकूं गाली देता है ॥३०॥
साधुसंत घरकु आये
उसकूं तेड़ा[2] बोलता है ॥३१॥
दीवाना उनका बाप यारो
हाथ जोड़कर रहेता है ॥३२॥
नाम अल्ला कथा सुन्ने की
वा मुरगी का सोता है ॥३३॥
काम का कुत्ता कसबीन धरम
सारी रात दीन जगता है ॥३४॥
इस दुनिया में आया बंदे
अल्ला नाम का सौदा है ॥३५॥
एक दिन आना एक दिन जाना
दो दिन का सब बाजार है ॥३६॥
इस नगरी में सेटे[3] सावकार
बड़े मतलबी रहते हैं ॥३७॥
नाम की जोड़ी करले यारो
चोयान्यांशी[4] बेड़ी तुटती है ॥३८॥
तेरे नगरी में नानक आया
पैसा टका कूच मंगता नहीं है ॥३९॥
भक्ती रोटी भाव का सालन
देना मेरे कू सचा है ॥४०॥
एक जनार्दनी शाही हमारा
नानक उनका बंदा है ॥४१॥
मोक्ष निशानी लिया हात मो
बैकुंठ धाम पढ़ता है ॥४२॥

---

१. छह। २. टेढ़ा। ३. सेठ। ४. चौरासी।

(३५)

सिर में टोपी, गले में सैली, कफनी डाला देख ॥१॥
फेक दाम फेक, मुजे फेक दाम फेक ॥ध्रु०॥
निराकार नाम एक, हमने लिया भेक[1] ॥२॥
सोहं की वो नौबत बाजे, विरला ज्याने एक ॥३॥
शम दम के तो सोटे बाजे, कुफर भागा देख ॥४॥
बड़ानुग्रह देतां नहीं, नसकु फत्तर देख ॥५॥
बड़ा सूम बोले नहीं, जुता खड़ा देख ॥६॥
घुस आया कपड़ा जलाया, आग लगी देख ॥७॥
ग्यानोबा ग्यानो का घर, गले मो सैली सिंगी देख ॥८॥
पैठण में तो मुजे बेद, रेड़ा बुलावे देख
पैठण होकर घर कूं चले, पशु कु समाद दीया देख ॥१०॥
ग्यानोबा विष्णू का अवतार, दरवाजे सुन्न का दिंदल देख ॥११॥
निवृति अवतार बाबा आदम का,
पहाड़ मो समाद लिया देख ॥१२॥
सोपान देव तो ब्रह्मा भया,
भागीर्थी लाया देख ॥१३॥
चांगदेव तो मिलने आया,
दिवाल चलाया देख ॥१४॥
और नानक नामा दरजी
देव भुलाया देख ॥१५॥
और नानक कबीर हुआ,
दूजा कमाल देख ॥१६॥
बड़े नानक सावंता माली
पेट चिरा देख ॥१७॥
और नानक सज्जन कसाई,
भजने कू साल-ग्राम[2] देख ॥१८॥
गोरोबा कुंभार नानक हुवा,
हात तोड़े देख ॥१९॥
नानका घर, दादू पिंजारी,
नाम जपता एक ॥२०॥
एक नानक प्रल्हाद हुवा
बाप कु मरवाया देख ॥२१॥

---

१. वेश। २. शालिग्राम।

नानका घर विभिषण हुवा
कुल डुबाया देख ॥२२॥
और नानक विसोबा खेचर,
तन के शाम देख ॥२३॥

बड़े शहाणे नरहरी सोनार,
सीर पर लिंग देख ॥२४॥
रोहिदास चंभार सब कुछ जाने,
कठोर गंगा देख ॥२५॥

सेना नानक पूजा करिता
देवने धोकटी लिया देख ॥२६॥
चोखोबा ने देव बटलाया,
शिवाल पकड़ी देख ॥२७॥

ऐसे नानक बहुत हुवे,
अंत न लागे देख ॥२८॥
ऐसे नानक नाम जपके,
बैकुंठ जावे देख ॥२९॥

कासी, गया, प्रयाग गया
कर्वत लिया देख ॥३०॥
मथुरा गया, द्वारका गया
छापा लिया देख ॥३१॥
उसका नाम लेवे नही तो,
दोश लागे देख ॥३२॥
उसके नाम चढ़के बैकुंठ चढ़े देख ॥३३॥
एकनाथ तो एकहि जाने,
एका जनार्दनी देख ॥३४॥

(३६)

अल्ला रखेगा वैसा भी रहना,
मौला रखेगा, वैसा भी रहना ॥ध्रु०॥

कोई दिन सिर पर छतर उड़ावै
कोई दिन सिर पर घड़ा चढ़ावै
कोई दिन तुरंग ऊपर चढ़ावे
कोई दिन पाव से खासा चलावे ॥अल्ला०॥१॥

कोई दिन शक्कर दूध मलीदा
कोई दिन अल्ला मारत गदा
कोई दिन सेवक हात जोड़ खड़े ।
कोई दिन नजीक न आवे धेड़े[1] ॥अल्ला०॥२॥
कोई दिन राजा बड़ा अधिकारी
एक दिन होये कंगाल भिकारी
एका जनार्दन कहत करतारी
गाफल केंव करता मगरुरी ॥३॥

(३७)

भांड

माया[2] भांड सुनो जी, आछा भांड बनोजी ॥ध्रु०॥
ब्रह्मदेव ने वेद पढ़ाया,
माया मीठी लागी
सरस्वती के गले पड़ा
उसकी कीरत भागी ॥१॥
विष्णु के पीछे लगा है माया का धंदा
खेल करते फिसल पड़ी, मीठी लागी वृंदा ॥२॥
महादेव बड़ा देव, सब देवन का बाबा,
भिल्लनी के पीछे लगा करता तोबा, तोबा, ॥३॥
सीता की चोरी करी,
रावन कूं धक्का
हनूमान ने नंगी करके,
जला दी लंका ॥५॥
विश्वामित्र तप करे भये अनुरानी ,
मेनका से वश भये हुवी धूलधानी ॥ ६ ॥
सोला सहस्र नारी कान्हा गोकुल में खेले,
राधिका कूं छोड़के रीसनी कूं भूले ॥ ७ ॥
जनार्दन सांई मेरा सब खेल खेला,
एक नाथ भांड होके उनका चरण मिला ॥ ८ ॥

---

१. धेड़ (एक हरिजन जाति) । २. भैया ।

(३८)

हुआ भांड माया छांड,
एक संग पकड़ा।
जोरु लड़के मा बाप, सबकू बस करा ॥ १ ॥
सबसे हुवा न्यारा,
मुजे हुवा प्यारा ॥ ध्रु० ॥
खावे चिद बुंद की भंग,
मैं तो मगन हुवा दंग।
छटक फटक टाली बाजे,
मूमे बाजे चंग ॥ २ ॥
उपर तले अंदर भीतर,
सज्जन भरा पुरा ॥ ३ ॥
चौक म्यानें आन खड़े देखत है रहा[1],
बड़े बड़े वे फाम धरोधर यारा ॥ ४ ॥
बेद नीती सब कोई ज़ाने जाने किताब पुरा,
मां बेटी की सुद[2] नहीं एक सीर मारा ॥ ५ ॥
'हाम जपी, हाम जपी' चारो देश फिरा,
जमुना में लटा परी ब्यास नाम धरा ॥ ६ ॥
बिसरा राम, भरा काम,
मागन लगा औरत
दौड़ों यार, किया जोर
लरकी नरकी घेरा ॥ ७ ॥
बड़े हट्टी अंग पर छाटी
एक पग खड़ा
देख माया खुसा खुसी,
डालन लागा घेरा ॥ ८ ॥
आप चले मकान कु बिसारत करे कु
भरी मजलस हासा हासी
उतार दिया कुरा ॥ ९ ॥
आप करते तप करते,
वोबी भुल पड़ा
इतर जनकी क्या विसात
छे जन कु मारा ॥ १० ॥

---

१. रह। २. सुधि।

आगे आगे देख करनी
संग हुवा एका,
जनार्दन की मेहर हुवी
माधो कर धरा ॥ ११ ॥

(३६)

देख माया जद लगी
बावा आदम के पीछे,
कैलास छोड कर,
स्मशान मो बैठे ॥ १ ॥
हम तो भांड भई
माया छोड दई ॥ ध्रु० ॥
विष्णु के पिछे मायन का धंदा
व्रंदाबन मो घुसा घुसी
मिठी लागी वृंदा ॥ २ ॥
ब्रह्मा बड़ा ब्रह्म खड़ा
चारो वेद पड़ा
अधर्म से रत हुवा एक सीर तोड़ा ॥ ३ ॥
जपीतपी जंगल में बैठे
उनसे डाले घेरा
कुत्ता कुत्ती होके सब मुलुख फिरा ॥ ४ ॥
बड़े हारी अंग पर छाटी
एक पाव खड़ा
जद माया पिछे लगी
किया तड़ा तोड़ा ॥ ५ ॥
होकर भांड माया छोड
जनार्दन पाव मिला
एक जनार्दन का स्वामी सब खेल खेला ॥६॥

अनन्त महाराज के पद

(१)

गरजत माधौनिगम पुरानी,
वाजत बेनू धुन कित जानी ॥ ध्रु० ॥
कानो माही जबसे आयी,
रूचे न तब से नेह सगायी ।
लागि लगन तब मगन भयी मति,
नीज सुहागन अगनित गनती ।
मदन अनंती सुरति न भावै,
पुसकामी गित [1] समजावै ।

(२)

प्रीत न तन की भावत मन मो,
नीत हरी की परगट जग मो ।
भव मर माको कारज हरपे,
अकाम कामीं बानी तलपे ।
हयरानी[2] नहि, हय लय लागी,
दुविधा सकल हि ममता भागी ।
अनंत अनन्य भाव भगति को,
माधो अजात मन की भूको[3] ।

(३)

धुनक परत अब मुरलि की कानी,
फनकत मन मो रित निरबानी ।
माधो महिमा लगाध साजे
निरजर मोही नाद समाजे ।

---

१. गीत । २. हैरानी । ३. भूखा ।

पार न जिनको लागत वेदा,
जागत सोही छेदन भेदा ।
निज जन माही अनंत राजी,
गात बिलासक भाव सदाजी ।

(४)

कुंजबिहारी मो मन माही,
निज सुखदायी मंगल गायी ।
कुंज बिहारी मो मन माही,
निसिदिन राही त्यज[1] के धायी ।
नित समुझायी दुबिधा जायी,
निज सुख दायी मंगल गायी ।
अलख कमायी विनय जगायी,
साजन सायी[2] नहि बिसरायी ।
अनंत पाया भाव सरीखो,
हरि-रस प्याला पीवत नीको ।

(५)

संसरा को सुख भावत फीको,
गम हरि को नय लागत नीको[3] ।
जिनको सज्जन गावत निशिदिन,
तिन माही मो मोहन तन मन ।
अजरपनो को ठौर बतावे,
अधोगति दीन्ही मोर सुभावै ।
अनंत जावत आवत नाही,
सोवत जागत गावत सांयी ।

(६)

सुन सुन सुन सखि समता वारो,
मंगल गावत गीत सांवरो ।
मुरली माही नाद जगावै,
अनुरागों की गम समजावै ।
निज बोधाबिन परखनहारो,
नहि नहि जगमों नेह सांवरो ।

---

१. त्यागकर । २. साईं । ३. हरि का बिरह अच्छा नहीं लगता ।

होत बावरी जीय सुधारो,
अनंत प्यारो सब से न्यारो ।

(७)

भयि मै जोगनि पिय अनुरागी,
लगन लागी तब से मति जागी ।
भव भरमो को त्यजके धायी,
निज सुखदायी निशिदिन गायी ।
मन समजायी मन के न्यायी,
कुंवर कन्हायी की गत पायी ।
आदि अंत भव खंति निवारे,
सोही ताकु पंथ सुधारे ।
अनंत आपत काल सुभावै[1] ,
गावत मंगल गीत प्रभावे ।

(८)

पिय के खातर मति अनुरागी,
सुख सुहागनि चैतन जागी ।
निज लय लागी भव गति भागी,
दुबिधा जग की सब ही त्यागी ।
तन की सुद[2] नहि इह संसारी,
सब से न्यारी हरि की प्यारी ।
अनंत बिचरी सोहि सुधारी,
हरि नामो की महिमा भारी ।

(९)

नहि हूं भोगी नहि हूं त्यागी,
सोवत नहि हूं नहि हूं जागी ।
नहि भव रोगी विरह वियोगी,
निजलय लागी पियसे जोगी ।
गति सम जायी अजरपनो की,
पर हूं मै अब इह परलोकी ।
अनंत गावत अपनो माही,
दुबिधा त्यज के सबको सांही ।

---

१. अच्छा लगता है। २. सुधि ।

(१०)

काय कु मोहन प्रीत लगायी,
सकल बिघारी जगत कमायी।
तुम बिन अबि मै बिरह बियोगी,
गावत निसिदिन नय संजोगी।
भावत नाही जग माही दूजा,
तुम बिन कौनहि सकल समूजा।
अनंत पीया होइ न न्यारो,
नेह हमारो तूं हि समारो।

(११)

जागत सोवत सो मै जानत,
सपन सुहावत सोही मानत।
तीनो पनसो है मै न्यारो,
आप आपनो माही प्यारो।
ग्यान ध्यान की मो नहि आसा,
मो मै है सब जग परकासा।
अजरामर की मो नहि जानत,
अनंत मंगल अच्युत गावत।
लाग्यो मीठो नेय पिया को,
फीको भावत भाव जियाको। (क)
दियो सुबोघ सतगुरु सोही,
करत जगत सो गति निरमोही। (ख)
निज हितकारी जाकी बानी,
सुन के आसा है त्यजि जानी।
अनंत वारी जाऊ पग पर,
संत सुभाव महा है सबपर।

(१२)

नहि जन मन मो मन मोहन मो,
काम न मोहन है जिह तनमो।
त्यजि मैं आसा मोपन की सब,
किसन की छबि देख परी तब।

(क) जी को प्रवृत्ति की ओर ले जानेवाला भाव फीका लगता है।
(ख) गुरु ने वही उपदेश दिया है जो मुझे जगत से निर्मोही बनाता है।

अब नहि न्यारी होत पिया से,
अनन्य दरस सुभाव दियासे।
पिय की मै हूं पीया प्यारी,
अनंत भक्ती भाव अधारी। (क)

(१३)

नहि दुबिधा की भक्ती तन मो[1],
मो[2] मन मो समतागम उगमो।
कीन्हो माधो सँगतीको जब,
होत[3] फीको भव निज वैभव अब।
प्रापत भयउ गति अविनासी,
प्राणपिया की प्रीत बिलासी।
अनंत घटमो परघट सांथी,
सब घट न्यारो निज सुख दायी।

(१४)

सुद्ध नथि पिय की बुध माही मो,
भव मो नहि रुचि प्रीत साही[4] मो।
ग्यान ध्यान नहि है मो माही,
बिरह विरागिन भाव सदाही।
अविनासी के प्रेम बिलासी,
हूँ अभिलासी निशिदिन दासी।
होत न बासी प्रीत मनासी[5],
अनंत प्रापति अनुतावासी[6]।

(१५)

सुन सुन संतो बैन तुमारा,
धन[7] जग मो मन होत हमारा।
बोध तुमारो अजरामर को,
भागत मोको सुखकर नीको।
भगती गावत प्रेम जगावत,
मन समझावत आवत जावत।

(क) अनंत भक्ति-भाव को धारण कर मैं अपने प्रिय की प्यारी प्रेयसी हो गई हूँ।

१. में। २. मेरे। ३. होता है। ४. साईं। ५. मनसे (मराठी) ६. अनुताप से (मराठी)। ७. धन्य।

(१६)

नहि देने को नहि लेने कू,
सौदो मन को अनन्य वन को।
जग जीवन को नेह अजर को,
कोई बिरला जानत परखो। (क)
जिनको तिनकू अनंत जगमो,
परखन हारो चेतन तनमो।

(१७)

जिय नहि पिय नहि शिव नहि सगती[1],
इह नहि तिह नहि इह गति जगती।
जगती गति इह शीव कि सगती,
पिया ताही जिय ताही तगती।
भाव भगति को परभाव[2] भयो,
सुभाव संतन को प्रेम दयो।
अबिनाशी को नाम पसारो,
अनंत गावत सारासारो।

(१८)

गावत कान्हा कानन मो है,
मो मन मोहै जन सब सोवै।
नाद मचावत तीन लोक मो,
अवलोकन को आवत भव मो।
संतन मो सुद है निशि दिन मो,
आदि अंत नहि जिनके दिल मो।
जनम सुधारयो मानवपन को,
अनंत सांवरो अजपापन को।

(१६)

जनम मरन डर कुछ नहि मन मो,
नेह न मोरो इह जग मो।
लागो प्यारो सबको न्यारो,
अजित सांवरो भाव सुघारो[3]।
अलख निरंजन दिन जनरंजन,
भव दुख भंजन बिचार मंजन।
अपने मन मो मो[4] मिलवाया,
अनंत माया निशि बिलवाया[5]।

(क) परखा हुआ (अनुभवी)। १. शक्ति। २. प्रभाव। ३. सुन्दर। ४. मुझे। ५. नष्ट कर दी।

(२०)

जान पर्‌यो मनमाही ग्यान को,
निगम सांवरो नहि अग्यान को।
आस लगी है अतीत करारी,
पीय मिलन की आज तयारी।
न्यारि न होके न्यारी मैं हूं,
न्यारी न्यारी भव न्यारि हूं।
प्यारी दिलीकी इह परलोकी,
नयन बिलोकी नाहिं भु लोकी।
भोली मैं हूं अनंत भोली,
अनन्य भगति मन मो डोली।

(२१)

निशि दिन माही नेह लगावै,
मंगल मंगल भाव जगावै।
पतित सुधारे अपनी माही,
सब मो माधो अलख गुसांही।
घट घट सोही परघट होयी,
देख देख जन लाज गमायी।
अनंत गायी गीत प्रीतसो,
विपरित मन के भाव न्यावसो।

(२२)

अकथ कहानी साजन गावै,
जग विपरित मन प्रेम लगावै।
अंदर बाहिर पीतम प्यारा।
जागत सोवत होत न न्यारा।
अनंत लागी लय निज नैनी,
नैन को नैन सुहावत बैनी

(२३)

काहे कु थोरो गावत अपनो,
माधो नहि तुम जग को सपनो।
कौन न पूछे तुज कू जगमो,
सब जगमो तुम परि नहिं उगमो[१]।
सज्जन जानत बिचार तेरो,
सोही जगमो जगसो न्यारो।
अनंत गावत अभंग बानी,
अजर अमर गति लय निरबानी।

---

१. तुम्हारे उद्‌गम का पता नहीं है।

(२४)

सुद बुद सबही हरि हरि[1] मोरी,
तन धन जन की प्रीती तोरी ।
व्यापक सांयीं सब मो सोही,
सो मनमोहन मो मन मोही ।
मोहन, मोहन को, संसारी,
सो हन नय सो लय कंसारीं ।
हंसि हंसि बाता रोवत आवत,
ऐसो गावत धूंद मचावत ।
अनंत पावत भावत तैसी,
नाहीं तफावत जैसी तैसी ।

(२५)

जाको नाहीं ठौर ठिकाना,
तांको नय लय संत मकाना ।
नाम रूप नहिं रंगत बांको,
खोज सुहावत संत सदा को ।
ऐसो बांको भाव बिलासी,
जग सो न्यारो जग अभिलासी ।
अनंत प्यारो बिचार लागै,
जनम मरन को डर सब भागै ।

(२६)

मो, मन, धोई, भाई, हराई,
सांयी खातर तनकि भराई ।
नहिं हयरानी[2] भव दिलमानी,
मानत घट घट आत्म समानी ।
रानि न राजा न सेट[3] न रंका,
सत गुरु बचनें मिटउं संका ।
स्वातम भाती नीज प्रभातीं,
गून[4] त्रैन की निकसी राती ।
अनंत साखी बेद पुरानीं,
जग बाहत है[5] मोह पुरानीं ।

---

१. हरली । २. हैरानी । ३. सेठ । ४. त्रिगुणात्मक मायारूपी रात बीत गई ।
५. जग बहता है ।

(२७)

चरणों की आस रही बिसारत नहीं सही ।
गुन गावै हरि हरि जग भावै हरि बिन कौन नहीं ।
मति हरि आली आधि निगम हरी भास दिखाव मही ।
अनंत परमारथ अरथ बिना भेट भई सुजन नहीं ।

(२८)

तुम बिन दिनानाथ मति अनाथ, जग वन मोहीं, माधव जी !
नर तनु पाई सार कमाई किन्ह चतुराई आतम जी ।
सगुन समाजीं सहज बिराजी राजी सब मो राम सजी ।
चीन्ह तिन्हीं सब घट की माया भेद गती कौ काम त्यजी ।
अनेक पेर्कीˣ मिलाफ करके अनुभव बानी लाग सजी ।
बाजी हारी काल कमाई गायी गिन अनुमोदन जी ।
सो घनभागी अनंत उधारयौ ये आत्म प्रेम, पा कर जी ।

(२९)

भजउं मना कंसांतकवीर, मन समनारथ[1] धीर ।
नर तनु पाके सार्थक करले छोडो भव कि फिकीर ।
हरिनाम गायौ सो नर दुर्लभ, भाव भगति अब नीर ।
समता पावै भ्रम हरवावै, अनंत भाग समीर ।

(३०)

सातीं[2] संतन अंत हटो, माया पंथ कटो ।
सगुन समाजीं भयउं न राजी रागीं रंग लुटो ।
सत सुमरन से काल गमावौ बाता[3] भंग रटौ ।
आतम सिद्धी अनंत बुद्धी समता कार पटौ ।

(३१)

पावन भगती के परकास शाम रमै अबिनास ।
करम प्रभावौ अवगम त्यजियो आगम भाव बिलास ।
जा भव माहीं, जाग्रत मति नहिं बिखय रहा अबिनास ।
अनंत साधन कछु नहिं जानत निजपगमों लगि आस ।

(३२)

समजावौ, दिल दिलमो, दिल सो ।
भरमावौ मन मत या भवसों ।
जो, घट माहीं, व्यापक, सोही, घट घटमों अगसो ।
दूजा नहि कोइ समजे भाई, नाम जपो हरदम सो ।
ताप मिटावौ जाग्रत भवको, अनंत गीत नीज वखो[4] ।

× मैं से । १. शमनार्थं । २. साथी । ३. बातें । ४. बको (बोलो) ।

(३३)

सोहे शाम किशोर भोरा, निज अंगन मो नाच नचावें,
रहा बतलावे अधोर ।
मंजुल गावै, तान सुनावैं, नीगम की कीन्हीं भोर ।
अनंत अनुभव स्वानंद प्रेमा, आतम गति निजठोर ।

(३४)

मोहन माधवजी मनका सनकादिक न नेमित मनका ।
बालमिक नारद आदर भावैं लेत अनूभव जीवनका ।
जाकी कीरत बेद बखानी, नाम सनातन आलमका ।
अनंत चरनी[1] नीज सुभागी, निशि दिन जागत नीका ।

(३५)

सतगुरु घर का भयउ गुलाम, तब से नेह सलाम ।
येलम[2] अलम का कलमकर डारयो, बलभद सगुन हराम ।
जागत जंगम जागरती त्यज, पाय मनोथ अकाम ।
अनंत अधिपत असूर अलखित अगम अनूभव अराम ।

(३६)

संतो, संतोष संग अभंग, कर लो अंत असंग ।
अमूरत आतम अनुभव आगम रम्यो अरंग तरंग ।
मांगत मतिको मान समारथ दूर पाखंड मलंग ।
अनंत कलिंदन लीन दलीन मलि, भास, करहुं, भंग ।

(३७)

जाने हैं, बहुदूर मारग मिलै न सत संगति बिन, लगी मतिमो हुर हूर ।
बिकट, निपटकी, कठिन कमाई, जाको लच्छ चतूर ।
अनंत, पराक्रम, हरउँ, सकलही, भाव गती भरपूर ।

(३८)

करुणा के सागर कौ मन तुम, भज भज मंगल गित गावौ ।
छोड़ो अभिमान बिनती सुन मोरी जोरित पानी[3] समजावौ[4] ।
मान तनोका मनसे जीतो भवगति सबही हरवावौ ।
धीरज राखौ निढल पनोसे घट घट येकी जगवावौ ।
रज करदम से[5] पार परोरे निजसुख अपना मिलवावौ ।
फैर न ऐसो डाव[6] बनेगी मानव तनुको परभावौ ।
अनंत शांति संत संग धत्ती बनि बनवाई समजावौ ।

---

१. चरणों में (मराठी) । २. इल्म । ३. हाथ । ४. समझाता हूँ ।
५. कीचड़ से । ६. दाव ।

(३९)

मोहे प्यारे, नंदजि लाल, गुपाल संतन पाल ।
शाम सुंदरा मान हंसी पतितन के किरपाल ।
अभेद भगती शांती सोहे गर नो है बनमाल ।
अनंत अनुभव निजको प्रेमा छूटो भव विकराल ।

(४०)

दिल की दिलमों रहि गयी बात, अबि[1] है बनि परभात ।
ग्यान रैन की रहा छुपाई, साजन की मिलकात ।
काम क्रोध मद दंभ लोभ मद निसिचर सब छुप जात ।
अनंत आतम अनुभव नीती नीगम भाव अज्ञात ।

(४१)

सोही ब्रह्म सनाथ जगाय, सब घट माहीं समाय ।
समभावन की बडि चतुराई जनम जनम की कमाय ।
आतम जोती तुर्या[2] भाती, गून निसी हरवाय ।
अनंत संतन सतभावों से निज गति प्रेम नवाय ।

(४२)

जागो रे जोगिया जगमाहीं, मनको मनसे समभाई ।
मत भुल जडसो बढ़त भरम मति मोह लोभ मदधायी ।
कठन परायी निहावन भाई अंतकु दुःख मिलाई ।
अंत आदि बिन आतम घट घट नाम रूप त्रिन सांही ।
अनंत सिंधु अनुभव लहरी सहजपनें झुलवाई ।

(४३)

भेक अनेकनमों हरि एक, नेह बनों निज लेख ।
कोहि नहिं दूजो अंतर खोजो आगम रूप अलेख ।
निरगुन नहिं है सगुन नहीं है येक अनेक ।
सहजपनो का खेल अनंती आतम भाव समेक ।

(४४)

गनपत के मनमों निजध्यान सबके आगे मान ।
बिघन विनासक बुद्धि प्रकासक गति जाकी निरवान ।
सुख सागर को बनी है निरमल भाव सुजान ।
अनंत आत्मा अगुना सगुना कृति मो हरि अभिमान ।

---

१. अभी । २. तुरीयावस्था ।

(४५)

सत संगत से पार परो भवमद सबहि झरो ।
जगजीवन मो उगमो निगमो अभेद भाव भरो ।
निरमल गावौ मुख से नामा अभिमति मान हरो ।
सहज पनो मो समतानंतीं सदचिद प्रेम झरो ।

(४६)

जगमो काल अकाल भयो जिसमन भावै समता उदयो ।
जगसो न्यारो निजनिरधारो भ्रम को नास कियो ।
आस नहीं है मनमों तनकी बिधि को भाव गयो ।
अतीकाल गति निजपगमाहीं अजरामृत प्रेम पियो ।

(४७)

हरि हरि भज मन त्यज कुमत को सूमतयो है निजनिरवानी ।
दो दिन खातर भवके पासी जग भ्रमनामो है हयरानी ।
मानव मानी समताबानी सो नर दुर्लभ जिसबिध पानी ।
साधन धरमा त्यज सब करमा चरमा मोहे स्वातम हानी ।

(४८)

प्रीत बनी मति माहीं पीतम,
नीत नयी अब निर्गुन नीगम ।
स्वातम तुर्या भाती उन्मन,
मोहे मोही जाग्रत ऊगम ।

(४९)

सम तनमो मन अब करवाव निरमल हरिहर गाव ।
भाव निरामय राज निजासय अभाव सब हरवाव ।
आगम नीगम माहीं देखो आपहि आत्म स्वभाव ।
अनंत घट घट खटपट त्यजके वीरगति परिहार ।

(५०)

माधव गुन मों सगुनी रमजिय अनुभव स्वातय निजहित मो ।
सब घट अंतर वास विलासी मन मोहन हरि आगम मो ।
स्वानंद भयउं कारण अंतोंकारज करमीं गम निगमो ।
सतसंगत मो रम रहियोजी मौजी आपहि आपनमो ।
निंदा स्तुति जग छांडचलो तुम सहज पनों में मारग मो ।
समता बाणै तव वरि जानै जाग्रत जाग्रत काल नमो ।
सदगुरु भाखौ अनंत नामीं अनामधामीं बिसरामो ।

(५१)

स्वातम भावो अर्थ जमावो अनर्थ भव सब गमवावौ।
भोग त्यागमो घोर अंत को ठौर न पावै समझावौ।
ज्ञानाज्ञानी बहु हयरानी सहजपनो से हरि गावौ।
कारज करमीं बहुविध धर्मी त्रिपुटी साखी मलवावौ।
सबमे मिलके सबसे न्यारो हो जा अनुभव नव लावौ।
हम एक ज्ञानी हम येक ध्यानी हमपन मतको जिरववौ।
त्रिभुवन पति प्रभु अनंत माहीं भीक्षा काय कु मंगवावौ।

(५२)

समज मनीमे करिजो अपना, ज्या भव माहीं नहीं भरोसों, काल गति सपना।
घडियल जावै फिर नहिं आवै. निसिदिन मो हरि जपना।
भेद भाव में संकल्पगति देह भरोंसे तपना।
सुंदर देही अजप पनों की मानवि चतुरपना।
अंति न आवै कछुही संगति दुरभदमो खपना।
स्वातम प्राती साथसंगाती भरपाई बगना।
अनंत भवती माहिं बिराजे लौकिक सो लपना।

(५३)

साध कि संगत मिलवाई, नरतन माहीं किन्हि भरपाई।
रामधुनी लगि गून अगूनी, भवभरमो सब जायी।
जाको भावै सबघट समता दुरममता हरवाई।
ताप मिटा जो हाट हटाजो अनंत भाव कमाई।

(५४)

पतितोद्धारक नरहरि नाम हारक भवगति काम।
दिन जग करुनाकर सगुना अगुनकला निजधाम।
अभेद भक्ती निजसुखदायी जा देहीं बिसराम।
अनंत स्वातम सागर लहरी नित्य नयी मतिचाम।

(५५)

परम भई मति निरगुन पुरुखीं सगुनु कलावति अभेद भगती नित्य नयी तरकी।
स्थावर जंगम संगम माहीं कोहि नहीं परकी,
एक अनेकीं आतम पूरन है अजरामर की।
भेद भाव सों भ्रम भव आंखन काल गति चटकी,
मानव जनमीं जानै कोई जामति नहिं नरकी।
सहज सुभावो अनंत गावै नितरत नागरकी,
संत संगती निरमल पानी लाग रही झटकी।

(५६)

परम पुरुख निरबान हरी उदित भयउं समरी ।
सदचित माहीं अनुभव सहजीं समता भाव भरी ।
सब घट माही काक गती मो सोहं काल हरी ।
अकाल भजनी सुकाल दिनही अनंत बोध परी ।

(५७)

मो घर मो मोहन पावना[1] , आया भाव संभावना ।
अब मैं हरि बिन नाहीं न्यारी, हूं नहि दुबिधा तावना ।
निज गित गावत, नीत पठावत, जन ना मरण हरावना ।
अनंत माहीं सांगी निरंजन, तन मन रंजन भावना ।

(५८)

आगम षोडश पूरन निसिकर द्वादश नीगम मोर ।
जाकी लीला बेद बखानी सो, ब्रजमो, शिरजोर ।
अनंत गावै आतम भावै मोचक संसृति घोर ।

(५९)

निरगुन कौन भयो भय मो हरि, सुमरन बिन ।
जोग जुगत सो नाहक हंस गयो ।
मत अभिमानी भेद बिबादी स्थुल मति भाव जियो ।
अनंत जानौ सबमो राजी सो गुरु साच कियो ।

(६०)

भजन भरोसो येक जदुनाथ कोई नही आवत साथ ।
मा बाप और कुटुंब मिलापी जब लग पैसा हाथ ।
मोह, लोभ, मद, मोहिनी धारो, भव भरमो जियघात ।
अनंत भावै, सो परमारथ, करले संतन सात ।[2]
अनंत भगती सहज अनादी स्वातम गति अबिचार ।

(६१)

जग सो जगमौजी जगचार अनेक गति अबिचार ।
गून रैनमो जाग्रत सपनो निजको नहि हुं बिचार ।
ग्यान ध्यान सब अभिमान बनो है, बिषय बिलास क जार ।
जनन मरनमो तलफत प्रानी अनंत घनो घरचार ।

---

१. पाहुना (मेहमान) । २. साथ ।

(६२)

मनवा कपट की लकटी लपेट भइ मति तापरभेट।
गुन रैन मो सम पन शाती कबि हौ, नहि भइ, भेट।
कूद परो रे निरमल डोही जामो अनुभव रेट।
अनंत संती गहिरी जमुना जसुमति बालक भेट।

(६३)

हरि बिन भव कौन हरी, भ्रम माया करले सार्थक गुनिराया।
निसिदिनि गावौ मन समजावौ, हरवावौ, मत, काया।
मोह लोभ में काल न, धोका नहिं व्हां में सुख छाया।
अनंत जगावै निर्बानीसो, भगती भाव सुपाया।

(६४)

भावै ऐसी संगत भाई, मिलना प्यारे मन, पथ लाई।
नित्य नयो नय आतम अनपम निज सुख को बतलाई।
गूनातित गति भगती प्रेमा स्वानंद हाक भलाई।
बिन्मय करमीं धरम, समत, है संतन अदलाई।
तिरवापहको, ठौर हरायो बिचार कैसित तलाई।
सोही सतगुरु सोही चेला, सोही, तोहत लाई।
अनंत साथी अनंत माँहीं अनंत संत मिलाई।

(६५)

बाबा साहेब कैसी राम कीसन देखो राम।
देखो राम देखो शामा देखो भेखो राम।
घट घट के बिच्च चेतन सगती सोहै देखो राम।
अनंत रंगे संतन संगे भंग भयो भव काम।

(६६)

तीरत तुर्या को असनान करि, जो, सो, मसतान।
भव जंजाल भयो परिहारो कबहुं नहीं हयरान।
गुनातित है गुन को साखी, भाकी बेद पुरान।
सत गुरु स्वामी अंतर जामीं अनंत भाव समान।

(६७)

दिन निसि के बित हरि गुन गाते बार बार मन समझाते।
सब घट बासी अनाम अनश्रुत स्वानुभवौ निजरस पाते ?
जनन मरन को धोका मीट्यो आतम अनुभव मिलवाते।
अनंत सागर निरमल जलसो सोहत अपार परभाते।

(६८)

मेरा मन तुम बिन सूख नही भावै, पूरन काम परम धाम।
आतम सब माहि सम जगत अमित एक नाम नीसिदीन गावै।
भवति भास सबि हरास भेद मती भयउं नास निरंजनी नित्य बास।
नास भास जावै धन्य भाग अनूराग जामो नहि बेद माग।
सो अनंत सहज राग नीज लाग लगावै।

(६९)

* भाव गवालन गात हरी गवालन गात हरी।
मति जमुना के तिर सति जाके चाखे प्रेम जरी।
जग सब बासी भइउं उदासी प्यासी राग भरी।
अनंत शाती अभंग भाती राती काम हरी।

(७०)

अघोर निजमो सोह रही मोह, बिसारी, आगम चारी।
काम कु भाव नही निज गति आतम नाथ जनार्दन एकाएक सही।
अनंत बानी निरमल पानी शांती ठोर यही।

(७१)

काया मानव की धन भागी, निज खोज धनो गुन रागी।
गूना तितमो, लय लागी, समता भावै मन अनुरागी।
अनुभव प्रेमा आतम अंगी, आप आपिके सोहत संगी।
लख लखाट जोत बिरागी शांत दया भयऊं अजि तां गी उदय प्रबोधी मती।
मती सत भागी अनंत हर दम भाव परागी।

(७२)

गिरजानाथ सत धामा भव मोचनधन बिसरामा।
काम दहन गंगाधर शिवहर नित्य जगावै नामा।
सुरनर फनिपुर माही सतगुरु अगम अगोचर रामा।
अनंत सदया करऊं अभया निज निज आतम रामा।

(७३)

साहेब के घर कौ सरदार स्वसुख रहा परदार।
अगम, अगोचर, गून लोक, पर भाव बन्यो निरधार।
ग्यान, अभव, है. बिबेक संगा स्वातम, मोसुलदार।
अनंत स्थिरचर माही मानव काया मासुकदार।

---

* **मराठी संतों ने गोपीप्रेम के भाव को व्यक्त करने के लिए जो पद लिखे हैं, वे ग्वालन या गौलन कहलाते हैं।**

(७४)

प्रभाती

खोज किन्हो आगमार्थ सोहि साच पारमार्थ।
गून भाव भगति आर्त जगहितार्थ बानी।
संत, दयावंत, घनी बोध नीज दानी।
स्वकिय धरम धारनार्थ उदित भयउ मति समार्थ।
निगम प्रभाव तारनार्थ, सार्थ देह मानी।
क्रम, अनंत, नित्य नयो भ्रम महंत भास जियो।
सबहि न्यास छोड दियो भयो भयदानी।

(७५)

आली रिजे नहि सांवरो, जिय मेरो आजि भयो बावरो।
भयि मति बयरागी अनुतापें सदाचारी भेद तुरयो सेदकारी।
भव भोंवरो अभीमान घनी त्यजी भाव प्रेम संग कीजो।
लोक लाज आज तुट्यो नेह नावरो।
अनंत मती नित्य मान एका जनार्दनी ज्यान
स्वातम सुखालय मान गुरु पियारो।

(७६)

काल बितो तघि कोन जियो।[1]
अभिमति[2] रावन दशानन हार्यो।
निसिचर कोन जियो।
लिंग, त्रिकूटाचलपुर, लंका बिबिखन ठौर जियो।
जीय जियो नहिं शीय जियो नहि स्वातम मोनजियो।
देव जियो नहि आवत जात नहिं ऐसो, बोध जियो।
हूं, न जियो तुम न, जियो, जिय जग द्योत जियो।
ऐसो स्वामी अनंत गोचर निज बर कंस जियो।

(७७)

कोई बिरला जानै जोगिया, जोगि जागै जुगति सो जिया।
धन धन भाग जाके, तन मन माहीं राखे, खोज घनो नीज चाखे परम भोगिया।
अभिमान त्यज दिन्ही आप लागिंचिन्ही।
संत शांत संग किन्हों, नर तो जिया।
अनंत भाव येकायेकीं जनार्दन अलखाकी आत्मान्भय नहि चाखी आंकी आंखिया।

---

१. **अनंत काल तक कौन जीवित रहा है ?**

२. **अभिमानी !**

(७८)

परमपदीं जीय रमे सम, कामजि उनकी राम रटे ।[१]
अंदर रामा बाहेर रामा रामहि रामा भाव नटे ।[२]
भ्रांति मुरे मन शांत भये जिय, आत्म प्रतीती हौर[३] घटे ।
भगती भुगती बात नहिं मानै भगती प्यारो नाम फटे ।
निसिदिनिं गावै नेह लगावै स्वारथ पाव अंत मिटे ।

(७६)

राम कथा गावत है कोय, जिनकी समता होय ।
जिनकु माया बिखय बिखारी, ताप बने सै सोय ।
न मनको मनमो अनुभव उपजे स्वातम कारें तोय ।
मोह लोभ मद मत्सर हरद्गद, तनको कसमल धोय ।
सो येक सूजन सुमत आतम निजमो निजकौ खोय ।
दुरलभ ग्यानी हत अभिमानी, पर नहिं भावै कोय ।
अनंत सिंधू अनुभव पूरन, कालातित भयि सोय ।

(८०)

सो येक ग्यानी चतुर सुजानी टार्यो है अभिमान ।
मानत भवमो, आतम सुगमो, उगमो नीज निधान ।
घट घट माहीं अलख गुसांयीं कबहुं नहीं हयरान ।
मान गुमानी नहिं मनमानी मानी गुनगति रान ।
सहज मुद्रा जोग समुद्रा, कीटक ब्रह्म समान ।
भेद भावना जिनकू सपना, माहीं नहिं तिल जान ।
अनंत बंदी उनके फंदीं बलिहारी अवसान ।

(८१)

बनि किरपा जिनपर तोरी, सोही सोहत मान अवोरी ।
पतित उधारा अमित उदारा, सूद रहो मति मोरी ।
भव उर हारी अभिमतिकारी, मोह बुखारी थोरी ।
अनंत आगम बसंत संगम, जंगम बुद्धि चकोरी ।

(८२)

कौन हरी हरिबिन भव वाधा, बिजय करी मति निज परकासा ।
अबिनासा भ्रम तुम पुरुषोत्तम मांगत निज पग बासा ।
आस पुरन कर दास करन भर, अजर सुभाव तमासा ।
निरमल नित्यानंत समीत्या करि जी पूरन आसा ।

---

१. उनका काम ही राम रटना है ।
२. भीतर-बाहर राम का भाव ही खेलता है, नाचता है ।
३. और ।

(८३)

सुख बरन न जाय कमाय सम, गमाय आगम धाय।
नाम परताप काम हर माप आप आपमों धाय।
सो अनुभव प्रेमारथ हरि भवभाव सुबोध उपाय।
जनम जनम के सुगम उगमके नीगम भाव कमाव।
जागत जोगी निजसुख भोगी, त्रिविध ताप बिसराय।
जमकी बाजी जीत जियो जी जीय जगावत न्याय।
अनंत आतम अलख विरामा भगती बोध कमाय।

(८४)

सुखदायक प्रभु के गुन गाय, रैन दान कर धाय।
जा भव माहीं आन उपायीं सबहि अखारथ जाय।
काम खलादिक काल हयरानी जानी नाहक जाय।
अनंत संगम मानव गेहीं साधन भाव उपाय।

(८५)

गोकुल की सब कीसन लोभी, गोप लुगाई मोहभरी।
छोरी छोरी मिलके गोरी जोरित जोरी प्रेमजरी।
बिनघोरी मति दीन रैन सति गावत लाला स्थीर चरी।
तदरूप मानस मानत बस रस लै लाभत लाभकरी।
गुजरी जमुना के तट कान्हा, उजरी अजरी बात बरी।
अनंत संती शांती कांती प्रांती स्वातम खोज परी।
परिहार हरी संसृति माहीं गायी सदाचिद गीतचरी।

(८६)

समज मना मतलब अपना राम भजन कर सार मिलावौ नाहक जग सपना।
काल गति को गम नहि यारो छोरो छोरपना।
मोह लोभ मद अभिमान मति अविचार तपना।
कौन न तोरी तुम, नहि, किन को सब घट येकपना।
ब्रह्मा पिंपलि स्थावर जंगम मांहि हरी जपना।
मानव काया, आतम छाया, पाया भाग घना।
अनंत शांती अनुभव प्रेमा कारन मन अपना।

(८७)

देख नजर से निज निरबान त्यज रे मन हयरान।
सब है माया बादल छाया शास्तर बेद पुरान।
संतत संपत, तन, जिनगानी[1] गून मता अवसान।
काम बुरवारी[2], सब परिहारी, गावौ, श्री भगवान।
अनंत शांती परम प्रभाती संत सुबोधित मान।

---

१. जिंदगानी। २. बुरे।

(८८)

परम पदी मति मान मनो का भरम नहि गति भाव जगो का ।
सब ही देखे राग सुहावे, नीगम पनि नित तँहा नहि धोका ।
घट घट माही सदचिद सोही करम जो भी क्रम भोग गुनोका ।
अनंत संती बसंत पंगती अमर कला घर आतम लोका ।

(८९)

कोइ बिरला बिर बलधारी समर जगावैं गिरवानी ।
लाखमो बाबा कोटी मो भाव जिनोका सब मानी ।
आदी व्याधी ताप अबादी अनुभव साछ्रप कर जानी ।
शांती सुशीला परा अवनी अमलान न की मृदुबानी ।
राजी सबसे सगुन समाजी साजी कारज कर मानी ।
ना जित हारी भगत मुरारी हारि तमा कृति अभिमानी ।
पडरी गुजरी जठरी पगरी बिघरी आशा भवमानी ।
अनंत बिश्रम सत गुरु भजनी बिजनी हरिजे हयरानी ।

(९०)

नहि वैसो देह बनेगो नेह धरो हरि को रे ।
काम कु त्यज दै आतम चीन्हो समजावौ मनमनको रे ।
मोह जाल मो नजर न आवै जगजीवन जिय को रे ।
अनंन माने संत समागम पूरन सिंधू सम को रे ।

(९१)

एक दंत गूनवंत संत संग जाको,
सदयमती उदितकाल, भयउं भोर, अजित काल ।
ठौर हन्यों, मोह जाल, नय रसाल बांको ।
जनन सुफल काज किन्हो, अमर भाव छोड़ दिन्हो ।
जीव, शीव खोज लिन्हो, लाभ घनो ताको ।
अंत रंग ढंग बीन, संग भयउ भंग हीन ।
अनंत क्रम सहज लीन, लिखत गून लाखो ।

(९२)

गन राजा हे गूननाथा, निज सुख परमारथ वेदांता ।
बिघन विमोचक बुद्धि प्रबोधित, निजभावे गुन गाता ।
निरगुन, सगुनन, सत प्रशांता, आतमनय एकांता ।
अनंत, भगती, सहजपनो की, जगवावौ सिद्धांता ।

(६३)

कीजो किरपा दिन के प्रतिपाल जय जय देव गुपाल।
अखंड हिरदे में मोरे जी बैठ रहो किरपाल।
जन के मारे मन नहि व्यापो व्यापो आतम भूपाल।
अनंत सहजो की है भावै, कुमत त्यजि जौ पाल।

(६४)

तिरबेनी को असनान करौ, भव तनमल सबही निकरो।
सतगुरु किरपा निजभोगावति स्वातमपद बोध झर्यो।
शांति जमुना निरमल गहिरी, जामो हरि कूद पर्यो।
प्रणव प्रभाती आतम तुर्या सरसति संग लह्यो।
अनंत माहीं संगम अवनी सतचित भाव भर्यो।

(६५)

मैं हूं दासी अविनासी सद्पगमांही निजपग बासी।
अर्थ अनर्था जानत नाहीं अब मति नहिं तन फांसी।
झूठ खटो जगमान अमानीं भावै भव ऊदासी।
शत्रु मित्र नहिं पात्र प्रियार्थी अति प्रभु विलासी।

(६६)

तन सुद सबही बुध गम हरि है साजन भावो निर्मल सूगम।
रैन दीन मो एक अनेकी अनंत शांती मोचक विभ्रम।

(६७)

करिजो अपनो सुफल बिचार त्यज भव रजत बिकार।
घट घट सांहीं अलख गुसांई भाखौ निज हित सार।
सहज प्रभावै समता भावै छांड चलो अविचार।
ज्ञानाज्ञान कि गठरी बांधो व्हांमो[1] नहिं निरधार।
संगत सज्जन कर हरि गावौ उतरो रे भवपार।
अनंत शयनी स्वात्म निधी जा पग मिलसी अबिकार।

(६८)

जगमो मौजी रंग रंगेला, खेलत माधव आपि अकेला।
समता शांती गरभ्र न माला, स्वातम चंदन चर्चित भाला।
सुगंध सुमनें तुलसिकु माला, सब सितलाई बनिहुं गुपाला।
गोकुल माहीं अनंत बाबा, मति जमुना के तिर प्रतिपाला।

---

१. उसमें।

(६६)

भवती मो नहिं कळुसार समज मन ।
जंजार भयो निज कारन पावत दुर्गम अपनो पार ।
कोहि जोग में कोहि भोग में गुनरजनी अंधियार ।
जा जुगमाहीं नाम प्रवाहीं, लाभै निज सुख सार ।
अभिमति जिनकी दुबिधा मन की तेथ नहीं निरधार ।
सदचित सुखधन बरसत बानी सज्जन भाव विचार ।
अनंत सहजीं सत संगतमों रमरहियो अविकार ।

तुकाराम बुआ के पद

साषी*

(१)

काफर सोही आपण बुझे आला दुनीयां भर ।
कहे तुका तुम्हें सुन रे भाई हीरीदा जीन्होका कठोर ॥

(२)

भीस्त[1] न पावे मालसी पढीया लोक रीझाये ।
नीचा जगमें कमतरीण सो ही सो फल षाये ॥

(३)

तुका दास राम का मनमे येक ही भाव ।
तो न पालटु अब ही यो तन ज्याव ॥

(४)

तुका रामसुं चीत बांध राषु तैसा आपणी हात ।
धेनु बछरा छोर ज्याव प्रेम न सुटे सात ॥

(५)

चीतसुं चीत जब मीले तब तन थंडा होये ।
तुका मीलना जीन्हंसु यैसा वीरला कोये ॥

(६)

तुका बस्तर[2] बीच्यारा क्या करे रे ज्याको चीत भगवा (न) होये ।
भीतर मैला कैउं मीटे जो परे उपर धोये ॥

(७)

चीत मिले तो सब मिले नहीं तो फोकट संग
पाणी पाथर येक ही ठोर कोरन भीगे अंग ॥

---

*'तुकाराम बोवांची अस्सल गाथा' (श्री भावे) हे संकलित

१. बहिश्त । २. वस्त्र ।

(८)

तुका संग तीन्हंसु करीये जीनथें सुष दुनाये
दुर्जन तेरा मुष काला थीता प्रेम घटाय ॥

(९)

तुका मीलना तो भला मनसु मन मील जाये
उपर उपर माटी घसणी नेन्ह की कोण बराई ॥

(१०)

तुका जग भुलारे कहया[1] न माने कोये
हात परे जम काल के तब मारत फोरे डोये ॥

(११)

तुका कुटुब छोरे लरके जोरू सीर मुडाये
जबथें ईछा नहीं मुई तब तु कीया काये ॥

(१२)

तुका ईछा मीट गई तो काहा करे जट[2] षाक ।
मथीया गोला डार दीया तो नही मीलें फीर ताक ॥

(१३)

द्रीद मेरे सांईयां के तुका चलावे पास
सुरा सोही लडे हमसुं छोडे तन की आस ॥

(१४)

राम राम कह रे मन औरणसुं नंही काज ।
बहुत उतारे पार आधे[3] रष तुका की लाज ॥

(१५)

तुका राम बहुत मीठा रे भर राषु शेरीर ।
तनकी करुं नाव ही उतारुं पैल तीर ॥

(१६)

संतन पन्हयां ले षड़ा रहुगा कुर द्वार ।
चेलते पीछें हुं फिरुं रज उडते लेउ सीर ॥

---

१. कहना । २. जटा । . पहले ।

(१७)

हरीसुं मील देष येक ही बेरे ।
पाछे फिर तु नावे[1] घर ॥धृ०॥
मात सुनो दुती आवे मनावन ।
जाया करीती भर जोबन ॥
हरीसु मोही कहीया न ज्याये ।
तब तु बुझे आंगों पाये ॥
देष ही भावा कछु पकडी हात ।
मीलाई तुका प्रभु सात[2] ॥

(१८)

क्या कहुं नही बुझत लोका
ली ज्यावे जम मारत धका ॥धृ॥
क्या जीवने की पकड़ी आसा
हातों लीया नहीं तेरा घासा ॥
कीसे दीवाने कहता मेरा ।
छुटे जावे तन तुं सब च्या नेरा ।
कहे तुका तु भया दीवाना ।
आपना बीच्यार कर ले जना ॥

(१९)

कब मरुं पाउं चेरन तुम्हारे ।
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे ॥धृ॥
जेग डरे ज्याकु सो मोही मीठा ।
मीठा डर अंनदमाही पैठा ।
भला पांउं जनम ईन्हं बेरे ।
बस माया के अब संग फेरे ।
कहे तुका धन मान ही दारा ।
वोही लीये गुडलीये पसारा ।

(२०)

क्या गांउ कोण सुननवाला
देषु तो सब ही जग भुला ॥ धृ ॥
षुलें अपणे राम ही सात ।
जैसी तैसी कर ही मात ।

---

१. न+आवे=नहीं आयेगा । २. साथ ।

कांह ती[1] मधुर बानी ।
रीझये जेग यैसी बौरानी ।
गीरधरलाल तो भाव का भुका ।
राग कला नहि जाणत तुका ॥

(२१)

दास पाछे दौरे राम ।
सोवे षडा आपे मुकाम ॥ ध्रु ॥
प्रेम रसडी बांधी गलें ।
षैंच ज्यलें उधर ।
आपणे जाणसुं भुल न देवे ।
कर ही धर आध्यें बाट बतावे ।
तुका प्रभु दीनदयाल ।
वारी रे तुज पर हुं गोपाल ॥

(२२)

यैसा कर घर आवे राम ।
यौर धदा सब छोर ही काम ॥धृ॥
ईतने गोते काहे षाता ।
जब तु आपन भूल न होता ।
अंतर ज्यामी जाणत साच्या ।
मनका यक डंड पर वाच्या ।
तुका प्रभु देस वीदेस ।
भरीया षाली नहीं लेंश ।

(२३)

मेरे राम को नाम ज्यो लेंवे बारेबार ।
त्याके पाउं मेरे तनके पैज्यार ॥धृ॥
हसते षेलते च्यलेते बाट ।
षाणा षाते सोवते षाट ।
जातनसुं मुजे कछु नही प्यार ।
असता की नही हीदु धेड चंभार ।
ज्याका चीत लगा मेर राम को नांम ।
कहे तुका मेरा चीत लागा त्याके पांउं ॥

---

१. ती = वह ।

(२४)

आप तरे त्याकी कोण बराई ।
औरणकुं भलो नाव धराई ॥धृ॥
काहे भुमी येतना भार राषे ।
दुभत धेनु नहीं दुध चाषे ।
बरसत मेघ फलत हे बीरषा ।
कोण काम अपणी उन्होती रीषा ।
काहे चन्दा सुरीज षावे फेरा[1] ।
षीन येक बैठ नहीं नही पावत घेरा ।
काहे परीस कंचन करे धातु ।
नही मोल तुटे[2] नही पावत धातु ॥
कहे तुका उपकार ही काज ।
सब ही कर रही या रघुराज ॥

(२५)

जग चले उस बाट कोण जाये ।
नही समजत फीरे तो ही गोदे[3] षाये ॥ध्रु०॥
नही येक दो सकल संवंसार[4] ।
जो बुझे सो अगला स्वार ।
उपर स्वार बैठे त्रुस्णा पीठ ।
नही बांचें कोई जावे लूट ।
देष ही डर फीर बैठा तुका
जोवत मारग राम ही येका ॥

(२६)

भले रे भाई जीन्हो कीया चीज
आछा नहीं मीलत बीछ ॥धृ॥
फीरत फीरत पाया सार ।
मीटत लोले धन की नार ।
तीरथ बरत फीर पाया जोग ।
नही तळमळ[5] तुटती भवरोग ॥
कहे तुका मैं ताको दास ।
नही सीर भार चलावे पास ॥

---

१. चक्कर । २. टूटे । ३. गोते । ४. संसार । ५. व्याकुलता ।

(२७)

लाल कबली ऊढे पेनाये ।
मोसुं हरीशे कैसे बनाये ॥ध्रु०॥
काहे सखी तुम्हें करोती सोर ।
हीरीदा हरीका कठीरा कठोर ।
नहीं कीरीया सरूम कछु लाजे ।
अउ सुनांउ बहुत हे भाजे ।
और नाम रूप नही गोवरीया
तुका प्रभु माखन खैया ॥

(२८)

राम कहो जीवना फल सो ही ।
हरी भजनसुं बीलंब न पाई ॥धृ॥
कवरा का मंदीर कवरा की झोंपरी ।
येक रामबीन सब ही फुकरी ।
कवरा की काया कवरा की माया ।
येक रामबीनं सर्ब ही जाया ॥
कहे तुका सब ही चलन्हारा ।
येक रामबीन नहीं वासरा ॥

(२९)

काहे भुला धन संपती घोरे ।
रामनाम सुनं गाउ हो बापु रे ॥धृ॥
राजे लोक सब कहे तु आपरा ।
जब काल नही पाया ठारा ।
माया मीथ्या मनका सब धंदा ।
तज अभीमान भज गोवींदा ।
राना रंक डोगर की राई ।
कहे तुका करे ईलाही ॥

(३०)

छोडे धन मंदिर बन बसाय ॥
मांगत टुका घर घर खाया ॥
तीनसों हम करवों सलाम ।
ज्यामुख बैठा राजाराम ॥
तुलसीमाला का बभूत चढ़ावे ।
हरजी के गुन निर्मल गावे ॥
कहे तुका जो सांई हमारा
हिरनकश्यप जिन्हे मारहि डारा ॥

(३१)

मंत्र तंत्र नहिं मानत साषी ।
प्रेमभाव नहिं अंतर राषी ॥
राम कहे त्याके पग हूं लागूं ।
देषत कपट अभिमान दुर भागूं ॥
अधिक जाती कुल नहिं जानूं ।
जाने नारायन सो प्रानी मानूं ॥
कहे तुका जीव तन धन डारू वारी ।
राम उपासिहुं बलिहारी ॥

(३२)

चुरा चुराकर माखन षाया ।
गौलनी का नंदकुमर कन्हैया ॥
काहे बराई[1] दिषावत मोही ।
जानतहुं प्रभुपना ते राखो भाई ॥
और मात सुन उषलसुं गला ।
बांध लिया तूं आपना गोपाला ॥
फिरत बन बन गाऊं धरावत ।
कहे तुकया बंधु लकरी ले हात ॥

---

१. बढ़ाई ।

(३३)

हरिसूं मिल ले एक ही बेर।
पाछें तूं फेर नावे घर ॥
मात सुनों दुति आवे मनावन।
जाया करती भर जीवन।
हरिसुख मोही कहिया न जाय।
तब तूं बुझे आगो पाय ॥
देषहि भाव कछु पकरी हात
मिलाई तुका प्रभु सात ॥

अस्सल गाथा के अतिरिक्त पद

(१)

संवाल यारा उपर तलें दोन्हों मार की चोट।

नजर करे सोही राखे पश्वा जावे छुट प्यार खुदाई प्यार

खुदाई प्यार खुदाई।

प्यार खुदाई रे बाबा जिकिर खुदाई उडे कुदे ढुंग नचावे

आगल भुलत प्यार।

लडबड खडबड कांहे कांख चलावत भार कहे तुका

सुनो एका हम जिन्होंके सात।

मिलावे तो उसे देना तोहि चढावे हात॥

(२)

सब संबाल म्याने लौडे खडा केऊं गुंग।

मदिरथी माता हुवा भुलि पाडी भंग, आपसकुं संबाल[1] आपसकुं संबाल

मुंढे खुब राख ताल।

मुशि[2] वोहि बोला नहीं तो करुंगा हाल[3] आवल का तो पीछे नहीं मुदल

बिसर जाय।

फिरते नहीं लाज रेंडी गद्धी गोते खाय जिन्हो खातिर इतना होता सो

नहीं दुजे बेकाम।

उचा जोरो लिया तुंबा तुंबा बुरा काम निकल जावे चिकल जोरा

मुंढे दिलदारी।

जवानी को छोड दे बात फिर एकतारी कहे तुका पिसल रुका

मेरे को तो दान देख

पक्कड धका..............[4] मार चलाऊं आलेख॥

---

१. सँभाल। २. मुँह से। ३. दुर्दशा। ४. यहाँ दो असंस्कारी शब्द छोड़ दिये गये हैं।

(३)

नजर करे सोहि जिके बाबा दुरथी तमासा देख ।
लकडी फांसा लेकर बैठा आगले ठंकण भेख काहे भुला एक देखत ।
आंखो मारत डांगो बाजार दमरी चमरी जो नर भुला ।
सोत आघो हिलत खाय नहि बुलावत किसे बाबा आप हिमत जाय ।
कहे तुका उस असा के संग फिर फिर गोते खाय ।

(४)

अल्ला करे सो होय बाबा करतार का सिरताज ।
गाऊ बछरे तिस चलावे यारो बाघो न सात ख्याल मेरा साहेब का
बाबा हुवा करतार ।
व्हात आधे चढे पीठ आपे हुवा असिवार जिकिर करो अल्ला की
बाबा सबल्या अदर मेस ।
कहे तुका जो नर बुझे सोहि भया दरवेस ॥

(५)

अल्ला देवे अल्ला दिलावे ।
अल्ला मारे अल्ला खिलावे ।
अल्ला बिगर नहीं कोय ।
अल्ला करे सोहि होय मर्द होय वो खडा फीर
नामर्दकुं नहीं धीर ।
आपने दिलकुं करना खुसी ।
तीन दाम की क्या खुमासी सब रसों का किया मार ।
भजनगांली एकहि सार ।
इमान तो सबही सखा ।
थोडी तोभी लेकर ज्या जिन्हो पास नीत[1] सोय ।
वोही बसकर ते रोवे ।
सांतो पांचो मार लगावे ।
उतार सो पीछे खावे सब ज्वानी निकल जावे ।
पीछे गधड़ी मट्टी खावे ।
गांव ढाल सो क्या लेवे ।
हगवनी भरी नहीं धोवे मेरी दारू जिन्हें खाया ।
दिदार दरगां सोहि पाया ।
तल्हे मुँढी घाल जावे ।

---

१. नित्य ।

बिगारी सोवे क्या लेवे बझार का बुझे भाव।
वोहि पुसत[1] आवे ठाव।
फुकट बादु कहे तुका।
लेवे सोहि लेवो सखा॥

(६)

आवल्ल[2] नाम आल्ला बडा लेते भुल न जाये।
इलाम त्याकाल जमु परताहि तुंब बजाये।
अल्ला एक तु नबी एक तु धृ काटतें सिर पांवों हाते गहीं जीव डराये।
आगले देखे पिछले बुझे।
आवे हुजुर आय सब सवरी नचाव म्याने खडा आपनी सात।
हात पाव रखते जबाव नहीं आगली बात सुनो भाई बजार नहीं
सब ही नर चलावे।
नन्हा बडा नहीं कोये एक ठोर मिलावे एक तरि नहीं प्यार
जीवतन की आस।
कहे तुका सोहि मुंढा राख लिये पाये न पास॥

(७)

तम भज्याय ते बुरा जिकीर तैंकरे।
सीर काटे उर कूटे ताहां झडकरे ताहां एक तुही ताहां एक तुही।
ताहां एक तु ही रे बाबा हम तुम नहीं दिदार देखो भले
नहीं किसे पछाने कोय।
सच्चा नहीं पकड सके झुटा झुटे रोय किसे कहे मेरा किन्हे सती लिया भास।
नहीं मेलो मिले जीवना झूठा किया नास सुनो भाई
कैसा तोही होय तैसा होय।
बाट खाना अल्ला कहना एकवारा तो है भला लिया भेक
मुंडे अपना नफा देख।
कहे तुका सोही सखा हाक अल्ला एक॥

---

१. पूछते हुए। २. प्रथम।

श्रीसमर्थ रामदास के पद

(१)

जित देखो उत रामहिं रामा
जित देखो उत पूरण कामा ॥ध्रु०॥
तृण तरुवर सातो सागर
जित देखो उत मोहन नागर ॥१॥
जल थल काष्ठ पषाण[1] अकाशा।
चंद्र सुरज नच[2] तेज प्रकाशा ॥२॥
मोरे मन मानस राम भजो रे
रामदास प्रभु ऐसा करो रे ॥३॥

(२)

(राग सिंध काफी ; ताल दादरा)

राम न जाने नर तो क्या जी ॥ध्रु॥
धन दौलत सब माल खजीना।
और मुलुख[3] सर किया तो क्या जी ॥१॥
गोकुल मथुरा मधुवन द्वारका।
और अयोध्या कर आया तो क्या जी ॥२॥
गंगा गोमति रेवा तापी।
और बनारस न्हाया[4] तो क्या जी ॥३॥
दर्वेश शवड़ा जंगम जोगी।
और कानफाड़ी[5] हुआ तो क्या जी ॥४॥
आत्म ज्ञान की खबर न जाने।
और ध्यानन[6] बक हुआ तो क्या जी ॥५॥
वेद पुरान की चर्चा घनी है।
और शास्तर पढ़ आया तो क्या जी ॥६॥
रामदास प्रभु, आत्म रघूविर[7]।
इस नयन नहिं छाया तो क्या जी ॥७॥

---

१. पत्थर। २. नाचते हैं। ३. मुल्क। ४. नहाया। ५. कनफटा योगी।
६. ध्यान में (बक के समान ध्यानी हुआ तो क्या हुआ?)। ७. रघुवीर।

(३)

(राग—काफी, ताल—दीप चंदी)

रे भाई गैबी[१] मरद सो न्यारे
वे ही अल्ला मिया के प्यारे ॥ ध्रु० ॥
देहरा तुटेगा, मशीदी फुटेगा
लुटेगा सब इय सो
लुटत नहीं, फुटत नहीं
गैबी सो कैसो रे भाई ॥ १ ॥
हिंदु मुसलमान महज्यब[२] चले
येक सरजिनहारा[३]
साहब अलम[४] कुं चलावे
सो अलम थी[५] न्यारा ॥ २ ॥
अवल एक आखीर येक
दोऊ नहीं रे भाई
हम भी जायेंगे
तुम भी जायेंगे
हक सो इलाही रे ॥ ३ ॥

(४)

घट घट साहिया रे अजब अलामिया रे ॥ ध्रु० ॥
ये हिन्दु मुसलमाना[६] दोनों चलावे, पछाने[७] सो भावे ॥ १ ॥
सुरिजन हारा बड़ा करता है, कोई एक जाने पार ॥ २ ॥
अवल[८] अखैर[९] समझ दिवाने, अकलमंद पछाने ॥ ३ ॥
गरीबन काज बड़ा धनी है, बंदे कमीन कमीन ॥ ४ ॥

(५)

रघुनाथ के दरबार घमडी[१०] दे गाजतु है ॥ ध्रु० ॥
तथ्थै थै थै पखबाज बाजतु है,
सुश्वर मुनिवर देखन आवतु हैं ॥ १ ॥
नारद किन्नर सुरवर गावतु है
शंख भेरि सुनिके राम थरकतु है ॥ २ ॥
लाल धुसर तबके उड़ावतु है
रामदास तहाँ बलि जावत[११] है ॥ ३ ॥

---

१. परोक्षवादी। २. मजहब। ३. सर्जनहारा (सृष्टि-कर्त्ता)। ४. दुनिया। ५. से। ६. मुसलमान का बहुवचन मुसलमाना (दक्खिनी हिन्दी), इसी प्रकार बात का बहुवचन बातां। ७. पहचान (दक्खिनी हिन्दी)। ८. अव्वल। ९. आखिर। १०. नगाड़ा। ११. यहाँ 'जावतु' होना चाहिए; क्योंकि शेष सभी चरणों में 'तु' है।
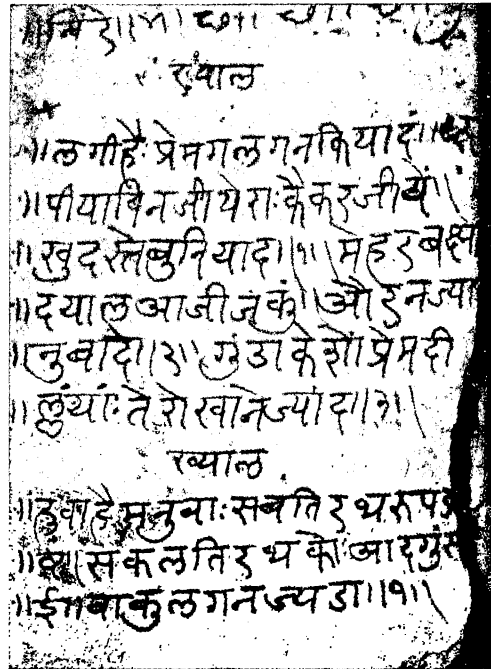
विदर्भ-संत गुंडाकेशो के हस्ताक्षरों में: उन्हीं का 'ख्याल'
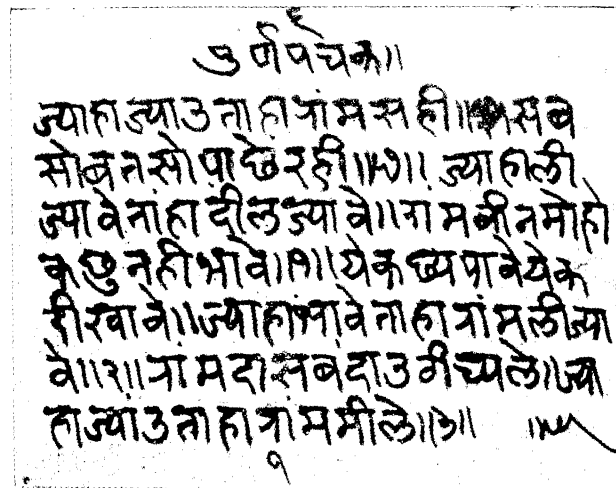
समर्थ रामदास का पद
(ढाई सौ वर्ष प्राचीन हस्तलिखित पोथी से)

बहिणा बाई के पद

(१)

गौलणी

देबकी कहे सुन बात भतारो
सुनि के आवे कंस रे
जानि मुनि में लेकर हातो ।
श्रीधर नहीं जसवदा पास रे ॥ १ ॥
शल के जावोजी तुम बसुदेवा,
आयेंगे कंस बिखार ।
डखबिखें प्राण लेवें सबके
कहा करो बिचार ॥ २ ॥
अच्छी रात भयी है,
जमुना आये मेघ तुसार ।
पाव में बेरी कुलपो[1] कैसे
जाना नंद के बार ॥ ३ ॥
बली बली बारो राखते हैं,
अब कहा करे अविनाश रे ॥ ४ ॥
अपने कर हरि लेकर देवकी देत
भतारो[2] हात रे !
बेरी तब ही तूट परी है,
बंधन तूटो पास रे ॥ ५ ॥
बहिणी कहे जीस कृपा
उस कहा करे जम पास रे
बेरी कुलपो आपही खोलत जावत है अविनाश रे ॥ ६ ॥

---

१. ताला भी । २. भर्तार ।

(२)

ये गोकुल चल हो कहत मुरारी
मेघ तुसार निवारे फनिधर सेवा करे बलिहारी ॥ १ ॥
बसुवा अपने कर दीन्हो पालख योंही कीन्हो
जमुना के तट आयके देखें पूरन निरंजनो ॥ २ ॥
पूरन रूप यो देखे जमुना जानीये सबही भाव
दोही ठोर भई जमुना नीर तब जानत यो हरि भाव ॥ ३ ॥
जैसा परवत वैसो नीर हवो जानी के हास,
पाव लागे जनु बहे जायगे सब दोस ॥४॥
जिस चरन को तीरथ शंकर माथा रखीया नीर
वो चरन अब प्राप्त भये हो ये जान उधार ॥५॥
बहिनी कहे जिसकू हरि भावे, उसकू काल ही धोके
बसुदेवा कर आप ही मुरारी काहे कुं संकट आवे ॥६॥

(३)

बसुदेवा तब बारन आवें सोवें गोकुल नंद
दरवाजा आप खोलत है रे आवत गोविंद ॥१॥
जीस दरवाजें लोहों के सांकल कुलपो तोड़ रखाये,
सब जन सेवक सोये तब ही वसुदेव घर जाये ॥२॥
तब ये माया प्रगट भई है जसोदा सुत भई है,
औरे सोवे माया ठोर धरी है ॥३॥
जसोदा कूं जहाँ निद्रा लगी है जाने के गोकुल नाथ,
आवे घर के वासुदेवा तांहां माया लीनी हात ॥४॥
धांकत है मन कांपत है, तन फेर चले मथुरा कूं
निकसे तब या देखत सब कुलुपो होवत वाकूं ॥५॥
बहिनी कहे तव माया लेकर जाया फेर मथुरा
देवकी कर लेकर दीन्ही दरवाजे रखे फेरा ॥६॥

(४)

बसुदेव जब देखें हीकूं चार भुजा श्री मुरारी
कहत है शाम तुमारो दरशन वांच्छित रात दिन सारी ॥१॥
तुमकूं वचन सुनावें दारो सेवक सोवा
तुम रूप छोड़ो देवा हम से कंस कु है दावा ॥२॥
अब ही सुनो गोपाल भयो अब मारत है कंस,
सबही लरके मारत जावो वो रोवत है हरि पास ॥३॥

---

१. यमुना।

चार भुजा तुमको गोविंद चक्र गदा और शंख,
जबहि कौस्तुभ देखत तब यो मारेगा छोड़ो भेख ॥४॥
जय कृष्ण कृपाल स्वामी बचन सुनो जी हमारा
उस रूपो जब देखे कंस प्राणसु लेवे तेरा ॥५॥
बहिनी कहे हरि प्रगट भयो है, उदर में कारण कौन
पुण्य की बेला प्रगट भई है, वोही कारण जान ॥६॥

(५)

जय कृष्ण कृपाल भयो जी
नहीं कीये जप तप दान
नै ग्रही ब्रह्मन पूजन
कीया भूमि नहि गौदान ॥१॥
तुम क्यौं प्रगट भयो कहा जानो,
अर्चन वंदन नहि कछु पायो,
हाय अचंबा मान ॥२॥
अन्न दीयो तब या
रसि नहि देवन पूजो भाव
तीरथ यात्रा कछु नहीं जोड़ी
कहा भयो नवलाव ॥३॥
वन धारी और निरबाना है
पत्र लिखावत जान,
नंगाह पांव, नंगा देहहि,
बन बन जावत रान ॥४॥
परबत मांहे जोगी होकर
छोड़ दियो संसार
धूमरपान और पंचाग्नी साधन
बैठे जल की धार ॥५॥
बहिनी कहे कहा जलम[1] का
संचित प्राप्त भये इस बेला
चार भुजा हरि मुज को दिखाया
ये ही कहो घन नीला ॥६॥

(६)

सुनो कहत है शाम सुजानो
पुण्य बिना नहीं कोई
जिसके पल्ले जप तप दान है
पावै दरसन वो ही ॥१॥

१. जन्म । २. श्याम ।

तुम सब बात सुनो जी
चित्त कू ठोर धरो जी
हरि के आये, देये ही बाण कहो जी ॥२॥
फूल बिना, फल जल बिना
अकुर बिन पुरुष नहीं छाया
रवि बिनु कमलिनी, रवि बिन तेज
अगी ताहा सब आया ॥३॥
तरु तहा बिन बिज[1] तहा
तरू है दिपके पास प्रकास
नर ताहीं नारी फुल ताहीं
फल है पुण्य ताहा अविनास ॥४॥
बहिनी कहे जिसकु हरि आबे
केही है पुण्य की रास
शाती क्षमा उस घर मे सोवे
सबही सपत दास ॥५॥

(७)

ये गोविंद प्राप्त भयो कहा काज
व्रत नहि जानत तप नहि जानत
कारागार मे बिराज ॥१॥
पूरब जनम तप करत है,
तब वरद मिलो वनमाली
मेरे पेट मे प्रगटो निरगुन
योही मागत बाली ॥२॥
बहुत ही निकट माड़ी
तब हरि करूना कर है जान
तीन जनम मे मेरे उदर में
आऊ बर दियो उस रात ॥३॥
उस तप के लीये उदरकू आये जन
वोहि कृष्ण भयो है येही तप के कारन ॥४॥
तपव्रत दान बिन बिहिन
सेवा कृष्ण न आवे सग
सग बिन नहि मुक्ति जिवाकू
ये ही कहत श्रीरग ॥ ५ ॥

---

१. बीज ।

बहिनी कहे उस वसुदेव
देवकी कु देव मुक्ति
वयसों तप बिन प्राप्त नही वो साधू की संगती ॥ ६ ॥

(८)

ये अजब बात सुनाई भाई,
गरुड को पंख हिरावे कागा
लक्ष्मी चरन चुराई ॥ १ ॥
ये सूरज को बींब अंधोर
सोवे चंदर कूं आग जलावे
राहु के गिहो भोगी कहा रे
अमृत ले मर जावे ॥ २ ॥
कुबेर सोवे धन के आस
हनुमान जोरु मंगावें
वैसे सब ही झुटा है
निंदा की बात सुनावे ॥ ३ ॥
समीदर तान्हो[1] पीयत कैसो
साधू मांगत दान
बहिनी कहे जन निंदक है रे
बाको सांच न मान ॥ ४ ॥

(९)

सब ब्रज नारी सुनो
हरि जनमों नंद जसोदा पेट।
चलवो चल उस हरि कुं देखे
मिल निकलत है घाट ॥ १ ॥
नारी आरती कर ले गावत
नाम संग में लागा छेद
हलदिर तेल लीये कर माहे
मिलने चले गोविंद ॥२॥
अपने अपने घर तोरन
गुड़िया धरत है जनमें सुत
नंद को भाग कोइ न जाने
भेटी होवे अनंत ॥३॥

---

१. प्यासा।

घर घर गावत राग रागिनी
ठोर ठोरे भयी भार
वा मुख कहा कहूं
अपने मुख से आवे न जाने पार ॥४॥
व्रज जन नारी मंगल गावत
चिर लुटावे भार[1]
गौ धरत और सुन्ना
दान करत है बाट ही बाट ॥५॥
कुंकम केसर चुव्वा चंदन
फूल गुलाल की शोभा
देखत इंदर, फणीदंर महेंदर
गावत हैं सब रंभा ॥६॥
नाद न भेरी ताल ही
जब भट नांद ने अंबर गाजे,
नाना सुर बजावत
छंदे ढोल ढमामे बाजे ॥७॥
बहिनी कहे हरि जन्म को कहा कहूँ हरि जाने
छंद प्रबंध सुनावत नारी
देह भाव नहि जाने ॥८॥

(१०)

कंटक को मल्ल मर्द,
दौतन को सिर छेद
सुत तेरा नंद कृष्ण
तोही जानी हैं, गोपिन को प्राननाथ
भक्तन कू करे सनाथ
शास्तर की ऐसी बात
संत जानी है ॥१॥
धरम का रत्न आया,
पाप कू सब डार दिया
वोही सुत कृष्ण भया
बात ये सत्य मानी है ॥२॥
सुत मत कहो नन्द , ब्रम्ह सो ये ही गोविंद
बहिनी का भार प्रबंध, सत्य सुदाईये ॥३॥

---

१. सोना ।

(११)

जीस आस जोगी जग
जीस आस छोड़ भाग
जीस आस ले बैराग बनवास जात है ॥१॥

जीस आस पान खावे, जीस आस गंग जावे
जीस आस धरत सोवें
जप तप ही करतु है ॥२॥

जीस आस शिर मुंडे
जीस आस मुच्छ खंडे
जीस आस होते रंडे
जलमे वसतु है ॥३॥

वो ही सत्य जान नंद
प्रगट भया है गोविंद
पुण्य ही तेरा अगाध
बहिणी ये कहतु है ॥४॥

(१२)

जमुना के तट धेनु चरावत
गावत है गोपाल री
गीत प्रबंध हास्य विनोद
नाचत है श्री हरी ॥१॥

मैं येरी देखत मय
नंदलाल कांसे पीत वसन है झलाल
कानों में कुंडल देती ढाल
सिर पर मोर पिखा मोर दिखा नंदलाल ॥२॥

अबीर गुलाल सबके माथा
हार सुवास पिनाये
जाई जुई चंपन कोमल
चंदन चंपक लाये
छंद धीमा धीमा सुनावत है
हरि बंध गयो मेरो प्रान
बहिना कहे सब भूल गये
मेरा हरी सु लगा है मन ॥

(१३)

मरन सो हक रे है बाबा
मरन सो हक है ॥ध्रु०॥
काहे डरावत मोहे बाबा
उपजे सो मर जाये भाई
मरन धरन सा कोई बाबा ॥१॥
जनन मरन ये दोनों भाई
मोकले तन के साथ
मोती पुरे सो आपही मरेंगे
बदनामी झुठी बात ॥२॥
जैसा करना वैसा भरना
संचित ये ही प्रमान
तारन हार तो न्यारा है रे
हकीम वो रहिमान ॥३॥
बहिनी कहे वो अपनी बात
काहे करे डौर (गौर)
ग्यानी होवे तो समज लेवे
मरन करे आपे दूर ॥४॥

(१४)

सच्चा साहेब तूं येक मेरा
काहे मुजे फिकीर
महाल[1] मुलुख[2] परवा नही
क्या करूं पील पथीर ॥१॥
गोविंद चाकरी पकरी
पकरी पकरी तेरी ॥ध्रु०॥
साहेब तेरी जिकीर करते
माया परदा हुवा दूर
चारो दील भाई पीछे रहते हैं
बंदा हुजूर ॥२॥
मेरा भी पन सट कर
साहेब पकरे तेरे पाय
बहिनी कहे तुमसे गोविंद
तेरे पर बलि जाय ॥ ३ ॥

---

१. महल। २. मुल्क।

(१५)

वैसी रात बढ़ाई
सब जानो तुम भाई ॥ ध्रु० ॥

देव कहे सो कहा न होवे
सुन रे मूढ़ो अंध
लीला मनुख भई जीस
मणिका छूटा बंद ॥ १ ॥

रावन मार के विभीषण लंका
यह पाई राज्य कमाई
राक्षस कू अमराई दीयो
ये वैसे राम नवाई ॥२॥

पहरादों बिश्व समिंदर बुरना
परबत लोट दिया है।
आगी जलावे पिता उसका
सत्व से राम रखावे ॥३॥

पानी मांहें गजकू छोड़े
सावज मार न भाई
उसको रन्यो कुटनी मुक्तो
करता राम सो वोही ॥४॥

मिरा को बिख अमृत किया
फत्तर कू दूध पिलाया
स्वामी बिख चढ़े तब राम राम
ऐसो बीरद बढ़ाया ॥५॥

शनि को रूप लीया
राम राखो भक्त को सीस
ब्रह्मन सुदामा सुन्नो की नगरी
वैसे करे जगदीश ॥६॥

वैसे भगत बहुत रखे
तब कहा कहु जी बढ़ाई।
बहिनी कहे तुम भक्त कृपाल हो
जो करे सो सब होई ॥७॥

(१६)

जटा न कंथा सिंगी न शंख
अलख भेक हमारा बाबू[1]
झोली न पत्र कान में मुद्रा
गगन पर देख तारा ॥१॥

बाबा हमतो निरंजन वासी,
साधू संत योगी जान लो हम क्या जाने घरवासी ॥ध्रु०॥
माता न पिता बंधु न भगिनी
गव गोत ओ सब न्यारा
काया न माया रूप न रेखा
उलटा पंथ हमारा बाबा ॥२॥

धोती न पोथी जात न कुल
सहजी सहजी भेक पाया
अनुभवी पत्रि सी सिद्ध की खादी
उन नी ध्यान लगाया ॥३॥

बोध बल पर बैठा भाई
देखत है तिन्ह लोक
उर्ध्व नयन की उलटी पाती
जहां प्रकाश आनंद कोटी ॥४॥

भाव भगत मांगत भिक्षा
तेरा मोक्ष कीदर रहा दिखाई
बहिनी कहे मै दासी संतन की
तेरे पर बलि जावे ॥५॥

(१७)

दो दिन की दुनीया रे बाबा
दो दिन की है दुनीया ॥ध्रु०॥

ले अल्ला का नाम कूल धरो ध्यान
बंदे न होना गुंम
गाव रतन से ही सार
नई आवेगा दूज बार
वेगी करो हे फिकीर
करो अल्ला की जिकीर ॥१॥

---

१. यहाँ 'बाबा' होना चाहिए। बेहणाबाई के समय में 'बाबू' पैदा नहीं हुए थे।

करो अल्ला की फिकीर
तब मिलेगा गामील पीर
बहिणी कहे तुजे पुकार
कृष्ण नाम तमे हुसियार ॥२॥

(१८)

जय जय कृष्ण कृपाला
हो जी नहीं किया जप तप दान
जिस गृहीं बह्मन पूजन
नहि रे भूमि नहि गोदान ॥१॥

तुम भ्यौं प्रगट भयौ कहा जानो
अर्चन वंदन कछु पालो होय अचंबा मानो ॥२॥

अन्न दिया उसकू रसि
नहि रे देवत पूजो भाव
तीरथ यात्रा नहि कछु जोडी कहा भयो नवलाव ॥३॥

बनधारी और निरपानी है पत्र लिखावत जान
नंगेहि पाव नंगा देह ही बनबन धुंडत रान ॥४॥

परवतयां हैं जोगी होकर छोड दियो संसार ।
धूमर पाने पंचाग्नी साधन बैठे जल की धार ॥५॥
बहिणी कहे कहा जन्म को संचित प्राप्त भये इस बेला ।
चार भुजा हरि भुज को दिखाया येई कहो घठा नीला ॥

(१९)

नंदजी आसीस भार भट भाट को असीस है ।
चिरकाल सुत तेरो ।
सत्य जाण बात है ।
गज दासी घोडे ।
वस्त्र शस्त्र दान देत है ।
कृष्ण को प्रताप भार ।
बहिणी मूसे गात है ॥१॥

(२०)

जसोदा का पुण्य फलो ।
नंदजी तेरो भलो ।
कृष्णजी की आस डारो माया मोह नंद जी ॥१॥

यो ही.........ब्रह्म निर्गुणहि वाको नाम कृष्ण जी ।
स्वरूपधाम बैकुंठ को जाणजी ।।२।।
कुर्म नारसिंव्ह रूप ।
फरश वामन रूप ।
मत्स्य ही वराह रूप ।
योही कृष्ण सत्य जी ।।३।।
छोडा माया पूत वैसी यो सत्य हृषीकेशी ।
उसको दरसन दो जी
पाप जावे बहिणी का जी ।।४।।

केशव स्वामी के पद

(१)

लागी हो गोविंदा से पिरती ।[1]

हृदय कमल में जब तब देखूं, परम सुन्दर भरी श्याम की मूरती ॥ध्रु०॥

धन सुत संम्पति कछु नहि भावत

निशिदिन सुख रूप हरिगुण गावत ॥१॥

आदि पुरुष हरि नंद का सुत

निरखत नयरो डरे जमदुत ॥२॥

आनन्द घन मनमोहन श्याम

कहत केशव मोकुं मिलिया राम ॥३॥

(२)

आवो रे नंदा नंदन प्यारे ॥ध्रु०॥

तन धन ज्योबनं पति सुत संपति भावत नहि तुज बीन पियारे ॥१॥

आदि पुरुष तूं त्रिभुवन नायक, शुक सनकादिक मुनि को सांई ॥२॥

जनन मरण दुःख सखल निवारण, चरण कमल दल तेरो गुसांई ॥३॥

तुही मेरो माता तुही मेरो पिता, तुही मेरो भ्राता परम दयानिधी ॥४॥

केशव राज प्रभू तिहारे मिलन सुं सकल सुख की गति पाउंगी बीरधी ॥५॥

(३)

आज मेरे घर आयो गोविंद राज्या[2] ॥ध्रु०॥

श्याम सुन्दर कमलापति गिरिधर, बाजत धिमधिम नामको बाज्या ॥१॥

चंदन बिलेपित आंग सुहावत,

भाल कस्तुरीया मुकुट बिराजित ॥२॥

पीत पटधारी गोकुल बिहारी

मदन मुरती प्राणनाथ मुरारी ॥३॥

भव दुःख बारण कंस बिदारण

पतीत तारण केशव नारायण ॥४॥

---

१. प्रीति । २. राजा ।

(४)

राम सुमिरण करीय अभागी ।।ध्रु०।।
त्रिभुवन नाथ सीता पति राघव, हृदय कमल में धरीय अभागी ।।१।।
नवविध भजन गुरुमुख करीके, त्रिविध-ताप दुख हरीय अभागी ।।२।।
निशिदिन सुखधन राम चिंतन सु, अचल मोक्ष पद चढ़िय अभागी ।।३।।
काहे कु उपजीय काहे कु मरीय, काहे कु काल कुंडरीय अभागी ।।४।।
कहत केशव राम पूर्ण मंगल धाम, समज भवार्णव तरीय अभागी ।।५।।

(५)

ज्याहां[1] ज्याय तंहां माधो हय रे बाबा ।।ध्रु०।।
ज्यो सुरत सुमरत वांकी, सब घट भरिया सोही रे बाबा ।।१।।
धरित्री आकाश सदाहीं, पाताल आपही भरपुर रहीयो रे बाबा
खाली कठोर कहा कबहुं न देखो, देखत सब ज्यागा वोही रे बाबा
कसे[2] करीय अब कहां ज्याईय, अंतर्बाह्य महाराज रे बाबा
केशो प्रभुबिन पदारथ नहीं रे, सब ही भेष आपे धरियो रे बाबा ।।

(६)

राम-सुमीरन करना ही रे बाबा ।।ध्रु०।।
काम क्रोध मद मत्सर छांड़ के, यो भव सागर तरना रे बाबा ।।१।।
खीन खीन[3] पावन आयुष खरचत, साधु समागम धरना रे बाबा ।।२।।
गमना गमन निवारण हरिगुण, गावत वैंकुंठ-चरणा रे बाबा ।।३।।
ग्यान ध्यान सुं अंग मिल रहणा, मन में दयानिधि भरणा रे बाबा ।।४।
कहत केशव अब आवोगे मरणा, बिसरुं नको[4] रघुनाथ के चरणा रे बाबा ।।५।।

(७)

आज राम मेरो मन में भरो रे ।।
देह विदेह की सुध बिसरो रे, लोक लाज को काम सरो रे ।।ध्रु०।।
शाम सुंदर की रती मंकु[5] लागी, और कछु समजत नही रे ।।
आसन बासन सबही भुल गई, रुप निरखिते थकित रही रे ।।१।।
प्रेम नीर अखियाँ झरत, रोम फरकते बुंद ढरे रे ।।
मैं तो पिया को दर्शि मगन भई मन माने कोउ कैसे कहो रे ।।२।।
अष्ट भाव सुं गात्र गलित मेरो, नाथ जी ने चित्त हर लीनो रे ।।
केशव प्रभु सुं निकट मिल रही, जेल माही जैसे लवन गिरो रे ।।३।।

---

१. जहाँ । २. कैसे । ३. क्षण-क्षण । ४. भूलना नहीं (मराठी) । ५. मुझको ।

(८)

महाराज कोण लीला धरे हो ॥ध्रु०॥
अनंत ब्रह्मांड ज्याके उदर मों, सो सुख के कोण माहे परे हो ॥१॥
शेष बिरंची भजत है ज्याको, ज्या कारण मुनीनज्ञ फिरे हो ॥२॥
सो ठाकुर को मंतर छाकरे, देखि सदाशिव प्रेम भरे हो ॥३॥
ज्याकी माया जगत्र भुलाया, सो हरि आपे आजि भुले हो ॥४॥
केशव प्रभु की गत कोन जाने, अपने ख्याल में आप खेले हो ॥५॥

(९)

आज मिलो पितांबर पीर ॥ध्रु०॥
तुम ज्यात शरीर बिकल मेरो चित्त रहत नहीं क्षण एक थीर ॥१॥
तन मेरो जनमो मन भीमा तीर, हृदय मो धरीयो बिठल-पीर ॥२॥
केशव को प्रभु देखो शाम सुंदर धीर, नावे तो लेउगी करवत सीर ॥३॥

(१०)

हरिरस-प्याला ले लेउंगी मैं ॥
ज्यो मागे उसे भर देउंगी, निज मतवाली न होउंगी मैं ॥ध्रु०।
मदन गोपाल के गुण गाउंगी, कर बिन तालि बजाउंगी मैं ॥१॥
ब्रिंदावन कु चली जाउंगी, भक्त वछल रिझाउंगी मैं ॥२॥
बन माली सुंमन लाउंगी, गले बनमाला बाउंगी[1] मैं ॥३॥
केशव सांई की गति पाउंगी, पाउंगी फिर नाउंगी[2] मैं ॥४॥

(११)

मैं राम जपत हुँ माई री ॥ध्रु०॥
आसन मुद्रा बहुत चेन्हाई[3] के, चरण सुं पीरत लगाई री ॥१॥
पति सुत मित गृह सकल ही तजी के, सन्तन के घर आई री ॥२॥
तन धन ज्योबन कछु नहि भावत, भावत हरि सुखदायी री ॥३॥
कहत केशव कवि शाम सुन्दर-छबी, मती गती तहां मैं छपाई री ॥४॥

(१२)

मोहन के गुण गावति हुं मैं ॥ध्रु०॥
अति सुख सागर नागर मुरती, नीरख नीरख सुख पावति हुं मैं ॥१॥
सुमरण किरतन करती हुं धनी को, मन में ध्यान लगावति हुं मैं ॥२॥
केवल निरमल निरंजन के संग, अंतर रंग जे गावति हुं मैं ॥३॥
श्रवण मनन निज ध्यास करी करी, ज्योति सुं ज्योति मिलावति हुं मैं ॥४॥
नाम नरपन रंग केशव प्रभु, निपट तांहा ही समावति हुं मैं ॥५॥

---

१. डालूँगी। २. न आऊँगी। ३ धारण किया।

(१३ .)

लालन सुं मेरी प्रित जरी[1] हो ।।ध्रु०।। .
ज्यागति सोबति राम की मुरती, देखती हुं ज्याहां तहां खरी हो ।।१।।
साट घरी मो साईं की बीसर, परत नहीं मकुं येक घरी हो ।।२।।
प्रेम नीर नयन बरसन लागो, लोकन सुं सब लाज उरी हो ।।३।।
कहा कहूं कछु कहन न आवे, शाम बदन देख भुल लही हो ।।४।
केशव को प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल वाके बिलगी परी हो ।।५।।

(१४)

लालच देखो मेरे लोचन की हो ।।ध्रु०।।
जब जब लाल की मुरती देखत, अदूयुन[2] ही पुरत धन इनकी हो ।।१।।
शाम बदन सुं निशदिन लग रही, लाज बिसर गई लोकन की हो ।।२।।
केशव सांई के चरण सुं लीन भई, याद नहीं कछु तन धन की हो ।।३।।

(१५)

संतन की भई बेटी हो बाबा ।।ध्रु०।।
भजन-दाल ज्ञान-धृत सुं, खावती आनन्द रोटी हो बाबा ।।१।।
प्रेम निजामृत पीवत पीवती, बहुत पडी हय लाठी हो बाबा ।।२।।
ब्रह्मयोग से अचल सबल भरीय, काल की गती सब लोटी हो बाबा ।।३।।

(१६)

संत की चाकरी करले बाबा ।।ध्रु०।।
इस तन का क्या भरोसा, कब ज्यावेगा मर ।।१।।
निरंजन का रुप समज, छोड़ दे कर कर[3] ।।२।।
कहत केशव राम कु पाया, वो नर अमर ।।३।। संत की०.।

(१७)

आज मोरे घर आओ गोविंद राजा ।।ध्रु०।।
शाम सुंदर कमलापति गिरिधर, बाजत धीमधीम नाम का बाजा ।।१।।
चंदन विलेपित आंग सुहावत, भाल कस्तुरी माथा मुकुट विराजत ।।२।।
पीत पटधारी गोकुल विहारी, मदन मुरती प्राण नाथ मुरारी ।।३।।
भव दुःख-वारण कौंस[4] विदारण, पतीत-तारण केशव नारायण ।।४।।

---

१. जड़ी (लगी)। २. अब भी। ३. किचकिच (झगड़ा-झाँसा)। ४. कंस।

(१८)

देखोरी माई नंद किशोर
श्याम सुंदर चित्त नवनीत च्योर ॥ध्रु०॥
दीन दयाकर त्रिभुवन नाथ,
खेलत गोविंद गोपी संगात[1] ॥१॥
सुखधन निर्गुण हरि अविकारी,
भगत काज भयो सगुण मुरारी ॥२॥
आदि मध्य अंत रहित गोपाल,
केशव राज प्रभु परम कृपाल ॥३॥

(१९)

मन में गंगा मन में काशी
मन में सदा शिव गुरु अविनाशी ॥ध्रु०॥
मन को मरम न जाने कोय,
मन समजो सो विरला होय ॥१॥
मन में जेमुना मन में द्वारका,
मन में ब्रिंदावन प्रभु हरी सारीखा ॥२॥
पिंड ब्रह्मांड की मन में रचना
कहत केशव मन ब्रह्म ही समजना ॥३॥

(२०)

राम ही माता राम ही पीता,
राम भगिनी राम भ्राता रे।
धन सुत संपति राम रमापति,
आर (और) नहीं मैं ध्याता रे बाबा ॥ध्रु०॥
राम सगा मोरे राम सगारे,
राम बिना नही कोहु रे बाबा।
राम ही जीवन राम परमधन
राम सकल सुख दाता रे बाबा ॥१॥
हृदय कमल में राम ही भरीया,
ताथे बीसर गई दोड रे बाबा।
राम दयानिधि दिनकर कुलदीप,
राम चरण चित राता रे बाबा ॥२॥

---

१. साथ।

केवल मुरती राम सदाफल,
राम निरंजन साई रे ।
राम रसामृत केशव लेकर,
रमत निजानंद माही रे ॥३॥

(२१)

ताली बजाऊँ गांउ राम को नाम
और देवन से नही मेरो काम ॥ध्रु०॥
गले में तुलशी मन मेरो शाम,
जित देखो तित राम ही राम ॥१॥
अन्दर राम बाहिर राम,
राम बिना नहिं खाली ठाम ॥२॥
केशव को प्रभु देखी पाई विश्राम
भक्त बत्सल हय मेघ श्याम

(२२)

तुम मेरे जिया के प्यारे,
तुज विण भव दुःख कोण निवारे ॥ध्रु०॥
तेरो नाम-सुमीरण जो कोही करे रे
तिनको ही जम काल डरे रे ॥१॥
कहत केशव हम दास तिहारे,
दरशण को हय प्यास पियारे ॥२॥

(२३)

क्या कहूं माई अब हरि सुख पाई,
सकल ही गति मेरी हरी ने चुराई ॥ध्रु०॥
हरि गुण माला पेरी[1] हूँ मन में,
हरि के चरण के थीर[2] रहूँ मधुबन में ॥१॥
निशिदिन मन में हरि सु लगाई
हरि के भजन सुं प्राण जगाई ॥२॥
हरि सुं निबरी जन सुं मैं बिगरी
केशव साही के संग सब बिसरी ॥३॥

---

१. पहिरी है। २. पास।

(२४)

नोबत बाजत है हरि नाम की,
गलित भई गति सकल ही काम की
मन में बैठी मुरत शाम की,
फीरत दुराई राजा राम की ॥१॥
ध्यान सी लेह कीय अष्ट ज्याम की
मंगल चाकरी केशव गुलाम की ॥२॥

(२५)

हम तो ब्रह्म भुवन के राजे
बोध दमामा जब तब बाजे ॥ध्रु०॥
सत्य छत्तर शिर उपर बिराजे,
आत्म ज्ञान सुं भक्त न बाजे ॥१॥
कहत केशव रहे सुख रूप केवल,
मार चलाया सकल त्रिगुण दल ॥२॥

(२६)

बोध बिराज्या घर कुं बुलावूं
काम क्रोध कूं जहर पिलावूं ॥ध्रु०॥
तोही सखी मैं संत की चेरी,
बहुत क्या बोलूं बात घनेरी ॥१॥
चिंता वारूं ममता ज्यारूं[१]
समता भाई के पद रज भ्यारूं ॥२॥
प्रेम भुवन में आसन बाउं,
हृदय निवासी के दरसन पाउं ॥३॥
सहज समाधी के सेज बिछाउं
केशव सांइ सुं मील मील ज्याउं ॥४॥

(२७)

मेरे हात में दिया राम,
मेरा मार चेलाया काम ॥ध्रु०॥
लीजे उस धनी का नाम,
कीजे बार बार सलाम ॥१॥
दिखलाकर बस्त्र,
मेरे अन्दर किया स्वस्थ ॥२॥
चित्पद ईनाम दिया,
केशव कूं न्याहल किया ॥३॥

---

१. जलाऊँ ।

(२८)

सौंसार मंडण सारा मार चेलाया
गरिब नवाजे रघुराज मैं पाया ।ध्रु०॥
डर चुका बे मेरा डर चुका बे,
देवन का देव 'राजाराम' देख्या बे ॥१॥
काम का मा बाप भद काफर मुवा,
कहत केशव राज बड़ा आनंद हुवा ॥२॥

(२६)

(कडके केशवा के)

चेटपट चेटपट करता है
खटपट में झट झट मरता है
लटपट में लपेट ज्यावेगा,
तो बखत तुज कौन छुड़ावेगा ॥ध्रु०॥
ईस बदल अंदेशकर अंदेशकर.
दिल मियाकुं दिल में घर, जिकीर सुं सब फिकीर विसर ॥१॥
खबर धर खबर मेरे माई
ईस खब्र में मष्कुल सो जनकराज के जेवाई ॥२॥
संतन के दरबार प्रेम महात्य में,
बोध के धमधम टासुं तम तमाट करतार हो तो सुख-दुख वीसर ज्यावेगा॥
आनंद में समावेगा
ईता भीस्त पावेगा ॥३॥
यरवीन के हाल में,
बंदगी के ख्याल में,
भेद कु छयांड दे
धनी का दिदार ले ॥४॥
कहत केशव राज कवी
कवी का सीरताज रवी,
उस रबी कू पाया
तो सहज के घर आया ॥५॥

(३०)

आज घमंडी मेरी देखो, घमंडी मेरी देखो
मुख बिना राम मुरत, हृदय कमल रेखो ॥ध्रु०॥
राम ने दिदार, मुजे दिया सब लेदार ॥१॥
राम मेरा यार, करे बहुत मुसुं प्यार ॥२॥
कहत केशव बात, भन्या दिल में रघुनाथ ॥३॥

(३१)

रामनाम कहो गोपाल नाम कहो ।
संत के दरबार अब देखत रहो ॥ध्रु०॥
संसार जंजाल सब छोड़कर दिजे,
लालन का जप प्रेम-महाल में किजे ॥१॥
ज्यात का अहम ग्यान ध्यान से तोड़ो,
मन्मथ का ख्याल ब्रह्मानंद से छोड़ो ॥२॥
कहत केशवराज भाव दिल में धरो,
दिल को पछान बाल न हकीकत करो ॥३॥

(३२)

वोही बड़ा नर नामका ।
बावा चाकर मेरे राम का ॥ध्रु०॥
सकल धंदा छोड़ देवे,
हर वख्त हरनाम लेवे ॥१॥
मुनिजन की लेवे दुवा,
सुख का दर्याव हुआ ॥२॥
दिल का धनी दिल में धरे
प्रेम का घन श्याम करे ॥३॥
आप निज ध्यान में रहे,
राम राह लोगन कू कहे ॥४॥
भेद भरम बिसर गया
निजपद, में मगन भया ॥५॥
कहत केशवराज कवी
लखहुँ मैं राम छबी ॥६॥

(३३)

संतनके संग माया-ममता जली
अंदर की गांठ मेरी बोध से खुली ॥१॥
राम का दिदार अजी मुझे दिया बे
दिल का जालिन अभिमान मुवा बे ।२॥
सुख दुःख समान ब्रह्मानंद से सहूं,
जब तक गोपाल जी को मील मील[1] रहूं ॥३॥
कहत केशवराज मेरी येकीन बड़ी
चिद्घन की छबि मेरे दिल में खडी ॥४॥

---

1. मिल-मिलकर ।

(३४)

लाल बडा बे गोपाल बडा बे
हर वख्त हरदम मेरे दिल में खडा बे ॥ध्रु०॥
संत का सिरताज मेरे घर कू आया,
संसार बैरी मेरा मार चलाया ॥१॥
भात भात[1] का अज[2] मेरा किया दिलासा
लिखकर दिया चिदानंद मुकासा[3] ॥२॥
कहत केशवराज कवी कविन का नबी,
देखि यामो बिसर गयी अपनी छबी ॥३ ।

(३५)

जीने[4] धनि का हुकुम लिया
जीने बोधका प्याला पिया ।
जीने भेद कू गोश ताल दिया,
वो आपे ही वासुदेव भया बे ।॥ध्रु०॥
यंउ[5] आपे बिर वासुदेव बोले,
ज्यों आनंद मद सूं झूले ।
ज्यो ख्याल में मिलकर खेले,
बो जीवते[6] मुजेसुं मीले बे ॥१॥
मा-बाप-बेटे-ज्योरु-लडके,
सब देखत लोकन सरीके ।
गुण गावत गुरु नरहर के
हम सेवक हैं उस घर के बे ॥२॥
ज्याकी ममता नास कर गई
ज्याकी माया सो मरकर रही ।
ज्यो अपस्कु[7] समज्या सही
दास केशव को साहब वोही बे ॥३॥ यउं आपे० ॥

(३६)

[राग-हुसेनी मुंढा]

धमक म्याने गमक मुंढे गमक में चमक
चेमक म्याने ज्योति मुंढे ज्योति में झेमक ॥ध्रु०॥
हारे मुंढे हुशार मुंढे देख मुंढे भाई,
डोंगी नजर देखते बाबा नजिकई लाई ॥१॥

---

१. तरह-तरह । २. आज । ३. मौन सा । ४. जिसने । ५. यों । ६. दिल से
७. स्वयं को ।

चंद सुरीज मंद ज्याहा खिन्न भय तारे,
सोही असल रूप बाबा देखनारे[1] न्यारे ॥२॥
तेज बिना ज्योति मुंढे ज्योति बिना प्रकाश,
रंग बिना रूप मुंढे रूप बिना बास ॥३॥
आगे भरपुर, पाछे भरपुर, भरपुर सबले ठार[2] ,
पुरा गुरुपाई यतो हरवख्त खुदीदार ॥४॥
वस्ताद की सौगंद मुजे, हम तो बाबा हारे
कहत केशव गगन मगन सोई अल्ला के प्यारे ॥५॥

(३७)

चेटकनी बाला लटकती आवे
बोध का प्याला लेकर रही बेशक होकर गावे ॥ध्रु०॥
दुनिया का धंदा सारा छोड़ दिया भाई,
अखत्यार सुं नजर बड़े साहेब सुं लाई ॥१॥
निजानंद मदसुं भुली बिसर चेली [3] काया,
दिल्ल ज्यांहां सुं धनी कुं मिली अब कहाँ की माया ॥२॥
मकर बिना ख्याल करे हाल में मस्त माई
शंकर गंज आजे केशव राज प्रभु पाई ॥३॥

(३८)

पर पुरुष की चेटकी नारी नाचती निज्यानंद ।
बोध प्याला भर भर पीवे डुलती ब्रह्मानंद ॥ध्रु०॥
नाचती दरबार चेटकी छूयां सब काम,
बार बार बोले राम रहीम यही नाम ॥१॥
सद सलीते शर पर लीते विशम नही भावे,
नित्यानंद गावत फिरे चेटकी भुली ज्यावे ॥२॥
चेटक दानी वख्तयानी आवे मेहरबानी,
चिद्जेरीना पेन सुख साहेब का पछयानी ॥३॥
साहेब मेहेर धरे तब चेटकी ख्याल करे,
मुसलं देहभाव बिसरी उसी ख्याल में भरे ॥४॥
सद्गुरु पाया चेटका लाया चेटकी भई मस्त,
कहत केशव उस मस्ती में साहेब किया दस्त ॥५॥

---

१. देखनेवाले । २. स्थान । ३. चली ।

(३९)

घर घर अमल[1] सब जन खावे
सोखी न माही उतर ज्यावे ॥ध्रु०॥

बाजीगिरी रंग दिखावे,
ऐसा अमल मुझे नहि भावे ॥१॥

तो गुरु का अमल खावो भाई,
इस अमल की बहुत मिठाई।
गुरु कृपे केशव लज्जत पाई,
तो अपनी सुद आप गमाई ॥२॥

सद्गुरु नाथ अमल मस्त,
उस अमल में साहेब दस्त।
सिद्ध साधु खाते समस्त,
तो घर बैठे पावे भिस्त ॥३॥

गुरु कृपें केशव अमलदार,
अमल खाते अपना दीदार।
तुम लीज्यो भाई एक ही बार,
इस अमल कू चढना उतार ॥४॥

(४०)

तो सुन हो पंडता[2] मेरी बात
आत्म तत्व की केउ बखानु ज्यात ॥ध्रु०॥

निर्गुण ब्रह्म हम पढ़त हैं शास्त्र,
तो फिर फिर कैसे गफलत खात ॥१॥

तो निर्गुण ब्रह्म कु तुम नही ज्याने,
तो काहे बखाने शास्त्र के माने,
आपस्कों बिसरे आपस म्याने[3]
देखत पंडत कैसे दिवाने ॥२॥

तो तत्व की बात करे सब कोय,
तत्व जाने सो विरला होय।
आपस्म्याने[4] आप समावे
कहें केशव तत्वकु पावे ॥३॥

---

१. अफीम। २. पंडित। ३. में। ४. आपस में।

(४१)

राम सुं राजी वो मेरा राम सुं राजी।
गरीब नवाज की चाकरी लागी जेमकुं दीया बाजी ॥ध्रु०॥

रघुपति सुं नेह लागा, दिल का धोका सकल भागा।
निरंजन के चरण कमल, अचल किया ज्यागा[1] ॥१॥

गुरुमुख सुराम दीठा, संसार-जंजाल तूटा,
कहत केशव राज कवी, लागीया रघुनाथ मीठा ॥२॥

(४२)

बलाय ज्याउं मैं तेरे चरण उपर सुं ॥ध्रु०॥

महबुब साहेब तूही, पिरतम तुज बाज नहीं।
हीरद कमल मांही, तेरो ध्यान करती हूँ ॥१॥

आनंद-घन मदन तात, कमलापति भुवननाथ।
देखत सब गलित गात, बात केउं कहूं ॥२॥

कहत केशवराज कवी, तूंही धनी तूंही नबी।
भद बीसरी तेरी छेबी, मन में धरती हूँ ॥३॥

\+ \+ \+ \+

झुटा तेरा जप
भात रोटि गप
अतित सुरहे छप
तीन काल लेवे झड़प।

मु सु लेवे नांम।
अंदर भरे कांम।
अैसा बेकांम
तुज केव[2] मिलेगा रांम ॥१॥

तन लाते खाक ॥
मन में नापाक
अैसें कै लाख।
हम देखे सौ लाख ॥२॥

---

१. स्थान। २. क्यों।

बंदगी करस्त
नहिं समजे बदख्त ॥
अंदर किया सख्त ।
कैंव चढेगा तख्त
यख्त्यार नहिं दिल ।
बहुत बंदगी में ढिल[1] ।।
अैसा गाफिल किया साहेब के दिल ॥
कहत केशवराज सुन मेरा अवाज
सब को सिरताज ।
भजो गरिब नवाज ॥

---

1. ढील ।

मध्व मुनीश्वर के पद

(१)

मेरा साहिबसू दिल लागा ।।ध्रु०।।

पीर फकीरों की बंदगी सच है झूठ कुफर[1] सब भागा ।।१।।
ताल पखावज शोर अबस[2] है क्या करूं छेतीस रागा ।।२।।
साँई का नाम नहीं घटमें भटके, झटके सोही कागा ।।३।।
सब घट पूरन येकहि रब है, जौ तसबी[3] बिच तागा ।।४।।
अपने महलबिच गर्क हुवा जो, गैब सुने[4] मो सुहागा ।।५।।
भेस्त[5] के बागमों नखल निरंजन, जोर हवासिर-जागा ।।६।।
नाथ बहानका फकीर कहे अब, बखत हमारा जागा ।।७।।

(२)

होली

ऐसी खेलोरे मत होली । जिसमें कुफर की है बोली ।।ध्रु०।।

फकीर मिलावो रिजक खिलावो । नजिक खुदा है भाई ।।
अकल धरोरे जिकिर करोरे । खावो भेस्त मिठाई ।।१।।

महल में हरिख्याल पढ़ो मत । इसकी देख मनाई ।।
रंगविरंगी होकर जावो, दो दिनकी दुनयाई ।।२।।

अपने मु से फजियत होते । इसमें क्या सुगराई ।।
कहनेहि में मालुम होती । कम अकलों की बढाई ।।३।।

भेस्तके प्यारे वो नर प्यारे । जिनकी जिकिर खुदाई ।।
दोजखमें जो जाय पडेगे । उनकी ऐसी कमाई ।।४।।

ये नरदेही बहुर न आवे । समज रहो चतुराई ।।
नाथ माधो कहत साधो तुमकू राम दुहाई ।।५।।

---

१. कुफ्र । २. बहुत । ३. माला । ४. सोना । ५ बहिश्त ।

(३)

ऐसा कहूँ नहीं जी परबंदा। छोड़े सबही धंदा ॥ध्रु०॥
कितवे सेवी मुलुक गवायां। कुफर में डुबा अंधा।
गुरुके कदमकी बंदगी नाकर। चोरकू दुश्मन चंदा[१] ॥१॥
परधनमें हरि दिलमें पैठी। गलबीच डाली कंथा।
हातमें तसबी हरहर बोले। ख्याली उलटा पंथा[२] ॥२॥
दुनया लूटी ठग विद्यासे ऐसा बह्मन कच्चा।
नाथमाधो कहत है साधो। साई न माने सच्चा ॥३॥

(४)

क्या तुम देखते हो बाजीगिरी का तमाशा ॥ध्रु०॥
हाती घोडे माल कबीला। कोई न किसका साथी।
अमीर वजीरा सबगसब गय। आगे चढती राह हमेशा ॥१॥
कौन करारी चीज है माशुक। जिसपर आशक होना।
दम लेनेकु कहुं नहि जागा। झूठा वखुद (?) भरोसा ॥२॥
कहत है माधोनाथ गुसाई। नासिकतिर्मक[३] वाला।
जिकिर[४] गुरुकी अलबत करना। जिसमें दिलका खुलासा ॥३॥

(५)

अब कर दिल दिवाने पाक ॥ध्रु०॥
झूटी माया झूटी काया। आखर सारी खाक ॥१॥
काहेकू बंदे महल बनाया खर्च हजारों लाख ॥२॥
हरदम तूंही तूंही कहना। जंगल तेरे ल्याख ॥३॥
फजर नीकी बंदगी करना। अकल से होना च्याख ॥४॥
कहत है माधोनाथ गुसाई। अपना पानी राख ॥५॥

(६)

अब मत सोव दिवाने जाग ॥ध्रु०॥
इस देहिकु देख लगी है काल लहर की आग ॥१॥
अपनी कमाई जिकिर खजीना लेकर भाई भाग ॥२॥
कहत माधोनाथ गुसाई। देख हवासिर बाग ॥३॥

---

१. चोर न प्यारी चाँदनी। २. पंथ। ३. त्र्यंबक। ४. स्मरण।

(७)

अब चल भाई हमारे साथ ||ध्रु०||
जो कुछ होना होयगा सो परमेसर के हात ||१||
अपने महलकु अकल से जाना घोर अंधारी रात ||२||
इस दुनीया से फरीग होना ऐसी बड़ों की बात ||३||
इस पानी में वैसा बे रहना जैसा कमल का पात ||४||
कहत है माधो तुजे मिलऊँ साहेब सीतानाथ ||५||

(८)

भजमन साहेब मोहनलाल ||ध्रु०||
कानन कुंडल मुगुट बिराजे। गलबीच मोतनमाल ||१||
मृगमद आछो तिलक लगायो। सौंधे भीने बाल ||२||
पील झगोरी दामीनी चमके। उपर वोढी[1] शाल ||३||
कुंज गलनमों बंसी बजावे। गावे माधव ख्याल ||४||

(९)

बंदे मतकर इतना मान ||ध्रु०||
अकलकु पकड तूं नकल है ख्याली, नकली दी सब जान ||१||
क्यो नहीं सुनता क्यो नहीं गुनता, तेरा दिल सैतान ||२||
इस देहीमे पंछी जीयरा, दो दिनका मेहमान ||३||
झुटी काया झुटी माया, आखर मौत निदान ||४||
कहत है माधोनाथ गुसाई। वैरागी मस्तान ||५||

(१०)

बंदे भज गरीबनवाज ||ध्रु०||
मैं तों बंदा जिकिरकु अंधा। इस दुनिया मे निकाज निकाज ||१||
सब माफ बंदेकु गुन्हाजी। ऐसी तुम्हारी आवाज आवाज ||२||
सच्चा साहेब पालो तुही। माधो गरीब नवाज नवाज ||३||

---

१. ओढी।

(११)

माया का गुलाम न करे साईकु सलाम ।ध्रु०।।
कामी कपटी चोर तुफानी मुतफन्नी अलाम[1] रे ।।
उसकू तंबी[2] पहुंचावेगा हजरत का ईलाम रे ।।१।।
कवडी[3] उपर जविडा[4] वारे, दुनयाई हराम ।।
ऐसा बेईमान इसकू क्यो मिलेगा राम रे ।।२।।
नाइक सारी उमर गवांई न लिया हरिका नाम रे ।।
जहा किया शरीरीका वैकुंठ में इनाम रे ।।३।।
कहत है माधोनाथ उसका दोजख में मुकाम रे ।।४।।

(१२)

तूं है रामजादा रे, मैं तो हरामजादा रे ।।१।।
न करूं तेरी खिजमत[5] रे, मेरे पर तूं खिजमत[6] रे ।।२।।
इस दुनियांकू जर दे रे। मेरे पर तूं नजर दे रे ।।३।।
जबलग मिलती सबजी जी। तबलग कहते सब जी जी ।।४।।
दो दिनकी ये दौलत जी। अखर खाना दौलत जी ।।५।।
बाजे नागारा डुबडुबजी। माया नदी मों डुबडुब जी ।।६।।
जागीर वजुद खेडाह जी। वहां तो बहुत बखेडा जी ।।७।।
तेरा नाम न गाउं रे। चेला पुरान गाऊ रे ।।८।।
मध्व मुनीश्वर पैदास्ती।. उसकी कर तूं निगादास्ती ।।९।।

(१३)

माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव ।।ध्रु०।।
कपटका घुंगट खोल सीतावी[7]। इश्क मिठाई चखाव ।।१।।
आशक तेरा जिवडा चातक। कर मेहर बरखाव ।।२।।
दिलकागज पर सूरत तेरी। गुरु के हात लिखाव ।।३।।
मध्यमुनीश्वर साई तेरा। असल नाम सिखाव ।।४।।

---

१. दुनिया। २. तुम भी। ३. कौड़ी। ४. प्राण। ५. सेवा। ६. चिढ़ मत। ७. सिताबी।

(१४)

श्लोक दखनी

बड़ा नाथमाधो अगडधत्त गुंडा । पिवे घोटकर भांग भरपूर कुंडा[1] ॥
झुले हातमें मस्त लेकर कुतका । नही इसबराबर दुन्यामें उचक्का ॥१॥
बडा नाथमाधो बहमन मे दुकसवी । गले गोधडी हातमें एक तसवी ॥
धनीकू करे याद हरदम दिवाना । शहर में पुकारे बुरा है जमाना ॥२॥
पीरोंका मुरीद मुठभर भंग चावे[2] । धनीके बयाने हमेशा मस्त गावे ॥
आवल झरझरीकी नली ओढता है[3] । कंकर फोडकरती धुवा छोडता है ॥३॥
गंगा के किनारे बडा यक नकी है । वहां येक खपरेला बंगला किया है ।
ताहां नाथमाधो हमेशा झूलता है । फकीरकु नजर देखकर फूलता है ॥४॥
कुसुंबी चिरा बांधकर फेरबिगी । अगलबंद जामानिभा सब्जरंगी ।
बडा नाथमाधो बम्हन जोर मंगी । धनीकू करे याद भंगी तरंगी ॥५॥

(१५)

जहां सुरसतीका हुवा संगम । पुराना पडोसी उपर येक जंगम ।
नीचे मठकी जो चौगीर्द जागा । नजर देखत ही कुफर दूर भागा ॥१॥

(१६)

राखे असल जो इमान । बडा साई मुसलमान ॥
नहीं तो अवस बेइमान । दुनिया बीच रोते हैं ॥१॥
करे दैवकु जो कैद । बडा सोही येक सैद ।
नहीं तो सैतानसे कैद । चिकड लगा धोवते ॥२॥
लाश मेरा महबूब । उसका बंदा सोही खूब ॥
जो नाथमाधो का कुफ । सुनकइ महजुज होते हैं ॥३॥

(१७) दोहरा

रुखा पीपल पात है । जैसा पवनसे जात है ॥
वैसी फकीर की बात है । रमता भला नवखंडमे ॥१॥
अकल फरणीसात है । जिकीर चाहात है ।
मिठी शकर सो खात है । खटा मठा सब फेक दिया ॥२॥
गुरुनामका अमल पीया । कुफर गनीम सब जेर किया ।
अवल उसीने तख्त किया । भला हुवा अब दिल का ॥३॥
काया विकट किल्ला बडा । जिसपर धनी आप चढा ।
आगे फकीर बँदा खडा । करे हमेशा बंदगी ॥४॥
किल्ला बिकट फत्ते किया । जिसपर धनीका तख्त किया ।
दिल वजुदकू सिरपाव दिया । मेहरबान हुवा माधोनाथ ॥५॥

---

१. कुंडी । २. चाहे । ३. पीता है ।

(१८) दोहरा

ब्रह्मन पढ़ा है बेदकू । समजा नही उसीके भेदकू ॥
पूजे पत्तरके देवकू । पंडीत हुवा तो क्या हुआ ॥१॥
अंदर नहीं दिल पाक रे । सेवा जिकिरकू च्याखरे ॥
उपर लगावे खाक रे । जोगी हुवा तो क्या हुवा ॥२॥
बांधे गलेमो लिंग रे । आगे बजावत सींग रे ॥
खावे मुठी येक भंग रे । जंगम हुवा तो क्या हुवा ॥३॥
माला लिई है हातमे । जपता रहे दिन रात में ॥
दिल नही उस बात में । भजनी हुवा तो क्या हुवा ॥४॥
फजर किताबां खोलता । मु से नसीहत बोलता ॥
अपने अमल नहिं डोलना । काजी हुवा तो क्या हुवा ॥५॥
हुसियार न अपने वक्त रे । चढे न भेश्तका[1] तख्त रे ॥
भगली ऐसा बदबख्त रे । मुल्ला हुवा तो क्या हुवा ॥६॥
साहेब करता बंदी जुदा । समजा नहीं दिल मे खुदा ॥
फकीर हुवा नहीं अपसुधा । जिंदा हुवा तो क्या हुवा ॥७॥
इस बात से मध्वनाथ कहे । रब साइं का घर दूर है ॥
नही दूर रे, भरपूर है । जंगल फिरा तो क्या हुवा ॥८॥

(१६) दोहरा

ब्रह्मन पढा है बेदकू । समजा उसीके भेदकू ॥
पूजे न पथरके देवकू । पंडीत ऐसा सबमें भला ॥१॥
अंदर करे दिल पाक रे । सेवा जिकिरकू च्याख रे ॥
उपर न लगावे खाक रे । जोगी ऐसा सब में भला ॥२॥
बांधे गलेमो लिंग रे । आगे न बजावत सींग रे ।
खावे न भूंजी भंग रे । जंगम ऐसा सबमें भला ॥३॥
माला न लेवे हातमे । जपता रहे दिन रात में ॥
दिल धनी के बातमें । भजनी ऐसा सबमें भला ॥४॥
फजर किताबा खोलता । साची नसीहत बोलता ॥
अपने अमलबीच डोलता । काजी ऐसा सबमें भला ॥५॥
हुसियार अपने अपने वक्तरे । चढे बेहश्त का तख्त रे ॥
खुला है उसका बखत रे । मुल्ला ऐसा सबमें भला ॥६॥
साहेब करता बंदा जुदा । समजा है दिल में वो खुदा ॥
फकीर हुवा है आप सुधा । जिंदा ऐसा सब मे भला ॥७॥
इस बात से माधोनाथ कहे । नही साईका घर दूर है ॥
नही दूर रे भरपूर है । जंगल फिरा तो सबमें भला ॥८॥

---

१. बहिश्त ।

(२०) पद

अंधारे जग अंधा ॥ध्रु०॥
साहेब से अपनी प्रीत छांडके। बेइमान हुवा बंदा ॥१॥
बेद किताब कुछ नहीं माने। प्यारी का सब धंदा ॥२॥
कहत है माधोनाथ गुसाई। निर्मल फकीर चंदा ॥३॥

(२१) पद[1]

जिन्ने तुजकू पैदा किया कर उसका संदेशा रे।
इंद्रजाल तव प्रपंच सारा सुत वंध्येचा जैसारे ॥ध्रु०॥
तन जोवन आशक हुवा। क्या पाया आराम रे।
इंद्रिय जन्म सुखातें भावुनी। नेणसी आत्माराम रे ॥१॥
क्यों गफलत में गाफल हुवा। किस लालच पर प्यारे।
किरण न जाणुनी भ्रमती हरणें। जातीं उदका भासा रे ॥२॥
किआस नही किये कुफरसे। क्यों करहि हुवा दिवाना रे।
आत्मा तूं अविनाश होऊनी। मानिसी जन्मा मरणा रे ॥३॥
तन कियेमें एक जनार्दन। लाख खडा बेपरवारे ॥
त्र्यंबक कवि हे त्याला अर्पुनि। भोगी सुखाचा ठेवा रे ॥४॥

(२२) पद बाजीगर

बडा बाजीगर। साई बडा बाजीगर।
बाजीगर की बाजी झूटी। अकेला आखर ॥१॥
सबकी नजर बंद करकर। दिखावता है पर।
एक परके पलख म्याने। छत्तीस कबूतर ॥२॥
एक रस्सी का साप करे। जबू न उसका जहर।
लहर चढेने शहर भुलाना। इस चौक मे कहर ॥३॥
हांडीबागका गला काटे। मारे पेटमे छुरी।
जीवना मरना वैसा झुटा। बात तैसी बुरी ॥४॥
बाजीगरके हंडीबागकु कही नहीं डर। मध्वनाथका गुरु जबरदस्त है शिरपर ॥५॥

(२३)

राखो प्रभुजी लाज। आपने शरनागत की लाज ॥ध्रु०॥
पतितपावन नाम तुम्हारो। गुरुजी गरीबनवाज ॥१॥
भवसिंधूके पार उतारो। इतना हमारो काज ॥२॥
कहत है माधोनाथ गुसाई। मुनिजन के महाराज ॥३॥

---

१. यह पद 'मणि-प्रवालशैली' में हिन्दी (मराठी-मिश्रित) है।

(२४) पद

यारो समजो रे दो दिनकी जिनगी[1] यारो ॥ध्रु०॥
नंगे आना नंगे जाना काका बाबा भाई। काकी अंमा
नानी दादी लालुच देति लुगाई ॥१॥
कहांकी संपत उंच हवेली कहांका खेल कविला।
कहांक नौबद हाथी घोडा जहां का वहीं तबिला ॥२॥
हात दियो कुछ कर वे दान, पग से कर तीर्थाटन।
संपत नही तो भिच्छा मांगकर खुद खिलावे व्रह्मन ॥३॥
अखंड माधव साधव नहीं भाई सब संतन का लडका।
हरिभजनमो मस्त भया है खूप लगावे कडका ॥४॥

(२५) पद

बंगला जोर बनाया वे। वामो नारायण डोले ॥ध्रु०॥
नीचे भट्ठी उपर पानी वामो लगाये बत्ती।
सातताल का महल बनाया खूब बसाई बस्ती ॥१॥
चार देहेका मठ बनाया पचीस लगाये फत्तर।
पांच तख्त पर पांच बगीचे नहर चलाये अंतर ॥२॥
काला पीला सुफेत हारा[2] नहि कछु जरदे रंग का।
अखंड माधव रामभजन से महल बना बिन धोका ॥३॥

(२६) पद

मुह मे राम हय जी। उन घर क्या कम हय जी ॥ध्रु०॥
भजन पुजन तो कछु नहि जाने, अर्जव करत है दुनिया।
आटा चावल दाल तुवर की घी शक्कर दे बनिया ॥१॥
चेले चाटी भिच्छा मांगते हम तो बैठे डेरे।
गौबा बम्मन रोटी खाले हम तो सबके चेरे ॥२॥
अखंड माधव साधु नहीं भई राम नाम का सुख लेता।
जगद्गुरु है साईं हमारा जो चाहे सो देता ॥३॥

(२७) पद

झटपट भजले सीताराम। प्यारे झटपट ॥ध्रु०॥
दुसरे का घर मुंडमुंडा कर बड़े हिम्मत से जमावे दाम।
घरभ करे बेशरम गठडा गरम किया नर बड़ा गुलाम ॥१॥
जातपात खुद संत मिले पर बखत पड़े तो नावे[3] काम।
लालुच लुगाई माई बेटा क्यों बे गिर्दि करे हाम ॥२॥
अखंड माधव कहत दिवाना बडे संतन के घर का गुलाम।
गस्त अइ भई सुस्त रहो मत फकड[4] का टुक लेवो सलाम ॥३॥

---

१. जिन्दगी। २. हरा। ३. न आवे। ४. फक्कड़।

शिवदिन केसरी के पद

(१)

किन बइरी ने बइर कियो री,
साजन कू बहिराय[1] दियो री ॥ध्रु०॥
पेहरी (जो) मुद्रा भस्म चढ़ायो
कान मो कुंडल अलख जगायो
किन बइरी ने ....कियो री ॥
खांदे (जो) पखारी[2] हात मो झोली
गल बिच निर्गुन माला सैली
किन बइरी ने..........कियो री ॥
शिवदिन मनहर केसरि प्यारा
अलख खलक सब जोति उजारा
किन बइरी ने..........कियो री ॥

(२)

किसका कोन संघाती बाबा ॥ध्रु०॥
अकेला आवे अकेला जावे, हात हुजुर की पाती
तन मन धन जो गर्वहि मत कर, कहत पुरान की पोथी
मात तात जोरू लरका घर, होय मसान की माती
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब, देख दिल भर साथी ॥

(३)

सोई कच्चा बे कच्चा बे, नही गुरु का बच्चा ॥ध्रु०॥
दुनिया तजकर खाक लगाई, जाकर बैठा बन मो
खेचरि मुद्रा इंद्रिय-निग्रह ध्यान धरत है मन मो ।
॥सोई कच्चा०॥
कुंडलिया को खूब चढ़ावे ब्रह्मरंध्र को ल्यावे
चलता है पानी के ऊपर जो बोले सो होवे
॥सोई कच्चा०॥

---

१. बहका दिया । २. अधारी ।

गुप्त होकर परगट होवे मथुरा गोकुल वासी
प्राण निकार सिद्ध जो होवे सत्य लोक का वासी
॥सोई कच्चा०॥
वेदशास्त्र में कछु नही रक्खा पूर्णज्ञान को पाया
वेद विधी का मार्ग चल के तन का लकडा लिया[१]
॥सोई कच्चा०॥
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब करनी कथनी रहनी
आपहि मध्ये आपकु चीन्हे वोही है गुरुज्ञानी ॥
॥सोई कच्चा ०॥

(४)

आदेस कहना जी आदिपुरुष लखना जी ॥ध्रु०॥
सिरपर टोपी कानों में कुंडल गले रूद्राक्ष माला
तिलक भालपर चंद्रकोर है श्यामसुंदरका टिकला
सेली सिंगी पुंगी तुंबी और बभूत का गोला
अनहद किन्नर नाद सुनावे अलख निरंजन झोला ॥
वैरागो का लिया लंगोटा पंथ चलावे उल्टा
तत्वबोध का प्याला पावे गगन मगनमें लपटा
आदेस...........॥
निरगुन केसरिनाथ कृपाघन शिवदिनहरि का साई
.... (१)
आदेस........॥

(५)

दो दिन तूम भलाई कर रे
आखर तेरी मरमर रे ॥ध्रु०॥
सुपना सी जिंदगानी जानी दौलत झूटी भरभर रे
आतम ग्यान बिन मुगत न होई जमका पेट डर डर रे
कुटुम्ब कबीला साथ न जावे छांड बुराई कर कर रे
शिवदिन प्रभु को साहेब के चरन सुभग धर धर रे

(६)

हम फकीर जनम के उदासी निरंजनवासी ॥ध्रु०॥
सत की भिच्छा दे मेरी माई मन का आटा भरपूर
वारवार हम नहि आने के हरदम हार खुसी ॥ हम फकीर........

१. ऐंठ कर चला।

सोना रूपा धेला पैसा ओ कुच[1] हम ना चाहे ।
प्रेम कि भिच्छा ला मेरी माई, हम पंची[2] परदेसी ॥ हम फकीर........
सिर फोड जलाली करते मगनहार वो न्यारे
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब चरनो के रहिवासी ॥ हम फकीर........

(७)

हजरत अल्ला । सब दुनिया पालनवाला ॥ (ध्रुवपद)
जिसका असमान है एक तंबू, धरती जाजम पवना खूंबू
उपर गाडा है गंबू, हरदम अल्ला ॥सब०॥
चंद्र सूरज दोनों चिराखी । नव दरवाजे दसवी खिरकी ॥
उधर रखी है एख फिरकी । सब घर अल्ला० ॥
सात समुंदर खंडक खोली, पोहबत का दरवाजा मोली
अबोल बोलत मीठी बोली । सव रस अल्ला'' ॥
साई केसरि गुरु पिर सारा । शिवदिन नाम मुरीद हि तारा
झगमग जागत आते हि जारा । लाल हि लाला ॥ सब.......

(८)

अल्लख जागे । गुरुजी अल्लख जागे ॥ ध्रुव पद ॥
उलट पलट मो दर्सन गाढा रूप रेख विन पुरुख ठाडा
चंद्र सुरज विन तेज उघाडा । कर्म शूल का मूल उघाडा
समाधी लागी सहजी सहजा । अनुहत सिंगी बाजत बाजा
उन्मनि संगे सो मन रीझया । जाहा ताहा नहि आप विन दुजा
चतुर्दल षडदल दशदल उलटा । द्वादशदल षोडस दल फांटा
द्विदल पर किया चपेटा । तब सहस्र दल भौरा पैठा
अजरामर पद केसरि गुरु का । पाया शिवदिन आदि अंत का
अमृत पीया अर्धचंद का । धोका नहि अब जनम मरन का ।

(६)

मारो पेट बड़ा वांका सब से लगा दिया ठोका
देख सन्यासी देख फकीरा घर-घर मागे टूका
एक आसन पर क्या बैठेगा पीछे काल का डंका
ईस पेट से चोर छिनाला ईस पेट से पैदा
ईस पेट से ढोंग धतूरा किया पेट ने पैदा
इस पेट से रख शिपाई राजा परजा मरते
ईस पेट से अमीर उमराव मुलुक-मुलुक पर फिरते
शिवदिन को मन जग बैठे नहीं पेट से न्यारे
गरीब बिरे पशु पछी सोई सबहि पेट ने घेरे

---

१. कुछ । २. पंछी ।

(१०)

जड़ाव कोंदन का कोंदन का। बनाव सच्चिद्घन का
लाल सफेद वर[1] काला। उपर चमके उन्मनि बाला
निगा लगी अलख मो। झगमग झनत्कार झलक मो
केसरि गुरु कांचन मो। शिवदिन जडा गया कोंदन मो।

(११)

बाबा उमर गमाई रे। भाई भगति न पाई रे
झूटी संगत कछु नहिं बाबा साहब साथी करना
जैसा आना वैसा जाना। नाहीं दीन पछाना।
चांद सुरज औ तारे झलके विजली भाव बतावे
ठोक न नेमे चूक पडी तब काया खाक मिलावे
माता पिता जोरू लरके तब ही फूटा खेला
नैन आरसा देख दिवाने कर साहब सो मेला
दिलका आइना दिल में देख सब घट जात जगावे
साहेब केसरिनाथ जगावे नारायन सो भावे ॥

(१२)

उस पर बल जैये बल जैये
प्रेम प्रीति से रहिये ॥
अलख पलख मो सारा, सब घट देखे साई हमारा
अजपा जप करता है। कर बिन मन मनका फिरता है ॥
आसक[2] केसरि घर का। शिव दिन बंदा उसके घर का ॥

(१३)

उस पर वारि जाऊं रे। उनके पायां लागूं रे।
नव दरवाजे दसकी खिरकी, उपर है येक फिरकी।
बिरला साधो कोइ एक जाने, लेकर मन की गिरकी
दोनो नयन उलटे मारूं, सब घर मरे सांई।
निंदा स्तुति कछु नहिं जाने, वोही लाल गुसाईं ॥
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब, अगमनिगम का राजा
अनुहत डंका दिन दिन बाजे, बाजत तन का बाजा ॥

---

१. ऊपर। २. आशिक।

अमृतराय के पद

कटाव *

(१)

श्री बृंदाबन मो यदुराज बिराजत है ।।ध्रु०।।
गीत नृत्यगति, हावभाव किति, धिमिकिधिमिकिंधिमि ।
मृदंग नवघन, घोर गर्ज पखवाज राज सीताज ताजकी,
आवाज गहरे, थरन होत यत, झनन झनन झनन झांजरी ।
इतन मोल की, ढोल की गात, घुम घुम घुम घुम ।
नाद जम रह्यो, तामो मुरली, तनन तनन ।
उपज अलोटी, कोयल कंठी, कृष्ण कंठ सो, लपट लपट के;
तान लपटके, निपट मुलायम, तीन ग्राम यकवीस[1] मूर्छना,
यक सो येक, अलाफ सवाई सुखी, होत वृखभान जवाई ।
उप्पर थाट, विमान सुरनर, गुमान अमृत राय ने,
अधरांगुलि दे दे थक्कित रहै । श्री बृंदाबन मो ना

(२)

गनपत भावे । हरिकथा रंग मो आवे ।।ध्रु०।।
पग सो नाचे मुख सो गावे, चारो कर सो भाव बतावे
सुरस जिंदे संग बुलावे ।।
लपटा नाम बंद सो दुलदुल दोंद[2] हलावे ।।हरि०।।१।।
चूवे[3] कू तुर्की गत सिखलावे, जादा नव दलमो पैठावे ।
अकुंश पाश फर्श चमकावे ।।
लढाई दुष्ट दैनन मो ज्या हर सीख लगावे ।।हरि०।।२।।
संकट दुख जंजाल जलावे, जग में सत्कीरत उजलावे ।
ब्रह्मा नदी डुली डुलावे ।।
अमृतराय के घर बैठेला संसार चलावे ।।हरि०।।३।।

---

* कटाव—यह एक प्रकार की काव्य-रचना-शैली है, जिसमें तुक की अपेक्षा पद-प्रवाह भाषानुसार ध्वनित होता है ।

१. इक्कीस । २. तोंद । ३. चूहे ।

(३)

सब सो आदा[१] । मोरे सर साहेब ज्यादा ॥ध्रु०॥
जासे प्रकृति पुरुष नरमादा, पैदा हुवे कहत तह दादा
तीनो लोक करे मर्जादा ॥
आगे दौरे देव तेतीस करोर प्यादा ॥मोरे सर०॥१॥
बिधि हरिहर का भजन बिरादा, उत्पत्ति स्थिति बोझ्या लादा
तामो सबको आप अलादा ॥
यह गति जाने व्यास ध्रुव नारद प्रल्हादा ॥मोरे सर०॥२॥
चूवे पर जडाव का है हौदा, चामर छत्र सुनेरी चर्दा ।
आचे अठरा पुरान कर्दा ॥
बाटे खैरात रुपये होन मोहरा खुर्दा ॥मोरे सर०॥३॥
जाने पूरन विदिया[२] चौदा, देवे मोल लिये बिन सौदा ।
पूरन प्रसाद मुक्त वलीदा ॥
धर्मो हीन हयांय मुक्त वलीदा बाबा आदम उमदा ॥मो०॥४॥
चमके पेशानी पर चाँदा, तक्त बनाया सिंदुर बरदा ।
जग मो देवे आशिर्वादा ॥
जावे अमृत राज सों सुफेत कलंदर सादा ॥ मोरे सर० ॥५॥

(४)

ब्रजराज जी के दरसन को लगे लोभी नैन हमारे ॥ध्रु०॥
पकर पूत के कर मो दो कर मो धर राखत, लय छरी डरावत
दइ दइ मारे, मलान मुखकर, हस हस हस कर,
'नहीं नहीं मृत्तिका खाई ।'
झूठ कहत बलभद्र भाई, सो तुम सांच न मानो माई !
आव देखो म्हारे मुख माही !
बदन पसारत तामो, कै कै प्रकार के रूप दीप दीपांतर
शशि सूरज नव लाख तरागण,
पंच तत्व तेजाम्बर धरणी, पवन पाणी चारों बानी
चारों देह चतुर्दस लोक,
गया परयाग, विष्णु कांची, आवंतिका, द्वारावति, गोकुल,
कुल सुरबर, सनक सनन्दन
विद्याधर बहु, बिबिध देखकर, जसुमत मनमों थकीत होकर,
कीरत बखानत
पूरन ब्रह्म परमात्म सनातन, पुरान पावन, पूतना शोषण
चंचल के चित्तन के चालक, त्रिभुवन पालक !
बालक होकर तुम जीते हम हारे ॥ब्रज०॥

---

१. आदि । २. विद्या ।

(५)

महाराज द्रौपदि के काज गरूडारूढ़ दुर दुर दौरे ॥ध्रु०॥
कपटी काहा करे है मारे, कपटकर कर फांसे डारे,
कपटी कौरव दुर्जन हारे, कपटें पांडव जीते सारे।
निपट कपट कर लपट रहत रिपु
अपट अपट रह चरट न काजे
खटपट निपट करे तम दुर्जन विवस्त्र करत मोहे सिताब भैया
—दौर करो तो रहत शरम प्रभु; बेगन बेग पवन रथ तेजी—
जोर के पांउ पेयोद नहीं तो आपने दौरे ॥महाराजे ॥
भैया भगत राज प्रभुप्यारे भैया बलिभद्र सों प्यारे,
भैया शूर बीर हत यारे, ऐसे नर कौरव संहारे।
कवन काज पर विलंब कीनी, कबलों अपनो प्राण धरूं मैं,
मान जाय अपमान आवेगो, लाज गई नाहीं रही सरम कछु,
जस जाय अपेस[1] आवेगो, देस देस अकिर्ति होयगी,
इस कारण प्रभु सीस नमाऊ, राख लाज मैं शरण आपकी,
सिताब भैया साहेब मेरे भक्त काज पर बहो रे ॥महाराज० ॥२॥

(६)

कोन पावे ज्याको पार,
सब घट पूरन अपरंपार, निर्गुन निजानंद निःसार,
धरि हय[2] निज लीला अवतार, जब कौंसन का कारागार,
तब त्रिभुवन सुंदर, मोहन माधव घनश्याम पीताम्बर धर,
कर शंख चक्र, शिव मुकुट, खचित, श्री वत्स हृदय,
गले वैजयन्ती माल लटकधर, कौस्तुभ विराजित नीलन कंठ,
भुज भ्रुकुटि घ्राण हनु, बालबाल तनु,
कानन कुंडल, मंडित मुख, श्रीखंड तिलक लघु,
अलक कुटिलमृदु, कमल वदन हरि मंद हसित, अति ललित अधर है,
मधुर बचन, शशि वदन रदन छब, रदन तनक हरिमदन जनक
शिव सनकवरद कटि कनक वसन, करि कटक प्रमुख
सब अलंकार सह, निरहंकार, मुरत साकार सुरत।

---

१. अपयश। २. है।

(७)

श्री बृंदाबन मो अजपत[1] बृजराज बिराजत है ॥ध्रु०॥
सत्य लोक तें ब्रह्मदेव जब, गोप भेख धर देखन आये,
गोवन के लघु रुछपाल कर, पुच्छ धरत,
सिरमोर पच्छ, गर गुंज गुच्छ, बिच्छ लच्छ लच्छ[2]
श्री वच्छ चिन्ह प्रभु तुच्छ गन्यो बल, परिच्छबेको,
बच्छा बालसह सकल चुराये
एक बरस दरसन बिन ब्रिजजन तत गोकुल गन आप भये।
ग्रह ग्रह की बछिया, नइ नइ अछिया[3]
धोरी धुमरी, कारी पियरी
हरी बिचित्रा, कपिला बरनी, प्रतच्छ हरनी
जे ग्रह जैसो रहे तैसो
रंग चाल खुर सिंघ भाल, गोपाल बाल
सब विष्णु अवतरे
जाको जैसो सुभाव तैसो,
ऐन बैन को, नैनहीन को,
बधीर कुबरे, पंगु दुबरे,
तुटी पन्हय्या, नई पुरानी, अपुन बिरानी,
लकुट कामरी, गलित पासुरी, धुनिन बासुरी
कुरुप सुरूप सब विश्व कृष्ण मय,
त्रिलोक बिलोक,
नयन करत एक ब्रिजराज चरन पर
आन पर लुटित, कोटि कोटि कहे,
सुरत आप सुरख बिसारे
स्तुति गावत पद पंकज पुनीत रहे ॥श्री बृन्दा०॥

(८)

जमुना तट पुलिन ऊपर प्रभु खेले शाम विलासी ॥ध्रु०॥
सरत्कालको कार्तिक मास, सुद्ध पच्छ मो खेलत रास
गयो रयन को चित्त उलास, कुञ्जबन मो आयो अविनास,
मधुर मधुर बांसुरी बजावे, राग रागिनी तामो गावे
अलाप तान बिचित्र बनावे, बंसी की धुन खूब लगावे,
ब्रिज अबला को चीर चुरावे, गोपिन को सब धीर उरावे
बजाबने मो पिया बुलावे

---

१. आजतक। २. लाख-लाख। ३. अच्छी।

धुन कान मो बैठी गोपिका छबरिया,[1] पूत छोड़ पति छोड़ निकसिया,
दध मंथन जल्दी डारत-है,
कंडन पिसना, पछोड़ना सब, खाना पीना,
न्हाना धोना देना आना जाना
काम काज घर दार छोरके
रीत भात सब लज्जा छांडी दौर करत डर नहीं चित्त मो
काम भरो गोपिन के तन मो, शाम सुरत बैठी है मन मा
भयो लिया को मेला बन मो, पूरन चंदहि देखे गगन मो
सीतल शुभ चांदना रयन मो, देख काम भर गयो नयन मो
किसन कहे तब बात, पहर दस घरी हो गयी रात,
दौरते आवत क्यों ब्रजवासी ॥जमुना०॥

रामजन्म

त्रेतायुग तारण संवत्सर, तामो चैत्र मास ऋतु सुंदर,
नवमी शुक्ल पक्ष रविवासर, अभिजित लग्न पुनर्वसुभीतर,
पाये रामजन्म रवि कुलमो, लीला नटवर,
बानधनुख पटपीत सुभितकत, दिव्यमुगुट सिर,
कानन कुण्डल, हारजडित मणि पदकखचित शुभवदन रदन,
अलि नलिन नयन, श्नुग सुवन अधर, भूचाप सहन,
शुकनास सरल इनु गाल भालपर तिलक ललित,
मृदु कुरल सुनिल, जनुविमल हृदय, सम सदय उदर,
जगनिलय चरणद्वय, कदलिगर्भ, सुकुमार भारसम,
अलंकार साकार अभयकर परमधाम परमेश
परमनृप कामिनि सन्मुख ठाड रहे, जगदीश जानकर,
चरनधरे, अतिचकित थकत मृदुबात करत
'प्रभुजी' ! इह तुम बिध रूप धरे तब कौसल्या
सुत कौन कहे ? यहि मातन की बिनती सुनके
तब ही करुनाधन बाल भये, जननी जगदीश उठाय लिये,
जगजीवन स्तनपान किये, मृदुबस्तरमो प्रभु सोय रहे,
हर यह बिध प्रेमळ कूंबसहय सहसुमित्रा भरतदिबुन्ध अये,
नरनाथकु सुखसिंधु भये, विधिपूर्वक जातकर्म किये,
निजप्रभु वदन अवकोवत, यह दुंदुभिनाद विनोद प्रमोद
महासुर वृन्द सुमनवृष्टि करत है, रामजन्म अमृतराय कहत है ।

---

1. छबीली ।

लंकावर्णन

देखो रे देखो आया लंक का राजा ॥ (ध्रुव पद)
कांचन की लंका, तीन कोन, सब काम सुनेरी, रंगमहाल,
सब जगा जगा चौगिई बनी है, लाख माडिया,
बडया उंच खुब खड्या हवेल्या, मढ्या लाल से,
जड्या जुहर से, झगमग तारे, लाल अंगारे,
सफेद सारे कोंदन हीरे, जरी फरारे, उपर सवारे,
चद्र दंजारे, सबसे न्यारे, चद्रसुरज दोनो पर बरि
ढाल ढोल डफ मेघ गर्जना, कडधड, बिजली,
घडघड बादल भमेरिया चराचर, करन ताल रणसिंग
ढोल पखवाज बजतर थैय्य थैय्यके काख
लठिया, अखसूय और तिडिमिडि तिडितिडे,
धौस धडाधड नोवदबाजा ॥देखो रे०॥१
रणखाम गढा अस्मान बराबर, ध्वजाउंच,
नव लाख देखते लोक खलक सब मुलुख मुलुखके,
करोर हाती, घोरे तेजी, ऊंटू पालखी रथ गाडीया,
करोर लष्कर, ताहामे खूबखूब बिलंदी, दसानन घन,
सुभान अल्ला, ओ मतवाला, खूब बना दौलत का प्याला,
दादा आदम की अजब लीला, कांचन का तो कोर बना है,
चौफेर जिन खंदक क्यारी, भरे जोर दर्याव दर्दकर,
कहा करे भाई वो राम लछिमन, भरत सत्रुघन्, बाली,
सुग्रिव,बंदर लंगुर, बैन बैन को धुमा चौकडे,
खानेवाले देखो यारो,
थरथर थरथर दसानन के कंपत भये बीस भुजा ॥देखो रे०॥२॥
एतन मो जि रामचन्द्र की चढी फौज ज्या पडी लंक पर,
अढी आढाकर सिडी आनपर, भिडी बाधकर,
खडी बाह पर, बडी लढाई, चढी लंक पर,
चन्द्र सुरज दो डाउ डाउकर नडा छूटकर
खडा मेघ गडगडा गुमानिल लडा उठकर खडा लढा,
लाहु सननननन्त बान छूटे छन्छननननननन,
खर्ग बाजे खक्खननननननन, तोल बाजे दछननननननन,
गगनबीच घघननननननन, मेघनाद ककडडडडडडड,
पटे बाजे बभररररररर, बाके तीर सस्सररररररर
उडे फूल जब सुले हाती, गिरे सिपाई फते राम की,

खुले लाल गुलाल सिंधुकर, रावनमारा राकेस घेरा,
तमाम सारा, भागे लोक कुल लंक लुटाई,
निशाण चढाया दुहाई.फिरे रामराजा ॥देखो रे०॥३॥
लुटी लंक जब खटपट कठोर, चटपट चटणी लटपट लहणी,
निकट भुवन घर खटाटोप पट द्रुमकुट द्रिकिट दधधीमपधीमप,
अनुहत बाजे तनित परंम पटे हर राम राम घनश्याम,
सुंदर नरनाम जपजे कामपूरणधाम त्रिकुट दे धाम,
बिभीषण ठाव अचल दे सीता सकल निल महानील,
पेर सबल सेतुबल अंगद मैतरु सुक्र सुलणधंन
जांबुवन्त हनुमान गनत दुर्वास ब्रह्मऋषी,
वसिष्ठ विश्वामित्र प्रतिनाम पौलस्त्य भार्गव,
भारद्वाज अंगिर मार्कंडेय गुरु पैगंबर पूजत
रामराम सुखधाम सलकसब कामपूर्ण परब्रह्म
सनातन कविजन पुष्पवृष्टि करत जयजयकार करत,
कहे अमृतराय सब लंगरऊपर ज्या बैठे सब,
देव बजावत अनुहात बाजे बाजा ॥देखो रे०॥

(८)

श्री बृन्दाबन मो अजयत ब्रिजराज बिराजत है ॥ध्रु०॥
घन तरबर सुरतरु की छाया, कमलकर तक्त बिछाया
तापर सजल जलद समकाया, मोर मुगट सिरपेच बनाया,
संग राधिका सह ब्रिजजाया, परब्रह्महर तिनको पाया,
नैनमो भरपूर समाया, माया मे नट भे कछु पाया,
बाका बनवारी मन भाया,
महल सराय मोहबादरी
हर सखि नादर, दामिनी सुंदर, बनि अनि आदर
कोदर बारन आदर बासुरा को प्रबला,
असुरखल प्रताप कार प्रभाकर प्रस्तुती प्रभु प्रसादकार प्रमदानी,
कमलनि प्रयानिका गति प्रफुलित मति सो प्रबुध प्रबीन,
प्रगट प्रेम ते परम पुरुख संनिध सेवा कर है—
ब्रिजजन हरि सेवा कर रहे ॥श्री बृंदाबन मो०॥
बेठे शाम महामरकत तनु,
तापे मोर को चामर बीजित, कामर सखीकार लिये
धाम रहित भई शाम नयन कु
नाम शरन मो, पामर समकर,
रगरिठारी, त्यजी अटारी

त्रिपुर पुरकबती, अलक सवारत,
ललित सुललना, नहिं कछु तुलना,
कान निकट अति, मान वती, मृदु पान खवावत,
जांबुनद छबि तांबूल लिये
कंबुकंठ गति अंबुज कर सो, अंबुपान करवावत दूती,
श्रवण मकर मनु मुखि अधर अनुग्रह
ग्रह सी जाके सन्मुख दगते
पाच्छे सरकत मनु उन्मन मोहे ॥श्री बृंदावन मो०॥२॥
श्रीपति कुंज निवासी सहस आया
अविनास निज रास मंडल मो असपाया।
सहभास सकल कु एक एक गोपी एक नंद लाला,
भुज पर भूज भुंजंग विशाला,
कर महे कर कुकुट रसाला, मालाकार भई ब्रिजबाला
मरकत मजनिम श्री गोपाला, सुवर्ण नमनी त्रय अधर प्रवाला
मर्द गर्द जामनि जुथ जुथमो, नव घन मो डारी,
जुगल जुगल राकेंद्र उजारो कवन ग्यान उपमान सवारो
गुन गाय भव बंध न करे,
जमुना जल कल्लोल, लोल लोल का रज
कुंज के कुंज फुले, अलि पुंज कुंजहि गुंज,
तनहि मोहे गुंज रमत हे
बैठे नांद सुश्चद, लेत अनुवाद, बिना उन्माद
मगन धुनि अपनि कच्छु ना कहे ॥श्री बृन्दा०॥
गीतनृत्यगति हावभाव इति धिमिकिति धिमिकिति
धिमि धिमि धिमि धिमि घोर गर्जत पखवाज साजकी,
आवाज गहेरी,
परत होत सननननननननना सनन सनन,
झ्यांझरि इतन मोलक, ढोलकी गत,
घुंघु घुंघु मोरचंग,
तार गुंगार उठतु है एक सखि के मुख ते तत्थैया तत्थैया
कबितकाई कहत इत पायल,
नरतन चाल चलत घुंगरु धुमधुम धुम धुम नादजम रयो,
तामो मुरलिया, तननं तननं सा रि ग म प ध नि सा
सा नि ध प म न ग स्वसुरवर्तनि उपज अनोटी,
कोयल कंठी कृष्ण कंठ से लपट,
कपट की तान लपटकी तिक पट झुमयन तिनणम

आर एकहि जो गगन हवाई,
खुसी होत वृखभानजवाई,
कवित सुरसरि राग रागिनी,
कबित, ध्रुपद त्रिवट पंचदर पंचगीत और प्रबंध सुनि सुनि,
ठौरठौर गन्धर्व-गर्वहत उपर थाट बिमानी,
सुरमुनि गलित गुमान, अमृतराय प्रभुलीला देखे,
अधर अंगुरिया देह थकित रहे सुसर किंनर,
थकित रहे नारद तुंबर थकित रहे ।। श्री वृन्दाबन ।।

कृष्णनृत्य

इहलीला छंद रचाया । पल में त्रैलोक्य नचाया ।।ध्रुवपद।।
उठके प्रात जसोदा मय्या, दे नवतीत पुत्रश्यामा,
नाच कन्हया शब्द उठाया, अजब तमासा उन्ने दिखाया,
ग्वालन के सुसमाज आज ब्रिजराज, पकर बलभद्र अंगुरिया,
नचत राग च्छुहु गाय रागनी, उपरत पायल
उठतनादजी, हरत देव गंधर्व रटत, मृदुतान 'तुटत[1]'
आकास फटत, धुन धुम धुम धुंगरु
गर्जहि, तत्काल मोहबस, नंद जसोमति,
गोपम्हर्णी, तत्थै तत्थै नृत्य करत, इकनीर मरत,
कोइ देख सुरत, घटसिर न धरत, दधि मथन करत,
मन सुमन हरत तनमन बिसरत,
सुखसदन फिरत, कर रदन विरत, नगबदन धरत
देहमदन झरत, इइप्रकार नरनारी
गोकुल के सब ब्रिजबासी लोक चबासी,
मगन सघन होकर, मुरली में धुन से नाचनचाया ।।इहलीला।।
मथुरा कंस नच्चे अभिमानी, प्रलंब अगबग मुश्कि सानी,
लंक बिभीषन नचत सुग्यानी, जरासंघ शिशुपाल गुमानी,
तुर्त निशाचर खबर हिरानी, एकहि बेर कलोल भयो,
धरणीधर कंपत, लिये हस्त मे, अर्गखर्गबेसर्व करत,
उड्डान मार्ग को नजर न लावे दुर्ग-दुर्ग दौड़त है जिनको,
दर्प बडो तन सर्प लिये मन गर्क किये, नहि तर्क चले,
रजअर्क निकारत, अर्क पकरबे, झपट-झपट,
नभ लपट-लपट कर भूमि गिरे पुन ऐसे सब घनघोर हरेते,
अवनि भज्यावत असुर तिहुं अहिकेन को नचत नचाय्या ।।इहलीला।।

---

१. टूटती है ।

धर्म भीम अर्जुन अधिकारी, नचत नकुल सहदेव सुनारी,
कौरव भीखम गुरु अचारी, अंध वृद्ध कुन्ती गांधारी,
महा तपि सुर ऋषि जटाधारी, कंदमूल फल पवन आहारी,
देसदेस के अजब गजब सब, भूच सहर के बातशाह उमराव शिपाई,
सुभामृते सरदार सवाई, मुजुमदार फडनीस किरवाई,
दरखदार चिटणीस उपाई, फौजदार मिल करत हवाई,
ठौर ठौर दरबार कचेरी, बड़े मुत्सदी हटघट बाजार,
बाजार बीच, अत सुखत पुखत, तज जडक, तरुखत नहीं सराकखसा,
सेट शियाना, सौदागिर करलेत मुलताना, खैच कमाना,
करत तनाना, मनु हु न भावे, आप बिराना,
तेली बनिया, बरई रिनिया, सावलुहार, जुहार कामगार,
कारिगिरि बादीगिर, बढई, भाट, कुंभार, सुनार,
छीपी, रजपुत नीच ऊच मिल नाचत उठरा जात नसे,
सुक हंस कोक बक पच्छिन से, अहि पिप्पलिका लघुकीटन से,
बन पर्वत दह जड़ वृच्छन से, अवसानन भान कच्छुमन से,
धुन बासुरि की, सुन गान करत पुन, जितक महीमे,
जीव जंत्र, शावर जंगम तिनहू, न चबे बचाया ।।इहलीला।।
नचत बलि बामन सुविलासी, नारायणमुख सहस बिलासी,
अलजा वरून अप्सरादासी, सब पाताल लोकपुरबासी,
स्वर्गनचत सुर इन्द्रचन्द्र रब बुध कुज कब,
गुरु केत राहू सनि विष्णु गजानन चतुरानन,
पंचानन बर आनन जमनिधपति,
नारद भैरव अष्ट गरूर गोपति गिरिजा, सचि सावित्री,
सरसति, रंभादिक अष्टनायिका, बसिष्ट ब्यास पारासर,
गौतम भरद्वाज दुर्वासदेव अंबगाधिज कश्यप सुख मैत्र,
अत्रि जमदग्नी अगस्ति बकदालम्य मृकुंड कपिलमुनि,
जाज्ञवल्क्य दत्तात्रय यते वाहन सह उपदेव देव तेतीस कोटी,
ऋषि सहस अट्ठासी मिल सब, ध्रुव पहेलाद बिजय जय,
सनक सनंदन, भक्त नचत गंधर्व, जच्छगन, लच्छ लच्छ,
पृथमी जल अंबर तेज पवन सह पंचतत्व गुन,
सिंधु सप्त ये बिधसे सब नचवायी, त्रिभुवन नाटक,
यों प्रियलीलाधारी, सुरअवतारी, ख्याल ग्वाल बिच,
अद्भुतपगते नचत नचत अमृत बक को,
अपराधपुंज प्रभुने निज उदर पचाया ।।इहलीला०।।४।।

कृष्ण-वर्णन

गोकुलकी क्या कहूँ बरहाई[1] ? ज्याहा खेलत फणवतसाई[2] ।।ध्रुवपद।।
कोई न पावे ज्याको पार-निर्गुण निजानन्द निजसार,
इह जगदंबर को करतार, धरिये निजलीला अवतार,
जलदश्याम कौस्तुभमणि राजित, जलजकंठ कानमे कुंडल,
मंडित शुभ मंदहसितमुख मधुरबचन नवकमलनयन सुखसदन,
सगुण शशिवदन, रदनछब, रतन तनक निरकार साकार
सुख वसुदेव जानकार चकित थकित स्तुति करत
पुनित पद जुगुल उपरकृत नमस्कार बहु पुनित पुकारत,
देवकी उठाय जयजयकार किन्हों संस्कार परमकर जोर जोर,
निजबृत कहत कर लेत चलत भगवंत बचनसों बंद तूट,
गये कबार खूले रच्छक भूले सोय रहे सब घोर भई,
निशि बादल आये मलय पवनघन गरज गरज बिज दामिनि,
दामिनि दमके अंबर चमके रुमुकझुमुक जलतुसार लाग्यो,
बुंदे परे हरि भिगत जानकन सेस धरे तनछत्र करे,
अहिरूप भयंकर बिशाल देखे कंवन लागे कर पंकज पर,
पंकजलोचनधर संकटमो करारसे,
जमुनातटवायो तब जमुना भरपूर भरी तट उमंड चली,
जलप्रवाहदुस्तर तरल लोल, कल्लोल,
भवतबिच अवर्त अगनित न्यहारके मन उतारको,
कछु पार न पायो मुरारके पदप्रताप से,
नदि झरारके द्वयभाग भई पदबाट दई,
ब्रजसुमार से गोकुलमो आये जोगम यावह जनी,
जसोदा मूल रहे सब कौउ न पूछे इतनेमो,
हर पलंग पर पोहोचाय कुमर लिये तब जागृत बालक,
देखत ही अल्हाद भये हैं तब सब बृजजनमंगल,
गाये भेरि वजाए हरख बढ़ाये, बिप्र बुलाये,
मंगल जल पशुपाल कन्हाये देत दुंदुभी नादामोद
प्रमोदकर भई सुखकर दाई माई ।।गोकुल की०।।
हार हार हार हरको नाम । मंगलकारक मंगलधाम ।।
श्रीमद्भागवती हरिलीला । शुकमुनि गावत फिरे अकेला ।।
रायपरिच्छित को भयो शाप । अटतअटत ताहां आये आप ।।

---

१. बढ़ाई । २. कृष्ण ।

आदरकर नृपति पद गय्ये[1]। तब हरिचरित शुकमुनि कहे ॥
ब्रिजमो निजरिपु जन्मो कहान[2]। इह धुनि कौंस सुनि जब कान ॥
अन्तरगत अतिचिंता भई। . ताहामों आई पूतना बाई ॥
आज्ञा ले गोकुलमो चली। बिखलतिका नृप सुखते खुली ॥
जिसको हय[3] लरको का आहार। सोती गृहमो[4] करे बिचार ॥
डायल चुडेल बालक की खूनी। उलट भेख सुरकलना बनी ॥
गृहमोआय अचानक बैठी। नंद भुवन आसन आ बैठी ॥
वहां को रूप देख ब्रिजनारी। चकित थकित भये सकल बिचरी ॥
कोइ कहे दिव्य इन्द्र की शचि। बोलत आपने आपने रुचि ॥
कोइ कहे लछिमी, कोई गौरी। कपट भेक[5] देख भई बावरी ॥
हो तुम कौन कहां से आये। पुछके नहिं अचरजु पाये ॥
काम रूप धर सुंदर नार। मुखमो रदन खुले जो अनार ॥
चंद्र आननी पंकजनयनी। अधर प्रवाल लाल कुच[6] बैनी ॥
कोमल अंग भुजंगम बेनी। गलित कुसुम चलि ब्रिजदुखदयिनी ॥
गृहमों आय करे संचार। हरि मारन को करत बिचार ॥
कृष्ण का यह करत ककाय। रोय उठे हरि बालिबलास ॥
लघुमंचक कंचन के डौरे। जननि झुलावत प्रभुबिनडौरे ॥
बालघातिनी आई पास। नयनन मोंह रहे जगनिवास ॥
पोहोची निकट निपट अनिवार। जैसी म्यान मोकि तरवार ॥
खलदुर्जन को अन्तरभाव। अन्तरजामी जानत डाव ॥
कालभुजंगम ज्यान क[7] सोयो। रजोबूध से[8] धर कर लीयो
कृष्ण उठाय हिरदसे लीयो। बिखमर्दित कुछ मुखमो दीयो ॥
कृष्णसाप जो तनसों लागो। प्रानपान करबे कुच त्यागो ॥
मेरो नन्दलाल बहुरंगी। रुधिरहारन की लागि सुरंगी ॥
ले जसोमति ले अपनो पूत। इह पूतन को जागे भूत ॥
रंग करि अइ चलबिसबासरि। बिकलभई रंजनी चरनारी ॥
ले ले कहत जसोमति दौर। आनन्दभरन भयो कछु और ॥
छोड छोड कहे रे! कछुबाल। छुटत नही असुरन को काल ॥
मेरो छमा करो अपराध। ....॥
अरे महराज। मुगुम मैं पाऊँ। गई फेर मैं अजनई आऊ ॥
चंड भयंकर बड़ी अकास। आय सके नहि ब्रिजजन पास ॥
आनबनी मोतन की घेर। काहा को कहा कहे भईजेर ॥
निकट समय मरने की बिरिया। छी छी करत ब्याध कर चिरिया ॥

---

१. गद्दे। २. कान्ह। ३. है। ४. सूतिकागृह। ५. वेश। ६. मृदु। ७. आनकर।
८. रज्जु बुद्धि से।

आपन कियसो आये आगे । प्रान पयान पंथन सो लागे ॥
अगबग भगिनीकु लाभकी । प्रान गये धरनी पर झोकी ॥
झुकत २ जो मारी हाकँ । तीन भुवनमो उपजो धाक ॥
सर्ग पाताल के लोक भयभित । जल स्थल सकल बिकल बिपरीत ॥
जगत चौगडी गुंग हो गई । प्रेत पूतना जिन भई ॥
बाकी कुटिलको सई दाई । ध कोरा धरती पर तब सोई ॥
हातपांव लंबे अति भारी । अलख झाडकी धजाडमारी ॥
प्रानदूत ने कियो चलाव । अग बग दैतननकु[1] बुलाव ॥
पर्वत से कुच मस्तकि ठाडी । दुवा[2] चरनेकु बकरी थांडी ॥
बडे नाशीक पाहाड की दरी । अति दुगंधि नरकी झरि ॥
नयन गये दो अंधे कूप । पाव गिरे जडफत्तररूप ॥
हल समान उचे है दात । अजगरलंब पसारे हात ॥
कालस्वरूपा अतिविक्राल । उप्पर खेले श्री गोपाल ॥
कहा बकी को भाग बखानूं । ह्रदई मलवटपुल हिमानु ॥
ताहामो श्रीमत बालमुकुंद ।.......
आज मुकुन्द गयो सो पायो । पटपल्लवते लपट छुपायो ॥
रछया कर गोपुच्छ फिरावे । मंगलनाम हरको गावें ॥
गृह गृह उदित भयो आनंद । ब्रिजजन देखन आये गोविन्द ॥
संकट हारसुख ब्रिद बधाई । सब मिले ग्वालनो बाई ॥
मथुरा कौंसको दरबार । नन्द गयो बादाईरस्ता ॥
खबर कहे सब मिलके अहिर । चकितनंद कछु न रहयो धीर ॥
देखत हरि आलिंगन देत । प्रेमभाव को अंतरहेत ॥
खडखडकर देहे[3] जरायो । चिताधूम को सुवास आयो ॥
फैल गयो नभ में कछु धूम । खुब बाई की आई धूम ॥
अगर चंदन से उतम से सुवास । ब्रिजजन मगन आवे पास ॥
पापबुद्धि से पापिन आई । बैकुण्ठ चली पूतनाबाई ॥
राह देह कू परि पुखनाम । भई पूतना आत्माराम ॥
ग्वाल ग्वालनि करे आनंद । अमृतराय कूं परमानन्द ॥

---

१. दैत्यों को । २. दूब । ३. देह ।

सुदामा-चरित्र

अजब है वोही का इसाल । खलकबीच म्याने वोहीका रसाल ।
वोही है करंबल साहेब धनी । उसीकू कहे कूल आलं गनी ॥
उसीने बनाया जमी आसमान । पवन आब आरस बनाया मकान ॥
सरग मृत्यु पाताल ये भी तिन्हो । हरीहर जो ब्रह्मा कल्हावे तिन्हो ॥
बनाया जो बंदा सबब बंदगी । नही जानता वा पड़ा गंदगी ॥
जबरदस्त माया लगाई पिछे । भवरजाल करकर भुलाया उसे ॥
हमेशा फिकिर पेटकी है लगी । जिकिर याद मौला नहीं बंदगी ॥
गुन्हेगार बंदा फिरे दर्बदर । गिरफ्तार होकर हुवा बेखबर ॥
किधर दीन दुनिया किधर है खुदा । सबब पेटकी मांगता है गदा ॥
अगर उस खुदा की करे बंदगी । मिले रोज न्यामत कटे गंदगी ॥
इसीका ज्यो तपसील बोला जिकर । करो माफ तकसीर साहेब····(?)
भगत एक ओ जब सुदामा हता । सुनो कूल आलम उसीकी कथा ॥
टुटे झोपडीमो रहे तीन बांस । ऊपर ना मिले एक तिनखा जो घास ॥
पवन घाव गर्मी बदन पर सहे । करे बंदगी वो किसेना कहे ॥
रहे लालमो मस्त कर्ता जिकर[1] । करे रोज फीकर कबीला पितर ॥
उघाडे बदन एक कपड़ा नहीं । नही ख्वावमो एक लोटा कही ॥
हमेशा करे वो किसन की जिकर । कहे बीच घरमे करो मत फिकर ॥
मुरब्बी हमारा किसन है बड़ा । रहे द्वारका बीच राजा खड़ा ॥
खजीना ज्यो मामूल दौलत धनी । रहे लच्छमी आप पूरन बनी ॥
मेहेरबानगी है उसी की कमाल । करो याद उसकी ज्यो साहेब जमाल ॥
नही दर्स उसका तभी लग गमी । मिले बाद उसको हमे क्या कमी ॥
करो ईस की सूमरो तुम जिकर । फजर की ज्यो है तुम मत करो फिकर ॥
कबीला कहे वो किसन कौन है । नही जाय मिलते सबब कौन है ॥
अप्सरोज उसकी बडाई करो । किसी काम की भी अनामत धरो ॥
सुदामा कहे मैं सिधारु फजर । पडा दस्त खाली धरु क्या नजर ॥
कबीला गयी एक हमसाह के । मुठी तीन चुडवे दिये लाय के ॥
चलो अब सिधारो सिताबी[2] करो । मिलो उस किसन के कदम ज्या धरो ॥
हकीकत कहो कूल दर्मादगी । करेगा जो तुम पर मेहरबानगी ॥
फटा एक कपडा बदन पर हता । कहू देखनेकू भी शाबूत न था ॥
उसी बीच चुबडे लिये बांधकर । चला याद करता किसन का जिकर ॥
निकल कर गया बीच जंगल उदास । मिले आप पूरन घडे दस्तरास ॥
कुरंगन मिली तास दहेने गये । और भी सकुन खूब उसकू भये ॥

१, नाम स्मरण । २. शीघ्रता ।

बजाया सुकर वै खुशाली भई। फिकर की जिकर कूल उसकी गई ॥
चला जाय आगे शहर द्वारका। ज्याहां है परब्रह्म साहेब निका ॥
शहर बीच बैठा सुदामा ब्रह्मन। किसन के चरन से लगी है लगन ॥
जगी जोत कंचन महाल हैं खडे। जडे बीच लेकर उजाला बडे ॥
शहरमो बसे कूल आलम सुखी। नही ख्वाबमो एक कुत्ता दुखी ॥
खुली बागशाई घरोघर चमन। पढे बेद चारो मगन है ब्रह्मन ॥
शहर देखकर अचंबा हुवा। फिरे ज्या बजाज्यो दिवाना हुवा ॥
कहा[1] है किसन ये शहर का धनी। करामात उसकी अजब है बनी ॥
जुबानी ज्यो आलमकू पुच्छता चला। कहे लोक यह है किसन का कबीला ॥
किले पास ज्या कर ज्यो थाडा[2] रहे। पुकारे ज्यो दर्बान तू कौन है ॥
बिरादर हमारा किसन है जिगर[3]। सिताबी करो तुम उसी को खबर।
इसम[4] है सुदामा कहो जायकर। वही ज्यानता है करो मत फिकर ॥
कहत है दिलोमो ये कंगाल है। किसन का बिरादर अजब बात है ॥
सचा या झुटा बीच ज्याकर कहो। कहो सामने ज्याय धाडा रहो ॥
गया बीच अंदर ज्याहां तक्त है। किसन आन बैठा वोही वक्त है ॥
खडा सामने ज्याय कीया सलाम। किसन सो कहे मै तुम्हारा गुलाम ॥
करूं अर्ज साहेब कहो मै खबर। सुदामा खडा है तुम्हारा जिगर ॥
एही बात सुनकर किसनजी चले। खडा था सुदामा वहां ज्या मिले ॥
अगर इस घडी की खुशाली कहूं। नहीं हो ज्यो कहता ज्यो चुप क्या रहूं ॥
लगाया गले प्रेम आसू चले। मिले वो किसन के गले सो गले ॥
पकड दस्त उसका महलमो चले। और भी बिरादर गले सो मिले ॥
बिठाया उसे न्याय के तक्त पर ॥ बजाये नगारे उसी वक्त पर ॥ (अपूर्ण)

१. कहाँ। २. खड़ा। ३. प्यारा। ४. नाम।

माधव महाराज के पद

(१)

क्यों करता मगरुरि [1] काफर भजता क्यों नहिं रामधनी ।।ध्रुव पद।।
रामनाम जप उलटा, कालभये बाल्मीकि मुनी ।।क्यो०।।
जब सागर में पत्थर तर गये, बंदर अठाराक्षोणी ।
शूर्पणखा और कुंभकर्ण सो, शिकयेस्त भयो कर्दमुनी ।
खरदूषण और भीसुरा अहिमहि, रावण की क्या रही बनी ।
किष्किंध देश का राज गमाया, भई बालीकी धूर धुनी ।
घर घर भिक्षा मागे भर्तृहरी, महाल मुलख सब त्यज रानी ।
गोपीचंद सोलासौ रानी, घड़ मंदिर है सात खणी ।
अपना हिसाब करले आ खडे माधव कर्दमुनी ।

(२)

प्रातसमय रघुवीर जगावे कौसल्या महरानी ।
उठो लालजी भोर भयो है संतन को हितकारी ।।ध्रुव पद।।
बंदीजन गंधर्व गुण गावे नाचे थै थै [2] तारी ।
शैलसुता शिवद्वारे ठाड़े, होत कोलाहल भारी ।।उठो०।।
सुन नरमुनि ब्रह्मादि देवता सनकादिक ऋषि चारी ।
बेदबानी विप्रजन गावे रघुकुल जन बिस्तारी ।
सुन प्रिय वचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख उघारी ।
चितवन अभय देत भक्तन को मुक्त भये नर नारी ।
भरत शत्रुघन छत्र चवर लिये जनक सुता लियो झारी ।
मेवा पान लियो कर लछिमन भरकंचन की थारी ।
कर अस्नान दान नृप दीन्हे, गो गज कंचन भारी ।
जयजयकार करत धन्य माधव रघुकुल जस विस्तारी ।।उठो०।।

---

१. मगरूरी (मराठी संतों ने हिन्दी-रचना में ह्रस्व-दीर्घ का कोई विचार नहीं किया ।)
२. पाठान्तर—दै दै ।

देवनाथ महाराज के पद

(१)

बजी कान्हा बंसी तेरी । ज्यालम [1] बे ॥ध्रुवपद ॥

सोत [2] हति [3] मैं अपन पियासंग । धुन कटियारी[4] मारी ॥ ज्यालम बे ॥१॥

नादभरी मन कछु नहिं सूचत । उघारी मैं आई दौरी ॥ ज्यालम बे ॥२॥

देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । बनसि [5] नहीं, मोहनि डोरी ॥ ज्यालम बे ॥३॥

(२)

भज मन श्री राजा रघुनाथ ॥ ध्रुवपद ॥

कहुको माता पिता और भाई । कहुको ये जामात ॥ भजमन० ॥१॥

कामिनी कामकी कठन पडत है । गहिरी अंधेरी रात ॥ भज मन० ॥२॥

जल अंजुली जल पाय पले पल । तव तनू सुहाग ॥ भज मन० ॥३॥

देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । साच बनी है बात ॥ भज नम० ॥

(३)

सोबी अकलवंत बड़ा है । नसीब सिकंदर है उसका ॥ध्रुव पद॥

जबलो चल्लो गठडी तबलग, ज्यो [6] करेसो उसीका ।

हता रावन कीरत बडी जद अंधधुंदमों राज किया ॥

तेहतिसकोटी देवपकडके दारबंदमों कैद किया ।

सुनो अकल की तारीफ जिन्हे चार बेद का खोज किया ॥

चौद चौकडे राज झुकाया दौलत खुब हजा लिया ।

छुटी पल्लोकी गठडी जद आध घडीकू डुबा दिया ।

अकलकी बे नकल रही जिने समस्त कुल भस्म किया ।

बिभिखन ने बहोत सिकाया[7] जरा न माने उसीका ॥

आई काल की घड़ी चुके नहीं किरा काल जद[8] दैतोका ॥बस मौत लिखी॥१॥

---

१. जालिम (क्रूर) । २. सोती । ३. थी । ४. कटारी । ५. वंशी । ६. जो । ७. सिखाया । ८. जब ।

(४)

राम न जाने तो नर जिया तो क्या जिया ? ॥ध्रुवपद॥
धनदवलत धन मालखजीना ।
और मुलुख सर किया तो क्या (किया) जी ? ॥राम०॥१॥
गंगा गोमति रेवा तापी ।
और बनारस न्हाया तो क्या (किया) जी ? ॥राम०॥२॥
गोकुल मथुरा मधुबन द्वारका ।
और अजुध्या कर आया तो क्या जी ? ॥राम०॥३॥
दर्वेश से बड़ा जंगम जोगी ।
और कान फाडा आया तो क्या जी ?॥राम०॥४॥
वेदपुरान की चर्चा घनेरी ।
और शास्त्र पढ़ आया तो क्या जी ? ॥राम०॥५॥
जर हि[1] जौहर महाल बनाया ।
खालि तिर्या[2] संग सोया तो क्या जी ? ॥राम०॥६॥
आत्मज्ञान की खबर न जानी ।
और बानी बक दिया तो क्या जी ? ॥राम०॥७॥
देवनाथ प्रभु आत्मा गोविंद ।
इस नयनन मों नहिं छाया तो क्या जी ? ॥राम०॥८॥

(५)

प्रीत की रीत कठण निभाना ॥ध्रुवपद॥
यह जग मो कोई नहीं है अपना मन मिले प्रित काहु करना ॥१॥
जीले[3] कृपा करे नाथ दयाधन तबले भली बुरी सब किछु सहना ॥२॥
देवनाथ प्रभु सच्चा साहेब देखत नैनमो मस्तहो रहेना ॥३॥

(६)

हम तो बैरागी बैरागी । निजरुपसो लव लागी ॥ध्रुवपद॥
ग्यान ध्यानका अचला बाँधा दिल मायासो बिचला ॥हम०॥१
शांती बभुत लगाई । मनकी दुवधा मार भगाई ॥हम॥२॥
बुंद फुला है जरदा । वायों लाल सुफेदी फरदा ॥हम०॥३॥
रतिपति मार कटाया । जत सतका लंगोट चढाया ॥हक०॥४॥
श्रीगुरु गोबिंद नैना । बन रहे देवनाथ मस्ताना ॥हम०॥५॥

---

१. यद्यपि । २. स्त्री । ३. अबतक ।

(७)

सखी मेरो पिया कौन बतावे । जाउंगी हूं बलहारी ।।ध्रुवपद।।
कहा करो, कित ज्याउ[1] अरी ! अब धुंडत हूं नहिं पावे ।।सखी०।।१।।
रैनदिन मोहे चैन पडे नहीं । सोवत निंद न आवे ।।सखी०।।२।।
बावरी भई सांवरो नहिं दिखत । या मन बिरह सतावे ।।सखी०।।३।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । पिया मेरो नाहिं दिखावे ।।सखी०।।४।।

(८)

बिना भगत भगवान भजन बिन कह कैसे भवतरण ।
काल शिर करने बैठा हरन ।।ध्रुवपद।।
नहीं काम, बेकाम हुवा तैं, नहीं खबर[2] तुझे जरा ।
बिखय बिख गर्द जर्द में परा ।।
हुवा सर्दतैं, मर्द नहीं बेतहा[3] दर्द नें घेरा ।
अकल गुंम बेसुधध होकर परा ।।
याद पकर, मन ठौरहि धरके, गुरु दरवाजे खरा ।
जाय बेनाहक भ्रमसो भरा[4] ।।
दयाल श्री गुरुराज देव रसराज दर्द का पुरा ।
पलख में चुके कालका फेरा ।।
मान बचन अनुमान डारके जाय, पकर गुरुचरन ।।काल०।।१।।
कहां माडि[5] और कहां अटारी कहां दौलत रथ घोडे
काल जब आन छतिसों मिड़े ।।
माइ बाप और भाई कबीला लडके छोटे बडे ।
कोइ नहिं नजीक रहते खडे ।।
जलदी जलदी उठाव मट्टी, पुकार यहि सब पडे ।
कि जब तन तेरा अचेतन पडे ।।
झूटीकाया झूटी माया घटे रोग ये बढे ।
खुसी हो वजाय जम चौघडे ।।
कोउ नहिं अपना, सपना सारा, पकड ग्यान की धरन ।।काल०।।२।।
ग्यान दे येही अपना देख सुरतकर जरा ।
बनाया अजब तहे पींजरा ।।
अंदर तोता राज करता, घट घट में है भरा ।
सुरत महबूब पाक चेहरा ।।
नहिं काला नहिं पीला नीला नहीं लाल नहिं हरा ।
रंगविन रंग खूब एकतरा ।।

१. जाऊँ । २. समझ । ३. बहुत । ४. पूर्ण । ५. दुमंजिला ।

वो तो तू ही तूज विन कोई और नहि दुसरा ।
गुरूबिन ग्यान मिले ना पुरा ॥
मन साफीसों गुरुचरणसों भाव पकर, हो शरन ॥ काल० ॥३॥
गुरु मेहर सो चुके कहर दिलदार बहार वो मिले ।
हमेषा मस्त मगनमों झुले ॥
रामनाम की नौबद वाजे, ग्यान गोंधडी गले ।
सुनोजी भाग उनोके खुले ॥
आपहि अपने साथी गुरू फिर आपहि अपने चेले ।
आपमों आप भये मतवाले ॥
अजब खेल साहेब का जिसका भाग उसी कू मिले ।
कि निगुरे माया मों ज्या भुले ॥
देवनाथ कहे साथ चुकावे गुरू जनम और मरन ॥४॥

(६)

प्यारे ! उलट कमलमो पलट, देख ले मौजा[1] ।
सब घट में नाथ विराजा ॥ध्रुव पद॥
नर लाल हुवा बेहाल, पड़ा भ्रमजाला ।
क्यंव[2] फिरता भटका भूला ॥
तैं, डार सुधारस घटकु, विखय बिख प्याला ।
पीकर हुवा मतवाला ॥
चढ आवे तुजपर काल फौज सों आला ।
को होय तेरा रखवाला ॥
इस माया मों एक तरन गुरु महराजा ॥सब०॥१॥
मैं हूं बे कहां का, कौन कहां सो आया ।
ये सार बिचार न पाया ॥
मा बाप बेहन और भाइ कबीला माया ।
मैं मेरा कहां डुबवाया ॥
संसार नरक का मूल, नाहक लपटाया ।
कर याद गुरु वस्ताद, पकर ले पाया ॥
सुन छमा टाल[3] ले हात[4] ग्यान को नेजा ॥सब०॥२॥
कर हुकुम फौज में बाजे काल का डंका ।
तुझे फाम नहीं ले नाम पीर मुर्षद का ॥
हो सवार साबुत तो बे घोड़ा मनका ।
चढ सवार सले बड़ा सुरतगडबांका ॥

---

१. आनन्द । २. क्यों । ३. करताल । ४. हाथ ।

सुन सुनोजी मनसिंग[1] किलेदार है ह्यां का।
गुरुग्यान चढा नीशान, पकड ले पटका ॥
भवजाल तोड जंजाल करले हाजा[2] ॥सब०॥३॥
हो निर्मल अपने हित कु तवज्जु[3] करना।
गुरु ग्यान सुनावे कान, बतावे नैना ॥
प्यारे ! देख कमलबिच मगन आप हो रेहना।
नहिं कमाल ये धन माल रैन का सपना ॥
साच कर मान सिपाही दिलजान नहिं रे ! तन अपना।
जम फोड पटे कू तोड नजर मों रखना ॥
प्यारे ! अजब फौजमें बाजे अनुहत बाजा ॥सब०॥४॥
सुन मेहरबान हनुमान धनी है आला।
तन ताक किया है पाक, कमल उजियाला ॥
अब दिया 'नाथ' के हाथ पिलाया प्याला।
दस्तान चढ़ा मस्तान हुवा मतवाला ॥
गवत का बाजे तास घनन घडियाला।
गुरु ग्यान समजकर तुझे लाख मो विरला ॥
कहे देवनाथ सुन बात खुदा नहिं दूजा ॥सब०॥५॥

(१०)

धनमान प्रवासी क्या करना।
दो दिन को जिंदगानी यारो आखरकू है मरना ॥ध्रुवपद॥

दोहा ॥ रात बसे और दीन चले, संसार है हाट।
सवदा लेके बिरला नीभा, बडा विकट है घाट ॥अजी धन ॥१॥
भूलाभूला क्यंव फिरे, कर दिन दिखाने ! पाक।
आखरकू पस्तावेगा[4] होगी तनकी खाक ॥अजी धन० ॥२॥
टीप[5] ॥ भाई जोरू लरका आखरकू कोई नहीं अपना रे ! ॥धन०॥१॥
दोहा ॥ देख अमरपद, अमर नहीं क्या संपत क्या राज।
काल आवेगा ले जावेगा, जैसे तितरको बाज ॥अजी धन० ॥१॥
नंगा हो कर आना जाना कोई नहिं आवे साथ।
काल ज्यालसी परी है गहरि अंधारी रात ॥अजी धन०॥२॥
टीप ॥ देवनाथ गोविंद कहे निरख निरख पग धरना रे ! ॥धन०॥२॥

(११)

तैं जनम अकारन खोया रे ! ध्रुवपद ॥
जोग जुगतकी रहनि न ज्यानी, कपड़े रंगे तो क्या किया ! ॥तैं०॥१॥

---

१. मन। २. हज। ३. ध्यान। ४. पछतावेगा। ५. टेक।

दोहा ॥ कासि बनारस द्वारका, तीरथ करि आया ।
उपर खासी काया रखी, मनका मल नहिं धोया ॥बे तैं०॥१॥
हित करनेको, ये तन दीयो, सो हित तैं नहिं चाह्या ।
धनमान मालमस्तान है मन दामनपर ललचाया ॥बे० तैं०॥२॥
टीप ॥ आतमग्यानकी ये तन क्यारी, बीज नहीं बोया ॥तैं०॥२॥
दोहा ॥ ज्यानीके जंगलमों मुसरी फन की नाहाक के घरमाया ।
माया अंधारी रात परी, भरपुर निंद भर सोया ॥बे तैं०॥१॥
आत्मामन इस देही मों, ज्यानत नहिं कच्छु[1] पर्‍या ।
आतमग्यानकी साचि[2] करामत, गुरु किरपा नहिं पाया ॥बे तैं०॥२॥
टीप ॥ देवनाथ प्रभुनाथ गोविंद सब घट मों रह्यो छाया ॥तैं०॥३॥

(१२)

आज मोरी सावरियासों लागी प्रीत ॥ध्रुवपद०॥
रैनदिन मोहे चैन परे नहिं, उलट भई सब रीत ॥आज०॥१॥
कहा करों, कित जाऊं सखीरी ! कैसि चली अब नीत ॥आज०॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । निसिदिन गावे गीत ॥आज०॥३॥

(१३)

तेरे पदरज की प्यासि भला ! बनसी वाले ! रे ! ॥ ॥ध्रुवपद ॥
रैनदिन मोहे चैन परे नहीं । नींद न आवत, मतवारे ! ॥तेरे०॥१॥
नंदनंदन ओ ब्रिजवासी ! गवलनके रखवारे ॥तेरे०॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । त्रिभुवन पालनवारे ! रे ! ॥तेरे०॥३॥

(१४)

घटघटमों बिराजे निरंजन साई रे ! ॥ध्रुवपद॥
निर्गुण ज्योतिस्वरुप सदाधन । नैननमों छब छाई ॥घट०॥१॥
रूप, न गून अनाम अगोचर । ब्याप रह्यो सुखदाई ! ॥घट०॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । आपहि आन न कोई ॥घट०॥३॥

(१५)

ये संसार बड़ो दुखदायी, निपट काल को रगड़ो ।
नेह लगावो, हर सो यारो ! नाम कभू ना छोड़ो ॥ध्रुपवद॥
ज्यो तुम हमसों प्रीत लगाई, सो दिन दिन पै बढ़ती है ।
कीज्यो यारो ! और कछु नहीं, यही हमारी बिनती है ॥ये०॥१॥
कल तो होगा कूच हमारा, ख्याल फकीरी रमता है ।
तुम चारों में प्रेम प्रीत सो भइ दो दिनकी गमता है ॥ये०॥२॥
भली बुरी कछु निकसी बाणी, अपना करके जाना है ।
देवनाथ प्रभु फक्कड यारो ! उनको उनहीं माना है ॥ये०॥३॥

---

१. कुछ । २. सच्ची ।

(१६)

अंतसमय को आवे यारो ! कालजाल को फेरा ।
गुरुबिन, या जग सबही करी है, कोन छुरावनहारा ! ॥ध्रुवपद॥
भाग पूरब खुला, लाखो पाया नरतनु खासा ।
महाल मुलुक क्या करना, यारो ! आखर जंगल बासा ॥अंत०॥१॥
भाईबंधु और जोरू लरके कोई नहिं अपना साथी ।
अपना करके भूले, यारो । होगी तनकी माटी ॥अंत०॥२॥
देवनाथ कहे समभ्यो बाबा ! जो चाहे दिल अपना ।
सचा है गुरुनाथ निरंजन दुनिया दो दिन सपना ॥अंत०॥३॥

(१७)

पिपीलिकासों ब्रह्म तलों जी यो जग भरा पसारा, ।
उलट कमल में नैन न्याहारो ब्रह्मरूप ये सारा ॥ध्रुवपद॥
नीज रूपसों आप बिराजे, आत्मा गुरु अलबेला ।
चीन्हो ताको मगन हो रहो पिवो प्रेम रस प्याला ॥पिपीलिकासों ॥१॥
प्याला पीया ऐसा जीसे नाथ निरंजन सूजे[1] ।
ऐसा मर्द कोन है ठाडा बचन साधुका बूझे ॥पिपीलिकासों०॥२॥
नरनारायन आपहि तुम हो ज्यो गुरुपदरस पीयो ।
देवनाथ कहे पलटो यारो ! अजरअमरपद पावो ॥पिपीलिकासों०॥३॥

(१८)

खासा ये तन पाया, यारो ! समज्यो कछु हित अपना ।
आया है सो जावे देखो दुनियां दो दिन सपना ॥ध्रुवपद॥
मरना हक है, उधार जीना, नाम धनीका जपना ।
साई पाक नजर कर देखा, क्या मायामों खपना ? ॥खासा०॥१॥
हुकुम पीर, मुर्षद का मानो, मगरूरी ना करना ।
नेक राहसों चलना बाबा ! आखरकू है मरना ॥खासा०॥२॥
फकीर देखे जिकिर मिटावो अव्वल खाली रस्ता ।
जल्दी पकडो नहिं तो डाले फासी आय फिरस्ता ॥खासा०॥३॥
करो सिताबी मर्दो ! उठके पीर कदमसो मिलना ।
ये संसार हाटको लेखा रात बसे दिन चलना ॥खासा०॥४॥
ज्योरू लड़के समदि[2] जवाई कोई साथ ना आवे ।
हाथी घोडा माल मबासी झूटा सबही ज्यावे ॥खासा०॥५॥
पीरनाथ गोविंद मेहरसों दुक्ख को मार भगाई ।
देवनाथ मस्तान हमेशा ब्रह्म से प्रीत लगाई ॥खासा०॥६॥

---

१. सूझे । १. समधी ।

(१६)

खासी यह नरदेही रे ! बाबा ! आवनकी फेर नाहीं ।।ध्रुवपद।।
पाप पुन्न समभाग भया, तब आपहि प्रगट सुहाई ।
आतमग्यान की पेटी सुहावत या बिच राजत साई ! ।।खासी०।।१।।
लखचौरासी फेरा फिरा तब भागसों पूरन पाई ।
अमोल से ज्यावत है घडिया समजत नाहिन कोई ।।खासी०।।२।।
या बिच आतमराम बिराजत बेदनकी है गाही ।
सो निजसार बिचार कर देखिय आप भरो जगमांहीं ।।खासी०।।३।।
आप भरो जगमांही कैसो देख विचारके येही ।
सरन हो नाथनिरंजनको और गुरुविन मारग नाहीं ।।खासी०।।४।।
देवनाथ गोविंद दयाघन व्याप रह्यो जगमांही ।
देवनाथ प्रभु सुमरो या मन गुरुबिन मारग नाहीं ।।खासी०।।५।।

(२०)

निगुरे ! क्या किया बे ! ।।ध्रुवपद।।
मा बाप और भाई कबीला । अपना करके भाया बे । ।।निगुरे०।।१।।
ज्योरू लरके समदि जवाई । मोहजाल लपटाया बे । ।।निगुरे०।।२।।
भागपूरबकता सों पाई । खासी ये नर काया बे । निगुरे० ।।३।।
या तन अतमाराम न चीन्हो । जनम अकारन खोया बे ।।निगुरे०।।४।।
बिखयबिखको प्याला पीयो । दिल मस्ताना भूला बे । निगुरे ।।५।।
देवनाथ कहे फिर जलदी सों नाहक के भरमाया बे ! ।। निगुरे० ।।६।।

(२१)

वा पर सो तनमन वारो ।।ध्रुवपद।।
मुरली अधरधर सुंदर नागर । गौवन को रखवारो ।। वापरसो० ।।७।।
सूरत शाम, मूरत खूब । नैनन रूप न्यहारो ।। वापरसो० ।।८।।
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । पूरन ब्रह्म है मेरो ।। वापरसो० ।।३।।

(२२)

कहु बालक कहु तरुन म्हतारा[१] । कहु सज्जन कहु कुटिल घुतारा ।ध्रुव पद।।
कहु अंधा कहु बहिरा मूका । ऐसो बहुरंगी मैं देखा ।। कहु० ।।१।।
कहु बह्मन कहु बन रह्यो सेखा[२] ऐसो बहुरंगी मैं देखा ।।२।।
कहु मालिक कहु न्हाई चोखा[३] । ऐसा बहुरंगी मैं देखा ।।कहु०।।
देवनाथ मनवारूप विखा । ऐसा बहुरंगी मैं देखा ।।कहु०।।

---

१. बूढ़ा (मराठी म्हातारा) । २. ख । ३. चमार ।

(२३)

जाग जाग भोर भई नंदलाल ! प्यारे ! ।।ध्रुवपद।।
तमरजनी निकस गई बोध पहाट [1] उजारे ।
सुरवरमुनि जन गात सदा गुन तिहारे ।।जाग०।।१।।
गौल से गोपालबाल आन द्वारमें ठाडे ।
कान कमलनयन कृष्ण दरसनको तिहारे ।।जाग०।।२।।
सुनत बिनति ज्याग उठो पतितको उधारे ।
देवनाथ भाव चरन सीस कमल धारे ।।जाग०।।३।।

(२४)

बन्सी कुंजबन मो मधुर बजी ।।ध्रुवपद।।
आधि रैन सुख चैन पियासंग । सुवत कान भयो रजी ।।बंसी० ।१।।
बेग उठ चली कुंज रहासो [2] । बावरी भई मोहे कछु न सूजी [3] ।।बंसी।।२।।
देवनाथ धुन सुनत कान । तब गृहधनसुतसंसार त्यजी ।।बंसी०।।३।।

(२५)

जमुनातट के निकट बजावे मधुर धुनी मुरली की ।
सुनत कानहू कई बावरी सूध न रही तनमनकी ।।ध्रुवपद०।।
आधि रैन सुख चैन सखीरी में पियासंग सोई ।
सुनत नाद मदमस्त दौर के बिंदराबन आई ।जमुना०।।१।।
कहु [4] री बजाई बंसी कान्हने मधुर लहर बाकी ।
सुनत डार [5] घर बार निकसी मैं बुद्ध राखी बाहकी [6] ।।जमुना०।।२।।
गरज गरजके बरसे मेहु बुंद बरी टपके ।
आधि रात अंधियारि परी री बीच दामनि चमके ।।जमुना०।।३।।
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन नंदलाल कान्हा ।
देख लपट रही पगसों सखीरी निरख रूप नैना ।।जमुना०।।४।।

(२६)

साथी कोई नहिं अपना बे ! दुनियां दो दिन सपना बे ।।ध्रुवपद।।
मायाखेल झूट पसारा मृगजल साच दिखावे ।
भूला नर जो इस जल म्याने [7] फिर फिर गोला खावे ।।साथी०।।
बहेन भाई सखाकबिला नाहक कहता मेरा ।
काल आवेगा ले जावेगा कोउ नहीं है तेरा ।।साथी०।।२।।

---

१. प्रभात । २. कुंज की राह पर । ३. कुछ न सूझी । ४. कहाँ । ५. त्याग । ६. बहकी । ७. मध्य ।

चौर्‌यासी में फिरते फिरते उत्तम नरदेह पाया ।
भूला भूला फिरे दिवाना अबहू समज ना आया ॥साथी०॥३॥
आपहि आपने साथ संगाली, दुजा कोइ नहिं आवे ।
ज्यान[1] बूझकर अंधा होता आखरकू पस्तावे[2] ॥साथी०॥४॥
धन माल जाता यारो ! पास कछू नहिं रहता ।
हरिभजनमों चित्त न लागे तो खा बैठे गोता ॥साथी०॥५॥
खविंद हमारा नाथ गोविंदा पूर्णब्रह्म मैं जाना ।
हरिभजनकी नोबत बाजे देवनाथ मस्ताना ॥साथी०॥६॥

(२७)

कैसी मोहन बंसी बजाई ।
सुनत धुन मोहे सुध नहिं पाई ॥ध्रुवपद॥
उत्तम सावन मास बिकसत पुन करे नर नारी ।
साथ सखी ले मंगल गावत आधी रैन अँधारी ॥
कान परी धुन मोह लयो मन ये ब्रिजलाल ब्यहारी !
मधुर बजावत, राग अलापत, गावत तान सलाई ॥कैसी०॥१॥
भादो मासमों मेघ गडागड़ टपकत बुंदरी खासी ।
रुमझुम-रुमझुम झुरमुट झरिया बरखत है घनरासी ॥
ओढि खुशाल दुशाल पियासंग रमही[3] भोगविलासी ।
बिजलीसी बंसी आयी, परि मोहे मदन कुमार भगाई ॥कैसी०॥२॥
कुंवारि करे सिंगार सवारो सेज पे नाथ हूं बैठी ।
सारी हरी चुनरी पेहरी भर जोबन नैन अंगेठी ।
आयो पियो मोरे लपट गले मिल बोलत बातही मीठी ।
तो सुनो आवो नंद कछु तन मन धन आस छुराई ॥कैसी०॥३॥
कार्तिक मासमों गोरिया नहावत कुटिलालक सवारे ।
बैठी हती ढीग मातापिताजूके कानन नांद न्यहारे ।
ब्रिंदाबन ब्रिजराज बजावत बंसी नंददुलारे ।
से सुनके भई बावरी चंचल मन कछु सूजत नाहीं ॥कैसी०॥४॥
अघहनमों अघहर बरत करत है पूजत देवि कुंवारी ।
मांगत दे भिक[4] जनमजनम की दे कंश या बनवारी ।
जमुनाजीके तट निकट बिराजत ठाडी भये पुतनारी ।
साथ लियो ब्रिजबाल गोपाल ज्यो पिता घट कास सोंहाई ॥कैसी॥५॥

---

१. ज्ञान । २. पछतावे । ३. रमण करती थी । ४. भीख ।

पूसनमों कछु पूसन पावे सिर पूरन भई है उदासी ।
ज्या गह्यों मन प्रभुपायनसों गृहधन आस निरासी ।
धुन सुन मुरली की बिकल भयो मन कुंजमें ज्याय के निकसी ।
हरि बिन कछु नहिं सूजत या मन बावरि भइ है लुगाई ॥कैसी०॥६॥
माहो मासमों मनसिज मोरे बाजत थंड[1] घनेरी ।
तकिया तोषक नरम न्याहली कछु नहिं लागत प्यारी ।
मारी अटारिके डारी निरखत नैन कुंज ब्यहारी ।
खडरस मोहे मीठो न लागत बंसी चित्त चुराई ॥कैसी०॥७॥
फागण मासमों खेलत फागको सब मिलया[2] ब्रिजनारी ।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिर की हाथ लिई भर जोरी[3] ।
भक्ती को रंग सुरंग बनायोरी प्रेम भरे पिचकारी ।
ऐसी भई मतवारी सखी सब कान्हकु देखन आयी ॥कैसी०॥८॥
चैतनमों मधु चित्त चितावत कामि भई मृगनैनी ।
आंब के वनमांही किलकत कोकिल बोलत अमृत बानी ।
ब्रिजराज बिरह की मारी भई तब मोहन लागसों हानी ।
मुरलि नही सखी मोहनी डारी नांद सुनी ललचाई ॥कैसी०॥९॥
बैशाख मासमों आइ उदासी भारत जब रूख पाती ।
तैसे हूँ डार सिंगार जो हरि बिन भरभर आवत छाती ।
आधि रैन मोहे चैन परे नहीं कुंजमों धूंडन जाती ।
बावरी भई जैसी खाई बिजया सारी सूध गमाई ॥कैसी०॥१०॥
मास भये दस हेरत बाटके तो सखी जेठही आयो ।
दास उदास के आस मिलि बेगी सुभ सकुनही दिखायो ।
बहुवा फिरकत बाजुवा लपलपके नैन चलावो ।
आयी हुती कही मोसों सखि ! चल बेगी कान्ह बुलाई ॥कैसी०॥११॥
आयी आखाडमों आस पुरी मन पुरनानंद भयोरी ।
या तन कुंजमों श्रीगुरुगोविंद आतमाराम न्यहारी ।
समरस रम कह्यो मानरूपमों वृत्ति भई अविकारी ।
देवनाथप्रभु अंतर बाहिर छाय रह्यो सबमांही ॥कैसी०॥१२॥
प्रभु सुंदर मुरली बजाई । या तनमों सब हेत मिठाई ॥

(२८)

भली फकीरी छांड जिकीरी[4] नरख किसी सों काम रे ॥ध्रुवपद॥
गाता फिरता जगमों रिझाता । क्यंव चाहाता ते दाम रे ॥भली०॥१॥
धनकामिनिसों लपट रह्योके । पकुटे झुटे चाम रे ॥भली०॥२॥

---

१. ठंढ । २. मिल कर । ३. झोली । ४. नाम-स्मरण (ईश्वर का गुणानुवाद) ।

दुजी दौलत मारनसें पर। ले हरिजी को नाम रे ।।भली०।।३।।
देवनाथप्रभु देख नजरसों। सच्चा आत्माराम रे ! ।।भली०।।४।।

(२९)

गोकुलवाला। ब्रिजबासी गोकुलवाला ।।ध्रुवपद।।
माथे मोर मुगुट है डाला मानो कोटि सुरज उजियाला।
कानन कुंडल की छब आला। गले सुहावत बैजयंतीमाला ।।गोकुल०।।१।।
आजि जसोमत तनुरंग काला। गहरा जमुना का जल काला।
तामों रहत फणी वो काला। ताको जेर करे नंदलाला ।।गोकुल०।।२।।
ज्याको ध्यान धरत शिव भोला। सो गोपिनसों करत किलोला।
साथ लियो गोपन का मेला। कमल नैन प्रभु छेल छबेला ।।गोकुल०।।३।।
सद्गुरुगोविंदनाथ गोपाला। भुवनत्रय को पालनवाला।
मुरली अधर धरसो अलबेला। देवनाथ को दिनानाथ रखवाला ।।गोकुल०।।४।।

(३०)

गुरु कृपेका अंजन पाया मेरा मैं जानूं।
आप रूप नयनों में छाया मेरा मैं जानूं ।।ध्रुवपद।।
उलट मार्ग की रहा बनायी मेरा मैं जानूं।
बुरे करम की रेख मिटायी मेरा मैं जानूं ।।गुरु कृपेका०।।१।।
चांद सुरज बिन परा उजाला मेरा मैं जानूं।
पिलाया अजरामर का प्याला मेरा मैं जानूं ।।गुरु कृपेका०।।२।।
जहां तहां मैं आप अकेला मेरा मैं जानूं।
आपहि गुरु और आपहि चेला मेरा मैं जानूं ।।गुरु कृपेका०।।३।।
गोविंदनाथ ने यहि बतलाया मेरा मैं जानूं।
देवनाथ अपने में मिलाया मेरा मैं जानूं ।।गुरु कृपेका०।।४।।

(३१)

खेलुंगी आज मैं होरी। प्रभुनाथजी संग ।।ध्रुवपद।।
रूप भयो जगमों है अनुपम। जाउंगी हूं बलिहारी ।।खेलुंगी०।।१।।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिरकी। हात लई भरजोरी ।।खेलुंगी०।।२।।
आतमरंग सवाईसों मारूंगी। प्रेम भरी पिचकारी ।।खेलुंगी०।।३।।
देवनाथप्रभु नाथ कृपाल सों। कबहू न रहूंगी मैं न्यारी ।।खेलुंगी।।४।।

(३२)

या जग भयो तो क्या करना जी ? ।।ध्रुवपद।।
भाउबंद और पूत लुगाई। अंत न कोऊ अपना ।।या जग०।।१।।
रैन बसे दिन उठे चल बे ! दुनियां सब सपना ।।या जग०।।२।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन। निरखत पग धरना ।।या जग०।।३।।

(३३)

देख सुरत टक लागि नैनसों नैन भेद कर दिया ।
गुरु नें जोगन मुजकूं किया ॥ध्रुवपद॥
एक दिन सखिया मस्त दिवाना, सुन मंदिरमों खडा ।
फकिर मुजे देख देख के आडा ॥
मद मत्सर भाईबंद मारे, बिन खांडे सों लढा[1] ।
जाके कामक्रोध सों भिडा ॥
मान गुमान मार भगाई, अंहकार कूं तोडा ।
फेर त्रिकुटसिखर पर चढा ॥
टीप ॥ अरस दरस कर दरस दिखाया अरूप रूप हो गया ॥गुरुनें०॥१॥
आसामन सा जबरदस्त ये, कपडे छिन के लिये ।
त्रिगुनके बंधे बाल छुडाये ॥
पंचतत्व के भरे भंडार उसी बखत लुटाये ।
पाप जनमजनम के धोये ॥
गंगा जमुना सरसति संगम तिरिया तिर्थमों न्हाये ।
धोके जनममरण के खोये ॥
टीप ॥ शांतीबभुत चढाई बदन पर बहोत दिलासा दिया ! ॥गुरुनें०॥२॥
नव शिगले की डाले बिच, ग्यान कफनि पेन्हाई ।
कानमों प्रेममुद्रा चढाई ॥
जतसतकी मेरे खांदे झोली, बिबेकलकरी दिई ।
साइनें उमर मेरी बढाई ॥
अनुहत बाजा बजत घडयाल, करबिन जप हो रही ।
घरघर आलक फेरि जगाई ॥
टीप ॥ दृश्य ब्रह्मकर भवरगुंफामों हात पकर ले गया ॥गुरुनें०॥३॥
नैनन हरबिच छुटे फवारे दीनरयन सब गई ।
सुरजबिन चांद उजाला सही ॥
लखलख तारे झमके सारे, तुर्या उन्मनि भई ।
अखियां जर्द गर्द हो रही ॥
खुली समाधी हरदम जागी घटघटमों निज साई ।
सच्चा गोविंद है तुही ॥
टीप ॥ देवनाथप्रभु नाथ निरंजन, दिलसों दिल मिल गया ॥गुरुनें०॥४॥

---

१. लढ़ा ।

(३४)

कर हरजी को यामन ध्यान हो ! ।।ध्रुवपद।।
या जगमों कोई और न जनिये । पूरन भयो भगवान हो ! ।।कर०।।१।।
जल थल व्रिखमें पाखाननबिच । रूप भयो सब जान हो ! ।।कर०।।२।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । सब घटमानस मान हो ! ।।कर०।।३।।

(३५)

को खेले तोसु होरी, ठग जा रे ! कन्हय्या ! ।।ध्रुवपद०।।
मथुराके बाटमों रोकल घाटको । काहेकु घगरिया फोरी ? ।।ठगजा०।।१।।
सुन्दर श्याम सुहानि मूरत । ऐसी केसी मत भारी ? । ठगजा०।।२।।
कुंजगली बिच आन अडावत । मोरी काहेकू बहय्या मरोरी ? ।।ठगजा०।।३।।
देवनाथप्रभु नंददुल्हारे । तुम जीते हम हारी ।।ठगजा०।।४।।

(३६)

होरी खेलन आयी या ब्रिजकी ब्रिजराणी ।।ध्रुवपद।।
लालगुलाल पेहरी सारी । अंजन दिग्मृगनयनी ।।होरी०।।१।।
धुंडत बिंदराबनकुंजनमों । गोरसकी रसदामी ।।होरी०।।२।।
आयो बसंत बिलासत कुंजमों । कोकिला बोले बानी ।।होरी०।।३।।
कुंजगली बिच पायो कन्हय्या । मूरत ग्यान सुहानी ।।होरी०।।४।।
हात गुलाल भरे-भर मूठी । लयो मारत है मन मानी ।।होरी०।।५।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । मंद हंसे मू सखयानी ।।होरी०।।६।।

(३७)

होरी खेलन आयो कन्हैया राधा गोरी ।।ध्रुवपद।।
श्याम सुंदर मनमोहन या श्यामकी है छब न्यारी ।।होरी०।।१।।
रंग भयो भरपूर अनूपम । कंचनकी पिचकारी ।।होरी०।।२।।
श्रीनंदलाल गुलाल ये खुशि । याल खडे बनवारी ।।होरी०।।३।।
साथ लये औरनके छोरे । गावत है ललकारे ।।होरी०।।४।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । ब्रिजराज बिहारी ।।होरी०।।५।।

(३८)

चल श्याम सुंदर मनमोहन खेलन आयोजी ! ।।ध्रुवपद।।
बादर भये लाल उडत गुलालसों । छुटत रंगकी फुवारी ।।चल०।।१।।
बिंदराबनके कुंजगलिनमों । ठारि भयी ब्रिजनारी ।।चल०।।२।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । श्रीनन्दलाल ब्यहारी[1] ।।चल०।।३।।

---

१. विहारी ।

(३९)

सुनरी सुन माई ! जसोदा ! ठकडो है कान्हा तेरा ।।ध्रुवपद।।
सात पांच मिलकर बहेना[1] । जात हती जल भरने जमुना ।।
बीच मिलोरी तेरा कान्ह । नाहक हमकूं व्हां घेरा ।।सुनरी० ।।१।।
नन्हे नन्हे मिलावे छारे । कुंजगलीनमों आन घेरे ।।
ऐसे इसके फैल बुरे । जी ! तरसाया जी ! मेरा ।।सुनरी०।।२।।
एक दिना घर नहीं रे ! सास बांधे पीतवसनकी कांस ।।
थाडा आन रही मोरी पास । पल्लो इन पकरा मेरा ।।सुनरी० ।।३।।
एक करसे पकडे बह्य्या[2] । दुजे करसे छुवत छतीया ।।
यापे प्राण देउगी मय्या । नाहक सतावत देह हमारा ।।सुनरी०।।४।
देवनाथ प्रभु या श्याम । मोहे मागतसेरी दाम ।।
मोहे कछु नहीं रही काम । मानस मोही लियोरी मेरा ।।सुनरी ।।५।।

(४०)

ऐसी केसी बंसी बजाई बिंदराबनवासी ।ध्रुवपद।।
मधुर बजी तेरी बंसीकी धून । सोवत निंद न आयीरे ! ।।ऐसी०।।१।।
सोवत जागत बैठत ऊठत । आन घुसे मनमांही ।.ऐसी०।।२।।
तोडी असावरी राग अलापत । गावत तान सवाई ।।ऐसी०। ३।।
तान सुनी मन हो गयो बावरो । मोहे कछू सूजत नहीं ।।ऐसी०।।४।।
देवनाथ प्रभु दासी तिहारी मैं । तू मे प्राण गुसाई ।।ऐसी०।।५।।

(४१)

बंसी बजाबनहारे । अब कर हो दया मोपे ।।ध्रुवपद।।
नंदके नंदन कंसनिकंदन । गौवनके रखवारे ।।अव० ।।१।।
श्रीजगजीवन व्यापक जगमें । वेद कहे ललकारे ।।अब० ।।२।।
या मनमोहन दीनोद्धारण । श्यामसुरत घनकारे ।।अव० ।।३।।
वेग करो जी ! न देर लगावो । राधाजूके प्राणके प्यारे ।।अब० ।।४।।
देवनाथप्रभु ऐसो कीजे । नयनन रूप न्यहारे[3] ।।अब० ।।५।।

(४१)

हो तैं ग्यान दिवाने सच्चा । अबतैं तो गुरुका बच्चा ।।ध्रुवपद।।
अपने हितके काजे हमहु मन माने सो कीदा ।
कुट्टनगी (?) दीक्या कह जाने मग मावना पूदा ।।हो तैं० ।।१।।
कोन किसीका खेस कबीला कोउ नहिं किसीका भाई ।
सब घटम्याने साहेब सच्चा देख तमाशा येही ।। हो तैं० ।।२।।

१. बहिनें । २. बाँह । ३. निहारे ।

आपहि अपना बाप म्हतारी आपहि अपना बेटा ।
आपहि अपना गुरु पिर चेला कालकहरसे भूटा ॥हो तैं० ॥३॥
आपहि आप मगनमों रहेगा बोध भंगमों धुंदा ।
नरकाया फेर न आवे नाहक हुवा है अंधा ॥हो तैं० ॥४॥
देवनाथ ये कहत पुकारे मायामों जगमंदा ।
हमतो निकसे फेर फटकर खाविंद नाथ गोविंदा ॥हो तैं० ॥५॥

(४३)

रमते नाथ फकीर कोइ दिन याद करोगे ! ॥ध्रुवपद०॥
कोइ दिन बैठे पालखि घोड़ा, कोई दिन गिरो अबदागीर ॥कोइ० ॥१॥
कोइ दिन वोढे शाल दुशाला, कोइ दिन भगवे चीर ॥कोइ० ॥२॥
कोइ दिन धोती है लंगोटी, कोइ दिन नंगे पीर ॥कोइ० ॥३॥
कोइ दिन खासा पलंग बिछानो । कोई दिन जमिन पे गीर ॥कोइ० ॥४॥
कोइ दिन महलो म्याने[1] सोते । कोइ दिन गंगातीर ॥कोइ० ॥५॥
कोइ दिन खेलते हंसते रोते । करले नामजिकीर[2] कोइ० ॥६॥
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । सच्चे साहेब पीर ॥कोइ० ॥७॥

(४४)

लगन लाग रही रामभजनसों ।
और न कछु मन आवे मेरे राम ॥ध्रुवपद॥
रामविना मोहे चैन परे नहीं । झूटी दिखावन धनसुतधाम ॥लगन० ॥१॥
झूठे भाईबंद लुगाई । अवसर कोउ न आवे, काम ।लगन० ॥२॥
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । सच्चा है गुरु आत्माराम ॥लगन० ॥३॥

कटिबंध—१

मनमोहन नंद कन्हय्या ब्रिजवासी अजबविलासी ॥ ध्रुवपद ॥ कर धर मुरली अधर लगावे, अजब तर्हेकी बैन[3] बजावे । सुनसुन गोवा[4] दौरी आवे रंगरंगकी अजब तन्हेकी, गौवा बाकी धुन मुरलीकी, नीकी सुनकी नइ नइ बछिया, लइ लइ अछिया, चितरी कबरी, सुभेद प्यारी, श्यामरंग गुलजार हजारी । काली पीली लालजर्द, वेहरि कपिला रंग करारी । सोरि दौर के, जमुनाके तट, गहण करकर, नजर देख, ब्रिजपाल बालको, उठाय

१. में । २. नाम-स्मरण । ३. वेणु । ४. गौएँ ।

सिरको, चरणछुई तब दौरकान चुचकार लई जो, तीन लोकके नाथ कहावे, दयाल कर गोअंग फिरावे, कर अंगसंग, भवभंग मिटावे, सब घटमों भरपूर भरहट, आप अकेला नंद-लाल गोपाल आपही, गोकुलपत अविनाशी ।। मनमोहन० ।।१।।

पूरनब्रह्म परमात्मा सुभावे, ज्याको भेद बिधीहि न पावे, ज्याको सुर मुनि अखंड गावे, सो गवलनके पीछे दौरे, मिलाये सारे, गोपबाल जमुनाके तटतट परगट होकर, देत हरे-बलि भावेभारे, निजभक्तनके काज सुधारे, फनी कालया जलमो घेरे, नाथ फनीको बीख निकारे, मुये ग्वालसो जिवाय सारे, अघासूर वर पगसो चीरे, मारेसारे केसासुरकी, नामी नामी अगबग कैसी, तृणासूर असुर संहारे, गोबछियनको अहंकार धर बिधी चुरावे, ग्वाल-बालये तमाम सारे, ऐसी ज्यानके आप बनेसब, ग्वालबालये गऊबछिरिया, नइ नइ अछिया, तहा तहा को, तैसा ज्याको रंग तैसो ऐन बैनको स्वरूप धरके, काठि कमरिया, हातमो सूदे, आपसमों कूदे फांदे, देख बिधी अभिमान डार के नीके मनमो सुभाव धरके, चरणकमल सुकमलनाम शरणागत आयो, सत्यलोकको बासी ।।मनमोहन० ।।२।।

चारो भुजसू आयुध डोरे, कटतट पीत पितांबर पेहरे, निजभक्तन को काज सुधारे, भगतकाज, जदुराज लाजतज, पंडुराजसुत अर्जुनजीके रथके गाडीवान बिराजे, तुरंग ले पानी में ज्यावे पूछपाछके धोय धाय, ज्योपजाप रथ खूब उडावे, परदलमौ सैराट भिडावे, अतिरथी पग तुरंग उडावे, कर बागडोर चुचकारत भूनो, बानी उच्चारत होरे, हांरे होरे पुंडरीकके भाव भगतसो, बिट पेयारे, नंददुलारे, तीनलोकमो व्यापक सारे, तहातहाके खूब पसारे, अजब रंग श्रीरंग विराजे, मीमाके नीर तीर दिगंबर बजे ताल मिरदंग झलरिया, गावे निजजन, प्रेममगन हो डुले सदा वो अजब नैनसो, देवनाथकी चरणकमल सो ऐनरूपसो, लगी लगन मस्तान हमेशा, आप रूपमो भयो मिरासी ।।मनमोहन० ।।३।।

कटिबंध—२

त्रिभुवनको पालनवाला भज साहेब नाथ गोपाला ।।ध्रुवपद।।

जो है नामरूपसो न्यारा, अलख अगम अगोचर प्यारा, सो गुरु आप रूप विस्तारा, गहरा खूब भरा दर्याव लहरा, ज्याकी बाकी सो हरहीरा, बसेनि देह देहरे विचरवनही, काला पीला हरा लाल कछु रंग तरहाको, निजरंगसो, अभंगजू, प्रभू या जगमाहे, घटघट व्यापो लगट लगाये, गुरुपुज श्रीगुरुकृपासो बिकट घाटको, पलट कमलमो उलट चले, जब निकट धीटमन, पलट रह्यो नद, अयन रूप, निजनयन प्रगटलखाट भयो उजियाला ।।त्रिभुवनको०।।१।।

नयनन हर मो छुटत फुकारे, चांदसुरजबिन झलकत तारे, कोट मदन वा रूप पे वारे, छाय रह्यो हर अरूप रूप, अभूप जगत मो, सरग मिरत पाताल भू, आप, तेज, अकास, समीर पंचतत्व सब आप आप बने है, चारो बानी, चारो खानी, चारो तन आकार अजब ये, निराकारको रूप विराजे, तरा तरा[1] को रूपरंग विस्तार, सार कर, बिचार देखत, पार न पावे विधि वेद अनंत अपार तीनलोकमो, व्यापकसो हर, विश्वंभर गुरुसाहेब आप अकेला ॥त्रिभुवनको० ॥२॥

पाई गुरुकिरपा की छाप, भाग्यो माया भरमकलाप, जित देखो तित आपहि आप, आप एक अनेक एक कछु कही न जावे, अचल अमलघट, कमल कमलमो, व्याप रह्यो है, जलमो थलमो, जमाल साई, कमाल देखा अलखखलकमो, भयो खूब भरपूर चलकसो, रसिक रूप अरूपरूपभो भये दंग तद गुंग अनुहत, चंग बजत रह्यो नाद घुमाय, घुंघुंघुंघुं घुंमर छाई, जोग जुगुतकी रहनी पाई, आप आपस मो रंग लपट रहे, निसंग अटल श्रीगुरुनाथ गोविंदविंदसिर आप बिराजे, देवनाथ के नैन बागमो छाय रह्यो गुल्लाला। त्रिभुवनको०॥३॥

---

१. तरह-तरह।

दयालनाथ महाराज के पद

पद गणपती पर

भज गणपति रिध[1] सागर जी।
सागरजी बुध आगरजी नटनागर जी ॥ध्रु०॥
माथे मुकुट दूब हरि शोभे। गंड पे भवर शशीधरजी ॥भज०॥१॥
शेंदुर[2] अंग चढावे भबुंका। लपक तोंद गुण आकरजी ॥भज०॥२॥
फरशांकुश दो[3] हात बिराजै। मोदक मिसरी तिजे[4] करजी ॥भज०॥३॥
सुमरत बिघन बिनाश करत है। चवथे कर देवत[5] बर जी ॥भज०॥४॥
चूहे पर देवनाथ दयालू। हंसत आवत निज जन गरजी ॥भज०॥५॥

पद शंकर पर

तुम देखो भाई। सब देवन को सांई ॥ध्रु०॥
सिरपे जटाको है भार। वामो बहती गंगाधार।
गरेमो लटकत भुजंगहार। भूतन की असनाई[6] ॥तुम०॥१॥
ज्याके अंक सोहत गौरा। मांगत खाते भंगधतूरा।
तिसरा अखियन अगन उबारा। रखता ऐसी सुघराई ॥तुम०॥२॥
बुटेदार बघ्यंबर पीला। तापे गजचर्माबर गीला।
गरसों गला बनो है नीला। बजावत डमरू की घाई ॥तुम०॥३॥
चिता को भस्म चढावत अंग। उन्मनिमुद्रामों खुस रंग।
सुरमुनि पूजत गावत दंग। ज्याकी कला नकल आई ॥तुम०॥४॥
दयालू देवनाथ[7] शिवभोला। बर देनेकू बड़ा भोला।
दशभुज पंचानन पशुवाला। मुनि जनको यह सुखदाई ॥तुम०॥५॥

---

१. ऋद्धि। २. सिंदूर। ३. दो। ४. तीसरे। ५. देता है। ६. आशनाई (प्रेम)।
७. ये अपने गुरु देवनाथ का नाम कभी अपने नाम के आगे और कभी पीछे लगाते हैं।

पद नाममाहात्म्य पर

मोहे येही देनाजी । नंद लालाजी ! ॥ध्रु०॥
जपतप साधन कछु नहिं जानूं । जपंत रहूं नाम मालाजी ॥मोहे०॥
नामको महिमा कवन बखाने । भवको मिटावे जमधानाजी ॥मोहे० ।
नारद मुनि जन शुक सनकादिक । ज्याप जपे शिवभोलाजी ॥मोहे०॥
देवनाथ प्रभुनाथ दयाला । त्रिभुवन को प्रतिपालाजी ॥मोहे०॥

पद विठोबा पर

भज पंढरपुरवालाजी । बालाजी जगपालाजी ॥ध्रु०॥
कटपर कर बिटपर प्रभु थाडा[1] । शामबरन घन कालाजी ॥१॥
दाम खरचुश्रा कछु लगता नही । मुफत की तुलसी मालाजी ॥२॥
भांगही सिरनी कछू ना जाने । चुकटी अबिर खुसियालाजी ।३॥
ताल बजावत गावत निशदिन । ढोल मिरदंग करतालाजी ॥४॥
ऐसो भजनानन्द कहूं नही । नहि देखा दध कालाजी ॥५॥
भीमातट देवनाथ दयाला । नाचत फिरत मतवालाजी ॥६॥

पद विठोबा पर

राजनको महाराजधिराजा पंढरपूरमो ठाडे हो ॥ध्रु०॥
जगत जगदीस को भेदहरन हरचरन कमल दो जोरे हो ॥
मीथ्या माया कारण विटपे[2] यह प्रभुजी असवारे हो ॥राज०॥१॥
कटपर राखे हात निरंतर लागो काच्छ हमारे हो ।
बोलत[3] भव को थाह बतावत पतित अनंत उधारे हो ॥राज०॥२॥
भीमा तटपे नाथ दिगंबर आसा लागेही थाडे हो ।
मिलन अपने यहिये बतावत यह कारण दध ज्योरे हो ॥राज०॥३॥
ब्रह्मानंद आनन्द भजनमो डोलत नंद दुल्हारे हो ।
देवनाथ दयाल अनाथ के घनकारे रखवारे हो ॥राज०॥४॥

पद

लेव खबरा हम्यारी[4] कुवर कन्हयाजी ॥ध्रु०॥
भवजलमो बुरतको[5] राखो । धन कन सुत महतारी ॥कु०॥१॥
हीन दीन पतित तुम तारे । गजगणिका व्यभिचारी ॥कु०॥२॥
नगन सभामो कौरव करते । राखी पांडव-नारी ॥कु०॥३॥
देवनाथ प्रभु दयाल आवे । दौरत कृष्ण मुरारी ॥कु०॥४॥

---

१. खड़ा है । २. ईंट पर । ३. बूड़त । ४. हमारी । ५. बूड़नेवाले को ।

पद नामस्मरण पर

श्रीगोपाल गोविंद गदाधर पल छिन रट मन मेरे ।।ध्रु०।।
स्त्री भाई पिता महतारी । पूत सुता धन तेरे ।।
काम न आवे धाम सिद्धासन । अंतसमय जमद्वारे ।।श्री०।।१।।
नाम लेत बाल्मीक अजामिल । पशु गजकू उद्धारे ।श्री०।।२।।
गणिकाको निजधाम दयो तेरो । पापतो ये हर्यो रे ।।श्री०।।३।।
ध्रुव पहेलाद बिभीखन नारद । निसिदिनी नाम उचारे ।
व्यास बसिष्ठ शुकादि मुनिनको । नामही जन्मसुधारे ।।श्री०।।४।।
देवनाथ दयाल महा सब जनममरण दरवारे ।
भवसागरमो बुरत तोहे तुमरोच[1] हरी तारे ।।श्री०।।५।।

पद गुरु पर

गुरूके चरण चित लागाजी ।
लागाजी प्रित धागाजी ।। अनुरागाजी ।।गु०।।ध्रु०।।
गुरु किरपा अंजन नैननमो । लेतही भवभ्रम भागाजी ।।गु०।।१।।
लाल सुफेद पर काला नीला । बोठा अंबर बागाजी ।।गु०।।२।।
थामो पीत शिखा झमकत है । जोतहि झग नग जागाजी ।।गु०।।३।।
परब्रह्म देवनाथ दयाला । देखत भवभ्रम भागाजी ।।गु०।।४।।

पद गुरुस्तुति

गुरुपद पायाजी । अनुभव आया जी ।।ध्रु०।।
सदगुरूने जद किरपा कीयी चिदघनतक बिराजे ।
तन्मयछत्र विचित्र सुहावे अनुहत डंका बाजे ।।१।।
द्वैतदलनकरने मिलाया दैवीसंपतको जा ।
देखतही सबशत्रु मिटगये इस बिध मैं हूँ राजा ।।२।।
सारबिचारबिबेकसो नेंमधरमसो जाने ।
मुक्ति निरतितूर्या सह मिल रहू, कीर बेद बखाने ।।३।।
भगत जगतमों मिलगये इसबिध, नामनिशान फडके ।
त्रिभुवनका सब खेल हमारा, जमकी छाती तडके ।।४।।
जगमगज्योत निरामय देखी क्या कहुँ अजब तमासा ।
देवनाथ प्रभुदयाल निरंजन झुले मस्त हमेशा ।।५।।

---

१. तुमने ही ।

पद बोध पर

हरि के चरण चितलागोरे । प्रभुके चरण चित लागोरे ।।ध्रु०।।
काहेके मातापिता और भाई काहेके पूत जमाता ।
अंतसमयको कोउ नहिं अपना जमका दुख घन पायो ।।१।।
लालसफेद और कालानीला रंग में घुस घुस आवो ।
पीतसिखा और दामन चमकत जोतमें जोत समाओ ।।२।।
देवनाथ प्रभुदयाल को भवती भावरी जावो ।
जनममरन का डर नहिं बाबा जीवत मुक्ती पावो ।।३।।

पद कृष्ण-स्तुति

भजमन राधापत कान्हाजी ।
कान्हाजी ब्रिजराणाजी । नन्दछोनाजी ।।ध्रु०।।
अटल बेहारी मुगुट शिरशोभे । कुडल झलकत कान्हाजी ।।भज०।
पीत वसन कट राजत साजत । मालगले मोतियानाजी ।।भज०।
गोपिनसो झटपट खेलत है । छतियन गेंद धरानाजी । भज०।।
देवनाथ प्रभु दयाल जगको । कहत जसोमति तान्हाजी ।।भज०।।

पद प्रातःकाल का स्मरण

उठ प्रभातसमय जाग राधापत कान्हा ।।ध्रु०।।
गौवनको मेल बाल गोपनके अयहा ।
बजत टाल मृदंग रंग मधुर राग बीना ।।उठ०।।१।।
पसुपत बिधी नारदादि सनक भक्त सैना ।
हात जोरकर बिनती, दर्शन दिजै नैना ।।उठ०।।२।।
ब्रिजके बाल उठ गोपाल नंदलालछोना ।
देवनाथ प्रभु दयाल गावे जस ताना ।।उठ०।।३।।

पद गोपीविलाप

सुंदर नंदनंदन प्यारे । दुःख दे गयो लोगनवा ।।ध्रु०।।
दहमो हरजू निकस भये तब सुख गो मृगजन बारे ।
गोप लुगाई कहत हमारो कोन अब गोरस च्योरे ।।सु०।।१।।
रासमंडलमो कोन अब नाचे गोपीकूं सब घेरे ।
कोन मृदंग बजावे बीना को रागणी ताल सवारे ।।सु०।।२।।

मोरा बालक कोन अब होवे सावरे नंद दुलारे ।
राधा पीटत छतिया रोवत लोटत कहत पुकारे ॥सु०॥३॥
जाय कदम पर लेकर बैठे कौन ये चीर मुरारे ।
जसुमति सुं कहुं कौनकी बातां लेगयो प्राण हमारे ॥सु०॥४॥
लोटत पोटत ग्वालबाल सब कृष्ण हि नाम उचारे ।
देवनाथ प्रभु दयालु तुमने बिन मारे हम मारे ॥सु०॥५॥

पद गोप-गोपी-विलाप

कोनगत करू[1] मोरी माई । कहां धुंडु[2] रे बालकवा । कोनगत ॥ध्रु०॥
खेलत कान्ह परो जमुनामो, वार्ता गोकुल आई ।
सुनतहिं गिर परी मात जसोदा सब मिलि गोप लुगाई ॥१॥
दौरत दौरत ग्वाल बाल सब, गऊ बछियां बन आई ।
पशु पंछी रोवत गिर परते, अश्रु की कीच मचाई ॥ कोन० ॥२॥
सोचत जसुमति पीटत छतिया, तोरत भाल गिराई ।
नंद हि सोचत कहत प्राण की धनकी कोन बराई ॥ कोन० ॥३॥
पाछू-पाछू बालक मेरो, आगे चले बलभाई ।
आसपास ग्वालन के छोरे, शोभा वरन न जाई ॥ कोन० ॥४॥
पहेरे कौन मुगुट और अंगिया, वस्तर[3] डारो जराई ।
कोन पिवे मेरो दूध कन्हया मूरत शाम गवाई ॥ कोन० ॥५॥
सुंदर सावरे कोमल तनु रे काले नाग ने खाई ।
सिर पटकत सब गोप ग्वालना अब क्या ब्रिज की बसाई ॥ कोन० ॥६॥
पुरब जनम को बहुबिध पातक गऊ बछिया बिछुराई ।
यह कारणमे यह दुःख सागर, मै डुब यह फल पाई ॥ कोन० ॥७॥
मेरो बालक मोहे बतावो, सब मिल भाई-भाई ।
तन मन धन पग उपर वारू साची राम दुहाई ॥ कोन० ॥८॥
दहमों हरजू फन पर चह्रे[4] नाचत बहु सुगराई ।
नाथ्यो कालय बाहर आये सब लोगन के साई ॥ कोन० ॥९॥
देखत माता दौर कान्ह को प्रेमसो गरे लगाई ।
लेत गोदमो दूध पिलावत आनंद भयो मनमाही ॥ कोन० ॥१०॥
गावत नाचत आनंद करते सब मिल गोकुल आई ।
देवनाथ प्रभु दयाल देखत घर-घर बजत बधाई ॥ कोन० ॥११॥

---

१. क्या उपाय करूँ ? २. ढूँढूँ । ३. वस्त्र । ४. चढ़े ।

पद कृष्ण पर

जरा हस हस वेणु बजाओजी ।
तुमे दुहाई नंद चरनकी ।। हस० ।।ध्रु०।।
लटपट पेच मुगुट पर छूटे । हसि आवत तोरे लटकन की ।।१।।
घुंघट खोल दरस मोहे दीजे । चोट चलावो नैना पलखन[1] की ।।२।।
सब बनिता बिरहन की मारी । बिसरि बिकल पल छन मनकी ।।३।।
मोरमुगुट पीतांबर शोभे । चाल चलावो जैसी मटकन की ।।४।।
देवनाथ प्रभु दयाल तुम हो । आस लगी पद सुमरण की ।५।।

पद कृष्ण पर

कोई देखा देखा बनवारी जी ।।ध्रु०।।
मोर मुगुट के लटपट पेंच सो । कुंडल की छब न्यारीजी ।।कोई०।।
इत राधा उत चंद्रावलि ले । बह्यां पकर झकझोरीजी ।।कोई०।।
एक गोपीनकू चुंबत छुअत । छतिया धरकी नारीजी ।।कोई०।।
देवनाथ प्रभु दयाल छबीला नटनागर गिरधारीजी ।।कोई०।।

पद कृष्ण पर

झुरमट खेलत बांके बिहारी ।।ध्रु०।।
धिमकित ताताधिमकित मंदल चरण उठत अविकारी ।
ढोलक झालरि डफ धुमकत है बीन छतार करारी ।।
पायल घुंघरू छुम-छुम नाचत शोले सह सहवारी ।
ततथै ताथै एक सखी बोलत जमरही नांद सवारी ।।
तामो मुरली भोंतननननन सारिगमपधनिध भारी ।
कोयलकंठ की बठाकंठ (?) सो लपट-लपट ललकारी ।।
देवनाथ प्रभुनाथ दयाल की शुकोदिमुदे (?) आंगोरी ।।झुरमुट।।

पद कृष्ण पर

मोहे मिला नंद का ओ लाला ।।मोहे०।।ध्रु०।।
गोपी जू गोपी जू गोपी जू बनसीबट के तले बजावत ओ[2] थाहा[3] ।।
लटपट पेच मुगुट अलबेला । नाचत छैल छबीला ।।बजा०।।२।।
घुंघट वामो चोट चलावे नैनन करत न्याहाला[4] ।।बजा० ।।३।।
पीत वसन कट राजत साजत । गरे मोतन की माला ।।बजा०।।४।।
श्याम मुरत देवनाथ दयालू । अखियन करत उजाला ।।बजा०।।५।।

---

१. पलकों की । २. वह । ३. खड़ा । ४. निहाल ।

पद कृष्ण पर

किसन के चरणन की बलिहारी ।।ध्रु०।।
मोरमुकुट पितांबर सोभे । कुंडल की छब न्यारी ।।कि०।।१।।
बिंद्राबन के कुंज गलिन मो । खेलत राधा प्यारी ।।कि०।।२।।
जमुना के निर तिर[1] धेनु चरावे बांसरी बजावे नंद प्यारी ।।कि०।।३।।
देवनाथ प्रभु दयालु छबीला । नटनागर गिरधारी ।।कि०।।४।।

पद कृष्ण पर

तूं बजावेगी कैसी बासरी[2] अलबेली, तूं जसोमती छोरी ।।ध्रु०।।
एक गोपीनें मुगुट लिया है, एक सखी ले गई पामरी ।।
एक मुरली करकी ले भागी, एक मोतनमाला तोरी ।।तूं०।।१।।
पीतांबर एक सखी ले गई, आस पास सब दे दे तारी ।
सरस बनी है नंद की लरकी, कहत खिजावत सब नारी ।।तूं०।।२।।
राधाजू के चरण कमल पर, सीस नमाओ करजोरी ।
तब छोरू देवनाथ दयालू, कहो तुम जीते हम हारी ।।तूं० ।।३।।

पद कृष्ण पर

खेलुंगी आज मैं होरी । प्रभुनाथ जी संग ।।ध्रु०।।
रूप भयो जग मो हे अनुपम, जाऊँगी हूं बलहारी ।।१।।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिरकी, हात लयी भरजोरी ।।२।।
आतम रंग सवाई सो मारूं, प्रेम भरी पिचकारी ।।३।।
देवनाथ प्रभु नाथदयालसो कबहुँ न रहुँगी न्यारी ।।४।।

पद कृष्ण पर

घागरिया[3] उतारोरे बनवारी । तेरी सुरतपै वारी ।।ध्रु०।।
मैं जमुनाजल भरन जाति थी । बीच मिले गिरधारी ।।धा०।।१।।
घगरि फूट गई चुनरि भीज गई । सास नणद दे गारी ।।धा०।।२।।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छब । चरण कमल बलहारी ।।धा०।।३।।
देवनाथ प्रभु दयाल तुमहो । हमसो करत बरजोरी ।।धा०।।४।।

---

१. नीर-तीर । २. बांसुरी । ३. गगरिया ।

पद कृष्ण पर

मत मत फार चु नरिया हमारी ।
जारे जारे आवे सास बुरीमारी ॥ध्रु०॥
कुलकी लाज सगरि गमाई ।
तन कांपत मत घेर कन्हाई ॥१॥
तूं नहि मानत बात हमारी ।
तूं मत फार चुनरिया हमारी ॥२॥
दइमारे तुज लाज न आवे ।
माखन मांगत हात पसारी ॥३॥
तूं थइ थइ नाचत कहे बलहारी ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण जब ।
कहुँ तुम जीते हम प्रभु हारी ॥४॥

पद कृष्ण पर

गोकुलके धन धन भाग री । बखान न ज्याय सुन बुध[1] प्यारी ॥ध्रु०॥
पारब्रह्मको लेले गोदमो दूध पिलावत नागरी ।
अस्तुत बेद विरंची गावत । धन जसुमती अनुरागरी ॥१॥
निरखत निरखत मुख को माता । हो गई सात्विक अंगरी ।
कान्हा पुछत माताको पुलकित भई कै तैसी गुजरी ॥२॥
बदनकंज कोमलहूँ देखत खाई मुख बुध भंगरी ।
सो मुख मोहे बतावो माता डारत भूपर अंगरी ॥३॥
जसुमती कहत सुनो धन मूरत हमारे भागको रंगरी ।
देवनाथ दयालू कैसे पावेंगे तुट नागरी ॥४॥

पद कृष्ण पर

अखिया हरि दरशन सो अटकी ॥ध्रु०॥
डार दई उधो नंद जसोदा ग्वालन की प्रीत पटकी ॥धा०॥१॥
बावरी भई सब लोक गुलाई । हरिबिन बनबन भटकी ।अ०॥
वह कुबरीने चंदन चर्चो । शाम सुरत वाहा लटकी ॥अ०॥३॥
सुन्दर लछमी सेवत पगको । सो सेवत पग बटकी ॥अ०॥४॥
श्यामके दाम चलावे सौकन[2] । गोपियन मो हरे खटकी ॥अ०॥५॥
नंदनंदन उधो आन मिलावो । काछ कछी पीत पटकी ॥अ०॥६॥
देवनाथ प्रभु दयालु वा बिन । मन लगी सुमरन रटकी ॥अ०॥७॥

---

१. सुन, बुद्धि से बखाना नहीं जाता । २. सौत ।

पद कृष्ण पर

भज भज साधु छबिला नंदलाल ।।ध्रु०।।
घेर घेर सब बनिता पकरत । तोरत मोहनलाल ।।भ०।। १।।
बीन वाद्य, मोरचंग, नफेरी, । गावे बजावे सुरताल ।।भ०।।२।।
लेव स्कंधपर राधाप्यारी । देवनाथ दयाल ।।भ०।।३।।

पद उद्धव गोपी-संवाद

ल्यावो बनवारी उधो, ल्यावो बनवारी ।।ध्रु०।।
प्रेम कट्टयारी तूं काहेकु मारी कहियो बात हमारी ।
जसोमतीनंदन ममता छोड़ी प्रीत लगी वाकू कुबरीरे ।।ल्यावो०।।
घायल घूमे घायसो करे न चित मन बोध ।
लहु [1] नयना टपकते बिसरगई सब सुद[2] । ल्यावो०।।२।।
रूपहीन कुलजातकी प्रीत करे नंदलाल ।
गोपिन मोहरे डारके चाम चलावत ब्रिजबाल । ल्यावो०।।३।।
करत करि बिसरत बुरि येहि देही येहि रीत ।
किन सुख पायो ये सखि परदेसन की प्रीत ।ल्यावो०।।४।।
उधो कहो व्हां जायके मरगई गोपी ग्वाल ।
एकबार तुम छचियो [3] अमृत जसोमतीपाल ।।ल्यावो०।।५।।
वा कुबरीने चंदन चर्चो जादूही कर डारो ।
देवनाथ प्रभुनाथ दयालु बिन मारे हमें मारी ।।ल्यावो०।।६।।

पद कृष्ण पर

तुम देखो भय्या । मुरली को बजवय्या ।।ध्रु०।।
मोर मुगुटकी लटपट न्यारी । गरेंसो लपटी राधा प्यारी ।
कुंडल सोहवे[4] बनवारी । देखे गोपी कन्हया ।।तुम०।।१।।
गरेमो सोहत है बनमाला । पीतांबर प्रभु नूपुरवाला ।
रास रसे नाचे अलबेला । पकरत गोपिनकी बहंय्या ।।तुम०।।२।।
झटपट खेलत चुंबत कान्हा । छतिया छुवावत गावत तान ।
जमुनातट में श्रीभगवान । क्रीडत ब्रिजको बसवय्या ।।तुम०।।३।।
दयालू देवनाथ अलबेला माथे ब्रिजनारी का मेला ।
कुंजनबन मो करत किलोला । मुनिजन गावत जगसय्यां[5] ।।तुम०।।४।।

---

१. लोहू २. सुधि ३. सींचो ४. शोभा देता है । ५. जग का स्वामी ।

पद कृष्ण पर

शाम सो लगाई प्रीत और न ज्यानो[1] उधो
कांहां तेरो ग्यान ध्यान । कांहा करत है बखान ।
जदुपत सो हमारो प्राण । वहै गयो है सुधो ॥शाम०॥१॥
शाम सुन्दर सगुण ध्यान । तापरसो वारो प्राण ।
घरहि राखो ब्रह्मज्ञान । हमसे कांहा बोधो ॥शाम०॥२॥
कमलापत कमलनयन अधरत बजावे बैन ।
छतियापे दिन रयन । खेलत यो माधो ॥शाम०॥३॥
देवनाथ प्रभु दयाल । कियो हमारो ऐसे हाल ।
मथुरा मो है खुशाल । बैठे लाल यारो ॥शाम०॥४॥

---

१. जानूँ ।

गुलाबराव महाराज के पद

(१)

गुरु नाम सुधारस बाणि पिवै तब माल गलासु[1] रहै न रहै ।
जननी सब कामिनि को समुझै तब काज न नेम बहै न बहै ।
पिय की हिय में सच चोट लगी तब पौन उमंग गहै न गहै ।
मन ग्यानसुरेश कृपा बलतें मिलि है अपवर्ग चहै न चहै ।

(२)

निज तारन कारन शंभु कृपा निरखी जल गंग भगीरथ तोखे ।
मिथिला नगरीमह राजसुता हिय मोद भयो यदु वल्लभ लेखे ।
जिमि भीमक जा हियमें हरखी गिरि नंदिनि मंदिर गोविंद पेखे ।
तिमि मानस आज प्रसन्न भयो सखि ज्ञान सुरेश पदांबुज देखे ।

(३)

काहू के भावे मन आतम को ग्यान अति काहू के भावे मन जोग हठराज है ।
काहू के कर्मन की आस नित चित्त लगी काहू के मनमाहीं पंडित समाज है ।
काहू मन साज बाज काहू मन लाज काज काहू के मानस में सुंदर सुखराज है ।
मैं गरीब हूं अनाथ जोरि कहूं दोय हात ज्ञानदेव दीनानाथ मेरे शिरताज है ।

(४)

छांडि सब लाज काज राजसाज चालो आज देखिबे को कैसे सखि नयन ललचाये हैं ।
कोऊ ठाडे छतर धारे कोऊ वापे व्यजन वारे पालखी में पैठ मेरे ज्ञानराज आये हैं ।
कमलिनी लजाय रही कनक श्री जाय रही रसा हरखाय रही रसिली मिलाई है ।
पानी के प्रवाल की अरु मनि में के लाल की अरु कामिनी के गाल की सब सोभा भी भुलाई है ।
बिजुरी के सारी से कि सूरज धुरधारी से करिके सवारि छवि सारी हर लाई है ।
क्या राधिका तिलक झांकी ? नाही, नाही, सुन री सखि मेरे ज्ञानराय के पाय की ललाई है ।

---

1. गले में ।

(५)

हरि नित निज भक्तनके संग ॥धृ०॥
प्रेम द्वेष जानते नाहीं । देते मुक्ति अभंग ॥हरी नित ॥१॥
मीराको बिष प्याला पीयो खेले गोपिनसंग ॥हरी नित ॥२॥
सूरदासको अखिया दीन्ही जनीके लिखे अभंग ॥हरी नित ॥३॥
एकनाथ घर नीर भरे प्रभु किसको चढावत तंग ॥हरी नित ॥४॥
ज्ञानेश्वरबाला गोपि हरी—साथ उडावत रंग ॥हरी नित ॥५॥
इस भांती जिन प्रभुकी महिमा वे गुरुनाथ हमारे ।
अलकावतिपति[1] करुणा सुंदर कोटी पुण्य निहारे ॥१॥

(६)

मेरे प्रभुकी बलहारी है ॥धृ०॥
मेरे गुरुके आज्ञाबचनतें । देवत्रयकी हुशियारी है ॥मेरे प्रभुकी ॥१॥
मेरे गुरुके परमचरण की । मोरहि सीस सवारी है ॥मेरे प्रभुकी ॥२॥
जिनकी कृपातें कृष्णसंग मैं । खेलत नहिं भी हारी है ॥मेरे प्रभुकी॥३॥
ज्ञानेश्वरप्रभु सद्‌गुरु मोरे । तिन पग प्रीति हमारी है ॥मेरे प्रभु की ॥४॥

(७)

गुरुबिन हरिगुन रंग न पावे ॥धृ०॥
हरीध्यानतें गुरु नहिं मिलते । गुरुसुमिरनतें हरि घर आवे ॥गु० ॥१॥
दुष्टको मारन भक्तन तारन । हरि अपने दिल भेद लखावे ॥गु० ॥२॥
गुरु दुर्जनकूं सुजन करतु है । हरिसों अधिक गुरुहि हिय भावे ॥गु० ॥३॥
विठ्ठलनंदनगुण विठ्ठल से । सज्जनवदन अधिकतम गावे ॥गु० ॥४॥

(८)

मेरी माधव चरण सु प्रीत ॥धृ०॥
जो चाहे सो मुकती धूंडे । मैं चाहूँ रति रीत । मेरी माधव ॥१॥
कठिन बचन यह जानति नहि हूं । सुलभनाम भक्तगीत । मेरी माधव ॥२॥
जहांतक रागद्वेष नहि जावे । तहां तक भवभय नीत ॥मेरी माधव ॥३॥
ज्ञानेश्वर कन्यका बिनति सुनि शामहि हृदय भरीत ॥मेरी माधव॥४॥

(९)

तिन चरणन पर प्रीति हमारी । मत पूछो संसृतिगत न्यारी ॥धृ०॥
जलदजालसम सुंदर तनु है निसदिन हृदय ध्यावे त्रिपुरारी ॥तिन० ॥१॥
जनम देव ऋषि मनुख न जाने । लेवे चुंबन ब्रज की नारी ॥तिन० ॥२॥
भ्रांति रहित चितितरंगतनु जो । रास रचै जमुनाकि किनारी ॥तिन०॥३॥
श्रीज्ञानेश्वर दत्त मंत्र यह 'रामकृष्ण गोविंद मुरारी' ॥तिन चरणपर॥४॥

---

१. ज्ञानेश्वर ।

(१०)

माई मोहे सांवरिया की प्रीत ।धृ०।
रमण तनय धन सदन न जानू तजीं भवविभवरीत । माई मोहे ।१।।
तनु मन पवन कीन्हि चरणार्पण सुनिसुनि मुरली गीत । माई मोहे ।२।।
अलकावति पति सुता कान्त पद-पंकज मोद अमीत । माई मोहे ।३।।

(११)

मुख मुरली मोहन धारी । धृ०।
सुनत अवाज मोहि बस भये शचिपति बिधि त्रिपुरारी। मुख मुरली ।१।।
जपतप छोरि कुंजबन धूंडत तापस योगि बिचारी । मुख मुरली ।२।।
चारुचरण चरणतें कुंभिनी पावन भई है सारी । मुख मुरली ।३।।
अलंदिपति नंदिनि मनहारी अनुहत खेल खिलारी । मुख मुरली ।४।।

(१२)

जदुराजचरनकी लागीरे । धृ०।
कामक्रोधमद लोभ रिपुनकी दुर्बल सेना भागीरे । जदुराज ।१।।
जहं जहं जाती तहं मम मनको कमलावल्लभ बागीरे । जदुराज ।२।।
ज्ञानेश्वरजा जिनपग असुवन सींच रैनदिन जागी रे । जदुराज ।३ ।

(१३)

मोरी प्रभुपग लागी प्रीति । धृ०।
जप तप दान मनहि नहिं भावत जात निषिल्द बिहीत । मोरी ।१।।
ध्यान पकर करि जरा मिलाई कब पावोंगी रीत । मोरी ।२।।
अलकावति पतिसुता कांतपग राखो सकल जिवीत । मोरी ।३।।

(१४)

मेरे तो तुमहि प्रभु प्राण के पियारे ।
कोउ पवन जवन धरत सुखवन मुख सारे । धृ०।।
करण नयन एक करी निरखत पिय प्यारे ।
जीव ब्रह्म एक करी कोउ चित्त झारे ।। मेरे ।१।।
ब्रजराजतनुज चरणनख शरण हमारे ।
अलकावतिपतिनंदिनि[1] दिन रजनि पुकारे । मेरे ।२।।

(१५)

मन प्रित लागी रे रघुबरकी । धृ०।
वदन नयन टक लागी हरिसो मुनिजन सुरवरकी । मन प्रीत ।१।।
मन क्रम बचन नाम ही लेते देखत भव सुर की । मन प्रीत ।२।।
हिय भरि राखी बयनमाधुरी अलकावतिबरकी । मन प्रीत ।३।।

---

१. ज्ञानेश्वर की पुत्री ; गुलाबराव महाराज अपने को ज्ञानेश्वर की पुत्री मानते थे ।

(१६)

मम हिय शाम बसे । धृ०।

त्यजि सब काज निंद अपने वर । चरणन नयन फसे । मम हिय० ॥१॥
और दरशन दीखत नहिं कहु । शामहि शाम दिसे[1] । मम हिय० ॥२॥
ज्ञानेश्वर प्रभु निगम उजागर । चेतन सब बिलसे । मम हिय० ॥३॥

(१७)

माई मेरी हरिपगसो टक लागी । धृ०।

विखय प्रिय सब छोर दिये है । श्यामसुंदर पर भयी अनुरागी ॥१॥
रिद्धि सिद्धि यह बहत गयी सब । भये नयन असुबन के बिभागी ॥२॥
सब जग हासत रोवत हम है । रोना सुख जानतही जागी ॥३॥
ज्ञानेश्वरप्रभुबचन श्रवणतें । गोपिरमणसंग रतिरस पागी ॥४॥

(१८)

गोपीनाथ मिलनकी, साधु राहा बतावो । धृ०।

योग याग ये मायावनविच । कौनसि रीति सहज सिखावो ।१॥
सैली शिंगी मुद्रा पैनी । झोली लिइ कहा शाम[2] दिखावो ।२॥
छोर दार घर संप्रदाय लिन नाथन भइ अब नथनी दिलावो ।३॥
मंत्र जंत्र उसि को ही देके काम क्रोध यह शेर जलावो । ४॥
अमृत ओहि मोहे दान देव गुरु ज्ञानेश्वर हरि एक मिलावो । ५॥

(१९)

सुनिये मेरि पुकार माधव । धृ०।

औरनसे मैं जिकिर न करती जामें बहुत बिकार माधव ॥१॥
नहिं चाहती हूं सायुजता मैं नहिं जोगकु अधिकार माधव० ॥२॥
ज्ञानेश्वरप्रभु करुणाबलतें तुम्हारे पग लगनार[3] माधव० ॥३।

(२०)

मेरी इतनी बात सुनो । धृ०।

आखी भर सपने में तो भी रूप दिखावो अपनो ॥ मेरी इतनी ॥१॥
श्रीज्ञानेश्वर बाला बिनती, प्रेम हृदय भरतो ॥ मेरी इतनी ॥२॥

(२१)

अब कांई कहूं घरकी । धृ०।

पूत खेल खानको मांगे चुनरी जोरु जरकी । अब कांई ।१॥
देशाटन करि धनमेलन तें बुद्धिभयी चर की । अब कांई ।२॥
घूमत घूमत नाम बिसारे तनु भयि जर्जर की । अब कांई ।३॥

---

१. दिखाई देता है (मराठी) । २. श्याम । ३. लगूँगी (मराठी) ।

अंदरतो सब आभिलगी छुपि छानहि उपर की ।। अब कांई ।४।।
याते मति अब व्याकुल भइ है न जानु इहवरकी । अब कांई ।५।।
अलकावतिपति नंदिनि बिनती सुन प्रभु जदुवर की । अब कांई ।६।।

(२२)

मेरे हिय तुरत बसो सांब शूलपाणी[1] ।
गंगाधर नंदिवहन सदपवर्गदानी ।। मेरे हिय । धृ०।।
जरतिहूं मैं चिंतानल पायी भवग्लानी ।
दीनकें दयाल तुमहि सकलहृदय ज्ञानी ।। मेरे हिय ।१।।
हो बिरागि तदपि कीन्हि आधतनु भवानी ।
काहे कुमर छोरदियो बरबिनु भयखानी ।। मेरे ।२।।
जय गिरिजावल्लभगुरू जय करूणाखानी ।
ज्ञानेश्वररूप धरी राखो शिर पानी[2] ।। मेरे ।३।।

(२३)

मेरी साह करो त्रिपुरारी । धृ०।
गिरिजावल्लभ भूतनके पति भूजगभूषणधारी ।१।
डुबि जारही भवसागरमो करिये उपाय गजारी ।२।
माया मगरी[3] पाय[4] पकरती जातैं शंभु पुकारी ।३।
ज्ञानेश्वरबालाकी बिनती होवे कांत मुरारी ।४।

(२४)

नाथ मोरे आये भक्तनके काज । धृ०।
कोइ करे बहु करम जोग कोइ लेत सांख्य को छाज ।१।।
कोइ कहे ब्रह्महो सनातन कोई ध्यावत मुनिराज ।२।।
हम तो उनके चरणन लपटी छोर मातपितु लाज ।३।।
ज्ञानेश्वर प्रभु दीनदयाल है हरिदायक गुरुराज ।४।।

(२५)

हरि मोरे सब सुखके दाता । धृ०।
और हमरा कोई नहिं जन मारूंगी संसार को लाता[5] ।१।।
कोइ मुझे तो जूति लगावत कोई शिरपे धरत है छाता ।२।।
कोई तो प्रेम से गुण मोरे गावत करत कोई तो दोख कि बात ।३।।
स्तुति अरु निंदा शब्दमात्र है मैं तो भई निःशब्द की ज्ञाता ।४।।
वर्णाश्रम यह बिधिनिषेध को मैं तो कृष्णचरण धरूं माथा ।५।।
ज्ञाननेश्वरकन्या सब जनको कह कर जोरि भजो रघुनाथा ।६।।

---

१. शंभु । २. हाथ । ३. मगर । ४. पैर । ५. लात का बहुवचन लाता (दक्खिनी हिन्दी)

(२६)

उठो पिया जागो प्रेमदान करन लागो । धृ०॥
रात दीन देख्या नही मनसे दौर आई ।
शान्ति क्षमा दया तीन साथ सखी लाई ॥ उठो पिया । १॥
कल तुमने वेणु बजा चित्त मोह लीयो ।
सुनि अवाज बौरि भई सदन छोर दियो ॥ उठो पिया । २॥
जैसे तेज माहिं सुरज एक बड़ो भासे ।
तैसा तेरा प्रेम ब्रह्मज्ञान हि हम चाषे ॥ उठो पिया । ३॥
अलकावति पति नंदिनी कहती कर जोरी ।
मुक्त करो नाथ मोहे तोरि सरम सारी ॥ उठो पिया । ४॥

(२७)

प्रभु बिन कौन जगत मा तुह्मारा ॥धृ०॥
औरत चाहत नथनि जोड[1] को सुत चाहत दे सदन हमारा । प्रभुबिन ॥१॥
प्राणसंयमन धीरे धीरे करो देहसो जान्यो आत्मा न्यारा । प्रभुबिन ।२॥
श्रीगुरुआज्ञा एकहि पालो हरिरूप देखा मुक्त संसारा । प्रभुबिन । ३॥
तुमहम मिलके एक करेंगे प्रभु ज्ञानेश्वर चरण अधारा । प्रभुबिन ।४॥

(२८)

मोसूं न बोलना नंदलाल । तुम तो दगलबाज[2] गोपाल । मोसूं १॥
मेरी आस तुमको नहीं हमे तुम्हारी आस ।
बनबन मैं धूंडत प्रभू आई तुह्मरे पास ॥ मोसूं । २॥
और गोपी तुमकु प्रभु बहु प्यारी ब्रजमाहि ।
तिनघर सबदिन जात हो मो घर घडिभर नाहिं ॥ मोसूं । ३॥
एकदिन तुम ना गये तो नहिं बोलेंगी और ।
मम घर आने वर्ष भया है टेरत हो मन ठौर ॥ मोसूं । ४॥
आज तुम जो निकल गये तो कर पकरौंगी दौर ।
अलकावति वल्लभ करुणाबस खेलोंगी सुख भोर ॥ मोसूं । ५॥

(२९)

नहिं रोना बेटा धूंगि[3] पत्ती नंदलाल । धृ०॥
तेरे कारन बलहि करोंगी भगवद्धर्म सुकाल । नहिं रोना बेटा । १ ॥
तेरे कारन भूमि ऊपर ल्यूंगी किसन महाल । नहिं रोना बेटा । २ ॥
जननि बचनको सुनिके निकरा मनका सब बेहाल । नहिं रोना बेटा । ३ ॥
ज्ञानेश्वर प्रभु कन्या की तो पातिव्रत्यमय चाल । नहिं रोना बेटा । ४ ॥

---

१. नथ-प्राभूषणादि । २. दग़ाबाज़ । ३. दूँगी ।

(३०)

प्रभु तज मत जावो ब्रजगोपी बावरीया होवेंगी । धृ०।।
सास ननंदा इन्हें देखकर अधिकहि गारी देवेंगी ।
सो सुनि सुनि के ताप भया तब जमुना में मर जावेंगी ।१।।
तुमही अपनें मनमो देखो विचारिके नंदलाल ।
जब तुम गेये[1] रासमंडल से कैस भयो थो हाल । २ ।।
फिर जो तुम आवें लवटे[2] तो नही दहीदुध देवेंगी ।
फिर जो मुरली नाथ बजाई तो बल तें छिन लेवेंगी । ३।।
तरुणी गोकुलमांहि बहुत है मथुरापुर में कोय ।
जिसके कारन भक्तिविबसपिय गवन आपका होय । ४ ।।
यहां रहेंगे जदुपति तुम तो दूधदही नित लावेंगी ।
अरु अलकावतिपति करुणाबल रतिरस सुरस पिलावेंगी । प्रभु तज । ५ ।।

(३१)

प्रभुजी अबसो मैं चीना ।धृ०।
यह गोकुल जोजार भया है सो सब तुम कीन्हा । प्रभुजी ।।१।
आप बडेके नंदन होके यह क्या करलीना ।। प्रभुजी ।। २।
कहां गये हो औरत बन के कहां जबरी ली दीना । प्रभुजी ।।३।
अलकावतिपति करुणा बलवे तुम हो ब्रह्महृदय अस चीन्हा । प्रभुजी ।।४।।

(३२)

मैं भई दिवानी श्याम । धृ०।
बाला कहती पतिनाम सुमर तो आवत घनश्याम । मैं भई । १।।
सास ससुर को गोता देकर धुंडतिं हू बनधाम । मैं भई । २।।
अलकावतिपति बचन यही है लेना ब्रजबरनाम । मैं भई । ३।।

(३३)

बंसी बाजे झननन सुमधुर ।धृ०।
श्रवण सुनत मै बावरि भइ हूं डारे धननंदन रमणदूर । बंसी बाजे । १।।
सुनत अवाज काम कोपरिपू प्रेम कटक बस मरि होत चूर । बंसी बाजे । २।।
सुंदर श्याम चरण दृग निरखी हिय में बाढा अनुराग पूर । बंसी बाजे । ३।।
दोनो मिलिके ज्ञानेश्वर गुण गाऊं लगाय अनाहत सूर । बंसी बाजे । ४।।

---

१. गये थे । २. लौटे ।

(३४)

मै भयी दिवानी श्याम ।धृत०।
तोर मुरली की धून सुनत सब तनुभर उबरा काम ।। मै भयी । १।।
घरबार की कुछ सूद[1] ना रही अकल गुंडा बेकाम । मै भयी । २।।
वृन्दावन मो आइ अकेली तजि निज पति सुत ग्राम । मै भयी । ३।।
सुरत सावली देख तेहारी दिलकु लगा आराम । मै भयी । ४।।
तुह्मरा हमरा यहि नेह बढे ले ज्ञानेश्वर नाम मै भयी । ५।।

(३५)

मैया तेरे बालेने मोहनि डारी ।धृ०।
जाती थी जमुना जल भरन को रंग पिचकारी मारी । मैया तेरे । १।
घर जंगल सब एक दिखत है भूल गयी सुध ह्मारी । मैया तेरे । २।
ज्ञानेश्वर की कन्या हूं मै भई श्रीहरि की नारी । मैया तेरे । ३।

(३६)

जमुना तीर खड़ी ।।धृ०।।
मै हुं अकेली ग्वालन अबला तुम्हरे बहुत गडी । जमुना तीर । १।।
तुम हो लरके नंदजी लाला मै हूं तुमसु बडी । जमुना तीर । २।।
कोई छोट बडा न जाके लई काम सगडी । जमुना तीर । ३।।
ज्ञानेश्वरकन्या श्रीहरी को प्रेम प्रसाद अडी । जमुना तीर । ४।।

(३७)

छोरो मेरा अंबर जदुबर मथुरा जाति बजार ।१।।
तुम हो प्रभुजी पुत्र बडों के कस लीना आचार ।२।।
धूंगी[2] प्यारे दहिदुध तुमको छोरो चुनरिकिनार[3] ३।।
सास मुझे गारी देवेगी बिच्छूसम भरतार ।४।।
ज्ञानेश्वरकन्या डर तजके लेती हरि सुखसार ।५।।

(३८)

जागो ना प्यारे निंद लेवो नंदलाल ।धृ०।
जगनेका अभ्यास नहीं हैं अखिया हो गई लाल । निंद लेवो । १।।
खेलत खेलत गोपिनसो प्रभु सूख गई फुलमाल । निंद लेवो । २।।
रात भई प्रभु दोन[4] पहर अब कल खेलन को काल । निंद लेवो । ३।।
ज्ञानेश्वरकन्याकी बिनती सुनो कांत गोपाल । निंद लेवो । ४।।

---

१. सुध । २. दूँगी । ३. चुनरी का छोर । ४. दो (मराठी) ।

(३९)

मोरे किते गये दोउ लाल ।धृ०।
देख्यो न उन्हें जगत पसाप्यो आठ बरस के बाल । मोरे । १॥
नहिं पहनाई मोतन लरिया खुपि में लें बनमाल । मोरे । २॥
ज्ञानेश्वर तुम्हरे बेटिन के असुवन भीगत गाल । मोरे । ३॥

(४०)

बेणू क्यूं न बजावे । प्यारा । धृ०॥
सगरि रयन मम बिरह जे हरते । तडफ तडफ जिया जावे । प्यारा । १॥

(४१)

माई तेरे बाले ने मुरली बजाई ॥धृ०॥
सोती थी मैं अपने पियसंग श्रवण मधुर धुनि आई । माई तेरे । १॥
उस मुरली की सात ध्वनि दश नाद को देत हटाई । माई तेरे । २॥
ज्ञानेश्वर की कन्या हूँ मैं तो भि सुनत भुल जाई । भाई तेरे । ३॥

(४२)

हरि तब खेलत जमुना तीर ॥धृ०॥
प्यारी प्यारी मुखसों कहत है नयनन झरपत नीर । हरि तब । १॥
प्रिया आवेगी कौन दिशा ते गगन उडावत चीर । हरि तब । २॥
ज्ञानेश्वर कन्यका प्रेम का हरि हिय लागा तीर । हरि तब । ३॥

(४३)

प्यारे मेरे नाहिं मिले सब रात ॥धृ० ॥
डारा न मुझे कबनि[१] अकेला जब से लाइ बरात[२] । प्यारे मेरे । १॥
मेरेबिन वो प्रभू अकेले किस करेंगे बात । प्यारे मेरे । २॥
रहा देखते भवर[३] भई है दहा[४] जरे शित[५] वात । प्यारे मेरे। ३॥
दिन भर तो कचरि में रहेंगे बैठे जहं नंदलाल । प्यारे मेरे । ४॥
ज्ञानेश्वरजामात बिना मम अखियन लगत न पात । प्यारे मेरे । ५॥

(४४)

देरी मत करजो । धृ० । उधोजी ॥
जो होये तो हेता सिखावहु नहिंतो वाके पाव पकरिजो । देरी । १॥
जैसा मोको देखत तूं यहाँ तैसा वाके हृदय नि हरिजो । देरी । २॥
संतचरन की धूरि सीस पर धरी भव विभव हरिजो । देरी । ३॥
अलकावतिपति बाला प्रेमल तिनका भजन मग्न बरिजो । देरी । ४॥

---

१. कभी भो । २. विवाह किया । ३. भोर । ४. जलातो है । ५. ठंडो ।

(४५)

कान्हा ये मुरली न बजावो । धृ०।
सास हमारी गारि देत प्रभु तुम अपने घर जावो । कान्हा । १॥
कुल छुराय के चार लोक में प्रभु मोहे न लजावो । कान्हा ये । २॥
ज्ञानेश्वर करुणा कर कहके निज पग नख सुपुजावो । कान्हा ये । ३॥

(४६)

ये इक मो मन अचरज आवे । धृ० ।
निगम न गाई सके गुण जिनके सो जसुमति का मंग मंग खावे । १॥
तपसु तपत मुनिगन जिन कारन सो कूंजन में युवति बुलावे । २॥
ज्ञानेश्वर गुरु चरण कृपा एक प्रेमल मनमों शाम मिलावे । ३॥

(४७)

यहि हेतु किह भेजो तोहे । धृ०।
तजि सुधारस भोजन कारन कौन मूढ श्रमि सोहे । १॥
कहकह उद्धव ब्रह्मरुप तूं बिन सगुण किधों लोहे । २॥
लेतहि नाम पदारथ को नहिं शान्ति क्षुधा कब लाहे । ३॥
श्री अलकावतिपतिनंदिनि तो शाम चरण एक चाहे । ४॥

(४८)

शाम विन गोकुल प्रेत समान ।धृ।
जाते थे प्रभु वृन्दावन जब तब नवत तरू कमान । शामबिन । १॥
गोकुल थे तब लों नहिं बूझें व्रजजम करि अभिमान । शामबिन । २॥
हालाहल जल जमुना जी को कीन्हो अमृत समान । शामबिन । ३॥
व्रज युवती अति व्याकुल मति भइ छोरि मोह मदमान । शामबिन । ४॥
अलकावति पति नंदिनी राखत कृष्ण चरण नख मान । शामबिन । ५॥

(४९)

अबे चल दिवाने क्या गरज तेरी हमे परी । धृ० ।
ले मटका दधि का सिर ऊपर, जाति हुं कंसपुरी । अबे चल । १॥
निजसम चावट[1] युवति गोकुलों, पाहुनि घे दुसरी[2] । अबे चल। २॥
अलंदिवल्लभ तात हमारे, देवेंगे पीठ छुरी । अबे चल । ३॥

---

१. चंचल । २. दूसरी देख ले (मराठी) ।

(५०)

बतावो माई कौन बन रघुबीर ।धृ०।
हात धनुखशर लेले बनमो चालत निज पद धीर ।१॥
देखत नयनन तरु गन तारे मुक्ति दिई पुनि चीर ।२॥
तरूवर तुम सब मुनिगन हो यह करते पान समीर ।३॥
तपकरि करि राम को बुलाये बनि अपवर्गनिधीर ।४॥
शामतनू रघुपति लछुमन का सुंदर गौर शरीर ।५॥
श्री ज्ञानेश्वर बाला हरिपग राखति प्रेम सुशीर ।६॥

(५१)

साधुराम पीवो अमृतधारा ॥धृ०॥
आदौ क्रिया तालव्य करो जिव्हा बंद से न्यारा । साधुराम ।१॥
तालुस्थान में जीभ लगाके शिर बिच प्राण पठारा । साधुराम ।२॥
नयन भ्रुकुटिमों उलट पठाऊं सोम भवन निकारा । साधुराम ।३॥
उस धारा के सुख में देखा देहते आत्मा न्यारा । साधुराम ।४॥
जहं तक सोम रहे कायामों तहंलो न काल का घेरा । साधुराम ।५॥
ज्ञानेश्वर प्रभु एक पकरिके जोग तजूं नी बारा । साधुराम ।६॥

प्रभात का पद

जागोलाला भवर[1] भई । धृ०।
उठिं ग्वालन सीस घगरिया धरीं पनघट सबहि गयी । जागो ।१॥
सुतिलक करिके सेवन करिये सक्कर दूध दहीं । जागो ।२॥
अलकावति पति चरण सरोरुह—सत्ता सकल सही । जागो ।३॥

(२)

लाज लई मेरी । शाम तुम ।
मैं अपने घर बैठि अकेली मुरलि नहकं टेरी । शाम तुम ।१॥
मनमों पेखि अबल सूध तुह्मे तातें फासि परी । शाम तुम ।२॥
गावत बेद सो झूठ भया आज राग तुझ न व्हैरी । शाम तुम ।३॥
अलकावति पति चरण निकट अब बात कहूं सारी । शाम तुम ।४॥

---

1. भोर ।

(ब) विरह-पद

कौन गली सखि शाम । धृ०।
उनको मिलन बिने नहिं मोरे पल दिलमो आराम । कौन गली ।१।।
छिन छिन नयन नीर भरि आवहि सूझत नहिं बेकाम । कौन गली ।२।।
श्याम मिलन सदुपाय करति हुं ले ज्ञानेश्वर नाम । कौन गली ।३।।

× × × ×

पियबिन मोहे और न कोई ।।धृ०।।
जहां जहां जाती तहां तहां हरि को सुमिरति हूं मन माही ।।१।।
घर घर धूंड तलास कियो तभि[1] मुरहर[2] मिलत नाहीं ।।२।।
ज्ञानेश्वर करुणाधन बलधर आवेंगे फणिशाई ।।३।।

(२)

प्रभु मैं नहिं हूं चतुर सुनारी । धृ०।
अति अज्ञान बिबस दी होगी कभी आपको मुखतें गारी ।।१।।
घर ते मुझे निकार जो दीने तो सोऊंगि जमुना के किनारी ।।२।।
अलकावति पति तात भले हैं । तिनकि जानि राखो पुतनारी ।।३।।

पौराणिक पद

सुत तैं कहां देखे प्रभुराम ।।धृ०।।
लछमन को मैं नहि सो बोली भर पाई कृति बाम ।सुत तैं ।१।।
रघुबिर बर नर तूं तो बानर कैस करेंगा काम ।सुत तैं ।२।।
जाकर कह रघुनायक चरना मोंकु लिजाओ धाम ।सुत तैं ।३।।
मारुति बोले सुन जननी तूं सुमिर अलंदिप नाम ।सुत तैं ।४।।

---

१. तोभी । २. मुरारी ।

गंडा केशव के पद

दील्ल बुज्य दोहरे

(१) भगल्ल[१] बेगल्ल[२] जींदगाणि दो दिन्न की।
इसी मो गरक याद भुला अहल्ल[३] की ॥
आया मैं कांहां से कांहां ज्याउंगा।
खबरदार गुंडे आहिल्लगा।
भरा है ज्यमीं आसमानि[४] ज्याहाणू[५]।
कहे दास गुंडे उसकुं पछ्याणू ॥
ज्यगत का धनि येक साहेब सही है।
निरंज्यन निरंकार ज्योती भरी है ॥
समज्य[६] कर करो बंदगी पाख[७] दिल्ल से।
इसिसे[८] नफा बुझ बेहतर अकल से ॥
झुटा देख संसार गाफिल्ल फंसे कौं[९]।
मगन प्रेम गुंडे धन से भुला कौं[१०]।
ज्यमी और ज्यमा आसमाना कीया।
तिन्होलोक का साच्य साहेब पीया ॥
बिनाधार डेरा खड़ा आसमान।
करम बच्च गुंडे उसी से ईमान ॥

(२) सपन्न[११] सि ये दौलत, भुला है ज्याहान।
आखर कुं दगा ज्याग[१२] हिरदे सुभान ॥
बुरि[१३] मार ज्यं[१४] की हुसीयार हिरदै।
कहल्दास गुंडे आवल[१५] काम कर्दे[१६] ॥

---

१. भागती हुई। २. वेगवान। ३. मालिक। ४. आसमान। ५. जहान। ६. समझ। ७. पाक (पवित्र)। ८. इसीसे। ९. क्यों। १०. क्यों। ११. स्वप्नसी। १२. जाग। १३. बुरी। १४. जम (यम)। १५. अव्वल (पहले)। १६. कर दे।

येकीन[1] खुब साबुत नियते[2] धरो ।
आपस कूं आपस मो उज्याला करो ॥
आया नुर दिदार सारा तमाम ।
उलट दास गुंडे लगन से आराम ॥
खुदा कुं बुझया सो ही जीदा[3] फकीर ।

बजुद[4] पाख दिल्ल से लगन से जीकिर[5] ॥
च्यढा[6] प्रेम धागे गगन देहरे ।
सो ही मस्त गुंडे आलख हाजरे[7] ॥
सुनो राम रहीमान येकी हीसाब ।

आकल से तहकीक गुरो मुख किताब ॥
हिंदू और मुसल्लमान कर्तार बुझ ।
सोही मस्त गुंडे साहेब रिझ ॥
न हींदु मुसल्लमान कर्तार जी ।
न जोगी न ज्यंगम आसल्ल[8] धाख[9] जी ॥
जीसी का कीया सब अठारा बरण[10] ।
बरण से ज्युदा बुज्य गुंडे रतण[11] ॥

तिंन्हों लोक का साच्य[12] साहेब रतण
आज्याति[13] मेहरबन्न हीरदे ल्लमण ॥
नही ज्यात ना पात सबसे ज्युदा ।
ज्यगत में भरा सुभ्य[14] गुंडे खुदा ॥

गरिवन्नबाई[15] खुदा का करम[16] ।
बुझुयो हो बुझूयो ज्यात[17] खासा जनम ॥
कमाई करो प्रेम दिल्ल बिच धनि ।
हुसीयार गुंडे गगन मो गनि[18] ॥
फत्तर[19]कुं पुज्ये मुरख हीदू गंव्हार ।
फत्तर जीसने पैदा कीया सो बिचार ॥
जामि और सब कुच्य[20] जीसी[21] का बनाव ।
देवन का बड़ा देव गुंडे ही[22] लाव ॥

---

१. यकीन । २. नीयत । ३. जिन्दा (जीवित) । ४. शरीर । ५. जिक्र (स्मरण) ६. चढ़ा । ७. अलख (ब्रह्म) के सम्मुख । ८. असल । ९. धाक । १०. वर्ण (जाति) । ११. वर्णों से पृथक् जो श्रेष्ठ रत्न है उसे पहचान । १२. सच्चा । १३. आ जाती । १४. देख, पहचान । १५. दीनों का पालन । १६. काम । १७. जा रहा है । १८. गनी (बहुत बड़ा धनी) । १९. पत्थर । २०. कुछ । २१. जिस । २२. हृदय (में) ।

पद ख्याल

बुझीयो साहेब लाल गुपाल। (ध्रुपद)
लेवो कोई हीरदे भरिया, मैंहरबक्ष कमाल ॥
देखत अंधि दुनियां बहके, तन मन ज्याको ख्याल।
झुठी माया फसणा वाजब नहीं बे दिखता काल ॥
साध समागम की ज्यो मुठी मीटे भव ज्यंजाल।
गुंडा केशो साध दया से जनम मरण मेटाल[1] ॥

आराधो त्रीजग नाथ गुंसाई।
गरिब नवाज्य क्रीपाल हिनोके[2] पग च्युमत[3] सुख पाई।

निज बोध मो गुंग हमेशा, प्रेम खुमारी आई।
सुफल:ज्यनम ज्याके पग सुख पाये, पुरब जनम कमाई ॥
गुंडा केशो मेहर धनि की, ये दिल्ल कुं आज्यमाई[4] ॥

मुसलमान महजीत मो रबसे ईमान।
तहकिक बुझुयो दिल्ल महजीद बयान[5] ॥
सकल ठौर चिड़ी ज्यनाबर[6] में आप।
कहत दास गुंडे तोरो मोही[7] ज्याप ॥

ख्याल

लगी है प्रेम लगन कि याद।
पीया बिन जीयेरा केकर जीये,
खुदस्ते बूनियाद ॥
मेहरबक्ष दयाल अजीज[8] कुं,
और न ज्यानु बादा ॥
गुंडा केशो प्रेम दील्लंया,
तेरी खाने ज्यादा ॥

---

१. मेटाल-मिटेगा (पाण्डुलिपि में अक्षर स्पष्ट नहीं हैं)। २. इनके। ३. चूमत। ४. हृदय ने यह परख लिया है कि धनी (धरमात्मा) की उसपर कृपा है। ५. सच पूछो तो दिल ही मस्जिद है। ६. जानवर, प्राणी। ७. तुझमें और मुझमें। ८. दीन।

ख्याल

हुआ है मनुआ सब तिरथ सपड़ा[१] ।
सकल तिरथ को आद गुंसाई,
वाकु लगन ज्यड़ा[२] ॥
भटकत कोण फीरे दिल्ल ज्यामें,
गुरुमुख भ्रम निबड़ा ।
बेहाली मो मस्त सदा है,
सब तन प्रेम गड़ा ॥
केशोदास येकीन साबुत से,
हिरदे खूब[३] खड़ा ॥

साधो गरिब निवाज्य बड़े हैं । (धुन)
ज्याको करम सकल सुख पाया, आटल खंब खड़े हैं ॥
पतित पावन साच्य गुसइयां, आलख गगन अड़े हैं ।
पिरणपियारे[४] आजीज उधारे लालसे (?) ख्याल ज्यड़े हैं ॥
मस्त सदा झुलती ज्यों कुंज्यान प्रेम महक की मोगड़े[५] हैं ।
गुंडा केशो करम तिहारो साहेब शोखलीड़े[६] हैं ॥

× × × ×

मश्कुल्ल[७] दिल्ल खुलाया ।
दरवाज्या उलट कैं ज्याना, येह मोकुं सिखलायो[८] ॥

आरति

करले आरति अलख निरंजन ।
सब घट पुरण भव भये भंज्यन ॥
पहीली आरति आपकुं पछ्यानो ।
आप ही आप मो आप समानो ॥
दूसरि आरति दोऊंन ही बुझ्या ।
येक अनेक मो साहेब से रिझ्या ॥
तिसरि आरति त्रीगुण से न्यारा ।
अनुहाद बज्यत[९] गैबि[१०] नगारा ॥

---

१. तीर्थ में स्नान किया। २. जड़ी, लगी। ३. परमात्मा। ४. प्राणप्यारे। (?) पांडुलिपि (लाल अर्थात् परमात्मा से मन लगा है) में स्पष्ट नहीं है। ५. मोगरा (एक फूल) ६. ढीठ ७. प्रवृत्तिमय मन···पाण्डुलिपि का पृष्ठ खंडित है। ८. कुंडलिनी-योग मुझे सिखलाया। ९. अनाहत नाद-मूलाधार के ऊपर स्थित सर्पाकृति-कुंडलिनी जागृत होकर जब सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ब्रह्म-रन्ध्र की ओर चढ़ती है तब यह नाद सुन पड़ता है। १०. गैबी (परोक्ष संबंधी)।

च्यवथी[1] आरति च्यारयो हि डारो ।
गगन मंडल मो शेज[2] सव्हारौ[3] ॥

पांचवि आरति उन्मॅन निद्रा[4] ।
गुंडा केशो आव्वल[5] मुद्रा ।
प्रभुजी सब घट माहे[6] समान[7] ।
तुम बिन खाली ठौर नहीं बे, भरपूर ज्यमी आसमान ।
सब ही ब्यापे होकर न्यारो, बुझीये हो गुरु ग्यान ॥

प्रकट निरंज्यन दिलबिच साच्या[8] प्रेम लगन से ज्यान[9]
गुंडा केशो पुरण कमाई ठाकुर से दिल्ल[10] मान ।
ज्यये[11] बोलो रामजी कि बैरागण साची[12] बाला ।
ग्यान केथा पहेरुं प्रेम की शाला ।
विच्यार कुंडल कानो गुरनाम कंठिमाला
तिलक सोहत माथो राम ज्यु[13] लाला
लगन जुगतु पाई मगन उदास फीरो
काम राग याकुं गुरोमुख चीरो
गोच्यर मुद्रा सुहावे भया
ज्यये गावे गुंडा केशो रामा सय्या ।

बैरागणी

अंतर राम बाला, बहिर राम साती
त्रिकुट भू बन देखुं उलटह ज्योती[14]
बैरागण प्रेम प्यारी बितरागी हुं तो
राम हि राम देखों त्रिभुवन
तन मन राम भावे, नयन झरोखे बाला
पूरब कमाई कहुं........उज्यीला
सूफल ज्यनम खासो गुंडा केशो
ज्यये बोलो रामजी की हिरदे प्यारा*।

---

१. चौथी। २. सेज। ३. संवांरो (गगन मंडल में सेज पिया की किस विधि मिलणा होय-मीरा)। ४. समाधि की एक अवस्था, कबीर में 'उन्मनि' का प्रचुर प्रयोग है। ५. श्रेष्ठ। ६. मध्य (में) । ७. सबघट में समाया हुआ है । ८. सच्चा । ९. जान (पहचान)। १०. दिल। ११. जय। १२. सच्ची। १३. रामजू। १४. त्रिकुटी मध्य दृष्टि कर ब्रह्मज्योति-दर्शन की योग-साधन।....पाण्डुलिपि के पृष्ठ खण्डित हैं।

प्रभुजी तुम मेरो ज्यजमान
अदणा[1] ब्राहमण तोरो भीकारि,[2] तोकुं सब अभिमान
दिन दयाल क्रीपा कर मोकुं, होते क्या है गुमान
त्रिजग के तुम ठाकुर दाता, भक्तन को सुख मान
गुंडा केशो गरिब नवाज्यो, साहेब दिल्ल ईमान

× × × ×

हम तो दास गुरु के नाथ उपासी
त्रीजग को आदिनाथ गोसांई, हर घट हिरदे बिलासी
आलख ज्यगत गुर सब का राज्य का, जीये का जीये मुखासी
गुंडा केशो लगन मगन मो····प्रेम गई खासी
अंदर खुदा बाहेर खुदा खुदा बुझ्यो भाई।
प्रेम झरोखे लेत मुज्यरा पकडो लागन्न कोई
खूब दिल्ल को प्यारा, बनि[3] जी सबूब से न्यारा
बुझले दादा सुझले भाई, असल्ल नफा सारा।

ख्याल

व्यातुर[4] ज्यानत प्रेम मे मन कि
हिरे[5] की पारख सहज दिखावे
काहें कु च्योट लगी है धन कि
बेधा मृग तो क्या ज्याने परिमल
भंवर ही ज्यानत प्रीत फुलन कि
गुंडा केशो प्रभु अंतर बाहेर
सब कुछ देखत सुर्त लगन कि

× × × ×

सो गुरु पीर मेरा
मन मनके कु फेरा

× × × ×

पाख दिला भरपुर बाजत ज्येवत बदे ज्याको नुर
परम पुरख आलेख जुगीया नैन्न हल हजुर
गाफल आद्या ज्यग जौ बहके, बाजेत अनहत तुर
गुंडा केशव परमादि खलक भरा माह मुर

---

१. अदना। २. नबी (पैगम्बर)। ३. नबीजी (पैगम्बर)। ४. आतुर।
५. हीरे की।

त्याग पीयु घरे हरमन की, तसबि[1] मन मो फेर
क्या सोया उठ काल सयाणे····चे पठेन लगे बेद
ज्यौ लो[2] नहीं तलब अवई ज्यम[3] कि तै लग[4] सब कछु मोद
गुंडा केशव प्रभु कहत पुकारे आखर नही कोऊ तोरे।
परवर को गीदड़ क्या ज्याने कल को
ये मन बेहोश कहे मेरा मेरा
ये लाल कनांत कलंदरी डेरा
च्यौगीर्द[5] फेरा
नांवं नवेसी च्येहरा
कोउ बि नहिं तोरा
भूला ज्यांहा तूं था घूरा बबरा ॥१॥
गुन्हेगार ज्यो है पूरा, नाकारा हराम दा प्यारा
गुरु गुंडा केशो पूकारा : बांदिदा मांरा छुपावे जरारा

---

१. तसबीह (माला) ···पाण्डुलिपि में अक्षर स्पष्ट नहीं हैं। २. जबतक। ३. जम (यम)। ४. तबतक। ५. चारों ओर।

माणिक महाराज के पद

माणिक के पद

(१)

भोला ! तोहे[1] मूरत लागत नीको । ध्रुवपद ।
कान भुजंग सुहावत कुंडल, वोढे[2] ही छाला ब्याघ्रांबर
गाल बजाय के नाम ही लेत, काल ही कापत थरथर ।
माणिक के प्रभु ऐसे सदाशिव, भावहि भक्ति न[3] भूको
भोला............नीको ।।

(२)

आज बडो ये कठिन भयो ।
निर दलकत नैन से या रघुबर के ।
लाग के बाण जद[4] लछुमन, व्याकुल प्राण भयो भयोधर (१) के
क्या कहूं मैं भरत भैयाकु, कैसे मैं जाऊ अयोध्यानगरकु
ज्यावेगे काल कपि गिरि कंदर, ज्यावे विभीखन अब कौन घर के ।
माणिक के प्रभु धुनख[5] धरे, बतावो निशाचर अब कौन घर के ।

(३)

गुरुजी ! तोरे पैया पर सीस धरू ।ध्रुवपद।
तेरा नाम का ध्यान धरू, तेरे काज मरू ।
आपने तन की चाम निकाल के, चरण पनैया करू ।
माणिक कहे तेरी मूरत प्यारी, नैनन बीच भरू ।।

(४)

मनलागा मेरो रे ! अवधूता सो । ध्रुवपद ।
निराकार निर्गुन निरंजन, निराकार बिना नाथा सो ।
बहुरंगी जोगी संग त्यागी, ज्ञान अखिल पददाता सो ।
माणिक के मन लग गये सुमरन, अनसूयाजी के पूता सो ।

---

१. तेरी २. ओढ़े । ३. पाठान्तर 'क' । ४. जब । ५. धनुष ।

(५)

देखो देखो सखि रे छब बालाकी । ध्रुवपद ।
शेषाचल पर आप बिराजे, चौकी हंनुमंत लाला की ।
मोर मुकुट मस्तक पर सोहे, बहुत लगी लड माला की ।
माणिक के मन सुमरत बाला, फासा कटे भवजाला की ॥

(६)

मै तो वारि रे सैया ! तोरे पर से ।
सावलि सूरत रसभरी अखिया लेउगि बलया दोनो कर से ।
माणिक प्रभु वो नंदलाला । दर्शनपर[१] जिया तरसे ॥मै तो०॥

(७)

नंदकुमार सावरो कान्हा, बासुरी बजाई ।
शुक सनक व्यासमुनि, ध्रुवप्रल्हाद नारदमुनि ।
भय[२] रहे स्थिर देह, सूध बिसराई ।
चकित भये सब ही देव, ब्रह्मा विष्नु महादेव ।
त्रिभुवन मो नाद भरे सुनत शेष शायी ।
स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये बिमानी[३] सुर ।
माणिकदास मगन भये हरि के गुण गाई ॥

---

१. दर्शन के लिए । २ हो रहे । ३. बिमान पर चढ़े हुए देवता ।

परिशिष्ट

(ख)

प्रमुख सहायक ग्रंथ-सूची

(१) यादवकालीन मराठी भाषा (मराठी) .... डा० तुलपुले

(२) पांच संतकवी (मराठी) .... "

(३) तुकाराम बुआंचा अस्सल गाथा (भाग १,२) (मराठी) .... वि. ल. भावे

(४) सकल संत गाथा (मराठी) .... त्र्यंबक हरी आवटे

(५) तुकाराम महाराजांची साम्प्रदायिक गाथा (मराठी) .... देवड़ीकर

(६) पंजाबातील नामदेव (मराठी) .... शं. प्र. जोशी

(७) एकनाथ महाराजांची गाथा (मराठी) .... "

(८) नामदेवांची आणि त्यांचे कुटुम्बातील व समकालीन साधूंच्या अभंगांची गाथा (मराठी) ... तात्व विवेचक छापखाना, बंबई

(९) संत काव्य समालोचन, खंड १ (मराठी) .... ग्रामोपाध्ये

(१०) देवनाथ महाराज-कृत कविता-संग्रह (मराठी) .... ओक

(११) वैदर्भ काव्य-संग्रह (गुच्छ दूसरा) श्री एकनाथ महाराजांची कविता (मराठी) .... साठे, पांडे, अग्निहोत्री

(१२) महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष, विभाग २०वाँ (मराठी).... डा० केतकर

(१३) श्री समर्थ सुवर्ण महोत्सव-ग्रंथ (मराठी) .... सहकार्य उत्तेजक सभा, धुले

(१४) मराठी वाङ्मयाचा इतिहास खंड पहिला (मराठी) .... पांगारकर

(१५) महाराष्ट्र सारस्वत (मराठी) .... भावे और तुलपुले

(१६) श्री तुकाराम अभंग वाणी (मराठी) .... श्री मोडक

(१७) श्री गुलाबराव महाराजकृत सूक्ति-रत्नावलि (मराठी) .... श्रीगुलाबराव महाराज
(१८) सम्प्रदाय सुरतरु (मराठी) .... श्री गुलाबराव महाराज
(१९) श्री विष्णुदासांची कविता (मराठी) .... खरशीकर शास्त्री
(२०) भक्तविजय-कथामृत (मराठी) .... भिकाजी ढवले
(२१) महाराष्ट्र-परिचय (मराठी)
(२२) तुकाराम (मराठी) .... हर्षे
(२३) महाराष्ट्र संत कवयित्री (मराठी) .... आजगांवकर
(२४) श्री तुकाराम-चरित्र (मराठी) .... पांगारकर
(२५) श्री दयालनाथांची कविता (मराठी) .... साठे और पांडे
(२६) श्री तुकाराम-वचनामृत (मराठी) .... रानडे
(२७) संत तुकराम (मराठी) .... आजगांवकर
(२८) साहित्य-दर्पण (मराठी)
(२९) छन्दोरचना (मराठी) .... पटवर्धन
(३०) भक्त शिरोमणि नामदेव (हिन्दी) .... मोहन सिंह
(३१) श्री समर्थ रामदास (हिन्दी) .... जोगलेकर
(३२) एकनाथ और तुलसीदास (हिन्दी)
(३३) संत तुकाराम (हिन्दी) .... दिवेकर
(३४) गोरखबानी (हिन्दी) .... डॉ० बड़थ्वाल
(३५) उत्तरी भारत की संत-परम्परा (हिन्दी) .... परशुराम चतुर्वेदी
(३६) हिन्दी साहित्य का आदिकाल (हिन्दी) .... डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३७) राधा माधव विलास चंपू (संस्कृत, हिन्दी, मराठी) .... जयराम
(३८) कबीर-वचनावली (हिन्दी) .... हरि औक
(३९) सूरसागर (हिन्दी) .... डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
(४०) संत वाणी सुधासार (हिन्दी) .... वियोगी हरि
(४१) मराठी संतों का समाजिक कार्य (हिन्दी) .... डॉ० कोलते
(४२) हिन्दी काव्य धारा (हिन्दी) .... राहुल
(४३) नाथ सम्प्रदाय (हिन्दी) .... डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(४४) हिन्दी भाषा का इतिहास .... डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
(४५) दक्खिनी हिन्दी .... डॉ० बाबूराम सक्सेना
(४६) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी .... डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी
(४७) परमार्थ सोपान .... डॉ० रानडे
(४८) Gorakhnath And The Kanphata Yogi .... श्री ब्रिग्स

(४९) Introduction to Comparative Philology .... डॉ० पी० डी० गुणे
(५०) Mysticism In Maharashtra .... डॉ० रानडे

पत्र-पत्रिकाएँ

(१) प्रसाद (मराठी)
(२) प्रतिष्ठान (मराठी)
(३) भारत इतिहास-संशोधन-मंडल (मराठी त्रैमासिक)
(४) लोक-शिक्षण (मराठी)
(५) हिन्दोस्तानी (हिन्दी)
(६) नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (हिन्दी)

अप्रकाशित हस्तलिखित पोथियाँ

पोथी	विवरण
अनेक हस्तलिखित पोथियाँ	—श्री समर्थवाग्देवता-मंदिर, पुरलिया के हस्तलिखित ग्रंथागार में रामदासी मठों, व्यक्तियों आदि स्रोतों से प्राप्त कर संगृहीत प्राचीन पोथियों में प्राप्त हिंदी-पद तथा अन्य सामग्री का उपयोग इस ग्रंथ में किया गया है।
वामन पंडितांची चौपदी	—लिपिकाल शाके १५७१, लिपिकार अनन्तमुनि। स्व० हरिभाऊ नेने द्वारा प्राप्त।
केशव, शिवदिन केसरी, अमृत राय, सिद्धेश्वरी महाराज के पद	—मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद्, हैदराबाद के हस्तलिखित ग्रन्थागार से प्राप्त।
गुंडा केशव के पद	—डा० देशमुख (अमरावती) के पुस्तकालय से प्राप्त।
अनंत महाराज के पद	—श्री भा० रा० तेलंग, औरङ्गाबाद पुस्तकालय से प्राप्त।

अनुक्रमणिका

ई

उ

ऋ

ए

ओ

औ

क

ध

न

प

फ

ब

भ

म

श

ष

स

शुद्धि-पत्र

[प्रस्तुत शुद्धि-पत्र में अत्यन्त भ्रमात्मक शब्दों के शुद्ध रूप उपस्थित किये गये हैं। शेष विज्ञ पाठक स्वयं सुधार लेने का कष्ट करें।]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२	३१	ऑन फिलालाजी-मराठी	ऑन मराठी
३	१२	शके २०५	शके ६०५
६	१२	बाली	बोली
७	११	६६'२०	३३'२०
८	६	ईम	ईय
१६	२६	मी जाते	मी जातो
,,	,,	मी जाती	मी जाते
३५	२	अरभक	अश्मक
४७	१६	अनुताप में	अनुतापें
४८	१०	में	से
५०	३२	गोदावरी	गोदावरि
,,	,,	सरस्वती	सरस्वति
,,	३३	नर्मदा	नर्मदे
,,	,,	कावेरी	कावेरि
,,	,,	जलेस्मिन	जलेऽस्मिन्
,,	,,	सन्निधं	सन्निधिं
५४	११	भक्ति-विजय	भक्त-विजय
५६	२६	इसके	इनके
६१	१४	कुंडलनी	कुंडलिनी
८८	४	जता जता	जेता जेता
,,	५	तंता	तेता
६३	३	भी	की
,,	७	प्रतीत है	प्रतीत होता है
,,	६	१....६४	१२६४
६५	३३	सूर्याची	सर्पाची
११७	३	पे	ये
,,	५	उसके	उनके

११७	५	जानता	जानते
,,	,,	वह	वे
,,	,,	सकता	सकते
१२३	४	न	य
१६६	१३	और	औ
,,	२७	च	ज
,,	,,	ञ	झ
१७४	४	एक	ए
१२०	६	मति	मात
२०२	५	हार	द्वार
,,	२१	जाला	जाह्ला
,,	२३	षीडस	षोडसे
,,	,,	दवादशादल	द्वादशदल
२१८	३०	अस	अरु
२१८	,,	की	ही
२२०	१५	जान पड़ते हैं	हैं
२२१	२६	व्रह्म	ब्रह्म
२२२	२	धन-वैभव-स्वप्न	धन-वैभव स्व:
२२५	२१	प्रवहमान्	प्रवहमान
२२६	६	अनुष्टुप	अनुष्टुप्
,,	१५	'ओली'	'ओवी'
२२७	२	रुढ़ि	रूढ़ि
२२६	२६	संतो	संतों
२३०	६	वद्धमेवं	बद्धमेवं
२३०	७	उदग्राह ध्रुवकाभागांतरं	उद्ग्राहध्रुवकाभागान्तरं
२३०	६	बह्मताल	ब्रह्मताल